

HINDI
JAIN BHAKTI KAVYA
AUR KAVI

(*Thak*)

Dr PREMSAGAR JAIN

*Aberstye Jansapth
Publicities*

First Edition 1964

Price Rs 12 00

©

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय

६ कबीरपुर मार्ग पोस्ट कलकत्ता ९०

संस्करण कार्यालय

दुर्गापुर रोड बाराकली-२

विशेष केन्द्र

१९९ १९९ जेठानी सुभाष मार्ग दिल्ली-२

प्रथम संस्करण १९६४

मूल्य बारह रुपये



हमारे देशमें वैय्यन चौब साफ़ बौद्ध जैन सिन्धामत सिख आदि धर्मके अनेक पन्थ प्रसिद्ध हैं। मेरे मन में केवल जम पन्थ नहीं है। ये तो ब्रह्मात्मप्रबन्ध संस्कृतिकी अलग-अलग शाखाएँ भी हैं। इनके दार्शनिक विचार और विचारभेदका अध्ययन करके हमें सम्योप नहीं मानना चाहिए। मानवी जीवनको विद्युत् समृद्ध और कृताप करनेके इन विविध और जीवनव्यापी प्रयत्नोंका अध्ययन हमें संस्कृतिकी दृष्टिसे भी करना चाहिए। तब जाकर इन महान् पन्थोंकी मानव-सेवाका हमें यथार्थ स्पाक आयेगा।

ऐसे अध्ययनके लिए केवल दार्शनिक ग्रन्थोंका परिचय और इन पन्थोंके संस्थापकोंकी और उनके प्रचारकोंकी जीवनीयाँ तो महत्त्वकी हैं ही। इन पन्थोंका और इनकी शाखा प्रशाखाओंका इतिहास भी हमें देखना होगा। और इसके भी अधिक महत्त्वकी बात इन पन्थोंके कविमोने अपनी कविताके द्वारा जीवनको जो स्पासना की है और हृदयकी जो समृद्धि हासिल की है और करवायी है उसका भी महत्त्व और हार्दिक अध्ययन होगा चाहिए।

इन पन्थोंके बारेमें और एक महत्त्वकी बात है। इनके साधुजाने प्रचारकोंने और कविमोने अपने-अपन पन्थका जीवन भीते जो नये नम सन हुई और उनके द्वारा जीवनका जो विपुल शासास्कार जिना उसका महत्त्व मूल प्रेरणासे कम नहीं है। जिस तरह भाष्यकार और टीकाकार मूल ग्रन्थक रहस्यका उद्घाटन करते अपने नये-नये मौलिक विचार और अनुभव भी उसमें छोज देते हैं वही तरह हरेक पन्थका विचारक प्रचारक और कवि अपने-अपन पन्थकी जीवन दृष्टिमें अपनी ओरसे मौलिक बुद्धि भी करता है।

यह हुआ हरेक व्यक्ति की जीवन-साधना-द्वारा होनवाली सांस्कृतिक सेवा और समृद्धि।

इसके अलावा जब ऐसे पन्थोंका प्रचार मिश्र-मिश्र कौटिके और मिश्र-मिश्र बोध्यताके नये-नये समाजमें होता है, तब मूल धार्मिक प्रेरणाको मानो नये-नये अवतार धारक करने पड़ते हैं। वैय्यनोने अथवा शास्त्रोने जब आदिवासियोंमें धर्मप्रचार बलावा तब उन लोगोंके जीवन-स्तरका विचार करके और उनकी जीवन-दृष्टिके साथ समझौता करके इन पन्थोंकी समन्वय-दृष्टिको उन्हें स्वीकार करना पडा। हीनयान बौद्ध सम्प्रदायके अधिनानी लोग भले ही कहें कि इमाउ

बुद्धधर्म ही ध्युत है और वैश्व-विदेशमें फूला फूला महावान पद्म तरह-तरहकी मिजाजके कारण असुख है, मैं तो कहूँगा कि महावान मन्त्रराय असली बौद्धधर्मका ही मानवसाने अनुपम विपाक समूह स्वल्प है। यंदा नदीके तटपथका माहात्म्य स्वीकारते हुए हम कभी नहीं कहने कि यंदाकीके बारनी हस्ताके बारनी या प्रयागके बारनी यंदा यंदा ही नहीं। यंदाका उच्चा माहात्म्य यही है कि यंदाकीके केन्द्र यंदासागर तक तकके सुदीर्घ प्रवाहमें जितन भी जीवनप्रवाह का निकले तन तबको अपने अपमाना और उन्हें अपने नामका तक सब प्रदान दिया। हम यों ही कहते हैं कि हमारा बचपनका जीवन ही हमारा बुद्ध जीवन का और बारका जीवन असुख जीवन है। वैदिक धर्म बढ़ते-बढ़ते उसका उनातन धर्म हुआ। अपने जाकर यही हिन्दू धर्म हुआ। अब यह धीरे-धीरे भारतीय धर्म होने का रहा है और अबतक यह विश्वधर्म नहीं हुआ है, परमें अरुम् बुद्धि आनेवासी नहीं है। इस भारतीय धर्ममें-से अनेक पन्थ निकले। यानाके रूपमें जनका जीवन-प्रवाह अरुम् बढ़ने लगा और जनमें-से अनेक क्रिस्त मूल स्रोतमें का निकले।

यही बात सब धर्मोंकी है। और अब तो हमसे कम भारतमें सब धर्म एकत्र आते हैं और आद्यन-प्रधान-द्वारा इनका समन्वय होनेवाला ही है।

भारतमें बसे हुए सब धर्मोंके और पन्थोंके बीच आदान-प्रदान शक्तता ही बामा है। इसीलिए तो हवाप तात्त्विक जीवन इतना लक्ष्म्य और समृद्ध हुआ है।

मेरे मन इन सब धर्मोंमें सबसे अधिक मन्त्रि है मन्त्रिकी। मन्त्रिकी बीजा सब धर्मोंकी केवी पड़ी है। ऐसा एक भी धर्म या पन्थ नहीं है जो मन्त्रिके मुक्त रहा है। 'अनादेव तु सर्वस्वम्' कहनेवाके अस्तित्वाही ज्ञानमार्गी संन्यासी संकटा कायको भी कहता पड़ा 'मोक्षकारणमज्ञानमथी मन्त्रिकं गरीजसी। क्रिस्त तो उन्हें मन्त्रिकी अपनी आकाशा भी करती पड़ी 'स्वस्वस्यानुसंधानं मन्त्रित्वमिच्छते।

ज्ञानमार्गी धर्मियोंकी भी मन्त्रिकी विद्यामें अपना जीवन पन्थ बहला ही पड़ा। सचमुच मन्त्रि ही जीवन है। नदीका ज्वारके तरह बहना जीवनका धिक्की और अज्ञान बहनेवाका कारण 'सीमा'का परिपुष्ट होकर 'मूया'में समा जाना यही तो मन्त्रि है। जो बरपा नहीं और बरपा नहीं वह भी नहीं चकता। और मन्त्रि तो अज्ञान बहनेवाकी रसमय प्रवृत्ति है। बहनेवाकी नदियाँ जित समुद्रमें जाकर मिलती हैं, वत समुद्रकी न चकता है, न चकता है, तो भी सबमें अन्तर्वासी

सोचा सकती है। और कियो भी नयीके प्रवाहकी अपेक्षा स्वयं समुद्रके अन्त-प्रवाह अधिक बेगवान् और समर्थ होते हैं।

साहित्यकी ओर देखते कहना पड़ता है कि जीवनका अन्तम्य साहित्यमें भी सबसे अधिक सामर्थ्यसे व्यक्त होता है उसकी कवितामें। क्योंकि सब देखा जाये तो हृदयकी मित्रि ही काव्य है।

इतना स्पष्ट होनेके बाद अन्त्य कहनेकी शक्यता ही नहीं है कि भक्ति-काव्यमें ही उच्च-उच्च पन्थकी जीवनसिद्धिका उत्तम परिचय पाया जाता है। उसमें भी हृदयवर्मकी निष्ठा जिसे पूर्णरूपसे मिली है, उस गारी बाणिके भक्ति-काव्यका तो पूजना ही क्या। जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली अन्त्य बातोंसे स्निग्धका परिचय भके ही कम हो साहित्यकी बातुरी भी भके उनमें कम ही ज्ञानवर्धनमें उगकी तकिक भी बिलचरपी न ही किन्तु हृदयके माबोके साथ एकनिष्ठ रहना उन माबोके चरणोंमें अपने जीवनका पूर्णतया अर्पण करना उनके लिए स्वाभाविक है। आराध्य देवकी उपासना करते अपनेको भूख जाना और सर्वाधिकमें ही उन्नोप मानना वह है स्वोप्रकृति।

बैत जीवनदृष्टिने जितेन्द्र जावि बाहे सो नाम पसन्द किया हो अपनी जीवन-निष्ठा आत्मतत्त्वको ही अर्पण की है। और सब साबक जानते हैं कि उपासनाका रूप कुछ भी हो आत्मार्पण तो आत्मदेवको ही हो सकता है। भयबान्के नाम अनन्त है लेकिन सच्चा नाम तो अन्तरतम यानी आत्मायाम ही है। इस आत्मदेव की भक्ति सबभावेन करते जिसको सो रास्ता भिका उचने अर्पणमा है।

धी प्रेमसागरबीने बैत भक्ति-काव्यके सागरमें अनेक बाबूते बुझियाँ अयाबी है और सो मोतो उन्हीं भिके हमारे सामने रखे है। अपनी पङ्कती किताब बैत भक्ति-काव्यकी पुष्पभूमिमें पठनके लिए और रसिकोंके लिए उन्होंने पूर्ण तैमार की है। अब इस ग्रन्थमें उन्होंने माबकी बुद्धिसे और कलाकी बुद्धिसे अनेकानेक बैत कवियोंका और कवयिदियोंका परिचय करवाया है।

मै तो मानता हूँ कि काव्य और भक्ति ने दोनों जोड़ ही ऐसे सार्वभौम है अथवा साम्योपम है कि इनमें पन्थमेवका लोप ही हो जाता है। नोमिर्वाकी मधुर भक्ति राम उपासनामें भी प्लुंन नयी और शोहरागीकी भक्तिमें भी उचने अपनी प्रचलता साबित की है। अर्मके पन्थोमें और जीवनकी संस्कृतियोंमें बाहे जितने भेद हो जीवन तो एक अचरख सम्पूर्ण और मूमा होता है। सब वर्धनोंकी नख होकर जीवनसे ही सोखा लेनी पड़ती है और जीवनकी उपासना करनी पड़ती है। जिस तरह सागरमें सब तोर्ब समाये जाते हैं वही तरह सब देवता जीवन देवताकी

ही विद्य-विद्य विमूर्तियाँ सावित होती हैं। कविताने और भक्तिने अपनी गिद्य जीवनरेखताको ही अपन की है। इसीमें उनकी कृतापता है।

श्री प्रेममादरबीने पहले संशोधनके बाद पूरी विद्वत्ताके साथ यह ग्रन्थ लिखा है। उसके लिए वे सबके सम्बन्धके अधिकारी हैं। हम आशा करते हैं कि जब वे इस नारे महाप्रयानके कमस्वरूप और भक्ति-काव्यका स्वरहित और पीछे मन्तन निशान्कर आजकी मायामें घेन्के स्वरूप हेंगे।

—कमल कान्ठकर

मद्रिधि राजवाट

१३ जनवरी १९५४

मूमिका

यह मेरे दोष प्रबन्धका दूसरा खण्ड है। पहला खण्ड 'जीन भक्ति-काव्य'की पुष्टमूमिके नामसे प्रकाशित हुआ है। उसमें पाँच अध्याय हैं। जीन भक्तिका स्वरूप जीन भक्तिके अर्थ जीन भक्तिके मंत्र आराध्य देवियाँ और उपास्यदेव। इनके आचार पर जीन भक्तिको प्राचीनतम मान्यता स्थापित की गयी है। वही परम्पराके रूपमें मध्यकालीन हिन्दूके जीन भक्त कवियाँको प्राप्त हुई। जीन ही नहीं अन्य भक्ति काव्य भी उसके प्रभावमें बहना न बच सका। उक्त-काव्यपर उनकी स्पष्ट छाप है।

सबसे तो कबीरदासकी भूषण सबप्राप्तो मानी जाती है किन्तु नावसम्प्रदायसे उनका विशेष सम्बन्ध था। डॉ. इत्यागीप्रसाद त्रिवेदीके अनुसार उस समय प्रचलित बार्हस्पत्य सम्प्रदाय नावसम्प्रदायमें अन्तर्भूक्त हुए थे। उसमें 'पारस' और 'नमि' सम्प्रदाय भी थे। नमि सम्प्रदाय अनेकै बाईमर्से ठीककर मेमिनाथके नामपर प्रचलित था। वह समूचे दक्षिण भारतमें फैला था। उसके अन्तर्भावसे अथक निकले हैं। 'पारस' सम्प्रदाय ठीकमर्से ठीककर पाप्मनाससे सम्बन्ध था। उगका समूह उत्तरी भारतमें प्रसार था। इन प्रकार कबीर जाम या जनजाने एक ऐसी छद्मका स्वयं था सके थे जो अनेकान्तात्मक थी। उनकी 'निर्गुण' में 'गुण' और 'गुण' में 'निगुण'वासी बात ऐसी ही थी। निर्गुणका अर्थ है गुणातीत और गुण का अर्थ है प्रकृतिका विकार—मत्त्व रज और तम। संसार इस विकारसे संयुक्त है और ब्रह्म उससे रहित। किन्तु कबीरदासने विकार-संयुक्त संसारके बट-बटमें निगुण ब्रह्मका नाम लिखाकर मित्र किया है कि 'गुण' 'निगुण' का और 'निगुण' 'गुण' का विरोधी नहीं है। उग्रहाने 'निरगुणमें गुण और गुणमें निरगुण' को जो उक्त माना अबसिद्ध सबको धोना कहा।

कबीरसे बहुत पहले ब्रह्मकी सातवीं घनीम इसी निगुणको 'निष्कल' संज्ञासे अतिरिक्त किया गया था। फिर सभी अथवा छ काव्यके रचयिता बहि उसे 'निष्कल' ही कहते रहे। मुनि रामनिहल उसे एक स्वानपर 'निगुण' भी कहा है। उसका अर्थ किया है निरुत्थन और निमन। वह निष्कलसे मिथ्या-मुक्तता है। जिस प्रकार कबीरका निगुण ब्रह्म भीतरसे बाहर और बाहरसे भीतर तक फैला है। वह अनादरप भी है और भावपूर्ण भी निराकार भी है और साकार भी। ईत भी है और अतीत भी। ठीक इसी प्रकारको बात अथवा सके जीन कवि

निष्कल ब्रह्मके विषयमें लिख चुके थे। मोदीन्द्रने टीनके मानिष्यकी धरोरा ब्रह्मको उपाहार कहा उधे ही 'अविचयटीन'हृत सिगकर निराहार भी मला। उनका ब्रह्म देखें समते हुए भी देखे अपरम है कम अन्धमंनरि कम अपरम अग अन्धमंनरि का जि। मूमि पामतिहने भी बाह्यमाहृममें लिखा है 'निहु मनि कीसह देव जिम जिमवरि तिहुबनु बर। अर वे ब्रह्मकी मंतरमें बना बलते है तो ईतकी बात बहूँ है और अर संसारकी ब्रह्ममें बलाते है तो अईत की कर्षा बलते है। वे ईतकी मालते है और अईतकी भी। उनका यह ईताउंठ' बबीरकी मलीमें स्पष्ट अलकता है। बबीर न ईतके देरेमें बंपनेरामे वे और न अईतके।

बहू अनेकान्धारक प्रवृत्त अन्धधामीन बिन हिन्दी-धाम्यमें अविचये अन्ध देखी जाती है। यहाँ एक ही ब्रह्मके भावावाक विरोधाविरोध पुष्तापुष्त मिश्र-मिष्ट एकानेक अन्धधाम्यस्त मूर्तामूर्त आरि अनेक अन्ध इच्छिवोर होने है। उनका विवेचन शर्मलिक न होकर अनुभूतिपरक है। उनमें विम्वयता है और हुरमकी विभोर बना देनेवाली टालिनी भी। ब्रह्मके माकार और निराहार रूपको लेकर एक बार पुन-विषयमें रोचक बार्तालाप हुआ। विषयन पुष्त 'निराहार भी ब्रह्म कहलै सा साकार नाम कबी रावे। 'जेवाकार जाम अर काई, पूरन अन्ध नादि उर ताई।' प्रस्त महत्त्वपूर्ण है। जो ब्रह्म निराकार है, कन् साकार बँठे कहला उरता है। और जाम अरतक 'जेवाकार है, पूरन ब्रह्म नहीं हो पाता। साकारमें अतर देते हुए कहा 'बैठे अन्धकिरण प्रकट होकर मूमिको अन्ध बना देती है, किन्तु कभी मूमि-सी नहीं होनी अन्धकि-नी ही रहती है। टीक बैसे ही बालककि हैबोनारेव बीनी अकारके पचबोंको प्रकाशिन करती है और 'जेवाकार-धी रिबाई देती है। किन्तु कभी नी जेवकों अन्ध नहीं बरती। जेवाकार-सी रिबाई देती है अर जेवपचारोंकी अन्धिसे बह साकार कहलाती है। पुनरुत्पत्ते निराहार है ही।' आत्मस्वरूपके निष्पत्तकी मरु पद्धति अन्धधाम्य बाह्य कबी'में लिखर उठी है,

'निराहरी न साङ्गो विरोध आर देव का।
 रमारती जिवाचिरी जिवाचिरी अन्धेव को ॥
 साकारो माकार ए साकारो साकार।
 बीन कन् टावे मन् एक कन् अरिकार ॥
 है अरबता हू ए भी साकारो निराहार।
 मही विरावासा एही सुविचार विचार।

मध्यकावीन बौद्ध कविमौले ब्रह्मके 'एकानेक'वाक्ये स्वयंके शीत माये । सबसे अधिक बनारसीवाक्यने सिखा है कि नदीका प्रवाह तो एक ही है, किन्तु नीरकी हरति बनेक भाँतिकी होती है । वैसे ही भारतका स्वरूप एक ही है, किन्तु पुरुषवक्त्रके सम्मोचसे वह विभिन्न रूप धारण करता है । एक ही अग्नि तुम काठ बाँस आरने और अन्य इत्तन आकृति धारण करती है । वैसे ही यह बौद्ध नव धरममें बहुमोयी दिखाई देता है । अन्तर्हीने किता

“देखु सखी यह ब्रह्म विराजित थाका इसा सब पाही क्या सीरे ।

एक में अनक अनेकमें एक हुँतु किय बुझिया मह होई ।

आयु संसार कभी अरनी पद, आयु विमारि कै आयुहि मो है ।

ध्यानक कन पई घट अन्तर ध्याव में कोन अज्ञान में को है ।

महात्मा आनन्दचरने कुम्भक और कनकका प्रसिद्ध वृष्टान्त श्रुते हुए किता कि कुम्भक आदि पर्यायोंमें अनेकरूपता होते हुए भी स्वयंकी वृष्टिसे एकता है । इसी प्रकार अक्ष और शरव माटी और उसके बरतन रतिकिरण और उससे भासित अनेक बस्तु ब्रह्मके 'एकानेक' स्वभावकी प्रकट करती है ।

सम्प्रकाश्यकी अनेक प्रवृत्तियाँ जो अपभ्रंश और इससे भी पूर्ववर्ती प्राकृत रूपोंमें दिखाई देती हैं उन सबके सर्वोपान विवेचनका पड़ा बरबर नहीं है । इतना स्पष्ट हो चुका कि 'निगुण-काम्य'के मूळ श्रोताओंमें एक बौद्धधारा भी थी ।— मध्यकावीन हिन्दी बौद्ध-काम्यको वह विरासतके रूपमें मिला था । इस युगके अनेक बौद्ध कवि ऐसे हुए जो क्यारिध्यान्त वे और सामर्थ्यवान् भी । मीने उनका बचावमान संस्केष किया है । उनकी निगुण शक्तोंसे तुलना अन्तिम अध्यायमें की गयी है । बर्हातक हिन्दीकी समुच्च काम्यधाराका सम्बन्ध है वह मध्यकावीन बौद्ध हिन्दी कविमौले तीर्थकरभक्तिके रूपमें प्राप्त हुई । इस यत्तिकी विचार विवेचन 'बौद्ध भक्ति-काम्यकी पृष्ठभूमि'के दूसरे अध्यायमें ही चुका है । तीर्थकरका जन्म हुआ है, पासन-नोपन घिसा-बीसा राज्य-संजाजन आदि कार्य परम्परानुमो-रितरूपमें ही चकते हैं । वह स्वयं तप और ध्यायके द्वारा ब्रह्मका प्रवृत्तन करता है । उसकी आत्मा विद्युत्तम हो जाती है । आयुक्रमके शीघ्र होनेपर उनका नामन्व अन्तिम धरीरसे भी छूट जाता है । वह सिद्ध हो जाता है, जिसके न बन् होया है, न बन्व न रव न सधर, न स्वर्ग न जन्म और न मरण । यही है निर्वाण और निःसंय । तीर्थकरकी समुच्च और सिद्धका निगुण ब्रह्म कदा वा सक्या है । एक ही शीघ्र तीर्थकर और सिद्ध दोनों ही हो सक्या है । अतः उनका निदान्त विमानन सम्भव नहीं है ।

चन्द्रका 'सीताचरित्र' एक ऐसी कृति है, जो माव और भाया दोनों ही दृष्टियाने उत्कृष्ट कही जा सकती है। उसपर स्वयम्भुका प्रभाव है। इसकी रचना १७वीं शतीमें हुई थी। पं मगधतीरामने 'बृहत्सीतासु' (वि सं १९८७) की रचना की। पं मगधतीराम नामदास कवि थे। उनके नाममात्र स्वामा विक्रता है। सीताके हृदयके स्वरूपको सही चित्र बृहत्सीतासुमें उकेरा गया है। ब्रह्म जयमापरका 'सीताहरण' (वि सं १७३२) एक महत्त्वपूर्ण रचना है। यह एक खण्ड-काव्य है। इसके पढ़नेसे मन विमुक्त हो उठता है। ये तीनों काव्य सीताको बेध मानकर बने। इनमें नारी हृदयकी विविध प्रकृतियोंका संजन है। इनके अतिरिक्त अन्तरक महीचन्द्रका 'मद-कृष्ण छन्द' (१७वीं शताब्दी) भी राम-काव्यसे सम्बन्धित है। इसमें बेधक छन्द छन्द है। यह एक खण्ड-काव्य है। ब्रह्म रायमल्लका 'हनुमन्चरित्र एक सुन्दर कृति है। इसकी रचना वि सं १९१९में हुई थी। जैन काव्योम कालर एक शक्ति मानी गयी है। वे अनुप्य वे बन्दर नहीं। उनके पूर्वक नहीं थी। हनुमान्को रामके सहायक और भक्तके रूपमें अंकित किया गया है।

जैन-परम्परामें २२वें तीर्थंकर अरिहनेमिके साथ कामुदेव कृष्णका चरित्र जुड़ा हुआ है। कृष्ण नेमीश्वरसे उन्नतमें बड़े थे। उनके चचेरे भाई थे। वे ही राम्यक स्वामी थे। नेमीश्वरने विवाह-कारपर हीरा छे छी थी। घापी नहीं की। तिलाकसुन्दरों रामीमतीमें भी फिर विवाह नहीं किया। नेमिनाथ और रामीमती को लेकर अनेक रचनाएँ मध्ययुगमें हुईं। शैलिकाम्य अंकित रहे गये। विनोदीशान (१७५) की रचनाएँ बिलिप्त हैं। उनकी कृतियोंमें प्रसार गुण तो है ही चित्राकन भी है। एक-एक चित्र हृदयको छूता है। भवानीशान (१७९१) के शीतोमें भावुकता है। जगम ऐसी सुन्दर है, जो कभी मिटती नहीं। नेमि रामुशको लेकर अनेक 'कागु' और 'बेलि' काव्य भी बहूत रहे गये। प्रबन्ध काव्य भी रहे गये किन्तु उनकी संख्या अल्प ही है। कवि भाऊका 'नेमीश्वरराम जमी उपख्यान हुआ है। इसमें १५५ पद्य हैं। जगम विवाहके लिए सभी रामुश और फिर बिरह-विश्रामा रामुशके सभीच चित्र हैं। अगम काव्याकार विवेचन हम ग्रन्थके पहले अध्यायमें हुआ है।

१ मगधनाम्पारका लिप्य हनुमन्चरित्रास (१९१) भी एक मर्मिक कृति है। इसकी हस्तलिखित मणि कलकत्ताके श्री सम्मन्नाथके मन्दिरमें मौजूद है।

२ 'सीतासीताकाव्य उपबेलि' आचार्य अन्वकीमिकी रचना है। इसकी हस्तलिखित प्रतिन इलाहाबाद रचनाकाल वि सं १९०४ रिया हुआ है।

अपभ्रंशम स्वमम्भूष 'रिटुर्भेनिचरित' की विधेय ब्रह्मि है। उनके जन्म और बाह्य दोनों पद्य मयाग रूपसे सुन्दर हैं जैसे पुनाचारी गुण्य और गुण्य ही हो। स्वमम्भूषी काव्यप्रस्तावो मयागिहा टाहुन माहुग्यापामे वग्ग और माया अ। पुण्यप्रकाके महापुराणम भी हृष्य और नेमीस्वरकी कथा निबन्ध है। आनेके बनेक कवि इनमे प्रजाविह-ले माहम पद्ये है। अपभ्रंसक महाराजि बनन्ना हरिबंघपुराण (११वीं शताब्दी) में भी इन विषयना मद्रुलपुन पद्य है। इनमें १२२ सन्धिवां व १८ महम पद्य है। हिनचन्द्रके विशिष्ट घलाका पुण्य चरित में हृष्यचरितका बणन है। हिनचन्द्राचार्यके इस पद्यकी विधेय प्रतिष्ठा है। किन्तु यह स्वीकार करना होना कि इनके सभी काव्य-बन्धोय हृष्यरी पद्यमें विहाराके साम्यमें सिद्धी पड़ी है। वे एक प्रकर विचाररत्न और बाधनिक से। इनकी यह प्रवृत्ति काव्य-बन्धोमें भी पुणे-मिले बिना रह न सरी। जग राम और हृष्यनबाके से स्वल को मानिक से वहाँ अपलप्य नहीं होत।

संस्कृत पन्दोम आचार्य जिनसेना 'हरिबंघपुराण और पुषत्रका 'उत्तर पुराण प्रथम कृतिमाँ है जिनमें हृष्य-कथा आधीपाण्डु उवसन्म होती है। महाकवि बनजयका संस्कृत 'विसम्भाल महाकाव्य' साहित्यकी एक महत्त्वपुन प्रकृति है। इसे 'रायन पाण्डीय महाराज्य भी कहत है। इसके प्रत्येक पद्यके दो अक्षर निकसते हैं एक अक्षर रायकबाके पद्यमें और दूसरा कृष्ण रबाके। प्यप्यालोच के कर्ता आनन्दवर्षमग बनजयकी मूरि-मूरि प्रघंटा को है

द्विसंभाल विद्रुमनां स तां चये बनजय ।

मयाकायकळं तस्य सतां चये बनजयः ॥

एक पुण्यी इति है 'बन्धममहापुरिचरित'। यह प्राणन भाषामें बिना मद्रुलपुन पद्य है। इसके रचयिता श्रीकाचार्य बहुत बड़े विद्वान् और कवि से। उनका बाल ईसवी सन् ८८ माना जाता है। इसमें हृष्यचरित निबन्ध है। प्राण्यमें रने बने भागम पद्य और जयोंमें भी हृष्य-कथा गिळती है। 'उत्तरा प्यवम' 'बन्धमूष' 'दार्दीकासिक' और 'प्रस्तम्भाकरम में हृष्य और नेमीस्वर सम्बन्धी कथाएँ बिखरी पड़ी हैं।

प्रबुध्मचरिचोयें भी हृष्यका उल्लेख है। प्रबुध्म हृष्यके पुत्र से। और कामरुच माने जाती से। उन्हें बेकर द्विचोयें बनेन काव्योकी रचना हुई। इनमें उपाख्या 'प्रबुध्मचरिच' (१४११) प्रसिद्ध है। यह एक सरस इति है, प्रबन्ध काव्यके सभी गुण मौजूद है। इनके अतिरिक्त कमलकेठरकी 'प्रबुध्मचीनई' (१९२९) ब्रह्मउपसत्कथा प्रबुध्मचरो' (१९२८) ब्रह्मविद्यामरका

‘प्रद्युम्नरास’ (१७वीं शताब्दी) तथा बेबेल-क्रीटिका प्रद्युम्नप्रबन्ध भी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं ।

आचार्य जिनसेन और गुप्तभद्रक संस्कृत पुराणानुसंधान यथास्थान यह कथा निबद्ध हैं । किन्तु उसका पुनश्च एक काव्यिके रूपमें निर्माण ११वीं शताब्दीके महासेना चार्यन ‘प्रद्युम्नचरित’के नामसे किया जा । सिंह अथवा सिद्धकी ‘पञ्चपुराणकथा’ अपभ्रंशकी एक प्रसिद्ध कृति है । इनका कथानुसार रोचक है और अन्ततः कथाओंसे उसका सम्बन्ध निर्वाह विधिवत् हुआ है । सब कविनी मानुषता परिमलित होती है । महासेनके प्रद्युम्नचरितसे यह उत्तम है । इन दोनों रचनाओंका हिन्दीके प्रद्युम्नचरितापर प्रभाव है ।

हिन्दी पद्य और नद्यमें किये गये हृदय-हृदय हरिबन्धपुराण भी उपलब्ध होते हैं । उनमें न मूर्च्छिता है और न काव्यमोह । वे संस्कृत और अपभ्रंश कृतियोंके अनुवाद मर हैं । ब्रह्मविद्यासका हरिबन्धपुराण १६वीं शताब्दी साहित्याह्वनका हरिबन्धपुराण १७वीं शताब्दी सुधासम्बन्ध नामका हरिबन्धपुराण १८वीं शताब्दी और पं बीरतरामका ‘हरिबन्धपुराण १८वीं शताब्दी रचनाएँ हैं । इनमें पं बीरतरामका ‘हरिबन्धपुराण’ हिन्दी गद्यमें होनेके कारण अधिक प्रसिद्ध है ।

मध्यकालीन हिन्दी काव्यका जैन भक्तिपरक पङ्क्ति-विधि-प्रकृतियोंको लेकर बना । इनका निबन्धन इस ग्रन्थके पहले अध्यायमें किया गया है । जैन कवियोंकी एक ऐसी प्रकृति भी जो जो अधिकतर उन्हींमें पायी जाती है वह है ‘बेकि-काव्य’का निर्माण । बेकि ‘बस्ती’को कहते हैं । बस्ती बुधगवासी है । पङ्क्ति यह प्रचलन था कि ब्राह्मणको उद्यान और उसके अन्तर्गत धनको बुध या उसके बर्षके नामसे पुकारा जाता था । ‘तैत्तिरीय उपनिषद्’के शतके प्रपाठको ‘सिलावन्की’ कहा गया है । विक्रान्तोन्मुक्त रूपमें ‘बस्ती’ नामसे पुनश्च रचनाएँ रची जाने लगी । ये राजस्थानी और हिन्दीमें ‘बसि’ नामसे प्रसिद्ध हुईं । जनी तक एक प्रसिद्ध ‘बेकि’ ‘हृष्य-रामजी टी बेकि’ के नामसे प्रकाशित हो चुकी है । इनके आधारपर विद्वानोंने यह धारणा बनायी कि बसि-काव्य शृंगार-परक होता है । किन्तु अधिकतर बसियोंके पद्यमें ऐसा विहित होता है कि इनमें शृंगार नहीं अधिक भक्ति और वीर रसोंका परिपाक हुआ है । बरनोके द्वारा गाने की बेकिपद्य बीरता प्रसफाल ही रहता है । आज भी वे रसाहारक अन्तर्पर पायी जाती हैं । जैन बसियोंमें विशेषता है कि वे जैन-रस कथानुसारके अन्तर्पर पायी जाती हैं । जैन बसियोंमें विशेषता है कि वे जैन-रस कथानुसारके अन्तर्पर पायी जाती हैं । जैन बसियोंमें विशेषता है कि वे जैन-रस कथानुसारके अन्तर्पर पायी जाती हैं ।

सुरक्षा की वृत्त जपस्त्रिंशत् विधा है। एते ही एक कवि 'अपति पदपति आदि
 छानुकीतिनीत' ऐतिहासिक बौद्ध काव्य-संग्रहमें छप चुकी है। प्रसिद्ध हीरविजय
 मूर्तिको लेकर कवि सुकण्ठानुर ने 'हीरविजयमूर्ति देवतावलि का निर्माण राज-
 स्थानीमें किया था। कथानकोटो केन्द्र बज्जोबाही बेसिमामे 'अरुणवासि-वेदि'
 'सुमनस-नोद्यारम बलि' और 'भेमीमूर्तिको वेदि' कविक प्रसिद्ध है। हिन्दीके कवि
 ठगुर्गी (१५७८) वेदियोकी रचनामें निपुण थे। उनकी 'पंचवेदिय वेदि' समूचे
 वेदि-शास्त्रियम उत्तम मानी जाती है। उसका अर्थ्य उपदेशात्मक है, किन्तु ऐसे
 सरल ढंगसे मिली मयी है कि इसमें लबाह-जम्ब नाटकीय रस उत्पन्न हो उठा है।
 यह रसकी पिचकारी-सी प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त उन्हीं 'भेमीमूर्तिको
 बलि और 'सुबवेदि नी रची। हर्षकीति (१६८३) ने भी 'पंचवेदि' 'पंचपति
 वेदि' और 'अनुरागवेदि' की रचना की। वे हिन्दीके एक सामान्यज्ञान कवि थे।
 कवि डोहल (१६वीं शती) राजस्थानी कवि थे। उन्होंने राजस्थानी और
 हिन्दी दोनोंमें लिखा। वे काव्यज्ञान कवि थे। उन्हें ईश्वरपूजा प्रतिभा मिली थी।
 उनकी कवि नी एक प्रसिद्ध कृति है। बौद्ध कवियाका वेदियोमें 'मन्त्र-सम्पादन
 का था ही मलिका स्वर भी प्रबल था कविक परीम ने कही थी। विविध
 शास्त्रोंमें अग्नी आत्मके कारण इनका बाह्य अन्तर भी मज्ज है। उपदेशको भावना
 के साथैम बौद्ध कवियोंने इनका जन्म नहीं छोड़ा सने।

इस प्रकारके द्वारा काव्यमय मन्त्रकालीन बौद्ध मन्त्र-कवियों और उनके अनेक
 वृत्त और अतिरिक्त सम्बन्धित हैं। पश्चिम राजस्थान सुकण्ठे हिन्दीका मन्त्र-कार
 वि सं १४ से १७ तक माना है। किन्तु यह वाक्यता कठोर नहीं थी।
 इनके अनुसार एक ही मुक्ति विषये प्रकृतिक साध-साध अन्य कवियों भी बहती
 ही रहती है। इनके अतिरिक्त यह भी उक्त है कि वे धूमक बौद्ध रचनाओंसे
 विद्वान् पतिपति नहीं हो पाये थे। अभी विविध मन्त्रादीमें हिन्दीकी बौद्ध
 कृतियोंकी खोज करते समय विदित हुआ कि हिन्दीकी बौद्ध मन्त्रपरक प्रकृतियाँ
 वि सं १९ से १९ तक बहती रहीं। आचार्य देवदेवक 'आत्मजाचार'में
 देवमायाक समाप्त होने हैं। 'ओ अन्तस्तासम आसिबक सो उरि पावह पाव।
 इम कवनको उरि करता है। यह आत्मजाचार का बोधा है। इसमें प्रमुक्त अन्त
 रूप विमलित और पशुत्प प्राप्त सभी देवमायाके है। यों कपटीप्रकार
 बौद्धात्मक लिखा है कि यह 'आत्मजाचार'के नी पक्षेसे ही प्रकृतित हो चुकी थी।
 समयसाथी कारणसे संलक्षित। प्राकृतिकत्वसे अन्तमनुकपत। देवमायापुपार्थक्य
 बोधवान् म गुणः स्युता।" पक्षे द्वारा देवमायाका पक्षे ही अन्तरेय किया

या। आचार्य हेमचन्द्रने अपभ्रंश और देशभाषामें स्पष्ट अक्षर स्वीकार किया है। देशभाषाको ही प्राचीन हिन्दी कहते हैं। यही आगे चलकर विकसित हिन्दीक रूपमें परिणत हुई। अपभ्रंश और प्राचीन हिन्दीको साध-साध रचनाएँ हस्ती रही। दोनोंमें भेद कर पला मुस्कण है। स्वयम्भूजा 'पठमचरित और पुण्यवत्सका 'महापुराण' द्विबोली कृतियाँ नहीं हैं। इनमें बिचरे हुए कुछ स्वक देशभाषाके हैं, किन्तु वे अल्प ही हैं। पुण्यवत्स ४ वय उपरान्त हुए श्रीचन्द्र का 'क्याकोप' देशभाषाका काव्य-ग्रन्थ है। त्रिनदसूरि (वि० सं १२७४) का सपदेशरसायनरास' दुसह अपभ्रंशका निरर्चन है, जब कि इनके आस-पास बने त्रिनदसूरिके 'कृत्तिसङ्घागु'में देशभाषाके वर्णन होते हैं। अतः सिद्ध है कि वि सं की हमरी घटावरीके प्रारम्भसे ही हिन्दी पनपन लगी थी। उनकी अनेक मन्त्रिपरक रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। ये उस युगमें लिखी गयी जिसे वं भूषणने बीरभाषाकाल नाम दिया है (वि सं १५ - १३७५)। इस युगमें बीस सिद्धाने भी पर्याप्त लिखा। इसी आचारपर महापण्डित राजूक संज्ञित्यायनन इन काकको 'सिद्धकाक' कहा और डॉ हजारीप्रसाद द्विवेदी उते 'आदिक्काल' करते हैं, क्योंकि इस नाममें 'बीर' 'मन्त्रि' और 'सिद्ध' सभी कुछ लप जाता है। किन्तु एक प्रश्न फिर भी बना रहा कि इस काककी मुख्य प्रवृत्ति क्या थी ? यह कुछ भी हो इतना सिद्ध है कि हिन्दीमें बौद्धमन्त्रिकी रचनाओंका प्रारम्भ हो गया था किन्तु वा यह प्रारम्भ ही। उतका विकास १४वीं घटावरीमें देखा जाने गया। १५वीं घटी तो बौद्धमन्त्रिके पूण मौलनका काल था। मंत्री बुद्धिम यह १९वीं घटी तक निरन्तर अबाधित पविसे चलता रहा। प्रस्तुत ग्रन्थमें हम्नी ४ वयोंके बौद्ध मन्त्रि कवियों और उनके काव्यका विश्लेषण है।

हिन्दीके बौद्ध मन्त्रि-काव्यम घट्टारका सूरिया और सन्तोका विरोप मोगशान है। पविता और साधारण पृष्ठाने भी लिखा। उनका काव्य मन्त्रि-रखता ही प्रतीक है। कुकने अपमा परिचय दिया और कुकने नहीं। साध की हुई कुछ लिखा और कुछ नहीं। जो कुछ प्राप्त हुआ उस आचारपर जितना प्रामाणिक अर्थ दे सका दिया। यदि उसम कुछ कमी रह गयो है या वह गितान्त प्रामाणिक नहीं बन सका है, तो जाने अनुसन्धित्सु उस पूरा करेंगे इसी आस्थाकनेके साथ यह ग्रन्थ पाठकोंके समक्ष उपस्थित कर रहा है। इतना अवश्य कहना होगा कि बौद्ध-काव्यमें एक ही नामके अनेक कवि होते रहे, आज जनपर लिखते समय एक नामम समझ जाला होता है। आजभूपन नामके आर घट्टारक हुए। उनम 'आधीनवरकामुके' रचयिताकी ओर एक मुस्कण नाम था। हम्नी भाँति आर कपचन्द्र और आर

यमश्रीशायारा सही-गही केदा-ओला मिना पाना बाछान नही है । अमरकता को भी बमी गही थी । उनम बैकमरमी आनन्दमन पहचानम आ गये है । एसा कित्ताठ-ना हीठा है । एसाएसाय अस्माबरपर किन्तु समम पहुने पैरुआऊमें तोल अमनागरारा अस्सेय जिमा किन्तु किन्ना केवळ उदाध्यायबापर ही अत्र सिष्ट हाका बचाकर निवळ गथा मा प्रता बना । जावता पत्रा बराकि उस अमर हुनरे-ठीसरे अयनाबरक साध मेरा प्रामाणिक मन्वन्त स्कारित गही हो उवा ना । हुनरे अयसागर काछागमके मन्दिटमच्छम हुए थे । उनकी कुरु परमपुत्र हम पदार थी - खोवरीनि विमरसत अक्ष कीटि उदयमेन विमुगत कीनि और रत्नमुपय । रत्नमुपय ही अयनागरक कुरु थे । उनका समय वि सं १६७४ माता पाठा है । उनोंने मन्वन्त 'पार्वर्यचरकवाचर और हिन्दीम 'अप्येय विनवरपुरा 'विममपुपय' 'रत्नमुपय इगुनि' तथा टीपमममाठा'की रचना की । इसी 'विममपुपय'से मिळ है कि बाबाय छामकानिने गुजरातक सुभाना पीरोरबाठके समथ बाबासममनका अमरार दिखाना था । ठीसरे अयनागरकी अष्ट अयसागर करते हैं । वे अद्वयवादी मनास्वीक प्रथम पावमें हुए हैं । उनका अग्रज मूळमथे सरस्वतीकच्छ अद्याचार्यकी मूलमाळासे था । उनके कुरु मेरुअमका अमर वि सं १७२२-१७३२ मिळ है । अष्ट अयनागर हिन्दीमे मामध्यकाल कवि थे । अज्ञान 'सीताहरण' 'अनिच्छहरण और 'अपर अरि'की रचना की । टीपा ह्ये प्रबन्धकाल्य है । उनका कथातक आक्षपक है अमरानिराहि पूव हुआ है । इसी प्रकार एक ही नामके दो-बा ठो कई कवि हुए । अक्षस्थान उनका विशेष्य है ।

इस अक्षमे पल रचनाश्रीयो छो-मेका प्रयास जिना बका है, किन्तुपर पठित विनारके अक्षसे ही जिही टीन परिचामपर गही पहुँच पाया है । ऐसा ही एक नाम अम्यात्म अवेका है । यह कि अक्ष मन्दिर ठाकियान अक्षपुरके गुटका म १२ में अक्षिष्ठ है । इसमें १ १ पद्य है । श्री कस्तूरचन्द्र नासमीबास इस अक्षिठो पाण्ड अक्षचन्द्रकी रचना मानते हैं । उनका आचार है अक्षमे लिखा हुआ 'अनि पी अम्यात्म अक्षचन्द्रक कविता समाप्त । किन्तु अक्षचन्द्र नामके चार कवि हुए, विमम बोला मन्वन्त 'अक्षचन्द्र'से बा हो । वे शलो अमनामीन थे । एक से पाण्ड अक्षचन्द्र । उनकी विद्यार्थ-दीक्षा बनारसम हुई थी । अक्षचन्द्रके विद्वान् थे । कवि बनारसीशायके अम्यात्म-मन्वन्ती अमका निवारण अक्षीम जिना था । वे हिन्दीमे अक्षचन्द्रक कवि थे । किन्तु अक्षरी रचनाश्री और 'अम्यात्म सर्वना ही दीक्षीमें लिखित पाचरन है । इनके अक्षिच्छ पाण्डे

रूपचन्द्रन कहीं भी अपना नाम केवल 'चन्द्र'के रूपमें नहीं दिया है। प्रत्येक स्थानपर 'रूपचन्द्र ही लिखा है। अक्षरान्त सवैया में कविका नाम 'चन्द्र' दिया है। यद्यपि पाठ्य रूपचन्द्रकी कृति तो नहीं हो सकती। अन्तमें मिले 'रूपचन्द्र' लिखित कवित्त मगधिय विनी विपिकर्ताका काव भी हो सकता है। उसने चन्द्रके आधारपर रूपचन्द्रका अनुमान समा किया होगा। हमारे ये रं रूपचन्द्र। वे बहारमोदासके अमिष मिन थे। उनसे साध अक्षरान्त चन्द्रमिं तल्लीन रहते थे। उनकी रचनाएँ उपर्युक्त हुई हैं। इन्होंने भी कहीं 'चन्द्र का प्रयोग नहीं दिया है। अक्षरान्त सवैयाके एक पद्यमें आशानित हुआ है कि उनसे रचयिता साठचन्द्र थे। उस पद्य की अन्तिम पंक्ति है 'आशान्तो अर्थात् महाशान्तचन्द्र केसिये। साठचन्द्रके कुछ पद्य विगम्बर जैन मन्दिर बड़ीठक पदमग्रहमें संकल्पित हैं। वे विद्यमानकी अग्राज्यी सतासतीके कवि थे। किन्तु साध ही तेरहवें और चौदहवें सवैयाकी अन्तिम पंक्तियामें 'तेज कहे' लिखा हुआ है। इनसे सिद्ध है कि किसी तेज नामक कविन इसका निर्मात्र किया था। मध्यकालीन हिन्दी काव्यमें 'तेज' नामके कोई कवि नहीं हुए। हो सकता है कि यह कविका उपनाम हो। किन्तु यह केवल अनुमान ही है। यदि 'तेज' उपनाम था तो दो के अतिरिक्त अन्य पद्यमें उनका प्रयोग क्या नहीं हुआ। त्रिभुवनचन्द्र नामके कवि हुए हैं जिन्होंने प्रायः अपने नामके अन्तमें 'चन्द्र का प्रयोग दिया है। किन्तु इसी आधारपर इसे त्रिभुवनचन्द्रकी कृति मानना पुष्पि-मगत नहीं है। यह भी स्पष्ट है कि त्रिभुवनचन्द्र अक्षरान्तका ही नहीं थे। इन भाँति अक्षरान्त सवैयाके रचयिताको लेकर एक अज्ञान है। मेरा मत है कि जबतक इस कृति की सीमाचार प्रतिपाद विभिन्न भक्षरान्तमें उपर्युक्त नहीं हो जाती विचारक किसी सही निश्चयपर नहीं पहुँच सकते।

मध्यकालीन जैनमठ कवि 'निपुणिए संतो को मणि कारे नहीं थे। उन्होंने विद्विष्यु सिद्धा-वीरता ग्रहण की था। इसी कारण प्रारम्भमें अन्त तक उनमें एक ऐसी आकाशनाके दयन होना है जिसके परिप्रक्ष्यमें उनकी मस्ती भी सुशोभन प्रतीत हुनी है। उनमें बहु अक्षरान्त और बहुराहट नहीं है, जो कबीर में थी। योही पद्यनवासा पणिन मठ ही न हो पाता हो किन्तु उसमें प्राग्यणोव का निगाल परिवृत्त ही जाना है यह मथ है।

जैन कवियोंकी विद्याके मिश्र-मिश्र साधन थे। रचानाम्बर आचार्य होनाएँ चान्तकी अक्षरान्तमें ही बीरता देकर अपने साधुमूर्धम आशित कर लेते थे। बड़ीतर ही उनकी प्रारम्भमें केवल अक्षरान्त तत्त्वों गिया होनी थी।

वेदमन्त्रन स्यात्प्याम मोष्यमुन्वरमूरि तथा यद्याविरय आदि शिषीते नामध्वंशान्
 कवियोगो भाठ बर्षरी उममें ही वीसित कर किया गया था। वे एक ओर प्रकाश
 पवित्र बने और दूसरी ओर कवि। दिन मंघोमें उनका आनन-मानन घिछा-बीछा
 हुई उनका वातावरण ऐसा ही था। वहाँ धार्मिकता और अनुभूति गुण्यता और
 उदारता प्रचरता और वाचस्पता साथ साथ पभा करती थी। मट्टारक-सम्प्रदाय भी
 सिद्धार्थ जीवन्त मेत्र थे। उनके सिध्य वचन निरागत और माहित्यके अनिदिकन
 मन्त्र बंधन और वजोतिपमें भी पार्ल्यत विद्वान् हुअे थे। उनमें अनेक न्यातिप्रान
 बने। उनका कवित्त-प्रम भी प्रसिद्ध है। मट्टारक मन्त्रकीतिमें मन्त्रुत्-व्याहणकी
 अमान विद्वता प्राप्त की थी। उन्होंने वैश्वत सस्कृतमें तबहु धन्य लिने। वे हिन्दी
 के भी नामध्वंशान् कवि थे। इनकी अनेक मुक्तक कृतियोंका सस्तेग इन ग्रन्थमें
 हुआ है। मट्टारक एतकीति ज्ञानभूषण और गुणबन्ध भी ऐसे ही विद्वान् कवि
 थे। उन्हें वाचस्पत्या भाषीमेंय करणा ज्ञाना था। उनकी विद्वत्ताकी भीता
 माधकपी लहराके मध्यसे सर्व्व बहती थी। वहा सिधयन्त्री अनेक प्रकथ्य वाष्पी-
 का निर्माण किया। व मट्टारक लक्ष्मीतिके छोटे भाई थे। उन्होंने जगती रच
 नाओंमें लक्ष्मीतिको पुत्र संज्ञासे भी अनिहित किया है। सुमुरबन्धकी उत्तम
 कवियोंमें पलगा थी। उन्होंने महाकाव्य लिखे और मुक्तक छन्द भी। वे मट्टारक
 एतकीतिके सिध्य थे। मट्टारको और इनके सिष्योंकी मध्यकामीन हिन्दी वाष्पकी
 महत्त्वपूर्ण है। उसे विस्मृत नहीं किया या लक्ष्यता। मट्टारक वैश्व-मन्त्र
 होते थे।। जग से अपने सिष्योंके सिद्धार्थके सिष् बड़े-बड़े प्रभागापीकी
 स्वागता करते थे। उनके वहाँ हस्तसिद्धित प्रम्योकी प्रतिमिपिवां होनी ही
 रहती थी। केचक वैश्वमेके ही नहीं सभी बर्षों और विषयके प्रन्थ
 उनके मन्त्रार्थ मन्त्रित होते थे। बीरबपुत्र पित्राके लिए बुद्ध् पुत्रनाम्नीता
 होगा अनिवाय है। इन छप्पको आनेके घिछाविछारर भी स्वीकार करते हैं।
 वे कवि को न ठाबु थे और न मट्टारक 'सास्त्रप्रबचन' या तीली के हाथ
 खुल्यत बने थे। सास्त्र-प्रबचनकी परम्परा आज भी है। प्रत्येक मन्त्रिके साथ
 एक सरस्वतीप्रबन मन्त्रन होता है और मन्त्राङ्क का पारिमें सास्त्र-प्रबचन हुआ
 करता है। अनेक सोता विहूँ बलाखान भी नहीं है, सुन-सुनकर ही बिन बर्षनके
 नुरम डाठा नन बाते है। प्रबचनमें किसी-न-किसी पुराणका पठन भी आवश्यक
 होता है। इन पुराणोंक कथानकोमें अनेक कवि-बुधय आन्धोद्धित हुए और वे
 प्रबन्ध तथा मुक्तक वाष्पके निर्माणमें लयन ही लगे। सधाक (वि सं १४११)
 वेते ही एक कवि थे। उन्होंने 'प्रदुम्नचरित' में लिखा है कि एक एक मन्त्रमें

शासन-प्रबन्धनके समय मैने बहु चरित सुना और प्रद्युम्नचरित'की रचना कर सका ।

'सैली' गोष्ठिको कहते थे । आपरेमें ऐसी ही एक गोष्ठी थी जिसमें निरन्तर आत्मात्मिक चर्चा हुआ करती थी । बनारसीबास उसके सदस्य थे । वहाँ बैठनके कारण ही वे परिष्ठित बने और कवि भी । बनारसीबास तुमसीबासके समकालीन थे । दोनोंके विलगनी बात इत प्रथममें कही गयी है । भागे चक्कर यह सीमा 'बापारसिया सम्प्रदाय' के नामसे प्रसिद्ध हुई । उससे प्रेरणा पाकर ही कुर्बेरेवास कमजीबन हेमराज मूबरराम आदि उत्तम कवि बन सके । इसी समय दिल्लीमें परिष्ठित मुज्जामन्त्री सैली मान्य थी । हिन्दीके प्रमुख कवि दामतराय उसीसे प्रभावित होकर इतने महत्त्वपूर्ण भक्ति-काव्यकी रचना कर सके । उनही पूजार्थ और भारतीया आज भी वैज मन्दिरोमें पढ़ी जाती हैं । हिन्दीके वैज कवियोंको उर्दू छात्रासीका भी अच्छा ज्ञान था । कवि बनारसीबासने भीतपुरके गद्यवाक्य बैठे किसिब को संस्कृत उर्दू-छारसीके माध्यमसे पढ़ायी थी । मगधतीवान मैयाकी अनेक रचनाओंमें उर्दू-छारसीके धब्बे हैं । कवि बिनोबीलालकी 'मैमनीकी रेशता भी उर्दूकी ही कृति है । उस समय स्वान-स्वानपर मन्तव्य विद्ये हुए थे । वैज कवियोंकी प्रारम्भिक मिला उन्नीस हुई । हिन्दी भाषाका जो रूप गान्धीजी चाहते थे इन वैज कवियोंकी रचनाओंमें उल्लेख होता है । तानु-सम्प्रदायोंमें पले कवियोंकी भाषा संस्कृत-निष्ठ थी ।

वैज कवि बरबारी नहीं थे किन्तु उन्होंने मुगलशासकशाहोकी मूरि-मूरि प्रशंसा की है, यहाँतक कि औरंगजेबका भी पौरवके साथ उल्लेख किया है । रामचन्द्र और बगवतम हिन्दीके प्रसिद्ध कवि थे । उसकी मुक्तक कृतियाँ उत्तम काव्यकी निदर्शन हैं । उन्होंने औरंगजेबकी म्मापप्रियता ईमानदारी चरित्र निष्ठता आदिकी बात किली है । सायब इतिहासकारोको औरंगजेबके सही आत्म-जनमें इन उल्लेखोंसे कुछ सहायता मिल सके । कवि मुन्बरबास घाज़्ज़ाईक बरबारीमें नहीं रहते थे किन्तु अपने सद्गुणोकी प्रसिद्धिके कारण उनके कृपापात्र थे । कवि रंगबिराजको तो घाज़्ज़ाईन निमन्त्रण देकर बुलाया था । उन्होंने घाज़्ज़ाईको सशरणाधी प्रशंसा की है । आपरेक हीरानन्द मुकाम सलीमके सहारे मित्र थे । प्रायः सलीम उनके घर आता था । बादघाज़्ज़ाईनेके बाद भी उसने हीरानन्दको सम्मानकी बुद्धिसे देखा । हीरानन्द एक कव्यात्मवाशी कवि थे । कवि नन्दकाठने भी ग्हाईवीरके उच्च व्यक्तित्वका बचन किया है । ब्रह्मगुप्तक एक मंत्र हुए कवि थे । वे आगधके समीप ही रहते थे । उनका ग्हाईवीरसे सम्बन्ध नहीं था फिर भी उन्होंने प्रशंसा की है ।

बनारसीवासने अक्षर, जहाँगीर और शाहजहाँ का सामनाबाहू देता था। उनका 'नाटक समग्रसार' शाहजहाँके राज्यमें लिखित समाप्त हुआ था। उस समय बामिन उत्पीड़न गरी था। मुसलमान बाहूबाहू और नबाबोंकी सहायतामें अलफ़ जैसपाशा संघ मित्रक मके और धर्म मूठिया तथा यन्त्रिरोनी प्रतिष्ठा हो मकी। सत् प्रयास और हीरानखकी देव-देवमें संकटों धर्ममन्दिर बन एसा सिनालेषोसि स्पष्ट है। अक्षरकी बामिन उदारता से अग्रप्रसिद्ध थी। उन्होंने धर्म माधुशोका सम्माल ही नहीं किया अपितु उनके उपरोधार्य अमल भी किया। धर्म पत्रों और अष्टमी-चतुदशीको पञ्च-अक्ष सहा-सहाक सिद्ध अक्ष कर दिया गया। कई विदेशी विद्यागाले अक्षरको धर्म कहा है। उनकी मृत्युका समाचार जब कवि बनारसीवासन मुना तो ठगोड़ा था मया अक्षको सेवाक न एक और नील गिर पड़े। उन्होंने 'अक्षरशासन'में लिखा है,

“अक्षरमाय बनारसी सुनि अक्षर की काल ।
 धीहा पर कैसी हुती मकी अक्षर चित्त बाल ॥
 आहू यथाका गिरि परती सक्षयो न भाया रात्रि ।
 कृति अक्षर कोहू अक्षरी कह्यो देव सुप्र मात्रि ॥
 कयी चोट पाशाक की मकी मुहालाक काक ।
 'दाह' 'दाह' सब करि उद, मात तात कहाक ॥”

हिन्दीके अक्षर धर्म महाकवि उद्योगयमल्ल पाण्डे किनहास परिमल्ल और यपि म्हात्म्य बामिने भी अक्षरका बीरकपूरमें स्मरण किया है। न वे अक्षरके बरवारम रहते थे और न उनका कोई निजी स्वाध ही सिद्ध होला था। न अक्षर कवि थे। उनके कविहूअने सम्राट् अक्षरके विद्याक हूअनको पहचाना था। दिल्लीकी यह आसली पहचान ही उनके शाब्दोंमें उग्र-उग्र उठी है।

वि सं १८००-१९ में श्री अक्षर अक्षरकरक रचनाशोभ्य निर्माण हुआ। उनके रचयिता अक्षरशाही कवि थे। किन्तु रीतिवाकका उनपर प्रभाव था। उनकी भाषान भी अक्षरशाही परमार थी। अक्षर हरियसका अक्षर वि सं १८६ में सादरीके सवीय कुमुदपुर (बमूर) में हुआ था। उनकी बालि अक्षरशाह और पौत्र बाली था। अक्षर अक्षरशाहीमें बीठा। फिर श्री अक्षरशाह होलेने कारण उद्योग और प्राइतरी अक्षर शाहा बन सके। उनकी भाषापर संस्कृत प्राइतरी प्रभाव है। अक्षरोंमें 'आनुगुणमाका' 'देवाग्निदेव रचना और 'देवराज' का निर्माण किया था। दोनों बहुत पहले प्रकाशित हुई थीं। 'आनुगुणमाका' का एक पत्र देविए, श्री अक्षरशाही अक्षरशाही है

जिन केन्द्र के एक के महि के अस्ति के चित्त के मस्तिष्क महि के ।
 मयु के दृष्ट के वन के सरक विक केम युके वितक कवके ।
 धन के धर के स्वर के सुनक किम केकि युके वृत्तके छटके ।
 लग के रम के किम के तृप्ति के कवि केम युके दण्ड के कवके ॥

इसी युगमें एक कवि पारसदास हुए । जयपुरके रहनेवाले थे । वहकि बड़े मन्दिरी सेरापकी सीलीस उन्हें प्ररणा मिली और वे एक अच्छे कवि बन सके । उनका पारस विनास' एक प्रसिद्ध कृति है । उसमें 'महोत्तरघटक' 'ब्रह्मछत्तीसी' 'सरस्वती अष्टक' 'उपदेश पञ्चीसी' 'बाणवर्ण' 'अठनसीय आदि मन्त्रिपरक कृतियाँ हैं । कविकी हृदयमय तस्मीनता वनसे स्पष्ट हो जाती है । पाठक भाव विनीर हुए बिना नहीं रहता । पारस विकाम'की हस्तलिखित प्रति दि जैन मन्दिर बड़ीठम मौजूद है । कवि देवीदास भी हिन्दीके मकल कवि थे । उनका जन्म औरछा स्टेटके सुगौड़ा ग्राममें हुआ था । इनकी माति गाम्भारे और बंस खरोमा था । इनकी प्रसिद्ध कृति है 'परमानन्द विनास' । उसमें मन्त्रि और अध्यात्मका सम्मेलन है । यह नाम्य प परमानन्द धाम्नीको उपकल्प हुआ था । रचना सरस है । इसी सताब्दीमें कवि टंकचन्द हुए । उनका जन्म मेराड़के साहपुराम हुआ था । उनक पिता रामहृदय जयपुर छोड़कर साहपुराम रहे लगे थे । टंकचन्द कुछ समय तक इन्दौरमें रहे और वहाँकी सामिक मण्डलीमें उन्हें प्रबन्धिर्माधनी प्रेरणा मिली । उन्होंने 'सुष्मासकफानोष' 'बुद्धिप्रकाश' 'योगिकचरित्र' 'पंचपरमेष्ठि' आदि पुत्राजी और पर-संगहोषा निर्माण किया । वे सब कवि भक्त होते हुए भी तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्तियोंसे प्रभावित थे । मके ही इन्हीं साविकाबोधा लक्षसे सिद्ध तक बचन न किया हो किन्तु उनकी माया भीसेसे ऊपर तक अलंकारोंसे सुशीमित थी । वे मायाकी स्वामाचिनतासे हटते जा रहे थे ।

इन ग्रन्थके तीसरे अध्यायमें जैन भक्त कवियोंके भावपद्यपर लिखा गया है । पाँच भाषोंको आधार बनाया है । वे इस प्रकार हैं सख्य बारसम्प प्रेम विनय और धान्त । इनमें उत्तरीतर जन्मसे विपुलता आती गयी है । सर्वोत्कृष्ट है धान्त भाव । उसे जन्मय रला है । इन सबके परिप्रदयमें जितने अन्य गूरय भाव ही बचने हैं उनक विस्मयगता प्रयास किया है ।

चौथा अध्याय कला-वस्तुसे सम्बन्धित है । इसे माया छन्द अलंकार और प्रवृत्तिवचन-जैसे चार उपगीर्तनोंमें बाँट दिया है । जैन कवियोंकी माया छन्द और प्रवाहबुध थी । उन्होंने अनेक नये छन्द नवी राय-राविर्णियोंमें प्रयुक्त किए ।

एक विद्यार्थी उनकी मौलिकता अनुकरणीय थी। अर्द्धशतक के प्रबोधमें वे सर्वप्रथम बने रहे। कवि-काम्य का कोई अर्द्धशतक के कारण अपनी स्वामाधिकता न हो सका। अनेक बौद्ध कवि प्रकृष्टिके प्रादुर्भावमें पले और यह ही उनका साधन-क्षेत्र बना। अतः वे प्रकृष्टि-विषय भी स्वामाधिक ईनस कर सके।

पौषर्षी अर्द्धशतक तुलनात्मक है। उनमें त्रिभुक्ति सत्या और ईश्वर कवियोंकी बौद्ध कविपंक्ति तुलना की गयी है। मैं निरन्तर लिप्यस्य रहनेका प्रयत्न किया है।

इस 'प्रबोध' का निर्देशन मास्य डॉ. छैबिहारीकाण्ड पुस्तक पत्रिका एम. ए. की किताब की किताब में किया था। मैं उनका हृदयस्य आभाषी हूँ। मध्यमिकतः पण्डित साहयपादन और डॉ. बामुदेवधरन अग्रवाल इन सौम्य प्रबोधके कवीकृतक थे। उन्होंने एक मठमें हमें पी-एच. डी. के बोध स्वोकार किया। मैंने किम् उनका आशीर्वाद ही था। धारण उनके प्रति मरु कही जानार प्रबोधन हीया कि मैं सौम्य-मायवर निरन्तर बहता रहूँ।

भारतीय-शास्त्रीक अविचारियंका भी जानापी हूँ कि उन्होंने इस प्रबोधको सहाय प्रकाशित कर दिया।

दि. शैव काण्डे }
 कवीकृत (मरु) }
 २२ जनवरी १९९७ }

-(डॉ०) प्रेमसागर वैश

विभाग : एक

१ जैन भक्ति प्रवृत्तियाँ १ ३१

'निष्कल' और 'सकल'—१ दिव्य अनुराग—२ रहस्यवाद—४ छठगुरु—६
 ब्रह्मकी प्रेरणा—७ पंचकस्यापक स्तुतियाँ—९, शास्त्रभाव—१ भाग्य-
 की महत्ता—११ कीर्तन—१४ स्मरण—१६ ब्रह्मकी महिमा—१७
 भक्तियुक्त जनोंकी शार्ङ्गता—२ भक्तिके लिए मनकी बेताबनी—२२
 वादनी और छतक बाहिरमें जैन भक्ति—२४ कर्कसिं भक्ति—२६ जैन
 भक्तिके विद्याल स्तम्भ प्रबन्ध काव्य—२८, जैन भक्तिकी छात्रि
 परकता—२९।

२ जैन भक्त कवि जीवन और साहित्य ३२ ३६४

१ राजसेनसूरि—३२, २ शबाह—३४ ३ विनयप्रभ उपाध्याय—३७
 ४ मेरुलाल उपाध्याय—४२ ५ विष्णु—४७ ६ सोमसुन्दर सूरि—५
 ७ उपाध्याय जयसानर—५२ ८ हीरानन्द सूरि—५४ ९ मट्टारक
 सकलजीति—५६ १० श्री पद्यलिखक—५८ ११ ब्रह्म जिनदास—५९,
 १२ मुनि चरितसेन—६४ १३ लालकाम्य—६५ १४ संवेगसुन्दर
 उपाध्याय—६८ १५ ईश्वरसूरि—६९, १६ चतुष्पद—७१ १७ मट्टारक
 ज्ञानमुपम—७३ १८ मट्टारक पुनश्चन्द्र—७७ १९ विनयचन्द्र मुनि—८
 २ कवि ठण्डुरसी—८३ २१ विनयसमुद्र—८८ २२ कवि हरिचन्द्र—
 ९ २३ देवकमल—९२ २४ मुनि जयलाल—९३ २५ मट्टारक
 जयकीर्ति—९४ २६ श्री छात्रिरंगमणि—९५ २७ श्री मुनिसागर—
 ९६ २८ बुधराज—९७ २९ श्रीहृदय—१ १ ३ मट्टारक रत्नकीर्ति—
 १०७ ३१ ब्रह्म रायमल्ल—११ ३२ बुधलाल—११५ ३३
 साधुकीर्ति—१२१ ३४ हीरकजय—१२२ ३५ पार्ष्णे जिनदास—१२५,
 ३६ त्रिभुवनचन्द्र—१२८ ३७ मुमुक्षुचन्द्र—१३० ३८ कवि परिमल्ल—
 १३५, ३९ बाहिरचन्द्र—१३७ ४ गणेश महात्म्य—१४ ४१ जेधराज—
 १४२ ४२ सहस्रकीर्ति—१४४ ४३ ब्रह्मसुमाल—१४६ ४४ जयराज
 मजी—१५ ४५ हीरानन्द मुनीश्वर—१५४, ४६ हेमचन्द्र—१५६

४७ मन्वन्त-१५८ ४८. कवि सुन्दरदास-१६१ ४९ वं मन्वन्ती
 दास-१६४ ५ पाण्डे कवचन्द-१६८ ५१ हर्षकीर्ति-१७४ ५२
 कवचकीर्ति-१७६ ५३ कवि बगारसीदास-१७८ ५४ मन्वन्त-१९३
 ५५. कुंभरपाठ-१९७ ५६ कवचोत्सवगी कव्याभ्यास-१९९, ५७
 महात्मा ज्ञानचरण-२ ४ ५८ कवचीवन-२११ ५९. पाण्डे सुसुधाक-
 २१४ ६ वं मनोहरदास-२१९, ६१ कवचकन्द लक्ष्मीकन्द-२१९
 ६२. वं हीरानन्द-२२८, ६३ रावचन्द-२३ ६४ विनहर्ष-२३३
 ६५. कवचकीर्ति-२३९ ६६ रामचन्द-२४२ ६७ बोधराज बोधीका-
 २४७ ६८ कवचराम-२५१ ६९ विस्वमूयम-२५८ ७ विनरत्न-
 सुरि-२६४ ७१ रीया मन्वन्तीदास-२६८, ७२ विद्योमविदास-२७६
 ७३ ज्ञानराज-२७८, ७४ विद्याधर-२८७ ७५ सुमतीदास-
 २९ ७६ विनय विनय-२९३ ७७ वेदाङ्ग-२९५, ७८. सुरेन्द्रकीर्ति
 सुनील-२९८ ७९ खेतस-३ ८ नाट्य-३ ९ ८१ कवचीवन्तम-
 ३ ७ ८२ विनोदीका-३११ ८३ विहारदास-३२२, ८४ किष्कि
 विह-३२७ ८५. सुधाकचन्द कव्या-३३३ ८६ सुन्दरदास-३३५,
 ८७ विह्वलचन्द-३३९ ८८ वं शौचरामजी-३५२ ८९. मन्वन्ती
 दास-३५६ ९ कवचराज वाङ्मयी-३५७ ।

विभाग : दो

- १ जैन भक्ति-शाब्दिका भाव-पत्र ३६७-४१३
 सत्यदास-३६७ वाचस्पत्यदास-३७१ प्रेमदास-३८१ व्याख्यात्मक
 विद्या-३८५, टीर्थकर नैमीश्वर और राजकुमार प्रेम-३८७ बाबूभासा-
 ३८९, व्याख्यात्मक ह्योविदा-३९१ विनयदास-३९७ हीनता-४ १
 अनुता-४ २ ज्ञानमाल-४ ९ ।
- ४ जैन भक्ति-काव्यिका कला-पत्र ४२०-४३७
 नाता-४२ वि हं १६ ०-१८ के जैन शिल्पी कविबोधी भाषा-
 ४२९, कवच-विद्या-४३५, अर्थकारवीरता-४४५ प्रवृत्ति-विज्ञान-४५१ ।
- ५ सुमानात्मक विवेचन ४३५-४६७
 मिर्गुनोपासना और जैन-भक्ति-४५८ जैन बाराचना और समुद्र
 भक्ति-४८ ।
 परिशिष्ट :
- ६ हिन्दूके धार्मिकान्तर्गते जैन भक्तिपरक कृतियाँ ४६२ ३०३

विभाग : एक

जैन भक्ति प्रवृत्तियाँ

'निष्कल' और 'सकल'

धाधार्य बोधीभुन परमारमप्रकाय में भगवान् सिद्ध जो 'निष्कल' कहा है। ध्यानात्मि ब्रह्मदेवने किन्ना है। पञ्चविभगारीररहितः निष्कलः। 'सिद्ध मरीररहित होकर 'सिद्धि' में निष्कलते हैं। ज्ञानकी दृष्टिसे सिद्ध और गुण आत्मामें बन्दर नहीं है किन्तु 'सिद्ध' मोक्षमें और गुण आत्मा देखमें रखती है। धाधार्य बुद्धिबुद्धिमें बोधीरही ही पूर्य कहा है। मरीररहित होनेसे वे निष्कार होते हैं। गुण आत्मा देखमें रखती बचस्य है, किन्तु स्वयं देखपारी नहीं है।

बहुत 'सकल' ब्रह्म कह्वाते हैं। मरुत वह है जिन्होंने चार पानिमा कर्मोना नाप करके परमात्मपर वा विद्या है, किन्तु बचाविया कर्मोके दाम होने तक उन्हें इस संसारमें रहना है। सकारमें रहनेका धर्म है सरीरका बना रहना। बहुत्वका परम औदारिक सरीर होता है। वे सचरीरी कह्वाते हैं। 'निष्कल' और 'सकल' में सचरीरी और सचरीरी के अतिरिक्त और कोई भेद नहीं है। बोधीरही ही आत्मा परमात्मपरबरी दृष्टिसे समान है। ब्रह्मत्वकी दृष्टिसे निर्गुण और सगुण में भी समानता है, किन्तु निष्कल और सकल अतिम एक-दुसरेके विपट है 'निर्गुण' और 'सगुण' नहीं। निष्कल और सकल दोनों ही स्वप्रमाणसे कर्मोका दाम कर निष्कल और सकल बन पाते हैं। प्रत्येक 'निष्कल' पहले सकल बनता है। बिना सरीर पारथ क्रिये और बिना केवलज्ञान उपपत्त्य निय कोई भी जीव 'निष्कल' नहीं बन सचना। केवलज्ञानम निष्कल और सकलको एक-दुसरेके लक्षोपनाम पड़्वा विद्या है।

निर्गुण और 'सगुण' में बहुरूपर होनके कारण ही हिन्दीके भक्ति-नाथोंमें दो प्रकार प्रवृत्तियाँ देखी जाती हैं। जो योगाभरवत ब्रह्मवाक्यमें उन्हें निर्गुण

१. जैन भु कर्म स्वरुपाग मरुदेवकी ई का मति ११२ पृ. ३३।

'सकल' औदारिक सरीर' का अर्थ है अत्यन्त रूप'। सरीर करमा एक रूप' अर्थसे इतरात्मा विरुद्धी सरीर करमा लक्षी करमा।

मनिबारा' और सपुत्र मनिबारा' के रूपमें विभाजित कर दिया है। कबीर
 बारि पड़कीके और गुर बारि बुसरी पाराके कवि नहै जातै है। हिन्दीका शैव
 भक्ति-काव्य 'निष्कल' और 'सकल' के रूपमें नहीं बाँटा जा सकता। यद्यपि
 दोनोका समन्वय हुआ है। हिन्दीके शैव भवन कविमाने यदि एक ओर सिद्ध
 ब्रह्मा निष्कलके शीत पाये तो दूसरी ओर बर्हन्त ब्रह्मा सकलके चरनोंमें यी
 पडा-मुक्त नपाये। उद्दाने किसी एकरा समघन करके किए दूसरेका समघन
 नहीं बिबा। मट्टारन मुक्तबन्धने 'सकलसकल'में 'हेइ विनिष्कल आत्मप र
 श्रुति रहित समुत्त। प्याडं अपना आपका प्याबादक पवित ॥ नष्ट तो "शैव
 एक त्रिनदेव रे अगम त्रिन सिद्धान्त। उरर जीवाधिक सहस्रह्व होइ सम्मत्त
 अज्ञान ॥" भी कहा। मुनि चरितमेनन अपनी सम्पाधि' नामकी कृतिमें
 "अनि-स्तनि साहसह नामो अरिहन्ताथं विष मेतो पात्रहु निष्कार ॥" के द्वारा
 बर्हन्तके ध्यानकी बात कही तो "अहू अपना अप्यकि गुण करना से संसार
 महाहुइ भया ॥" से आत्माके मुक्तमें उत्कील होना यी रचीकार किया।
 आनन्दविष्कलने 'महाभिरहेठ' नामकी रचनामें 'अप्या संजमु सीक गुण अपना
 इंसक मानु। बड उड संजम हेइ गुण आर्षदा से पात्रहि विष्कार ॥ किका
 तो बुसरी ओर उदुव भी सरीरबारी है। यी भी महिमा का 'गुण निष्कल
 मुक्त सिद्ध सिद्ध गुण रचनचक्रसाद। सो हरिदासह अप्य बड आर्षदा भवत्रक
 पात्रह पात्र ॥" के द्वारा बतान किया। हिन्दीके भक्ति-काव्यका पैदा नोई शैव
 कवि नहीं किन्तु वे दोनो प्रवृत्तियाँ एक साथ न पानी जाती हों।

दिव्य अनुराग

शैव आचारोंने 'राग' शो ब्रह्मका कारण कहा है किन्तु शीतघनीमें बिबा
 पवा 'राग' परस्परका योजको ही पैदा है। यही 'राग' ब्रह्मका हैतु है जो नर
 में किया गया हो। शीतरागी परमात्मा 'पर' नहीं 'स्व' आत्मा ही है। आत्म-
 प्रेम्ण बर्ष है आत्म-सिद्धि बिसे मोक्ष नष्टे है। आचार्य पूष्पपावने 'राग
 शो भक्ति कहा किन्तु उक्त रागको जो बर्हन्त आचार्य बहुमुत्त और प्रवचनमें
 बुद्ध बान्धे बिबा पाये।^१ शीतघनीके प्रति रागका यह भाव शैव धर्मिकके रूपमें
 निरन्तर प्रतिष्ठित बना रहा। भक्त कविबोंने ही सहीकी अपना आचार माना।

१. सकलसकल द्वारा मन्थर प्रेम्णान, अस्तुत सम्पाधि और म्यानभिरहेठ मन्दिर
 बरील्लदा बरगुण्डी इल्लसिद्धि प्रसिद्धि आचार्य के बररक दिने पने है।
 २. आचार्य पूष्पपाव सकलसिद्धि, १३२४ का भाष्य।

हिन्दीके शैव भक्ति-काव्यमें यह रागात्मक भाव जिन अनेक मामोंसे प्रस्फुटित हुआ उनमें 'दाम्पत्यरति' प्रमुख है। 'दाम्पत्यरति' का अर्थ है पति-पत्नीका प्रेम भाव। पति-पत्नीमें शैवा यहरा प्रेम सम्भव है, अग्यन नहीं। इसी कारण 'दाम्पत्यरति' को रागात्मक भक्तिमें शीर्ष स्थान दिया गया है। हिन्दीके शैव कवियोंने पेशतको पति और सुमतिको पत्नी बनाया। पतिके बिरहमें पत्नी बेचैन रहती है, वह सबैव पति-मिलनकी आकांक्षा करती है। पति-पत्नीके प्रेममें जो मर्यादा और पाकीर्णता होती है शैव कवियोंने उसका पूरा निराह्न 'दाम्पत्यरति' वाले रूपकोमें किया है। कवि बनारसीदासकी 'दाम्पत्यरति' 'ममबतीबास भैया' की सतबहोतरी मुनि विनयचन्द्रकी 'बूनड़ी' चानतराय भूबरबास बनराम और बेशाबहाके पर्वमें 'दाम्पत्यरतिके अनेक दृष्टान्त' हैं और उनमें मर्यादाका पूर्ण वासन किया गया है। हिन्दीके कतिपय भक्ति-काव्योंमें 'दाम्पत्यरति' छिछरे प्रेमकी छोटक-मर बनके रह गयी है। उसमें भक्ति कम और स्तुति सम्मोषका भाव अधिक है। भक्तिकी छोटमें वासनाकी बहोत करना किसी भी रूपमें शक नहीं कहा जा सकता। पत्नीके द्वारा सेव सत्कारी जाना और उसपर सम्मोषक लिए पतिका आह्वान दिया जाना भक्ति तो नहीं हो है और चाहे कुछ हो। 'दाम्पत्यरतिके रूपकी 'रति' ही प्रमुख हो गयी ताँ किर अपाकीर्णताका उभरना भी स्वाभाविक ही था। शैव कवि और काव्य इससे बचे रहे।

'दाम्पत्यरतिके विवाह' भी एक काव्य है। इनमें किसी साधुका विवाह शोध्याधुमारी या संवसपीके साथ सम्भव होता है। सबबा आत्माकी नायकका पुत्रकी नायिकाके साथ। मेहनतन उपाध्यायका जिनोदयसूरि विवाहहउ उपाध्याय अबधामरका 'भैमिनाम विवाहको' कुमुदचन्द्रका 'शुपभ विवाहका' और अमरपराजपाटगीका 'दिवरमपीका विवाह' इस विधाकी महत्त्वपूर्ण कवियाँ हैं। 'दाम्पत्यरतिके विवाह' शैवकी मोलिक दृष्टिमें है। निगुनिए संताने उनका निर्माण नहीं किया जा। 'दाम्पत्यरतिके फल'को जो रचना भी शैव कवियोंने अधिक की। शैव पेशत बननी सुमति आदि अनेक पतिवाके साथ होली रचना रहा है। कर्मी-कर्मी पुत्र्य और मारीके अरुवाके मध्य भी होधियाँ लेली गयी हैं। शैव ती हात्तियाँ लद्यों शैव पत्नीमें बिबरी है किन्तु शैवी सरपत्ता चानतराय बनराम और अमरपराके काव्योंमें है भूमरी जयह नहीं। 'उभरनी पतिवाको' 'दाम्पत्यरतिके' 'बूनड़ी' पद्मनेवा बाब था। 'बकीरकी' 'दहुरिया' न भी 'बूनड़ी' बहनी है किन्तु साधुशक्तिकी 'बूनड़ी' में संवात्तमक कातिरप अचिष्ट है।

भैमिनाम और पद्मनेवाके सम्बन्धित भुवक और अष्ट काव्योंमें जिन प्रेमकी

अनुमति समिहित है वह भी स्तुत नहीं किया हो वा। वैरागी पठिके प्रति यदि पत्नीका सच्चा प्रेम है तो वह भी वैराग्यमे मुक्त ही होगा। राजीमतीका मेरी वरके साथ विवाह नहीं हो पाया वा कि वे मोक्षप्राप्त करनेके लिए जैसे पशुओंकी वस्त्र पुकारमे प्रवृत्त हुए और तब करने तक पय फिर भी राजीमतीने बीरव वर्त्मन उल्टीको अपना पति माना। ऐसी पत्नीका प्रेम कृष्ण अथवा बालगामिनिग होता यह कोई नहीं कह सकता। हिन्दूको अनेक मुक्तक रचनाकामें राजीमतीक गोप्य और विरहकी भावनाके अनुमतिवा है किन्तु वे अवर्धमकी प्रोपिठ-वृत्तिकाओंमे मिलावित् भी प्रभावित नहीं है। राजीमती सुन्दर है किन्तु उस अपने हीन्दवर्षा कमी आभास नहीं होता। राजीमती विरहमपीठिग है किन्तु उसे पतिके सुन्दर ही अधिक ध्यान है। विरहमें न तो उसकी चर्या नादिन बन सकी है और न उसने अपनी राने ही पाठियाँ पकड़कर लिनापी है। राजीमतीके 'मेरीवरकामु' हृदयवृत्ति हेमचन्द्र और विनोयीकाकके 'मेरीवरपीठो में राजीमती का हीन्दवर्ष तथा विरह रूप कमीवस्त्रम विनोयीमास और अक्षरवर्तने 'मेमिराजी-मनी बाण्डामामि' राजीमतीका विरह उत्तम वाग्जना निरर्धन है। कहींपर भी अज्ञानता नहीं है। उस कुछ मर्दानासे बैठा है। हिन्दूके तीन काव्याय मेरीवर और राजीमतीका केकर अनेक मयकावयवाकी भी रचना हुई है, किन्तु उनमें नहीं जो "वारम्भविषयका सुष्ठुः स्तनमरुत्तानीनवा वज्रताम् और 'भीष्मकुन्दन कृतवत्सल सहस्रका व्याजलमावा हिवा। मेरी वान नहीं है। अब कि मयकाके मंगला चरण भी वासनाके वे करने खोब वा रहे वे मेरीवर और राजीमती सम्बन्धित मानसिक एवं हिन्दूानुष्ठियाय प्रतीक-वर ही रहे। सज्जन अपनी वाक्मताका परित्याग नहीं किया।

रहस्यवाद

जैन अवर्धमक वरमास्त्रकाय साधनवस्त्रोद्वा 'बोहाण्डुड - रामविह वैराग्यार और 'बोहाण्डुड - मन्त्रवर्ध मे आर्य-वृद्धमे प्रेम करने और उत्तम तन्त्रम इलेडी वाय नहीं पया है। वही आर्य-वृद्धकी वलितसे सम्बन्धित अनेक विषय है किन्तु तन्त्रमव प्रवृत्तिरा भी इकना-मा रन है। मयकाकीन हिन्दूके जैन कवि अवर्धमे इष्ट रहस्यवाचसे प्रभावित है किन्तु वे तन्त्रवाचसे उन्मत्त है। उनकी अनुमतिमय वाक्-व्युत्ता अविन है। आचार्य कुन्दमुन्दके वाक्वाचके भी वाक्मव अनुमतिगी ही वाक् अधिक नहीं नहीं है। भाव

मूलक अनुभूति ही रहस्यवादका प्राण है । विचारारामक अनुभूति दर्शनके क्षेत्रमें प्रतिष्ठित है । अनुभूति दोनों है किन्तु पहल में भाव उत्पन्न होते हैं और दूसरीमें विचार । डॉ० राधाकृष्णनने विचारारामक अनुभूतिको अध्यात्मविद्या कहा है । अध्यात्मविद्या यह है जिसमें मृतपन अनुभूतिपन उत्पन्न विचार किया जाये । रहस्यवाद भावारामक अनुभूति है ।^१

अनुभूतिको दूसरा नाम अनुभव है । कवि बनारसीदासने अनुभवकी परिभाषा लिखी है आत्मिक रसना आस्वादन करनेसे या ज्ञानन्द मिथ्या है उसे ही अनुभव कहते हैं^२ । उसीको विमर करते हुए उन्होंने कहा इसी अनुभवको अप्तके ज्ञानी जग रसायन कहते हैं । इसका आनन्द कामधेनु और विचारार्थिके समान है इसका स्वाद पंचामृत भोजन-जैसा है । अनुभव मीराबा मारात् माग है^३ । पाण्डे काचम्बने अध्यात्म उद्देश्य में लिखा है कि आत्मग्राहकी अनुभूतिसे यह जेउन दिव्य प्रकाशसे युक्त हो जाता है । उसमें अनन्तज्ञान प्रकट होगा है और यह अपने-आपमें ही ज्योत होकर परमानन्दका अनुभव करता है ।^४

१ डॉ० राधाकृष्णन Heart of Hindusthan, अनुवाद-भारतकी अन्तरात्मा, विश्वम्भरनाथ बिवाडी, १९२३ पृ ३२ ।

२ वस्तु विचारत व्यापकते मन पाने विधाय ।

रस स्वादन मुख ऊपरी अनुभो याची नाम ॥१७॥

बनारसीदास भाटकसम्बन्धकार जैनसम्भरानन्द अध्यात्मिक बन्दर दि सं १९०६, पृ १० ।

३ अनुभोरे रसको रसायन कहत जग

अनुभो अध्यास यह पीरबकी ठीर है ।

अनुभो की बलि यह कामधेनु विचारार्थिक

अनुभो की स्वाद पच जगतकी पीर है ।

पेरिस नरी १९०५ पृ १०-१ ।

४ अनुभो अध्यासमें विचार मुख जेउन को

अनुभो सकृप मुख बोधकी प्रकाश है

अनुभो अनूप उपरहृत अनंत ज्ञान

अनुभो जनीत त्याग ज्ञान मुखपक्ष है ।

अनुभो अपार तार आप ही की आप जानै

आप ही में व्याप्त बीरै जानै यह नास है ।

अनुभो अक्षय है सकृप विचारार्थिक

अनुभो अतीत भाट नर्म स्वी अध्यास है ॥१॥

अध्यात्म उद्देश्य अन्तरि नर्वाच्यकी अन्तपुरकी इलमिष्टिण मनि ।

मध्यकालीन हिन्दीके केन कालमें रहस्यकारी गीत और पर दिखरे हुए हैं। इनमें 'आराधना प्रतिशोधसार'—उत्कृष्टक्रीति 'सम्प्राप्ति'—वरिष्ठतन 'उत्पत्तिसारसूत्र'—सुमधन्य 'वैतनगीत'—किलदास 'अभिरुपवर्णासुत'—विभुवनचन्द्र 'सुन्दरसुत'—सुन्दरदास 'खटोष्णानीत'—पाण्डे रूपचन्द्र 'अध्यात्मगीत'—बनारसीदास 'मनराज विद्यास'—मनराज 'बहुतरी'—आनन्दचन्द्र 'द्वितीय वैद्यशास्त्री'—हमराज 'आनन्द विद्यास'—जगतदास 'वैतनब्रह्मिणी'—सम्प्री बरकम 'अक्षरबावनी'—विद्युरीदास 'वैतन गीत'—विद्युरसिंह और 'वैतन सुमप्रियदास'—भवाणीदास प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनमें भारत-ब्राह्मके प्रेमकी अविश्वसित रूपलेके द्वारा की गयी है। इनके उरर है ऐसी सरलता संस्कृत-प्राकृतके केन कवियोंने नहीं पायी जाती।

सतगुरु

केन कालमें सतगुरुका महत्त्वपूर्ण स्थान है। वहाँ सतगुरु और ब्रह्ममें घेद नहीं स्वीकार किया गया है। जन्मीन महत्त्व और सिद्धको भी 'सतगुरु' की संज्ञासे अतिद्विष्ट किया है। नबीरदास गुरु ब्रह्मसे पुनक है। गुरुके द्वारा ही गौतम मिथ्या है अथ नबीरने गुरुको ब्रह्मसे बड़ा कहा है। गुरुके प्रति नबीरका यह दृष्टिकोण स्वाभाविक अतिक्रमण है, अतिपरक क्रम। ब्रह्मरी ओर को भक्त ब्रह्मको भी 'गुरु' कहकर ही पुकारता है, बसली गुरु-भक्तिमें अन्धेह नहीं किया जा सकता। केन कवि गुरु-अन्त से। अन्तेले पंचपरमेष्ठीको 'पंचगुरु' कहा है। पंचपरमेष्ठीमें अहम्-सिद्ध धार्मिक है आचार्य—अध्याप्य तथा साधु भी। साधु अति सम्मत्नी है तो गुरु-रचना अतिजारी है। गुरु नहीं है, जो अन्धेह पंचका निवृत्त करे। अन्धेह पंचका अर्थ है मोक्ष-मार्ग। उसे नहीं बला उदगा है जो उदपर पक चुका ही। सन्ना साधु अन्पर चकता है और उसके अर्थ-अर्थसे परिचित रहता है। हिन्दीके केन कवियोंने 'गुरु' को मोक्ष-मार्गका प्रकाशक कहा है।

नबीर ने 'गुरु' की अतिजारी बात तो बहुत ही दिग्गु उसके प्रति विप्यकी अनुपकारक प्यदाता तो जैसे वहाँ अभाव ही है। उदर केन कालमें गुरु-अन्तमें अनुपकारको वर्णन स्थान मिथ्या। केन विप्यन गुरुके मिथ्या और विद्वत् सोनांन ही पीत बाये। गुरुके मिथ्यामें विप्यकी समुची महति कहलहली हुई विचार्य ही और विद्वत्के अन्ते, समुने अन्तको उदगीत देखा। रसुकी 'विद्वत्ता और अध्याप्य अन्तापरकी 'विद्वत्ताअन्तुरिधी' गुरुकाअन्ता

धीपुण्यबाह्यगीतम्' सामुकीतिका 'निमग्नसुरिणीतम् तथा भोवराजका 'सुपुष्पतक' अनुपगारमक भक्तिके उत्तम दृष्टान्त है ।

हिन्दीके सभी कवियाने स्वीकार किया है कि मुझे सामर्थ्यवान् होने मानते कुछ नहीं होता । सिष्यमें योग्यता ग्रहण करनेकी उपादान शक्ति होती ही चाहिए । उपादान शक्तिके अभावम मुझ कितना ही सम्झामे सिष्य समझता नहीं । बैन कवियाने अपने अपने अनेक पदोंमें इस भावको उरसताके साथ प्रकट किया है किन्तु मुझ अत्यधिक उदार होता है । सिष्यमें ग्रहण करनेकी शक्ति ही या न हो वह मुझे बासीबाँवका पात्र तो बनता ही है । बनारसीवासने 'नाटक-समयसार'में मुझे मेवके समान कहा है । मुझमें-से मेवकी ही भाँति 'बानीस्वी' अलङ्कित बार निकळती है और वससे सब बीबीका हित होता है ।

'ज्यों बरये बरपा सैं मेव अलङ्कित धार ।

त्यों सत्गुरु बानी सिरे, बगत बीच हितकार ।

ग्रहणी प्रेरणा

प्रत्येक शक्त अपने भगवान्से याचनाएँ करता है । बैन शक्तने भी की है । अपने कहीं पुत्र नहीं बन और कहीं मोक्ष माँगा । उसका माँगना कभी व्यर्थ क्या हो ऐसा सुननेमें नहीं आया । बीतरामी प्रभुने अपने शक्तकी सभी मनो-कामनाओंको पूरा किया फिर वे शौतिक हो या आध्यात्मिक । किन्तु प्रश्न तो यह है कि जो भगवान् संसारसे मुक्त हो चुका उसका संसारसे क्या सम्बन्ध ? बैन सिद्धान्त विनेत्रमें कर्तृत्व नहीं मानता और बिना कर्तृत्वके वह शक्तकी इच्छाओंको पूरा भी नहीं कर सकता । फिर बैन शक्त किस संसारसे टिकता है ? उसके टिकनेका अर्थकर्म है विनेत्रकी प्रेरणा । विनेत्र कुछ नहीं देते किन्तु उनके दर्शन और पूजा-उपासनासे शक्तमें पुण्यप्रकृतिर्योक्र बरम होता है । ये प्रकृतिपर्व अक्षरवर्तीकी विभूति देती है और तीर्थकरका पत्र भी । अर्थात् उनमें शक्ति और स्थायी दोनों ही प्रकारका ज्ञानत्व देनेकी सामर्थ्य है । सातवाँ यह कि विनेत्र

१ रत्नकी 'विनयचत बीर्य' बैन शक्तिर पाठीही बरपुरके पुष्पा मं १ में मौजूद है । इसमें ३५३ पत्र है । भोवराजका अनुपगारमक भी इसी शक्तिरके पुष्पा मं २३६ में अंकित है । अलङ्कित रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी है ।

२ पुण्यप्रकृतिपर्व ग्रन्थ मार्गमें भी अर्थ से सज्जी है किन्तु अधिकमार्ग प्राप्तान चीजा और उत्तम है अथवाचारके सम्बन्धे कल्पना है । पान प्रधान बैन शक्तिमें अथवा विद्यान बहुत बड़े आस्थात्मकी बात है ।

दुष्ट की वैसे विष्णु सगरी प्रेरणा सब कुछ देती है। परत चलने ऐसी सामान्यता कम होता है, जिससे वह स्वयं सब कुछ प्राप्त कर सकता है। इसे ही प्रेरणात्रय कर्तृत्व कहते हैं। इसमें कवि ईश-ईश पुकारा सब ही क्षीणित करती रहती अस्तु कबीर प्रत्येक कर्मके द्विगु कर्मक्षेत्रमें उतरती है। कवि और कर्मका ऐसा सम्बन्ध नहीं देखनेको मिलता है। इसमें कवि मन्त्र न ठा कविके निदान पराशरम्बलते आकषी बन पाता है और न कर्मकी सत्यतामें केवल होता है।

विनेत्रका मौलिक प्रेरणाका अभाव पुनः है। उसे केवल कविताकी आत्मसाधनमूर्तिवाँ भी उमरती रही है। स्वयम्भू लोभ में आचार्य उदयप्रद कविता है, "व पूजार्थस्त्वदि वातरागे न विन्त्वा वाच विद्वान्तवैर। तथापि ते पुष्पगुणस्पृतिग पुनाति चित्तं दुरिणाञ्जनेन" मध्यरात्री हिन्दीके कवि राम्याम ऐसी अनेकानेक कविता है। साधनपदमें विनेत्रके प्रेरणात्रय कर्तृत्वको एक अनात्मके द्वारा प्रकट किया है।

"तुम प्रभु कहियत हीनबालक ।

भावर वाच मुक्ति में दैते, हम तु सकल अगबालक ।

तुमरो नाम कहेँ हम नीके मम बच तीनी काक ॥

तुम ती हमको कष्ट द्य बहिँ हमरो हीन इबाक ।

कुसे-अकेँ हम पागत त्रिहारे जानव हो हम बाक ॥

कीर कष्ट बहिँ यह चाहत हैँ राग-दोष कीँ द्यक ।

हम कीँ बूक परीँ सौ बकस्त तुम तीँ कुरा विद्याक ॥

पावव एक बार प्रभु अग तीँ हमसेँ केँहु निद्रक ।

आधुनिक हिन्दीके कविताका मन भी आधुनिक प्रेरणात्रय हीनत्वमें ही अधिक रहा है। प्रियदास की उपासने पवनको हूँती बनाकर कुम्भके पाठ घेजा। हूँतीने पुष्प वि बहोँ तो अब दाने ही दाने हाँसेँ मैं हूँतीने कीँते पहचानूँगी ? उपासने कहा

कैसेँ होंगेँ कित्त पाक बहोँ मन्वता भूरी होनी ।

आनेँ माँकी बहव करुतेँ प्यारकेँ साथ होंगेँ ॥

पातेँ होंगेँ परमनिधिवाँ सुदतेँ राग होंगेँ ।

हीनी होंगेँ इष्टवकषीँ क्यारिवाँ सुप्रिया-सी ०

देतेँ होंगेँ प्रकित गुन मेँ देल अर्पणि द्वारा ।

कोहाकोँ सु ककिय करतेँ स्वर्ग होंगेँ बनायेँ ॥"

राधाने कृष्णके व्यक्तिस्वमें एक ऐसा जागू माना है जिससे समीपस्वोंको परम निधियाँ और रस प्राप्त हो जाते हैं। कृष्ण कुछ देते नहीं उनके 'बर्धन'में ली सक्ति है जिसकी प्रेरणा मनुष्यको सब कुछ पानेमें समर्थ बनाती है। जिसकी केवल सद्बुद्धिसे ही प्रथम गुण आ जाते हैं वह जागू ही है और क्या। इसे ही शैल आचार्य प्रेरणा कहते रहे हैं और शैल-कवि सहीके प्रेरणा-शील बनते रहे हैं। राधात्म्यकी सीढाने राममें हेमचन्द्रकी राजकुमारी ममिठुमारमें मुसलमानकी बर्धनाने पवनदेवमें प्रेरणात्म्य शीम्बर्यकी अनुभूतियाँ की हैं।

पञ्चकल्याणक स्तुतियाँ

तीर्थकरके पदमें जाने काय भेजे उनके सिद्ध जाने केवलज्ञानके उत्पन्न होना और मोक्ष प्राप्त करनेके अवसरपर जो उत्सव मनाये जाते हैं उन्हें 'कल्याणक' कहते हैं। वे कल्याण करते हैं अतः उनको यह संज्ञा दी गई है। शैल काव्योमें उनका अनुभूतिपरक विवेचन है। प्रबन्ध काव्योमें अधिक है फिर चाहे वे संस्कृत-प्राकृतके हों अपना अपभ्रंस और हिन्दीके। वहाँ तीर्थकरके प्रत्येक कल्याणकमें सम्मिश्रित एक-एक वर्ण है, किन्तु कवियोंका मन बर्धन और काय-कल्याणकोमें ही अधिक रमा है। भूबरदासके पाश्च-पुराणम इन शोकों परस बरगम है। कविनी सबसे बड़ी सामर्थ्य है चित्रात्मक। हिन्दीके महाकवियोंने अधिकवादिनी कवियोंके द्वारा मीठी सेवा सध जात बाल तीर्थकरका पाण्डु-पिशापर स्वाम इन्द्रका हाथ्यन नृत्य और आत्मन्' नाटक आदि पुरवोंको सफ़लतापूर्वक अंकित किया है। उनमें प्राकृतिक छटाका समन्वय होनेसे शीम्बर्य और भी बढ़ गया है।

प्रबन्ध काव्योमें यथाप्रसंग मुक्तक स्तुतियोंकी भी रचना की जाती है। उनमें उत्-उत् कल्याणकको लेकर तीर्थकरके प्रति अपना मन्त्रि-भाव प्रकट करना ही कविका कर्तव्य होता है। अपेक्षाकृत हिन्दीके प्रबन्ध काव्योमें ऐसी स्तुतियोंकी अधिकता है। हिन्दीके कवियोंने ही मुक्तक रूपसे ही पञ्चकल्याणक-स्तुतियोंका निर्माण किया है। संस्कृत-प्राकृतम उनका निरालम्ब बनाव है। यह हिन्दी कवियोंकी अपनी मित्री विद्येपता है। पाण्डे कपलम्बरकी 'पञ्चमसक स्तुति' आज भी शैल-मन्त्रिरोमें प्रतिबिम्ब पडी जाती है। अचरामके 'कवुपञ्चमसक'की एक हस्त लिखित प्रति मुझे बड़ीलके विद्यम्बर शैल-मन्त्रिरेके पालनप्रणयारमें मिली है। पाण्डे कपलम्बरने प्रतिष्ठ 'पञ्चमसकस्तुति'के अतिरिक्त एक 'कवुपञ्चमसक वा भी

निर्दिष्ट किया था। वह भी बड़ी-से शास्त्रमन्थारमें उपलब्ध हुआ है। भवानी बाघके 'पंचमनकवाच्य'की एक प्रति बनारसमें रामघाटपर स्थित प्राचीन वैकुण्ठ-मन्दिरमें मौजूद है। महाराज चर्मचन्दका 'पंचमनक' जयपुरके पाटीसीके वैकुण्ठ-मन्दिरमें उपलब्ध है। इन नाम्यामें तीन कवियोंका हृदय जैसे उमड़ ही पड़ा है। जगरामने लक्ष्मणचन्दका एक बहू बप्स देखिए, त्रिछमें छन्द कुमारिबाप माँगी सेवा करती है।

ईक सखमुच दरपन जोबा ईक टाही खबर हुआमै जी ।
 बसत आसूपन ईकै, ईक मजुरी बैन बजावै जी ॥
 रूँकन एक पहेँली का ईक उठर सुनि हरबावै जी ।
 निमि दिन अति जालन्दरु खी हम नय माय बितावै जी ॥
 महिमा त्रिमुवन बाप की कवि कहीं छौ परबावै जी ।
 मरिह करे ना कसि मनो जगतराम बन दावै जी ॥

दास्यभाव

मनको भववानुका शप होना ही चाहिए। वह बाघता जो मनके हृदयमें बस गयी है। शारिखकी ही होती है। उसका शैथिल्य स्वार्थसे मुक्त बाघताके शक्तिशाली पहलूसे सम्भव नहीं होता है। तीन मन भववानुका बाघ है। वह भववानुकी सेवामें अपना जीवन बिता देना चाहता है। हिन्दुके अनेक तीन कवियोंमें एक-मनमें त्रिदशकी सेवा करनी चाही है। उन्हें न ही सामरिक कुछ माँगे और न मोक्ष ही माँगी ही सेवा। सेवास्य जालन्दरु ही धनके जीवनका चरम कदम बना रहा। उनकी बहू जानाका पवित्र भी—स्वाभरहित।

तीन मन्त्रका बाग्य भी सँघा घटार और बरानु है कि वह अपने बाघको अपने समान बना केता है। आचार्य सम्प्रदायने लिखा है कि हे भगवन् ! जो आपकी गुण्यता करते हैं, वे पीछ ही गत-बीछी कर्मीक सुधीन होठे हैं। इसीलिए कवि बनारसीबाघने जानीने मियु भी सेवाभावकी अति अभिचार्य बतलायी है। जो भववानु कीपीनर हमनी क्या करे कि उन्हें अपने समान बना के सब ही बहू 'पीनरबाकु है। इसी कारण तीन मन बाघ-बाघ उस 'तीनदवानु की पुनारता है'।

देखिए लुभिकिया ७७वीं स्तोत्र ।
 २ कवि भूवरदासकी 'मनो जगतराम'की किताबी, जो 'इतिहासवालीसंस्कृत'में प्रकाशित हो चुका है।

‘अहो आत्मगुरु एक सुविधो धरत्र हजारी ।
 तुम प्रभु दीनदयालु, मैं बुद्धिवा संसारा ॥

और वह भी सच है कि उसका पुनारत्ना कत्ना निरर्थक नहीं गया । दीनदयालुने दीनपर दया कर उसे भी ‘दीनदयालु’ बना दिया । ऐसे भगवान्‌का यदि कोई बास बने तो ठीक ही है । यदि न बन पाये तो दुर्भाग्य है ।

हिन्दीके अनेक जैन कवियोंने शास्त्रमात्रकी भक्ति की है । उसका विश्वगत तीसरा अध्येयमें लिया गया है । यह धनक लिए एक उत्तर होया जो जैन भक्तिमें शास्त्रमात्र नहीं मानते । उनके कल्पनानुसार आत्मामें परमात्मा बननेको वाञ्छित मोक्ष है फिर उसे प्राप्त करनेकी क्या आवश्यकता है । उनके सिद्धा न्तानुसार आत्मा और परमात्मा समान हैं फिर बासताको स्थान ही नहीं है । इसके अतिरिक्त वे भगवान्‌में कर्तृत्व भी नहीं मानते इनलिए भी बासताका अङ्गन करते हैं । किन्तु आत्मा अभी परमात्मा बनी नहीं है, हममें उन तत्त्वाका आधिभार नहीं हुआ है, वा परमात्मामें मौजूद है अतः यदि वह परमात्मामें सेवाभाव रखे तो अगुणमुक्त नहीं है । जहाँक कर्तृत्वका सम्बन्ध है, वह भके ही प्रेरणादायक है ही तो फिर शास्त्रमात्र भी विम ही सकता है । जैन कवियोंने शास्त्रभक्तिके अनेक पद्यका निर्माण किया है ।

आराध्यकी महत्ता

आराध्यकी महत्ता स्वीकार किये बिना अज्ञा ही उदरान्न नहीं होनी यहिन तो दूरकी बात है । इसी महत्ताके साथ भगवती अपनी कपुताकी स्वीकृति स्वतः ही चुकी है । अर्थात् मत्त जवनक जर्मकी कपु और आराध्यकी भगवत स्वीकार नहीं करता वह भवन ही नहीं है । जैन भक्तमें भी वे दोनों प्रकृतियों दिव्य हैं । आराध्यकी महत्ता प्रकट करनेके अन्तर्गत्त है और जन्म एक यह भी है कि जन्म आराध्यकी भगवत केसे बड़ा बनाया जाये । गुरु और तुलसीने इच्छ और रामको बड़ा महेष और बुद्धके बड़ा बना है । जैन बधियात भी त्रिनैगकी भगवत केसे बड़ा माना । ऐसा करके अज्ञ न आत इच्छेवम अन्तर्गत्त भाव ही प्रकट किया है । अज्ञाने किसे अज्ञके प्रति कटुता अभिव्यक्त नहीं की । अपने इच्छेवकी गवोन्मत्त बनाता भगवता बनस्य है किन्तु त्रिनैग भगवत केसे उद्गृह विगाया कये उनक प्रति पुनःप्रकट भाव प्रकट करना ठीक नहीं है । नानुशासनक प्रति निरन्तरप्रकट अङ्गन कटुताके साथ करते रहे हैं । जन्म यह कार्य निश्चय कर

अधिक है, विवेक कम। त्रिभुवङ्गना अथवा त्रिभुवङ्गरी भक्ति नहीं है। त्रिभुव और त्रिभुवको एक माननेसे जैन कवि इस संदर्भसे नितास्त मुक्त रहे हैं। उन्होंने जैनतिरिक्त देशोंसे अपने देवको बड़ा तो बनाया किन्तु उनको बुरा भी नहीं कहा। जैन संस्कृत काम्याय तो नहीं-कहीं ब्रह्मा विष्णु, महेश्वर प्रति तीस्तापन भी दिखाई देना है किन्तु जैन हिन्दों रचनाओंमें ऐसा नहीं है।

जैन कविमाने आराध्यकी महत्ता एक अर्थ हीमें जो प्रकट की है। यह हीकी विवेक है और प्रथमकी ज्ञेया अकारणपरक भी। इसमें भक्त कवि अर्थ देनाही आराधना तक करनेको तैयार रहता है, किन्तु तभी जब उसमें अपने हृदयके गुण बटित हो। रामके भक्त तुलसीदास कृष्णकी बन्धनाको भी तैयार है किन्तु जब वे मुरली छोड़कर 'बनुप-बाण' बालन करें। एक जैन कवि अंकर की पूजा करना चाहता है किन्तु तभी जब अंकर प्रलय करता छोड़कर य अर्थात् धानि करनेवाके बन जायें। इसी भाँति वे 'ब्रह्मा' की उपासना करनेवा भी तैयार है किन्तु तभी जब वह तबसीके मोह-माहसे निवृत्तकर 'त्रुत्प्रापम एत रोवरहित' हो जायें। आचार्य हेमचन्द्रने तो अपने आराध्यका नाम ही नहीं दिया। उनके लिए तो वे सभी हृदय हैं जिनमें एतादिक हीप हीनको प्राप्त हो गये हैं।

मन्त्रीबानुरजनना दामाद्याः अत्रमुपगमा अस्व ।
 मया वा विष्णुर्वा इतो जिनो वा नमस्वरमै ॥
 यत्र तत्र समये तथा तथा बोधसि सोऽस्मभिश्च वा तथा तथा ।
 भीतदोषत्रुवः स चेन्नयमेक एव मयावन्नमोऽस्तु त ॥”

भक्तकी त्रुताकी बात ऊपर की जा चुकी है। आराध्यकी महत्ताके समय भक्तकी अस्व प्रत्येक गुण और वाप त्रु हो प्रतीत होता है। मन्त्रिके अर्थम त्रुताका भाव हीनताका धोणक नहीं है। भक्त जिनका ही अधिकारिक अपनेको त्रु त्रुभव करता चायेवा जगता ही विनम होता आपवा और आराध्यके अर्थम वृत्त चायेवा। तुलसीकी विनमपधिका में 'त्रुता' प्रमुख है। जैन कवि त्रुत्प्रापम अस्वीयन अत्रय वनारसीदास कथयन् और भूवरदासके परमै भी त्रुताको ही मुख्यता ही गयी है। वनारसीदासका एक श्लोक देखिए^१

१. आराध्य अस्व, अत्रयकथयन् अस्व, इत्त और त्रुता त्रुता ।

आराध्यमस्व, अत्रयकथयन् इत्त और त्रुता त्रुता ।

“जैसे कीड़ मूल महासमुद्र तिरिब को,
 भुआनि सों उचल मची है तजि बाबरी ।
 जैसे गिरि ऊपरि निरलफळ तोरिब को
 बाबनु पुरुष कोऊ उमी उठाबरी ।
 जैसे अककुण्ड में निरलि वासि प्रतिबिम्ब
 ताके गह्विब को कर भोंबो कर बाबरी ।
 जैसे मैं अकपबुद्धि नाटक आत्म कीनी
 गुनी मोहि हैंसेगे कौंसे कोड बाबरी ॥

अनुठाके साथ ही बीनताका भाव भी अन्त होता है। बीनताका अन्त है परीबी परीबी केवल रूप-वैशेषी नहीं हर तरफकी। मन्तमें न तो गुण हैं और न पुण्य करनेकी सामर्थ्य। उसको बिम्बकी पापीमें कटती है। इसी कारण उसे बारम्बार यमकि दुःखोको झेझना पड़ता है। वह अचानक-मर बेचैन रहता है। कोई भी ममबान् उसके इन दुःखोकी तमी दूर कर सकता है, जब वह 'बीनबमान्' हो। अहिंसाको परम धर्म माननेके कारण जिनेन्द्र तो स्वभावसे ही 'परम आरक्षिक' होते हैं। अन्धेन सबैव बीनोपर बया की है। हिन्दीके जैन कविमाल उनके 'बीनबमान्' रूपको लेकर बहुत कुछ लिखा है। उनमें पं बीलतरामकी 'अध्यात्म बाह्यबकी' मैत्रा ममबतीवासका 'अहिंसा' मूचरदासका 'मूचर बिलम्ब' धानतरामका 'धानतबिलास' तथा मगरामका 'मगरामबिलास' प्रसिद्ध हैं। इनमें ममबान्के इस विषय का निरूपण है, जिसके सहारे बीन तरते हैं मने ही उद्दाम हीन कर्म किया हो।

ममबान् इसलिए भी मन्त है कि वह अचरनाका धारण होता रहा है। बीन अचल ही पाप और अपराधोके कारण ऐसा बन जाता है कि उसे कोई धारण देने को तैयार नहीं होता। ऐसेपर ममबान् बना करता है। उनके अपराधोको परि माहित कर उन्हें भी ममबान्से दूर रेष है। जिनेन्द्र जब 'बीनबमान्' है तो अचरनाधारण भी है। अचरनाको धारण देना भी बचाते ही सम्बन्धित है। जैन कविमाल जिनेन्द्रके इस रूपको लेकर अनेक अनुभूतिपरक 'पदो' का निर्माण किया है। पं बीलतरामका कवण है,

‘आऊँ कहीं तजि धारण तिहारे ।

बूक अनादितनी या हमरी माफ करा कल्पता गुण धारे ॥

दूबत हीं मजसागर में अब तुम विभु का मोहि पार बिकारे ।

कस्तुरी की पूरा विरासत है कि उसे किम्वद्विजित ही धारण के सक्ते हैं। वे केवल धारण ही नहीं करिणु सके नार भी हिये बर्राकि उनका ऐसा विवर है। ननि धालनराधने लिखा है

“अब हम नेमित्री की धारण ।
 और और न मन कागत है ठीहि प्रभुके धारण ॥
 मरुत मरि अब-रुद्वय धारिह् बिन्दु धारण तरण ।
 इन्द्र-बाहु-अभिन्दु ध्यायेँ धारण सुख हुल इरण ॥”

कीर्तन

कीर्तनका उत्पत्ति है मयबानुकी कीर्तिका कथन करला। वैष्णव मन्दिराम ताक-मंजीरके बाध होनेवाले कीर्तनका रूप वैन मन्दिरामे कमी प्रचलित नहीं रहा। मध्यकाकन देवस्थानोंपर भी वैन मलय मुख्य और पावनके साथ रात करन लमे वे किन्तु यी त्रिभक्तकमपुरि (वि सं ११९७) ने कमुठ और ताकरासो-को मन्व कर रिमा बा बर्राकि इन रात वत्तमिनी केप्टार् विटो वीसा होन लमी थीं। अन्व रात प्रचलित रहे मुरम और पावन भी। किन्तु इहाँ कप भी वैष्णव मन्दिरामे होनेवाले कीर्तन-नीला नहीं प्य।

काव्यमें कीर्तनको नाम-रूप कहते हैं। त्रिजन्त्रके काम-रूपकी महिमा वैन कविवाने करैव रबीकार की है। मावभुंभाचार्यने ‘मफलापरलोच म लिखा है ‘त्वहाममन्त्रमभिष मनुजाः स्मरन्तः सद्य स्वर्च विपतकण्ठमया मरुमिठ ॥’ भाषाय तिष्ठमेतने भी ‘कल्पामन्दिरस्तोत्र में लिखा है ‘आस्तामन्दिममहिमा त्रिभक्तस्तवस्ते नामापि पावि मवती मवती कथन्ति ॥’ हिन्दीके वैन धारिण-में तो स्वात-स्वातपर मयबानुके नामकी महिमाका भावपुष निकपण है। वैसे तो मुर और तुलसीने भी अपने माराध्यके नाम केने मारथे ही कसीम मुख प्राप्त होने की बात लिखी है, किन्तु त्रिजन्त्रका नाम केनेसे साधारिक वैष्णव तो मिलते ही है, ताक ही उनके प्रति अनाकर्षकका भाव भी प्राप्त होता है। वैनच विस्तार काये और कथके साथ ही म्म उषते पुषक हुकर वैष्णवकी ओर विषता पाये यह ही त्रिजन्त्रक नाम-रूपका कहेवेच है। वदि कभारसीवाकने ‘नामनिर्भव विद्याम’स ऐसा

सिद्ध भी है। श्रीमा यमपतोशासने 'सुपुंजकुपुंजपपीसिका में जिनेश्वरके नामकी अचिन्त्य महिमाका वर्णन किया है। उदाहरणके लिए

'तेरो नाम कल्पवृक्ष इच्छा को न राखै उर तेरो नाम कामधेनु कामना हरत है।
तेरो नाम चिन्तामन चिन्ता को न राखै पाम तेरो नाम पारस सो दारिद्र्य हरत है ॥
तेरो नाम अमृत पिये सैं जरा रोग जाय तेरो नाम सुरतमूक सुरत को हरत है।
तेरो नाम बाँधराग धैर उर बाँधराग भय्य ताहि पाय भवसागर तरत है ॥

कीर्तनका दूसरा अर्थ है गुणोंका कीर्तन। जिनेश्वरम गुण ठो है असीम और मानव है ससीम फिर उन्हें कैसे नहूँ। अतः वह असीमको कहनेके लिए अति-सयोक्तिका सहारा लेता है। यहाँ अतिशयोक्ति शब्द असीमके पक्षमें नहीं अपितु कल्पवृक्षके असीम के पक्षमें बटता है। ससीम कह नहीं पाता किन्तु जो कुछ भी नहूँता है वह भी हमके लिए बड़ा-बड़ा कवन है। असीमके सीमारहित गुणोंको तो वह जान भी नहीं पाता अतः उन्हें बड़ा बड़ाकर कहनेका तो कोई अर्थ ही नहीं है। 'स्वयम्भू स्तोत्र में इसे अल्पमतिका प्रकाश-लेख' कहा है वह अल्पमति जो जिनेश्वरके अशेषमाहात्म्यको जानता ही नहीं। वनभ्रमरने विपाण्ड्यार स्तोत्र में स्पष्ट ही लिखा 'बहून्निष्वासु कीर्त्तयामि तथैव च स्तुतिस्तथोऽस्तिकि-कमा तथास्तु।' हिन्दीके पर-साहित्यमें असीम' के गुणोंको कहनेकी अक्षय्यता परसताके साथ अमिष्यत की पत्नी है। कवि सातवरायने एक स्वानुपर लिखा है,

'मनु मैं किहि किहि बुति करीं तेरी।
गलधर कहव पार बहिं पाषी कइ बुद्धि है मेरी ॥
अन्न अन्न मरि सहस्र जीम धरि तुम जस होव न पूरा।
एक जीम कैसे गुण पावै उरु कइ किमि सुरा ॥
अमर उन्न सिंहासन परौं य गुंन तुमसैं न्वारे।
तुम गुंन कहव अन्न नक नाही भैत गिबै किमि धारे ॥'

यं शौकतरामकी सम्पात्मबाह्य'में भी लिखा है कि जिनेश्वरकी पूठ महिमा यमपति भी नहीं वह पाठे फिर भला मैं मतिहीन बडानी उठ भैरको कैसे पा सकता हूँ।

१. बालभद्रमयक कवकता ४२१ों पर।

सम्पात्मबाह्य' बहामधिर, अरपुरकी इन्द्रमिथिल प्रति 'य' अमर, ७२१ों पर।

‘गूढ़ स्वभाव विविध महा ए मय वषा
महिमा तरी गूढ़ नही महि गजगर्भा ।
ए गूढ़ानमदेव निरन्तर सब मही
मि मनिहीन अचान भेद पावा नही ॥’

स्मरण

सभी भक्त अपने-अपने आराध्यता स्मरण करते हैं। स्मरण ही विद्योतीका एकमात्र उद्धार है। उसीके बख्तर भक्त जीविन रहता है। भक्त तबतक स्मरण करता है, जबतक आराध्यत्व नहीं हो जाता। यथा अब स्मरण करते-करते हृत्कम्य ही पयो उभी घते जैन पदा। जैन आचार्योंने स्मरण और ध्यानकी पर्यायवाची कहा है। स्मरण कहके ती सब-सककर चलना है फिर घने-घने घठमें एवतामता आती जाती है और बहु ध्यानका रूप धारण कर लेता है। स्मरणमें शिठनी अधिक उन्मीलता बढ़ती जायेगी बहु चलना ही उरूप हीजा जायेगा। ‘एकीमात्र स्तोत्र’में लिखा है कि भक्तवानुके ध्यानसे मुझमें ‘स्वयंवाची’की मति उत्पन्न हो जाती है।^१ अन्त्याचमन्त्रि स्तोत्र’में कहा गया है कि शिनेत्रके ध्यानसे अक्षमात्रमें बहु जीव परस्परम बघाकी प्राप्त हो जाता है।^२

हिन्दीके जैन कवियोंने उक्त स्मरणके बख्तर भक्तवानुके तारात्मकी वाग बनेक स्थापनेर नही है। कवि बभारसीराधने अन्त्याचमन्त्रि’में लिखा है “मागह् नरम अरत विव ध्यान। अरत विमिर उथी अनाथ मान।”^३ कवि

१ प्रादुर्भूतस्मरणपद्मसुख स्थापनुष्यामती मे

स्वयंवाचीं च इति मतिरुत्पद्यते निविरत्या ।

मिर्च्यैवैषं तद्यपि उन्मुदे तुष्टिमन्त्रेवस्था

वीपतबानीन्त्रमिदमकनास्वत्प्रठावाभूचन्ति ॥

—एकीमात्रस्तोत्र १७वां पद्य ।

२ ध्यानाशिश्रवेण भवती कविः अनेन

देहं निहाय परमात्मरक्षा भवन्ति ।

तीव्रानकानुपकृताचमनास्व जीके

आशीकरुणवचिदादिब वासुदेवाः ॥

—अन्त्याचमन्त्रिस्तोत्र १५वां श्लोक ।

३ अनाथीः विरतसु अरुत, अन्त्याचमन्त्रि, १३वां पद्य, ६ १९९ ।

दानतरायका कथन है कि 'भाततराय' सों भवनेसे अर्थात् ध्यान करनसे 'बुद्धिवा
 माय दूर हो जाता है, मनन और स्वामीमें भेद नहीं रहता होता एक हो जाते
 हैं।' मैया भगवतीबासने 'सूत्रावलीमें में 'ध्यायत भाप माहिं जगदासा बुद्धु
 पद् पद् विराजत ईस।' ^१ लिखकर ध्यामसे तावात्मकी बातको पुष्ट ही किया
 है। ५ दोस्ततरायन भी 'तब वास्वा विच्छे नहीं एवाई है तिरप्रम्यि
 किन्ना है।'^२

स्मरणसे केवल भयवान्का तावात्म ही नहीं अपितु भौतिक विभूति भी
 उपसृत्य होती है। मुनि बादिराजका घटीर कोड़की दुर्गन्धिसे मुक्त या त्रिनेत्र
 की स्मृतिसे स्वर्ग-वैशा जमक उठा। ^३ हिन्दीके कवि दामतरायका कथन है कि
 प्रमुके स्मरणसे यह जीव तर तो जाता ही है सोंप और मेडक-वैसे जीवाका
 मुरपद भी प्राप्त होता है। देवताओंका वैभव प्रसिद्ध है। ^४ मैया भगवतीबासने
 परमात्मछतीसीमें किन्ना है, "राग द्वेष को त्याग के धर परमात्म एवाव।
 क्यों पावे सुख सम्पदा मैया इम कस्वान ॥" ^५ सामारिक विभूतियोंकी प्राप्ति
 होती अवश्य है, किन्तु हिन्दुके जीन कवियोंने आध्यात्मिक सुखके लिए ही बल
 दिया है। प्रमुके स्मरणपर तो कमभय सभी कवियोंने जोर दिया है, किन्तु ध्यान
 वाची स्मरण जीन कवियोंकी अपनी विशेषता है।

दशनकी महिमा

आराम्यकी सतत देखते रहलकी तीव्र अभिजाता कभी बुझनी नहीं। अँसियाँ
 हरि-हरसनकी भूखी बनी ही रहती है। जो भी क्या प्रमु काव्यसिन्धु हैं उनके
 काव्यजडसे प्यासेकी प्यास तुप्त नहीं होती। मोपीके लेख तो कृष्णके मुखको
 देखते ही मुमा जाते वे अर्थात् इस भाँति आनन्दमग्न हो जाते थे कि उन्हें जोर

१. दानतरायका ३३वीं पद।

अर्थात् भास मुद्रावलीमें, ३ वीं पद ५ २०।

२. कल्पात्म वादरजकी प्रारम्भ ४३वीं पद।

४. ध्यानद्वारं मम इच्छिकरं स्वान्तरीह प्रसिद्ध-
 स्तान्ति विधिं त्रिनवपुरिष यत्सुबर्षीकरोवि ॥

पद्मीमाफलोव ४वा श्लोक।

५. दानतरायका ३३वा पद।

६. अर्थात् प्रम परमात्मदर्शनी ३३वीं पद, ५ २३।

सज्जा और बुद्धशक्तिया भी ध्यान नहीं रहता था। हृदय अभी तीव्रतरका जग ही हुआ है कि एक टपटपी मनाकर निरन्तरने लया। तृप्त नहीं हुआ तो सूर्यनेत्र चारुय कर खिचे। तृप्ति फिर भी न निक लयो। अट्टारक ज्ञानभूषणने 'बाहीरवर क्यु' में बालक बाहीरवरके नीमर्षवा कर्मन करत हुए लिखा है 'देवनेचान्त कर्मो-गर्मो देवता बाता है उसके हृदयमें बहु बाळक अचिवापिक माता बाता है।' अर्थात् बहु तृप्ति वा अनुभव नहीं करता। और वे केन जब अपने शिव को नहीं देख पाते तो उसके प्रतीया-वचपर बिठे रहने हैं। दिन और रात देखने रहनेसे जीने काछ ही जाती है किन्तु बुलगी नहीं क्योंकि शिवमिजनकी लकक पाहें निरन्तर देखत रहनेकी शक्ति होती है। महात्मा आनन्दपरने लिखा है कि पार्थको निहारते-निहारते जाके शिखर हो गयी है। जैसे कि लोगो समाधिमें और मुनि ध्यानमें होना है। विनोपकी बात विनसे बही जाये। मनको ही मनबान्धा मुन देखनेपर ही शान्ति हो सकती है।^१

“यं निहारत कोचने इय कागी जडोटा ।
 कोमी सुरत समाधि में मुनि ध्यान शब्दोका ॥
 कीन सुधे किजकुं कहुं किम माहुं में लौका ।
 तेर सुख हीरे हके मेरे मनका खोका ॥”

हिन्दीके केन कविनेले हृदयमें बैठे 'आत्मराम' के दर्शनकी बात अनेक बार कही है। उन्हें उसके देखनेसे एक चरम आनन्दकी अनुभूति मिलती है। उनके रहनसे यह जीव स्वर्ग भी परमात्म बन जाता है। आनन्दनिम्नने 'महानन्दिरेड' में लिखा है “अप्य किंजु न्वा कायहिं आर्जवा रे। पर महि इय अर्पणु।” कवि विद्यानागरने विद्यासाराङ्गण्य में लिखा है कि 'बहु देहों के अर्थ 'एक क्व 'सुविशंत' शिवदेव विराजमान है, जो मुख पुमाकर देगता है। उसे परममुष मिलता है।' अट्टारक पुनचरने भी 'दत्तसारवृष्टा' में “बेह भीतर तिम अप्य

१ 'बाह्यकनिबुद्धक शक्य' अलकह नेडर पाह ।

शिव शिव निरन्तर हृदयह दिवडह तिम शिव भाह ॥

बाहीरवरकाय, धामिरेयकायकारकी इल्लिखिल मति १९वीं पन् ।

अकनकलार समय कल्पान्तरप्रसारकमरलन कर्म १९वीं पन् ।

२ आनन्दनिकक, महानन्दिरेड अनेरेयकायकारकी इल्लिखिल मति, तीतप पन् ।

४ विद्यासाक विद्यासाराङ्गण्य, दि०-नैयत्याङ्गण्यकार सुती, पुनवा में १२२ वीं पन् ।

सरूप सुख दूष्य माहिं रहि विम श्रप । सिद्धा है ।^१ जन्होने देहके पीठर रहने काके अमुक्त अर्था' के बर्तनसे परमानन्द प्राप्त होनेकी बात तो एकाधिक बार लिखी है । कवि ब्रह्मरीपने ब्रह्मात्मशावरी में स्पष्ट ही कहा है 'श्री लीकै परि बरि महि देखै तौ दरसनु होइ तबहि सनु देखै' । पाण्डे हेमराजने उपदेशबोहासतक' में लिखा है कि बटमें बसे तिरबनबेबके बरसनसे ही सिधपेट' मिलता है अल्पमा गही ।^२ कवि बनारसीदासका कथन है कि बटमें रहनेवाके हम परमात्माके रूपको देखकर महा क्लेशत नकिठ हो जाते हैं उसके घरीरकी सुगन्धिसे अग्य सुगन्धिमां छिप जाती है ।^३

'आत्मराम' के ब्रह्मसे अक्षरकी बेबल हृदयके भीतर ही आत्मत्वकी अनुभूति नहीं होती अपितु उसे समुची पृथ्वी भी आत्मत्वमय दिखाई देनी है । त्रिहृत्कीपसे आये हुए रतनसेनकी जब नागमतीने देखा तो उसे पूरा विश्व हरज-भरा दिखाई दिया । बनारसीवासने भी प्रिय आत्मके ब्रह्मसे प्रवृत्तिमात्रको प्रफुल्लित दिखाया है । आत्मतरायने तो सब जगह बसन्त फैला हुआ देखा है ।

भगवान्‌के दर्शन न असीम बख है । दर्शन मात्रसे ही सभी मनोकामनाएँ पूरी हो जाती हैं । अतः बौद्ध कवि विनेश्वरके चिन्तामणि बीर कल्पवृक्ष-वैसे सम्बोधनास सर्व सम्बोधित करते रहे हैं । किन्तु 'ब्रह्म से भौतिक सुख पानेका अधिक क्लेश बौद्ध संस्कृत स्तावामे उपलब्ध होता है । हिन्दूके बौद्ध कविमोने आध्यात्मिक आत्मपर ही अधिक बख दिया है । पद्योपनिषद्‌कीने अपने 'पाश्चताकस्तोत्र' में लिखा है,

'कल्पवृक्षोऽथ कश्चित्‌ लैमे चिन्तामणिमया ।
प्राप्य अमच्छद' सद्यो भवशार्त' तप' द्वाशनम् ॥
झीबते सकळं पार्यं दर्शनम विनेश ! ते ।
एच्छा प्रकीबते किं न क्वचित्‌तैव हविर्मुखा व

१ उत्पत्तारहूवा मन्दिरकोल्लिनाम कन्नुरकी हलसिद्धि मनि, १२वीं शीर्ष ।

२ मन्दीरत ब्रह्मात्मशावरी, कन्नुरा त्र्यम्बरकीला मन्दिर, कन्नुर प्रुत्था न ११४ ४२वीं पृ ।

३ कोटि जगम की तप तपै मज बब कय समेन ।

मुदागम अनुभूति बिना कयो पावै सिधपेन ॥

पत्तैरकोशारतक कपीकनकीला मन्दिर, कन्नुर वैद्व नं १३० १२वीं श्लोक ।

४ बनारसीद्विस्तार ब्रह्मात्मशावरी, ७वीं पृ ।

सम्रा और बुद्धशासिका भी ध्यान नहीं रहता था। इधर कबी तीर्थचरणा नाम की हुमा है कि एक टुकटणी म्पाकर निरसने लगा। तुप्य नहीं हुमा तो लहमनेव वारन कर लिये। लुपि किर भी न बिज सफो। अट्टारक शानभूपजन 'बादीरवर फायु' में बाकक बादीरवरके मौन्दर्वका वर्णन करते हुए लिखा है 'देवनेवापा यो-ययो देखना जाता है उसके हूरवमें बहु बाकक अधिवापिक पागः जाता है।' कर्वात् बहु वृष्टि ना अनुभव नहीं करता। और ये नेत्र जब अपने प्रिय को नहीं देख पाते तो उसने प्रतीता-नखपर बिठे रहने हैं। दिन और रात देखने रहने के आँसे लाक हो बानी है किन्तु बुझनी नहीं क्योंकि प्रियमितनवी कलक फल्ले निरन्तर बेचन रहनेकी गति होती है। महारवा शानम्पनने लिखा है कि मानकी निह्यरटी-निह्यागे कालि सिपर हो गयो है जैसे कि पापी समाधिमें और मुनि ध्यानमें हीना है। विपौनकी बात किससे कही जाये। मनकी तो भगवान्का मुन देखनेपर ही धानि हो सकती है^१

"पंच निहारत कान्धे इग कागी जडोका ।
 भोगी सुरत समाधि में सुनि ध्याव सखीका ॥
 कोन सुनै किनहुं कहुं, किम माहुं में लोका ।
 तेरे मुख बने हठे मेरे मनका बोका ॥"

हिन्दीके नव-कवियोंमें हूरवमें बैठे शानपताम' के वर्णनकी बात कनेक बार कही है। कहुं उसके देवनेसे एक चरन शानम्की अनुमृति लिखती है। हमके वर्णनसे बहु जीव हवर्ष भी 'परमात्म बन जाता है। शानम्कितकने 'महानन्दिर' में लिखा है 'अप्य विन्दु न जायहि कान्धे रा। पर मद्रि देव कर्नट ।' कवि विद्यासागरने विद्यापद्वारअप्य में लिखा है कि 'बहु देहों के अप्य 'एक कव 'सुप्रिबत' विनदेव विद्यापमान है जो मुख बुवाकर देखता है, उसे परमगुण मिळता है।' अट्टारक भुमचन्द्रने भी 'तत्पतारबुद्धा' में 'दह भीतर तिम अप्य

१ बाहिनियमुक्ताय शनकह कलकह देजर पाइ ।

प्रिय प्रिय निरकाह करणह शियरह निम तिम पाइ ॥

बादीरवरकाय, धामेरायक अन्तरकी हकालिजि मनि १३७० कव ।

अनन्तरकतर सपह अन्तरकायकमसारकमरकन कन्धै १३७० कव ।

२ शानम्कितक, महानन्दिर ध्यावेरायकअन्तरकी हकालिजि मनि तीरत कव ।

४ विद्यापद्वार विद्यापद्वारअप्य नि कैरयकअन्तर दूवी, अन्तर में १३७० कव ।

सक्य हुए रूप माहि रहि तिम जय । किन्ना है ।^१ बन्होंने देहके भीतर रहने वाले समुत्त अप्पा के दर्शनसे परमानन्द प्राप्त होनेकी बात तो एकाधिक बार किली है । कवि ब्रह्मदीपन अम्पात्मबावनी^२में स्पष्ट ही कहा है 'बै नीके परि घटि मदि देसै ली बरसनु होइ तबहि समु देखै' । पाण्डे हुमरावने उपदेशबोहासतक^३ में लिखा है कि घटमें बसे तिरंजनदेवके बरसतस ही 'चिबपेट' मिबठा है अम्बबा नहीं ।^४ कवि बनारसीदासका कथन है कि घटमें रहनेवाले हम परमात्माके क्यसो देखकर महा रूपवस्तु पकित हो जाते हैं, उसके अरीरकी सुगन्धिसे अम्प सुगन्धियाँ छिप जाती हैं ।^५

आत्मराम के दर्शनसे मक्तको बबल हृदयके भीतर ही आनन्दकी अनुभूति गयी होती अपितु उसे समुभी पूष्पी भी आनन्दमग्न दिखाई देनी है । सिद्धस्त्रीपते जाये हुए एतलधेनको अब नापमतीमें देखा ली वधै पूरा दिव्य हृदय-धरा दिखाई दिया । बनारसीदासने भी प्रिय आत्म^६के दर्शनसे प्रकृतिमात्रको प्रफुल्लित दिखाया है । आनन्दरावम ली सब जगह बसन्त लैना हुआ देखा है ।

मगवान्के 'दर्शन' में असीम बक है । दर्शन मात्रसे ही सभी मगोबामलाई पूरी हो जाती है । अत बैन कवि त्रिनेत्रको चिन्तामणि और कल्पवृक्ष-वीसे सम्बोधनोद्यै सर्वत्र सम्बाधित करते रहे है । किन्तु 'दर्शन' से मोतिक सुख प्राप्तका अधिक कथन बैन संस्कृत स्तोत्रामें उपलब्ध होगा है । हिन्दीके बैन कवियोंने आम्पारिमिक आनन्दपर ही अधिक बक दिया है । पद्याधिक्यवत्रीने अपने 'पार्श्वनायस्तोत्र' में लिखा है,

“कल्पवृक्षोऽथ कश्चितो लीने चिन्तामणिसदा ।
माप्त कामपद. सद्यो यज्जार्त तप दर्शनम् ॥
लीपते सकलं पापं दर्शनत त्रिनेत्रा ! तै ।
सुखा प्रकीर्तते किं न क्वचितेन हविर्मुखा ॥

१ लक्ष्मणारूपा मन्दिरोत्सिवाग अरपुरकी इल्लिस्तिगिण मदि, २२वीं नीपर्व ।

२ अक्षरीय अम्पालरावनी, कल्या लौकिकरतीन्द्र मन्दिर अरपुर गुच्छ म ११४ ४२वीं पद ।

३ कोटि जगम ली लन ली मन बब काय समेत ।

मुदातम अनुत्री चिना कर्वा पाई चिबपेट ॥

उपदेशबोहासक, कवीकन्दरतीन्द्र मन्दिर, अरपुर कैदम नं ३२६, २२वीं श्लोका ।

५ बनारसीदास अन्धकाररहित, ली पद ।

यहाँ कवि आपके लयसे जिस दुष्पके लक्ष्यकी कल्पना कर रहा है वह पुनः पौत्राधिक धन-लभ्यति और रोमरुपसे अविश सम्बन्धित है। हिन्दीक कवि य शीकरामने वैश्व इतना ही कहा कि भयवान्के दर्शनसे जिस दिव्य आनन्दकी अनुमूर्ति होती है, उसके समस्त सांसारिक भुवज्य आनन्द तो अरपविश पीप है।

भक्तिस अंगोंकी सार्धकता

भक्ति म समर्पणका भाव प्रधान होता है। मन्त्र अपने जीवनकी सभी सार्धक मानता है जब वह भयवान्के चरणोपर समुधा चढ जाय। चरणोपर चढ जानेका तात्पर्य यह नहीं है कि मन्त्र अपनी बलि दे दे। आपे चरणपर तात्निक सम्प्रदायमें ब्रह्मो भक्तिके रूपमें स्तोत्रार किया गया। यह समर्पणकाके पहलुकी विह्वन म्मावग थी। यद्यपि तात्निक सम्प्रदायका प्रभाव जैन वैश्वोपर दिखाई देता है, किन्तु यह बलि और मत्त मन्त्रण तक नहीं पहुँच पाया है। जत जैन मन्त्र कविमें आपनेकी समर्पण तो किया किन्तु बलिने रूपमें नहीं। जैन मन्त्रके सम्पन्नमें एक निराका सीलव्यं वा। जतने अपने प्रत्येक अंगकी सार्धकता सभी मानी जब यह शिनेत्रकी बलिमें लम्बीन हो। आपार्ध सम्पन्नमन्त्रने स्तुतिविद्या में लिखा है, प्रजा बड़ी है, जो तुम्हारा स्मरण करे फिर बड़ी है जो तुम्हारे पीछपर बिनत हो जन्म बड़ी है जिसमें आपने पाद-पङ्कजा आधय लिया गया हो आपके म्ममें अनुकूल होना ही मावन्त है बानी बड़ी है, जो आपकी स्तुति करे और चित्तु वह ही है, जो आपके समस्त गुण रखे।” ब्यमट्ट मुरिने भी “जिनस्त बन्म मे लिखा है” “मे बाले नहीं जो आपका दर्शन नहीं करती वह चित्त नहीं जो आपका स्मरण नहीं करता वह बानी नहीं जो आपकी गुणोको नहीं जाती और

१ प्रजा सा स्मरतीति वा तत्र चिरस्तदप्रसृतं तै परै
कन्नाद कन्नाद पर भवतिभी बधामिते तै परै ।
माङ्गस्य च त मो रतस्तत्र मते नीः तेष वा तथा स्तुते
तं वा वा प्रजना बना। अममुपै वैवाविदेवस्य तै ॥
स्तुतिविद्या ११२वां स्तोत्र ।

२ न तानि बधूपि न वैदित्वासे न तानि जेनासि न ईविचित्पते ।
न ता विरो वा न बधन्ति तै मुष्मास तै गुणा वे न बधनामापिना ॥
जैन-प्रवचन-संग्रह तानानेधरातिकावत साचारकवित्त्वन्त्र १५५ स्तोत्र ।

में पुण नहीं जो आपके सहारे न टिके हों । मधोविजयन पार्श्वनाथस्तोत्र में श्री बर्मसूरिने श्रीपार्श्वजिनस्तवनम् में और आनन्दमाणिक्य गणिन 'पार्श्वनाथ-स्तोत्र' में इसी विचारोंको प्रकट किया है । हिन्दी कवियोंमें श्री इस शरद परम्परा-को अपनाया । न कि आनन्दरायका एक पद इस प्रकार है^१

“दे जिय जनम काही कोह ।

अरन से जिन भवन पहुँचे दान दे कर अह ॥१॥

अर सोई जामें क्या है अह कबिर को रोह ।

जोम सो जिननाम राखै सोई सो करि नेह ॥२॥

कौट से मिनराज द्यौं और कौं लै अह ।

अवन से जिन भवन सुनि सुन तप तपै सो देह ॥३॥

सफक तन हूह भौंति छै है आर भौंति न कइ ।

छै सुखी मन राम ग्यावा कइ सद्गुरु पद ॥४॥

कवि मन्तरामके मन्तराम-विकास में भी ऐसे ही एक पद्यकी रचना हुई है । उन्होंने लिखा है कि वे ही नेत्र सफक है जो निरंजनका दर्शन करते हैं । तीस तभी सार्धक है जब जिनेश्वरके समक्ष झुके । बड़ी पदनाकी सार्धकता है जो जिनेश्वरके सिद्धान्तको सुनते हैं । जिनेश्वरक नामको अपनेमें ही मुखकी घोभा है । वचन हृदय बहो है जिसमें भ्रम बसना है । हाथोंकी सफकता प्रभुको प्राप्त करवमें ही है । अरन तभी सार्धक है, जब वे परमात्मके पदपर बौकते हैं ।^२

‘मैंन सफक निरपै छु निरंजन सोस सफक नमि ईसर साबहि ।

अवन सुफक जिहि सुनत सिद्धान्तहि सुपज सफक अपिपु जिन नोबहि ।

दियौं सफक जिहि धर्म बसै भ्रुज करन सुफक पुम्बहि प्रभु पाबहि ।

अरन सफक ‘मन्तराम’ बई तपि जे परमारय क पद बाबहि ॥”

श्रीमा मन्वतीदासके ‘पंचेन्द्रिय संवाह में प्रत्येक इन्द्रियने अपनी प्रार्थना यह कहकर ही की है कि मेरे-द्वारा श्री मन्वयूक्ति सम्पन्न हो सकती है अन्यसे नहीं । एक स्थानपर श्रीमने कहा ‘आमहि तैं अपत रह आगत श्री जिन नाम । असु प्रसाद तैं सुख कइ पार्य उत्तम राम ॥” इसी भाँति लिखना अवन है कि आँखें जिनेश्वर जिन्य और प्रतिमा देख बिना इस भीवका कस्याप सम्भव नहीं है । साधना यह है कि पंचेन्द्रिय संवाह में प्रत्येक इन्द्रियकी सामर्थता मन्व

१ आनन्दर तमह कल्पना २१/१२ पृ ४ ।

२ मन्तराम विकास मन्त्रि दामिदान अरुण देहन सं २१२, २ १/१५ ।

यहाँ कवि पापके लयसे बिल पुष्पके लयकी वक्षणा कर रहा है यह पुन पोषाधिक धन-सम्पत्ति और रोमधयसे अधिक सम्पन्नित है। हिन्दीके कवि प शौक्यरूपमें केवल इतना ही कहा कि भगवान्के लक्षणसे त्रिष विष्णु आत्मकी अनुकृति होती है, उसके समस्त साधारिक सुखबन्ध आत्म तो अत्यधिक पीन है।

भक्तिसे अर्गोंकी सार्थकता

‘भक्ति म समर्पणका घाव प्रदान होता है। भक्त अपने जीवनको सभी सार्थक मानता है जब यह भगवान्के चरणोपर समुचा बह जाय। चरणोपर बह जानेका तात्पर्य यह नहीं है कि भक्त अपनी बलि दे दे। जाने बहकर तात्निक सम्प्रदायमें भक्तको भक्तिके रूपमें स्वीकार किया गया। यह समर्पणवाले पक्षकी विद्वत् व्याख्या थी। यद्यपि तात्निक सम्प्रदायका प्रभाव हीन वैशेषोपर विचार है किन्तु यह बलि और मातृ-मस्य तक नहीं पहुँच पाया है। अतः हीन भक्त वैशेषोने अपनेको समर्पित तो किया किन्तु बलिके रूपमें नहीं। हीन भक्त समर्पणमें एक निराशा शौच्य वा। उसने अपने प्रत्येक अंगकी सार्थकता सभी मानी जब यह जिनकेकी भक्तिमें लक्ष्मीन हो। आचार्य समस्तभरने स्तुतिविद्या में लिखा है प्रजा नहीं है, जो तुम्हारा स्मरण करे फिर नहीं है, जो तुम्हारे पैरपर बिलत हो चम्प नहीं है जिसमें आपके पाद-गदका आयय किया गया हो आपके मृतम अनुकृत होता ही भवत्य है, बाधी नहीं है जो आपकी स्तुति करे और विद्या यह ही है जो आपके लक्ष्य मुक्त रहे।’ ब्रह्मसूत्र सूरिने भी ‘जिनस्त वनम् में लिखा है ‘वे माँसे नहीं जो आपके दर्शन नहीं करती वह चित्त नहीं जो आपका स्मरण नहीं करता वह बापी नहीं जो आपके गुणको नहीं पाठी और

१ प्रजा सा स्मरतीति मा तव धिरस्तद्वचसं ते परे
अग्रतः कर्णं पर धवत्रिदी बभाषितं ते परे ।
माङ्गल्य च स जो रतस्तव मर्तु मीः हीन मात्वा स्तुते
ते वा मा प्रणता वना क्रमयुगे देवादिदेवस्य ते ॥
स्तुतिविषय २२२वीं श्लोक ।

२ न तानि चतपि न वैनिरीदयते न तानि वेनाति न वैविचिन्वते ।
न ता पिरी वा न वदन्ति ते मुखात् ते गुणा ये न भवन्तभाषिताः ॥
शैलानाम्पदमे तान्नापिनाप्रापितान् तावारचक्रितकामम् २२३ श्लोक ।

व पुण नहीं जो आपके संहार न टिके हो । यद्यो विजयन पास्वनामस्तोत्र में भी धर्ममूरिण श्रीपास्वजिनस्तवत्तम्' में और आत्मन्वमाशिकय गधिन 'पास्वनामस्तोत्र' में इन्ही विचारोंको प्रकट किया है । हिन्दी कवियोंने भी इस तरह परम्पराको अपनाया । कवि ध्यानतरायका एक पद्य इस प्रकार है

“र विष जनम साहा अह ।

चरम ते जिन भवन पहुँचे दान है कर अह ॥१॥

उर मोई जामि दया है अरु अचिर को रोह ।

ओम सा जिननाम गाथि साँच सा करि मेह ॥२॥

भौंछि त जिनराज देखि भीर भौंछि खेह ।

भवन त जिन बचन सुनि शुभ तप तपी सो रह ॥३॥

सकळ तन इह भौंछि छेई भीर भौंछि न केह ।

दु सुतो मन राम ध्यायी कई सहस्राक्ष पेंह ॥४॥

कवि मनरामके मनराम-विलास में भी ऐसे ही एक पदकी रचना हुई है । उन्होंने लिखा है कि वे ही नेत्र सफ़्तक हैं जो निरंजनका बलन करते हैं । पीछे तपी साधक हैं जब जिनशुके समग्र सुके । उन्ही भवनाकी साधकता है जो जिनशुके सिद्धान्तको मुक्तते हैं । जिनेशुक नामकी अद्वयता ही मुखकी रोमा है । अज्ञान हृदय बरी है जिसमें धर्म बसना है । ह्याबायी सफ़्तकता प्रभुको प्राप्त करनेमें ही है । चरम तपी सार्यक है जब वे परमार्थके पदपर लौकते हैं ।

‘मैत्र सफ़्तक निरपे छु निरंजन सोस सफ़्तक नमि ईसर झाबहि ।

अचल सुफ़्तक जिहि सुबल सिद्धान्तहि सुपत्र सफ़्तक अपिपु जिन भाबहि ।

हिन्दी सफ़्तक जिहि धर्म बसे भुव करन सुफ़्तक पुम्पहि प्रभु बाबहि ।

चरम सफ़्तक ‘मनराम कई गणि अ परमारम के पद्य बाबहि ॥

भैया जगबतीदासके ‘पंचेन्द्रिय संवार म प्रत्येक इन्द्रियमें अपनी प्रशंसा यह कहकर ही की है कि मर-द्वारा बीसी मनबानूक्ति सम्पन्न हो सकती है अन्वये नहीं । एक स्थापनपर जीमन कहा ‘जीमहि तैं अपन रहै जगत जीव जिन नाम । जमु प्रमादु र्त सुम्न कई पायै उत्तम दाम ॥ इमी भाँति बाँझना बचन है कि जानते जिनेशु बिम्ब और प्रतिमा देखे बिना इत बीबना कल्याण सम्भव नहीं है । कारण यह है कि ‘पंचेन्द्रिय संवार में प्रत्येक इन्द्रियकी शार्यता अपन

१ मानसतर समर कल्पना १३५२ पृ ४ ।

२ मनराम विलास मन्दिर अन्विधान जयपुर वेदम न १२३, १ वी पद्य ।

शक्तिमें ही जाती गयी है। जयराज जोषराज दिनपवित्रप देवाग्रह और कर
बन्धके बन्धि भी वह ही बात है।

मन्त्रिक लिए मनको चेतायनी

कबीर बाबि निर्गुणिय सन्तोनी साक्षियों और पद्योंमें चेतायनी की शक्ति
प्रसूत है। इस शब्दमें मन या चेतनको संसारके माया-मोहमें धारण किया गया
है। उसका उत्तरमें यह ही है कि वह मन संसारके ज्ञानमें जैसा है। उसे चाहिये
कि वहसि निरकलर ब्रह्मणी शक्तिमें उल्टीत हो। चेतनकीवामी बात जैन और
बौद्ध-साहित्यमें अधिक मिलती है क्योंकि वे दोनों ही जय विरक्तिप्रधान हैं।
वैसे ही जैन प्राकृत संस्कृत और अवप्रत्येक मन्त्रिपरक काव्यमें ईशान्यथा स्वर
ही प्रकृत है किन्तु जन्में चेतनको समीपन कर रवे नये हिन्दीके पद्य-साहित्य
जैसा काव्यरय नहीं है। बौद्धोंके सिद्ध साहित्यमें भी नहीं है।

कवि मूरदास जयन परकि प्रनाशपुनके लिए प्रसिद्ध हैं। मन जीव या
चेतनको समीपन कर सिधे मने जन्के पद्य काव्यिक संरक्ष हैं। एक पद्यमें उन्होंने
लिखा है, "यह संसार रैन ना जपना है तन और मन पानीके बुलबुलके समान
हैं। पीबनका कोई मटोटा नहीं वह जन्ममें तुमके डेरणी नानि जक जायेना
बुझपी और कक बुझक जिन्ने तिरपर कड़ा है, तु जाने मनमें फुना तुना क्या
उमर रहा है। कयेपर बुझक रजकर जोहून्दी विद्याधने ठेठि बुझिनी काट
रिया है। अउ है बीब! कुर्मन्त्रिके तिरपर बूळ डालकर भी राजपटीवरका
मजन कर।"

'मैदा' के पद्य ऐकसिंघासे समीपन हैं। उन्होंने अनेक पद्योंमें चेतनको
नधरी फटकार दी है। उन्होंने एक शब्दनामे लिखा है, "जरे जो चेतन।"

१ जयकल मजन क्यो नूझा रे।

यह संसार रैन ना जपना तन मन बादि समुदा रे ॥

इस बोधन का नील मटोटा जन्म में तुम नूझा रे।

जाक बुझा किये तिर कड़ा क्या समझी मन नूझा रे ॥

पीह विद्याध कन्धी मन्त्रि पारै निय कर जंभ समुझा रे।

मज भी राजपटीवर नूझर, बी कुर्मन्त्रि तिर नूझा रे ॥

शुक्लकान्त, कन्नडशा, १९४९ पृ. १।

अनादिकाल व्यतीत हो गया क्या तुम भी भेत नहीं हुआ। बार दिनके किए ठाकुर हो आनेसे क्या तु पतियोमें भूमता भूत गया है। तू इन्द्रियोंके संग क्या मगा हुआ है। तू भेतनहारा होकर भी भेतता क्यों नहीं?" शैलको फटकारोंका बन्ध नहीं है। वही तो ये कहते हैं 'हे भेतन। तेरी गति बिछने हर धी है। तू अपन परम पदको क्यों नहीं समझता। वही कहा 'हे भेतन। उन दुःखोंको भूल पड़े अब नरकमें पड़े संकल्प सहेते ये अब महाराज हो गये हो।' अन्तमें समझाते हुए कहा^१

'मगबंध मज्जो सु ठजो परमाह समाधि क संग में रंग रही।

अहो भेतन त्याग पराह सुषुधि, गही नित्र शुद्धि ज्यों सुफल लहो ॥''

आने ही घटमें बसे विद्यालयको यह भेतन बैल नहीं पाता। अब देखता ही नहीं तो भक्ति कौसी? किन्तु इसका कारण क्या है? कारण है माया। शैल साहित्यमें मायापर बहुत कुछ लिखा गया है। मायाका सम्बन्ध मोहनीय कर्मसे है। आठ कर्मोंमें मोहनीय प्रबलतम माना गया है। मोहके कारण ही यह जीव भटकता फिरता है। मोह बीर माया पर्यायवाची शब्द है। वहीरने भी मायाको स्वीकार किया है। वहीरनेके घटमें बिराजे रामकी न देख पानेमें भी माया ही कारण है। शैल बतियोंने मायाको 'ठगनी' कहा है क्योंकि वह समूचे संसारको ठगकर खा जाती है। जो इसपर विश्वास करता है, वह मूर्ख पीछेसे पछताता है।^२ वहीरने मायाको महाठगनी कहा है क्योंकि उसके आत्मसे ब्रह्मा बिष्णु और महेश भी बच नहीं सके हैं।^३ इस मायाके बचानके लिए देवावहान एक

१. वेबस तप बिराजत भेतन ताहि बिलोकि मरे मठबारै।

काक अनादि कितिन भयो अजहूँ तोहि भेन न होत कहा रै ॥

भूक्ति पयो गति को फिरबो अब तौ दिन ध्यारि मये ठकुरारै।

सादि कहा रह्यो अजनि के संग भेनन क्यों नहि भेनन हारै ॥

महाविनास रामप्रहोत्तरी २ सर्ग, पृ २६।

महाविष्णुस ब्रह्मावधर बलि, २०वीं और २२वीं पद पृ २२६।

२. महाविनास, रामप्रहोत्तरी २ सर्ग, पृ २२।

४. भुन ठगनी माया है सब अण ठग जाया।

दुःख बिदवात बिया जिन सरा सो मूर्ख गिछनाया ॥

बृहदारण्यक बृहद्विनास २०वीं पद पृ ३।

५. माया महाठगनी हय जायी।

निरगुन पाँति तिये कर कोली कोली मयूरी बानी ॥

कबीर, सरार सङ्गुधरसर शिकोनी हरि सङ्गादिन, दिल्ली पृ १२१।

शक्तिमें ही मानी गयी है। अण्णम ओकराम विनयविनय देवाद्यु और कन
बाबदे परोमें भी यह ही बात है।

मन्त्रिक लिए मनको बेठावनी

कबीर बाबि निर्गुनिये उन्नोंकी साक्षियों और परोमें 'अण्णम की अण्ण'
प्रमुख है। इन अण्णमें मन या बेठनको संसारके माया मोहसे लावधान किया गया
है। उठना तारतम्य यह ही है कि यह मन संसारके बाबमें फँसा है। उसे बाह्य
नि बहुति निरन्तर बहानी मन्त्रिये उन्नीन ही। बेठावनीबानी बात ईव और
बीठ-साहित्यमें कविमिच्छी है। क्योंकि ये दोनों ही मन विरक्तिप्रधान हैं।
बेठे तो केन प्राकृत संस्कृत और अण्णसके मन्त्रियेक बाबमें बैराग्यका स्वर
ही प्रवक्त है, किन्तु अण्णमें बेठनको उन्नीवन कर रने बये हिन्दीके पर-साहित्य
बैसा अन्वित्त नही है। बीठोंके सिद्ध साहित्यमें भी नहीं है।

कवि मूबरकाय करने परोमें प्रमाद्युमके लिए प्रतिष्ठ है। मन और या
बेठनको उन्नीवन कर किसी बये उण्ण पर अन्वित्त सरस है। एक परोमें अण्णमें
लिखा है, 'यह संसार रैनका सपना है, तन और मन पानीके बुकबुकके समान
है। बीठनका बीई नटीसा नही यह अण्णिय तूबके डेरकी भाँति जळ बायगा
बुतपी और काळ बुबाक किसे धिरवर बड़ा है, तू अण्णमें मनमें फूला हुआ क्या
सम्यक रखा है। अण्णेर बुबाक रनकर मोहकपी विद्यावने टीटी बुडिके काळ
दिवा है। अण्ण है बीठ! दुर्मन्त्रिके धिरवर बून डाककर भी राजमन्त्रीकरका
मनन कर।"

'मैवा' के पर ऐकस्वित्तसे समन्वित है। अण्णोने अनेक पद्योत बेठनको
कटापी फटकार ही है। अण्णोने एक अण्णिय लिखा है, अरे बीठेन !

१ अण्णम अण्णम कनी मूना रे ।

यह संसार रैन का सपना तन मन बाबि बनूबा रे ॥

इन बीठन का कौन बटोबा बाबक में तूब पूना रे ।

काळ बुबाक किसे धिर टासा क्या सम्यक मन पूना रे ॥

मोह विद्याव कण्णो नति मारी नित्र कर बीठ बनूबा रे ।

अण्ण भी राजमन्त्रीवर मूबर, बीठेननि धिर पूना रे ॥

मूबरविनास अण्णका १२४५५ ।

ब्रह्मादिवास व्यतीत हो गया क्या तुझे अब भी भेद नहीं हुआ। बार दिनके किए टाफुर हो जानसे क्या तू पठियोंमें घूमना भूल गया है। तू इन्द्रियोंके संग क्या गया हुआ है। तू भेदगहारा होकर भी भेदता क्यों नहीं? भैयाको पत्नारोंका भग्न नहीं है। नहीं तो वे कहते हैं 'हे भेदग। तेरी मति जिसने हर भी है। तू भजन परम पदकी क्यों नहीं समझता। कहीं कहा 'हे भेदग। उन दुःखानो भूख पये अब मरकर्म पड़े संघट सहेते ये अब महाराज हो गये हो। अन्तमें समझाते हुए कहा^१

मगर्भत मत्रां सु उत्रां परमाह समाधि के संग में रंग रही।

जहो भेदग त्याग पराह सुबुद्धि गहां वित्र बुद्धि यो सुखत मही ॥”

जाने ही बटमें बड़े चिदानन्दको यह भेदग देख नहीं पाता। अब देखता ही नहीं तो भक्ति कौसी? किन्तु इसका कारण क्या है? कारण है माया। जैन साहित्यमें मायापर बहुत कुछ लिखा गया है। मायाका सम्बन्ध मोहनीय कर्मसे है। आठ कर्मोंमें मोहनीय प्रबलतम माना गया है। मोहके कारण ही यह जीव बटबटा फिरता है। मोह और माया पर्यायवाची शब्द हैं। कबीरने भी मायाको स्वीकार किया है। कबीरके बटमें विद्याने रामको न देख पीनेमें भी माया ही कारण है। जैन कवियोंमें मायाको ठगनी कहा है क्योंकि यह समूचे संसारको धमकुर सा जाती है। जो इसपर विश्वास करता है वह मूर्ख पीछेसे पछताता है।^२ कबीरने मायाको महाठगनी कहा है क्योंकि उसके आलसे बह्या बिप्यु और भ्रष्ट भी बच नहीं सक है।^३ इस मायाके बचानके लिए देवाब्रह्मने एक

१ वेदम एव विद्याम भेदग ताहि जित्कीकि अरे मउबारे।

शाम ब्रह्मादि विपीन ममो अजहूँ तोहि भेद ग होत कहा रे ॥

भूक्ति मयो मति को फिरको अब तो दिन क्यादि मये ठपुकारे।

कामि कहा रह्यो अलनि के संग भेदत क्या नहि भेदग हारे ॥

अपविनास रामचन्द्रोत्तरी, ५ सर्वांक ५ २१।

२ अकविनाम रामचन्द्रोत्तरी २ सर्वांक २१ सर्वांक ५ २२५।

३ अकविनास, रामचन्द्रोत्तरी २ सर्वांक ५ २२।

४ मुन ठगनी माया है सब जग ठग साया।

दुक विश्वास दिया जिन तरा सो मूर्ख निछताया ॥

बृहदारण्यक अकविनाम सर्वांक ५ २३।

५ माया महाठगनी हम जानी।

निरगुन पतिनि निवे कर डोली बोली मधुरी बानी ॥

कबीर मगद मन्मथबनार विवेकी हरि सम्बन्धिन दिल्ली ५ १ २।

बाबनिपाका निर्माण होना रहा है। जैन हिन्दी-कवियाने उनका अधिकाधिक निर्माण किया। उनमें अक्षितपरक अनुम माघ सप्तसिंह है। उदयराम जलोकी 'मुमबाबनी' शीरानन्द मुनीमकी 'अम्मात्मबाबनी' पाण्डे हेमराजकी 'हितोपदेशबाबनी' पं मनोहरदासकी 'जिन्यामभि मानबाबनी' जिनहूपकी 'बनारजबाबनी' जिनरंगमूरि की 'प्रबोधबाबनी' लक्ष्मीबन्धनकी 'ब्रह्मबाबनी' और 'सर्वमाबाबनी' किष्किविह की 'बाबनी' निहालचन्दकी 'ब्रह्मबाबनी' और भवानीदासकी 'हितोपदेश बाबनी' बाबनी साहित्यकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं। हेमराजकी 'बनारबाबनी' का एक पद्य इस प्रकार है

'उदयरक निरमक चित्त प्रसु निरव सब रे ।
 प्याह्ये सुकक प्याम पामीये केचक प्याव
 चरण कमक नमिठ श्री बहमेच रे ॥
 हांघा की कुमति हरि जीव में सुमति धरि
 पूजिये ब सुख भाव मगवत देव रे ।
 भेजिक रावण काव्य पूजिये ब मगवान
 पूजार्थ की त्रिम पद् कही ततपेव रे ॥
 हेमराज मणई सुनि सुनी सबन बन मन
 मरो उमण्यो है त्रिण गुण गापयो ॥ १ ॥

जैन हिन्दी काव्यमें 'घटक' का प्रचलन कम था। १ पद्याकी रचनाको घटक कहते हैं। पद्य १ से कुछ कम बड़ भी हो सकते थे। पाण्डे स्वल्प का 'परमार्थी शोहाघटक' और भवानीदासके 'फुटकर घटक' का उल्लेख इस ग्रन्थ में है। मैयाके परमारमघटक में मावयाम्मीर्यके साथ सभारसकाटोका शौन्दर्य भी उपलब्ध है। घमक और इनेपका खूब प्रयोग हुआ है। पाण्डे हेमराजका 'उपदेश-शोहाघटक' शोदान बनीचन्दकीके मन्दिर (बयपुर) के शास्त्रमन्धारमें उपलब्ध हुआ है। भवानीदासका 'फुटकर घटक' बनारसके रामबाटके एक ब्राह्मण जैनमन्दिरमें मिला है। बहतरियाँ तो घटकोसे भी कम रची गयीं। तन्मूले जैन हिन्दी काव्यमें भागवतचतुर्थी 'आनन्दचत-बहतरौ' और श्री जिनरंगमूरिकी 'रंघ बहतरौ' ही बहतरौके नामसे रची गयी हैं। अन्य कृतियाँ भी हो सकती हैं। किन्तु वे अभीतक मन्डारानी खोजना विषय है। आनन्दचतबहतरौमें अग्नि और अन्तारमया उपलब्ध है। उसके पद्य मात्रविमोक्षा और सरवताई लिए प्रसिद्ध

१ हेमराजकी 'बनारबाबनी' इत्यभिहित ५ति बड़ जैन मन्दिर बयपुरमें भोजपुर है।

परमें लिखा है कि बीसे बादीगरका बन्ध बादीनरके कहनेपर बाग्धार
 नाचता है, बीसे ही यह जीव मायाके शारेखपर नृत्य करता है।^१ कवि स्वयम्भवे
 अध्यात्म धर्मों में कहा है कि हे मुझ जीव ! महाभाषाके बसीभूत होकर तू
 ब्रह्मके सम्मुख नमन नहीं कर पाता।^२ महात्मा आनन्दचरने आनन्दचरनवहृत्ती'
 में लिखा है कि हे चेतन ! तूम मायाके बसमें हो बन्ध हो अत अपने ही हृदयमें
 विरचमान समताकी आनन्दको प्राप्त नहीं करते।^३ आनन्दरायने माया
 समतासे पीछा छोड़कर इस बाबरे मनको अविच्छिन्नता स्मरण करनेके लिए कहा है,

‘अरहंत सुमर मन बाधरे ।

क्यापि काम पूजा एवि भाई, अन्तर प्रभु की जान रे ॥
 बुचपी तब बन सुत मित परिवच गज तुरंग रज बाध रे ।
 यह संसार सुपन की माया जौल भीष विलराध रे ॥
 प्यास-भ्यास रे धम है दाव रे बाही मंगळ गाव रे ।
 धामत बहुत कहीं कौ कहिय, केर न कहु उपाव रे ॥”

बावनी और शतक आदिमें जैन भक्ति

मध्यकाळीन हिन्दीके जैन भक्त कवियोंने बावनी शतक बत्तीसी और
 छत्तीसी आदि रूपोंमें अपने बाव भक्तिजन्य किये हैं। जैनोके संस्कृत-प्राकृत
 साहित्यमें ऐसी रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं। जैन हिन्दी कवियोंमें भी इनका प्रथम
 जन्म ही हुआ है। बाख्खड़ीके बसरोको केकर सीमित पद्योंमें काव्य-रचना करना
 हिन्दीके जैन कवियोंकी अपनी विशेषता है। १ शीकतरामका लिखा हुआ
 अध्यात्म बाख्खड़ी नामका एक बृहत् काव्य ग्रन्थ बि बीन मन्धिर बड़ौठके
 प्राचीन शास्त्रबिद्यारमें उपलब्ध हुआ है। यह ग्रन्थ आठ अध्यायोंमें विभक्त है।
 इसमें लगभग आठ हजार पद्य हैं। बाख्खड़ीके प्रदेक बसरोको केकर लिखा गया
 इतना बड़ा पुस्तक काव्य जैन हिन्दीकी जगत् देन है। बाख्खड़ीमें बावन अक्षर
 होते हैं। अधिकतर रूपमें प्रदेक बसरोको केकर एक-एक पद्यकी रचना कर

१ महाभक्ति भक्तिजन्यका एक प्राचीन ग्रन्थ ‘शेखरवसि नाचो’ पर देखिए ।

२ यह महाभाषाभाई की न ब्रह्म तनमुख नमन’ अध्यात्मकैय नन्दिर की
 कन्द अक्षरकी हलन्धिरिनि मनि कर्मा पद्य ।

३ आनन्दचरनवहृती परमशुभमानकन्दरत वन्द्य, १२वीं पद ।

एक भी स्वान ऐसा नहीं है जहाँ पतिको पत्नीके लिए ध्यातुक दिखाया गया हो।

सूरदास आदि सगुणपाराके भक्त कवियोंके सहजों परमि-से किसी-किसीमें पद्य रूपक तो रूपक है किन्तु इनकी कोई ऐसी समुची रचना नहीं जो रूपक संज्ञासे अभिहित होती हो। शैल कवियोंकी अनेक कृतियाँ समुचे रूपमें 'रूपक' हैं। इनमें पाण्डे जिनदासका 'माठीरासी' लक्ष्मणदासकी 'बैठकिरहिभी प्रबन्ध' कवि सुन्दरदासका 'बर्मसहेली' पाण्डे रूपचन्द्रका 'सटोळना पीठ' हृदकीनिका 'कर्महिण्डोळना' बनारसीदासका 'माँसा' मन्मथदासका 'बरखाबजवाई' एवं 'सिद्धरामको विवाह' और भैया भक्तदासका 'सुभाबलीसी' और चेतनचर्म 'परिण' प्रसिद्ध रूपक काव्य हैं। कवि बनारसीदासका 'नाटकसमसंसार' एक प्रथम रूपक है। इसमें साठ अक्षर अभिनय करते हैं। शोक नायक और अशोक प्रतिनायक हैं। ऐसी सरस कृति हिन्दीके मन्त्रि-काव्यको एक अनूठी शैल है।

सूरदासकी भाँति शैल कवियोंके पद्योंमें-से एक-एकमें भी 'रूपक' अभिहित है। भूवरदासके 'मेरा मन सूबा जिन पद पीछे बसि बार काव न बार रे' 'जगत जन सूबा द्वारि चले' 'चरला चकता नहीं चरला हुआ पुराबा' चान्दरदासके 'परम गुरु बरसत ज्ञान झरी' 'ज्ञान सरोवर सोई हा अविजान भैयाके' 'काबा बगरो जीबमूप अष्टकर्म अतिबोर में करकोका सोम्य है। शैल कवियोंके रूपक अधिकाराजया प्रकृतिके लिये गये हैं। अतः इनमें सौन्दर्य है और शिष्टत्व भी। वे विपुलित घन्टाकी भाँति कलाहीन भी नहीं हैं। देवादासके एक पद्यमें शैल और सुमतिकी होछोछे सम्मिश्रित एक रूपक देखिए

‘चेतव सुमति सदी मिक दोबों खेखे मीठम होरी बरेक॥	
समकिय जन की चौक बजायी समता भीर मरासो जो।	
शोक मान की करो दो	। मिथ्या शोक मगलै की ॥१॥
स्वान स्वान को श्वी-	। शौ लोटा माव सुझायो जो।
भाठ करम को चूरव क	। गुलक बजायो जी ॥२॥
जोव दवा का मीन	। म माव बैबायो जी।
बाजा अख ब-	। अ बाँधी गायो जी ॥३॥
दाव पीक लीं	। ना करो मिटाई जी।
‘दवाक बा रति	। काबा जोड़ी जी ॥४॥”

एक भी स्वान ऐसा नहीं है, जहाँ पतिको पत्नीके लिए व्याकुल दिखाया गया हो।

सूरदास आदि समुदायकारके अनेक कवियोंके सहस्रों पदोंमें-से किसी-किसीमें पुरुष-पुरुष तो रूपक है किन्तु उनमें कोई ऐसी समुची रचना नहीं थी रूपक संज्ञासे अभिहित होती हो। अनेक कवियोंकी अनेक कृतियाँ समुचे रूपमें 'रूपक' हैं। उनमें पाण्डे बिनबासका मालीरासी उदयराम जठीका 'वैद्यविरहिणी प्रबन्ध' कवि सुन्दरदासका बमसहेली पाण्डे रूपचन्दका बटोसना नील इयकीर्णिका 'कर्मद्विषोकना' बनारसीदासका 'माँसा' ब्रजमराठका 'बरखाचठपई एवं धिबरमयी विबाह' और प्रेमा मयवतीरामका 'सूजावतोषी' और 'चेतनकर्म चरित्र' प्रसिद्ध रूपक काव्य हैं। कवि बनारसीदासका 'नाटकसम्मसार' एक उत्तम रूपक है। इसमें सात उत्पन्न अभिनय करते हैं। जोर नामक और जहीब प्रतिनामक हैं। ऐसी सरस कृति हिन्दीके भक्ति-काव्यको एक अनूठी देन है।

सूरदासकी भाँति बैन कवियोंके पदोंमें-से एक एकम भी रूपक' अभिहित है। भूवरदासके 'मेरा मन सूबा जिन पद पीजरे बसि पार काच न बार र' अगत जन जूबा हारि बडे' 'बरला बकता नाही बरला हुआ पुराना' चालतरायक 'परम गुण बरसत ज्ञान झरी' 'ज्ञान सरोवर सोई हो भविजन प्रेमाके "काया बगरी बीबनुष जप्टकर्म अविजोर' में कलाकोला सौन्दर्य है। बैन कवियोंके रूपक अभिधासतया प्रकृतिये किसे नसे है। अत इतने संशय है और धिबल्य भी। वे निर्गुणिए सत्तोकी भाँति कलाहीन भी नहीं हैं। वैबासदासके एक पदमें चेतन और सुमतिकी होलोसे सम्बन्धित एक रूपक देखिए

“चेतन सुमति सली मिक दोबों खेका प्रीतम होरी प्रेकण
समकित जठ की थीक बणायी समता नीर मराथी जी।
अप मान की करो पोटकी ठी मिथ्या दोष भगधि जी ॥१॥
स्वान ध्यान की ह्यो पिचकारी तो लोट भाव बुझायो जी।
नाठ करम को ब्रह्म करिकै ये कुमति गुलाक उड़ायो जी ॥२॥
बीब ह्या का गीठ राग सुभि संजम भाव बैबायो जी।
बाबा सत्य बचन से बीको ती रूपक बाँयो गाथी जी ॥३॥
दास सीक तो मैबा की ह्यो तपस्या करो मिठाई जी।
‘वैबासदा’ वा रति पाई छै लीमन बच कप्या बोझी जी ॥४॥”

जैन भक्तिके विशाल स्तम्भ प्रबन्ध काव्य

हिन्दीके जैन कविजाने अनेक महाकाव्योंका निर्माण किया है। उनमें त्रिनेत्र अथवा उग्रक मन्ताली मणि ही मुखर है। जैन अथर्वणके महाकाव्योंके प्रभावित होते हुए जो हिन्दीके जैन मणि-काव्याय कुछ भागी विशेषतार्प भी है। अथर्वण महाकाव्य स्पष्ट रूपसे जो भाषामें विभक्तिय विम वा सरते है। स्वयम्भूरा 'पद्मचरित' सुप्रसन्नता 'महापुराण' और कविता 'अम्बुधामीचरित' और हरिचरिता 'गदिपाहचरित' पीरानिक पीडीम तथा बनपाह बकनकी प्रसिद्धता तथा सुप्रसन्नता बाबकुमारचरित और नयनचरिता सुबसचरित' रोमांचक पीडीमें लिखे गये हैं। यद्यपि रोमांचक पीडीके महाकाव्योंका भी मूलस्वर भक्ति परक ही है, किन्तु इनमें कुछ और प्रेमका अमिनिवेश भी बीच नहीं है।

हिन्दीके जैन महाकाव्योंमें पीरानिक और रोमांचक पीडीका समन्वय हुआ है। उदाहरण 'इन्द्रचरित' ईश्वरसूरिका 'ललिताचरित' ब्रह्मचरितमन्त्रका मुरसिनचरित कवि परिमन्त्रका भीराचरित' माककविता 'मोक्षप्रबन्ध काक चन्द्र अम्बाचरिता 'पदिनीचरित' रामचन्द्रका 'सीताचरित' और मुखरकाचरिता 'पार्श्वपुराण एके ही महाकाव्य है। इनमें 'पदिनीचरित' के आसपीके 'चन्द्राचरित' के और 'सीताचरित' की तुलसीके 'रामचरितमानस' से तुलना की जा सकती है। अथर्वण महाकाव्योंमें भी कथाके साथ भक्तिका स्वर ही प्रबल है।

जैन महाकाव्योंकी रूढ़ी विशेषता है बीच-बीचमें मुक्तक स्तुतियाली रचना। अथर्वण महाकाव्य तीर्थकरके बीरन चरितसे सम्बन्ध होता है। जो पवनत्वाचरितके अथर्वण स्तुतियोंका निर्माण होता ही है। अथर्वणकी अनेका हिन्दीके महाकाव्योंमें इन स्तुतियोंकी रचना भक्ति हुई है। मुखरकाचरितके 'पार्श्वपुराण' में बस स्तुतियाँ हैं। ठीक प्रसंगपर विरक्त होनेके कारण उनका अर्थ छोड़कर कथाकी रोचकताका उद्देश्य पाकर और भी बस जाता है।

तीसरी विशेषता है इन महाकाव्योंका अल्पम अध्याय जिसमें नायकके वैश्वज्ञान प्राप्त करनेका भावपूर्ण विवेचन होता है। वही नायककी आत्माके परमप्रबन्ध होनकी बात कही जाती है। इनकी बीरनकाचरिता परमात्माके साथ लक्ष्मण डीला कहते हैं। उस समय अन्ध और बाध आचरितकी स्थिति पर्याप्त अथर्वण मिलता है। अथर्वण कविनी आनुक्या मुखर हो उठनी है। इन समय कविके मुखर जो कुछ विवक्ष्य है, वह आत्माके परमात्माकी उपासना

ही होती है। इस भाँति जैन महाकाम्य समुग सकल और नियुग निष्कल को भक्ति के रूपमें ही रचे गये हैं।

हिन्दीके जैन ललितकाम्य अधिवाँछया नमिनाम और राजीमतीजी कथासे सम्बन्ध है। यद्यपि नमिनाम विवाहके तोरचतारसे बिना विवाह विधे ही वैराग्य केसर तप करन बसे गये थे किन्तु राजीमतीने उन्हींको अपना पति माना और उनके बिरहमें बिरहव्य रहने लगी। अतः उनके जीवनसे सम्बन्धित ललितकाम्यमें प्रेम-निर्वाहको पर्याप्त अवसर मिला है। उन्हे लेकर जैनकवि प्रेमपुत्र साहित्यकी भाषाकी अनुसृष्टि करते रहे हैं। इस दृष्टिसे ये काम्य रोमांचक कहे जा सकते हैं, किन्तु उनमें युद्धबाजी बात नहीं है। हिन्दीके नमिनामपरक ललितकाम्यमें राजसेनारमुरिका 'नमिनामकावु' सोमसुन्दरमुरिका 'नमिनामनरसफ़लमु कवि ठकुरसीकी ममीसुरकी बेलि बिनोबीछाम्का 'नमिनाम विवाह' मतरंग को 'नमिचन्द्रिका' ब्रह्मराममस्तका 'ममीस्वरराज और अक्षयराज पाटनीका 'नमिनामपरित प्रसिद्ध काम्य-रचनार्थ है। हिन्दीमें हरिबंसपुराण भी है जिनमें ममीस्वर और उनके भाई बामुबेव कृष्णका समुधा जीवन बर्णित है। हरिबंसपुराणोंकी परम्परा बहुत पुरानी है। हिन्दीके हरिबंसपुराण संस्कृत-अवग्रहणके अनुबाध-मर है। उनमें कोई मौलिकता नहीं है। किन्तु साब हो यह भी सब है कि हिन्दीके ललितकाम्य-जैसी सरसता और सुन्दरता संस्कृत और अवग्रहमें नहीं है।

जैन भक्तिको धान्तिपरकता

कवि बनारसीबासने 'धाम्त' को रसराम कहा है। उनका यह कथन जैनके अधिवाँछा सिद्धान्तके अनुभूत ही है। जैन भक्ति पूणकण्ठे अधिवाँछ है। जैनपर भक्तिमें रिखाजी बात नहीं है भी आरम्भ हुई है। किन्तु भी अक्षय। वैदिक याज्ञिक कथन देवताओंको प्रणम करनके लिए बलि दिया करते थे। धर्म-पूजाके साथ हिमाली बाण और भी बड़ी। सोमनाथके दक्षिणके मन्दिरमें भारतपरी समावसकी रातमें एकछो योद्धा कुँजारी मुन्दरी कथाओंकी बलि की बाण प्रसिद्ध ही है। धार्मिक-सुनमें अधिमक बोध भी मास महिरा और सुन्दरीसे निर्वाच-प्राप्ति मान उठे थे। जैन देवियाँ धार्मिक-पूणक प्रभावित

भवस्य है किन्तु बल मांठ और बरिच ठक नहीं बड़ मकी है । जैन जनधर्मके 'दोषाद्गुह' आदि शब्दोंमें तांत्रिक-युगके कतिपय तत्त्व पाये जाते हैं किन्तु भी जैनमतिन चाहे बहु पंचपरमेष्ठियों सम्मन्विता हा चाहे पद्य आदि देवताओंसे कवचा वपावती आदि देवियोंसे हिन्दूमें परिचित् भी कभी भी प्रभावित नहीं हुई । जैन मन्दिर और अन्य भक्ति-स्वरूप सर्वत्र अहिंसाके निरूपण बन रहे । हिन्दूके जैनमतिनपरक काम्यमें तांत्रिक पद्धतोंका समावेश तो है ही हिन्दूके कविपंथोंमें मन्त्रादिपद्योंकी वपावती आदि देवियोंकी वन्दना भी अत्याधिकप्रमाण ही की है । जैन हिन्दूके सभी प्रसंग वाग्जोका प्रारम्भ सरस्वतीकी वन्दनासे हुआ है । सरस्वती ही जलकी देवता है । मुक्तक वाग्जोमें भी सरस्वतीकी पुस्तक स्तुतियाँ रची गयी हैं । सरस्वती देवताको जैन कविवरोंने पाश्चर्याकी प्रतीकके रूपमें ही प्रस्तुत किया है । बनारसीराजकी सरस्वतीकी स्तुति-वन्दनाका एक पद्य इस प्रकार है,

समाधान रथा अन्वा अष्टा अवेकान्तथा स्वाहाद्वाङ्मुहा ।
त्रिधा सप्तधा द्वादशाही नवानी नमो देवि वागीश्वरी जैववाची ॥
अष्टौषा अमाता अष्टमा अष्टमा भूतशालक्या मतिशालघोमा ।
महावाचनी आचना मन्त्रात्मनी नमो देवि वागीश्वरी जैनवाची ॥”

कवियोंने जैवमें अष्टाश्लिका रूपका चारण है विधानिता । जैन साहित्यकारोंने विष्णुसत्ता सम्बन्ध भक्तिसे नहीं बोझा । जैन-साहित्यमें कोई संवत्साचरण ऐसा नहीं मिलने अथवाशाब्दिक मुद्रापत्रोंका वर्णन ही । जैनमतिन की राजा और 'रिट्टेभिमिचरि'की राजकुम्में बृहस्पतर है । नैमिषाय और राजकुम्में सम्मन्वित सभी जैन काम्य विरह-काम्य है । जन्में राजकुम्में विरहका वर्णन है । राजकुम्में विरहकी भी उच्च कविता को करके किष् वैराग्य चारण कर तप करने निरिचारपर कर्म गया था । जन्म उचथा विरह कामका पर्यायवाची नहीं था । जन्में विष्णुसत्ताकी वन्द भी नहीं है । नैमिषाय और राजकुम्में केकर कविने नये संवत्साचरण साहित्यशास्त्र ही संयुक्त है । बृहस्पति और 'गीतगोविन्द' की राजाकी मुक्तक विधासिद्धको रवीन्द्रनाथ टागोरने भी स्वीकार किया है । गीतगोविन्दके भक्तिवाग्जोमें अस्तं शृंगारकी स्थान विद्याया । हिन्दूके कवि विद्यासिद्धी राजा कवियोंने स्वानुपर विष्णुसत्ताकी ही प्रतीक है । अन्तपर गीतगोविन्दका स्पष्ट प्रभाव है । हिन्दूके जैन महावाग्जोमें गीता अन्तना और

रामुसका सौन्दर्य है, उसका प्रेम और बिरह भी किन्तु सब कुछ मोलके देते तानमें बँधा है जिसे झरझीरता नभी लोड ही नहीं सकी। जहाँतक मुक्तक काव्योंकी साम्प्रदायिका सम्बन्ध है, वह बेतन और नुमतिके बीचमें ही चकती रही। बर्बात् हिन्दीके बैन कविदोने साम्प्रदायिका सम्बन्ध भीतिके क्षेत्रसे षोड़ा ही नहीं। सब कुछ आध्यात्मिक हो रहा। उसे प्रकट करनके लिए जिन रूपनोकी रचना हुई उनमें भी बिसासिताकी स्थान न मिला। उपमा और उल्लेखार्थ भी मांसक प्रेमके क्षेत्रसे न बँधी गयीं।

अद्यात्मिका तीसरा कारण है राग। राग मोहको कहते हैं। बैन लोग मोहनीय कर्मको सबसे बड़ा मानते हैं। जब काटनमें सबसे अधिक समय लगता है। उसके बट जानेपर यह बीच परम दायित्वाका अनुभव करता है। बैन लोग बीतरायकी उपासना करते हैं। बीतरायीकी भक्तिसे ही समुदाय बैन साहित्य मरा पड़ा है। बैन हिन्दी काव्यमें तो सबसे अधिक राग छोड़नेकी बात कही गयी है। बीतरायी प्रभुपर भी भजन इसीलिए रीखा है कि वह रागको बीतरकर ही प्रभु बने है। बैन भजन कवि अन्य क्षेत्रोंकी उपासना इसीलिए नहीं कर सका कि

‘दिले-देखे अगतक देख राग रिम सौ मरे।

काहू के संग कमिनि कोऊ न्यसुपवान लरे ॥

दानतरायने भी ऐम ही बीतरायी भगवान्की प्रार्थना करते हुए कहा है कि हमने तीनों भक्तोंको छान डाला है। आपके समान कोई नहीं देखा। आप स्वयं तरे और संसारके बीचोंको तारा ममता कारण नहीं की। और देख रागी होपी अथवा मानी है तुम रामुसको छोड़कर बीतरायी बने हो^२

‘तुम समान कोऊ देख न देखवा तीन भजन छापी।

जाप तरे मजझीबनि तारे ममता नहिं धापी ॥

और देख स्वय रागी होवा कामी कै मानी।

तुम हो बीतराय अरुबापी तजि राहुक रागी ॥



१. मूखरान भूवरविनाम कवचता २१/१२ ५ ६५।

२. आनन्ददास आनन्दर तमस कवचता २२/१२ ५ ६।

जैन भक्त कवि जीवन और साहित्य

१ राजशेखरमूर्ति (वि सं १४ ५)

राजशेखरमूर्ति का जन्म प्रसन्नदाहन नामक कुसुमें हुआ था । वे भी ठिकर मूर्तिके शिष्य थे । श्री ठिकरमूर्ति जयपुरदेवमूर्तिकी परम्परामें हुए हैं । जयपुरदेव नामके साठ मूर्तिहर त्रिलोक-विभक्त मन्त्रोंमें ही ब्रुके हैं । प्रस्तुत जयपुरदेव हर्षपुरोय ब्रुके मूर्ति वे इनका समक बारहवीं घण्टाघड़ीका पूर्वार्ध माना जाता है । श्री राजशेखर भी शोचिकनामकी श्रीमध्यम शाखाके हर्षपुरोयमन्त्रसे सम्बन्धित थे । इनका विद्वत् मन्त्रारी था ।

श्री राजशेखरमूर्तिके 'प्रबन्धकोष' की रचना ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी वि सं १४ ५ में दिल्लीमें रहकर ही थी । 'प्रबन्धकोष' संस्कृत ब्रह्मण्य मूलका ग्रन्थ है । इनके उपरान्त ही उन्होंने श्रीहरकी 'आर्यकर्मकी पर एक शिष्याकी रचना की । उनके 'विभोदकपाठशुद्धि'में उनके रस-पर ब्रह्मण्य संस्कृत है । 'विभोदक पाठ' उनही एक प्रसिद्ध हिन्दी कृति है ।

१ मुनि कुरुदिव्य उपासिन, कैलोज संतोष प्रथम भाग, प्रकाशना ३ २९, बम्बेकाण्ड सन् १९९२ ई ।

२ श्रीहरनाम-ब्रुके शोचिकनामनि पद्ये जयपुरिदिते ।

श्रीमध्यमशाखाया हर्षपुरोयामिये मन्त्रे ॥

मन्त्रारिबिद्वत् विदित श्री जयपुरोय मूर्ति सन्ध्याले ।

शोचिकमूर्ति शिष्य मूर्ति श्रीराजशेखरौ जयपुरि ॥

राजशेखरमूर्ति, प्रकाशना, ३ १९९, आन्ध्रविभाग वि सं १९९१ ।

३ जयपुरोयमन्त्रिये (१४ ५) ज्येष्ठानुसीककर्मकर्मण्य्याम् ।

विद्वत्प्रसिद्धे शास्त्र श्रीहरयोः मुनि सन्ध्याम् ॥ श्री, ३ १९१ ।

श्रीहरनाम कुरुदिव्य देवरी कैर कुरुदिव्यो मन्त्र १ ३३ १० बारहिन्यो, बम्बे, वि सं १९ १ ।

नेमिनाथ कागु

वी मोहनकाळ बुद्धीचन्द्र देसाईने 'नेमिनाथ कागु'चा रचनाकार वि० सं० १४ ५ के लक्षमण स्वीकार किया है।^१

'नेमिनाथ कागु'में २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ और राजकुली कथाका काव्य मंत्र निरूपण हुआ है। नेमिनाथ कुष्मन्ते छोटे भाई थे। जूनागढ़के राजा उग्रसेन की कन्या राजमती (राजकुली) के साथ उनका विवाह निश्चित हुआ। बापउत पत्नी किन्तु मौर्य पदार्थ बननेके लिए एवंचित किये गये पद्मबोके कवच-कल्पनसे बचाई होकर उन्होंने वैराग्य के किया। वे विरिणाएवर तप करने लगे गये। राजकुलीने दूसरा विवाह नहीं किया और नेमिनाथके मन्निपुर्ण विरहमें समूचा जीवन व्यतीत कर दिया।

'नेमिनाथ कागु' २७ पद्यांका छोटा-सा खण्ड-काव्य है। इसमें नेमिनाथकी यत्निकी ही प्रधानता है।^२ बुद्धयोको चित्रित करनेमें कवि निपुण प्रतीत होता है। विवाहके लिए सबी राजकुलीके विषमें सजीबता है। राजकुल चम्पकलक्ष्मीकी भाँति मोपी है, बसके धरीरपर चम्पकका केप है। सीमलमें तिल्लूरकी रेखा सिन्धी है। नवरंगी कुंकुमका ठिळक भाकरर विराचमान है। मोतिपोके कुण्डल कानोमें सुशोभित है। मुळ-कमळ पानकी काकिमासे रचा है। कण्ठमें हार पड़ा है। कंधुकीमें कसा यौवन और बसपर पत्नी विकसित माळा हाथमें कंधक और कानकटी मणिकी चुड़ियोंमें जैसे बाज भी राजकुलीका विवाहोत्साह फूटा पड़ता है। बसकी भावपीका 'कमुमु' और पायजेवकी 'रिमसिम' तो बाज भी कानोंमें पड़ रही है। दाबसे काल हुई उसकी भाँति मनमें विराचित पतिको देख रही है।^३

१ श्री ड ११।

२ सिद्धि बेहि सह वर वरिज ते तिल्लवर तमेनी ।
फाणुर्वाणि पद्म नेमि जिणु गुण पाएसज वैवी ॥२॥
राजल देविसत्तं सिद्धि पयउ सो वेउ धुणीवाई ।
मळहारिहिं रायसिहर सुरि जिज कागु रमी जई ॥२७॥

३ किम किम राजकसेवि तपउ सिधगाव जनेवड ।
वपइगोरी बइचोईं भाँधि वंधनु कैवड ॥
कुमु भटाविज भाइ कुमुम कस्तूरी घारी ।
सीमंतइ तिल्लूररेख मोतीघरि घारी ॥
नवरंघि कुंकुमि ठिळक किय रयल ठिळक तनु भाळे ।
मोती कुंडल कपि विज विवाभिन कर भाळे ॥

राजकुमारी घोडा 'राधासुभाषिणि' में कविता राधाजी घोडाके बहुत कुछ मिलती-जुलती है। दोनों ही उनस्य बुद्धिसे वाञ्छित हैं।'

२. सभाद (वि सं १९११)

'सो सचार पञ्चमइ सरसुनि' के अनुसार कविता नाम 'सचार हीना बाहिए, किन्तु कविबाबू स्वभावर सचार' परमन्व होता है, अतः यही टीका लगता है। सभाद अष्टबाहू जातिमें उत्पन्न हुए थे। उनके पिताका नाम साहू मन्नायक और माताका नाम तुलसी या सो तुलसी (तुलसी) थी। वे एरन्धत नगरमें रहते थे।'

नरदिय कज्जकरेइ नयनि मुइ नमलि लंबोली ।
 नाभोरर बटलउ कंठि अनुगार विरोली ॥
 भरवर बाहर कंचुपउ कुइ पुन्कइ माका ।
 करे कंचप मधि-बकउ भूइ बाकवावइ बाका ॥
 रघुसुनु रघुसुनु रघुसुने कवि बाधरिवाली ।
 रिमसिनि रिमसिनि रिमसिनिपै पयनेउर बुपली ॥
 तहि बकलउ बकलउ के अंसुय निमिनि ।
 अंबडिपाळी राममइ चिउ सो अइ मगरति ॥

डॉ. इन्दरप्रसाद त्रिपाठी हिन्दी साहित्यका आरिवात, पृ १३ पन्ना १९२२ ई
 (पृ, १ १२)

२. अवरवाकनी मेरी जाति पुर अपरीए मुहि कनपाति ।

जी रि कैमभिर नवीचन्द्रजी (कन्पुर) के सम्बन्धवादी मनि, पृष्ठन नं
 ११२, १९२२ ई का ।

३. तुलसी अचनि तुलसी चर बरिउ

सा मन्नायक बरइ अवरतिउ ।

एरन्धत नगर बसंठे आनि

मुनइ बरिउ नइ रचिउ पुपाम ॥

पृ १७० ई का,

तुलसी अचनि तुलसी चर बरिउ

साहू मन्नायक बरइ अवरतिउ ।

एरन्धत नगर मठ नगर बसंठे आनि

मुनइ बरिउ नइ रचिउ पुपाम ॥

डॉ. कैमभिर सेवना कृष्णा दिल्ली, शाकाय्याट, वि सं १९२ की किन्ही
 पृ ११ मनि १९२२ ई का ।

पाठाक्षर भेदों परकण्डके नाम ऐरक एरिच्छि एवच एवरकण्ड एवं एरस भी मिलते हैं। मूल प्रतिमें परकण्ड दिया हुआ है जो ठीक प्रतीत होता है। डॉ. बामुदेवचरण अग्रवाल परकण्ड नगरको छतर प्रदेशमें और श्री अवरकण्ड बाहटाने मध्यप्रदेशमें माना है। किन्तु 'परकण्ड दसजनेसु' के अनुसार परकण्ड बघाव-बुन्देलखण्डमें होना चाहिए और वहाँ इस नामका एक इस्वा भाव भी है। परमें श्रीर्मकाक तकने अवरोप मिलते हैं।^१ वहाँ अग्रवाल रहते थे। समास्ता 'प्रद्युम्नचरित्र' एक महत्वपूर्ण छति है।

प्रद्युम्नचरित्र

इसमें श्रीहृष्यके पुत्र प्रद्युम्नका चरित्र बर्णित है। प्रद्युम्न भगवान् विनेश्वरका परम भक्त था। शैव परम्परामें इसे कामदेवका अवतार माना गया है।

प्रद्युम्नचरित्रका रचना-संख्य विवादग्रस्त है। जयपुर, कामा बिस्नी और बाराबंकीकी प्रतिमांमें बि सं १४११ दिया है। त्रिगिमा ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, कलकत्ताकी प्रतिमें १५११ और सीबकि वि० शैव मन्दिरकी प्रतिमें ११११ वि० सं दिया हुआ है। समीमें स्वाति नक्षत्र घनिवार अंकित है। किन्तीमें भावना सुब्री ९, किन्तीमें भावना पंचमी किन्तीमें भावना बरी ५ और किन्तीमें भावना सुब्री ५ लिखा है। बुधमी यन्त्रियोंके आधारपर इन तिथिमांमें स्वाति नक्षत्र घनिवारको नहीं बैठता। फिर भी अधिक प्रतिथोमें वि० सं १४११ ही उपसम्भ होता है, अतः यही मानना उचित लगता है।^२

प्रद्युम्नचरित्रमें अथमय ७० पद्य हैं। इसे 'परदशयु चतुर्षु भी कहते हैं। यह एक महाकाव्य है। कथातकमें सम्भव-निर्वाह पूर्वक कथते हुआ है। प्रारम्भमें ही कविने भक्तिपूर्वक धारवा पद्मावती अम्बिका ज्वालामुखी शेषपाल और श्रीवीर तीपकरोकी तत्रस्कार किया है।^३

भाववशी मूल प्रकृतियोंको अंकित करनेमें कवि निपुण प्रतीत होता है। अथमशी प्रद्युम्नकी मां है। बाहर गये हुए पुत्रके आगमनके हेतु मांका आतुर होना स्वाभाविक ही है। भारवशीने प्रद्युम्नके आनेकी बात कही है। पुत्र

१ अग्रवाली शीलमन्मथारी मन्म-प्रदानके जैन स्मारक, पृष्ठ ४०।

२ अवरकण्ड बाहटा 'प्रद्युम्नचरित्रका रचना काल व रचयिता, जनेश्वर, वर्ष १४ विरय ४ (जुलै १९२७) पृष्ठ १००-१०२।

३ श्री रि शैवमन्दिर बरीचण्डरी (बलुर)के प्रमुख्यकारकी प्रति पृष्ठन नं ११२ पृष्ठ ११।

भावमग्नके संचित भी मिट बड़े हैं। किन्तु पुत्र नहीं आया। रविपत्नी बेचैन है। सब यह है कि पुत्र का चुरा है, पर रविमग्नको विदित नहीं हो पाया है। रविपत्नी पमत्रा-विधिग भावनावाको रविग विभवत् अंचित किया है,

“बल बल कविगि अहं अवास बल बल सो आबहू आवास ।
मोखा नारह कछड निरुण आग ताहि बर आबहू पूर ॥
हे सुवि बबल कह पमाज, ठ सबई पूरे सहिगाज ।
अगारि अकठे हींठ कळे अहभयक हींठ बीचरे ॥
सूखी बारी मरी सुनीर, अपब ठुपक मरि आये बीर ।
ठह कविगि मग विमड मबड णते अहभयारि ठहीं मबड ॥
नमस्कर ठब कविगि करह, बरम बिरचि लूहा उचरह ।
करि आबहू सी विवड करेह, कबप सिधामपु वैसज वैहु ॥
अमावास पूरई ससुसह, बह भूयड-भूयड निरुकाई ।
सखी बूकाह अगाहू अर, कैबल करहु म काबहु बर ॥
बीबल करन उठी तलिबी सुहरी मबल अगना धंमीली ।
बाहू न चुराह अन्वि उंचाह, बाहू भूयड-भूयड निरुकाह ॥

एत अद्याप्यप्यका मुक्त्वर मलिनय है। स्वान-स्वाभवर कविगके इच्छन्त बपलव होते हैं। एक बार प्रद्युम्न वैकास पर्वणपर मिन-बीरमाज्योकी बन्धना करने गये। उनकी ज्योति रलीके अग्रज बमजती थी। प्रद्युम्नके उनकी अहृदयते पुत्रा की और वात बंके आये।^१

तीर्थकर मेलिनाबडी केदकज्ञान अत्यस हुआ। उनके अमवहारणये सुरेन्द्र पुनीन्द्र अकलवाठी देव आये। श्रीहृन्त तथा हलधर भी पहुँच गये। श्रीहृन्तने स्तुति आरम्भ की हे नामको बीतनेवाले तुम्हारी बय हो। तुम्हारी सुर, अमुर देवा नरुं हैं। हे देव। तुम्हारी बय हो। बुह बयोका अय करीवाके है देव। तुम्हारी बय ही। मेरे अन्ध-अन्धक अरज है अिनेन्द्र। तुम्हारी बय हो। तुम्हारी

१ कवि, पृष्ठ २५४-२५५।

२ फिर बेनाले बने बबल गिन्दि ज्योति विपद विमल समय ।
अहृदयि पुत्र अहृदयु नपड बाहृदि बबल इतिहा अह ॥
बरी, पृष्ठ २२ ।

प्रसारते ये ह्य संसार-समुद्रस्य तिर आर्द्धं तथा फिर बापस न आर्द्धं ।^१

जब प्रद्युम्नको स्वसंज्ञान उत्पन्न हुआ तो इन्द्रन स्तुति करते हुए कहा 'हे मोक्षस्वी जन्मकारकी दूर करनवाले ! तुम्हारी जय हो । हे प्रद्युम्न ! तुम्हारी जय हो तुमने संसार-सागरको तोड़ डाला है ।'^२ और भी अनेक बृहन्न उपलम्प्य हैं जिनके आधारपर प्रद्युम्नचरित'को भक्ति-साहित्यकी एक महत्त्वपूर्ण कृति माना जाना चाहिए ।

३ विनयप्रभ उपाध्याय (वि सं १७१९)

विनयप्रभ आरतरनन्दके जीन छात्र थे । उनके पुत्रका नाम द्वारा जिनकुसुम मूरि था । जिनकुसुममूरिका स्वर्यवात्त वि सं १३८९ में हुआ तदुपरान्त उनके पट्टपर विनयप्रभ ही अभिष्टित हुए । विनयप्रभ वि सं १३८२ में जीन छात्र ही चुके थे । यह माग्यता ठीक नहीं लगती कि वे वि सं १३९४ और १४१२ के बीच कभी उपाध्याय पदमे विन्युपित किये गये।^३ क्योंकि एक प्राचीन पट्टावलीके आधारपर यह प्रमाणित है कि दादा जिनकुसुममूरिन जवन जीवनकाकर्म ही

१ देवि पवाहित करिज बहुत फुणि भाषन आरमित भुति ।
जय सर्वर्ष्य सर्वकर देव तइ मुर मुर कराय देव ॥
आइ कम्मठु दुट्टु सिद्धकरण जय महु जन्म-जन्म जिनु सरधु ।
तुन पसाइ हठ हूतइ तिरज भव संसारि नवाहुडि परज ॥
श्री, ११-१११, ११७ ।

२ बुजइ नुरैस्वर बापी पवर जय जवन मोक्षतिमिर इर मुर ।
जय कश्यप हठ मति गानु, जाइ तीडिधि जाकिज भवपामु ॥
श्री जय १११ ।

३ मोहनलाल बुलीचंद बेतारि केन्द्रुवर कविधो प्रकृत यत्न इ १३ वादविष्णवी ।

४ Ancient Jaina Hymns, Edited by Dr Charlotte Krause
Scandia Oriental Series No 2 Ujjain 1952 Remarks on
the texts, pp 10

विनयप्रमदो ध्याम्याय परपर प्रतिष्ठित किया वा ।^१

'गौतमराजा' की प्राचीन प्रतिबोमें उसक कर्ताका नाम 'विनयपट उच्यञ्जाम'^२ दिया हुआ है ।^३ इसका संस्कृत रूप विनयप्रम ध्याम्याय ही है । मिश्रबाबुजीने भी यही नाम स्वीकार किया है ।^४ पं नाबूरामजी प्रेमीको १५वीं शताब्दीके उत्तरार्धकी किसी हुई एक प्रति पाठकके बख्शारमें मिली थी उसमें 'गौतमराजा'के कर्ताका नाम उच्यमवन्त दिया हुआ है ।^५ श्री मोहनलाल दुबीचन्द्र ईशार्देने भी विनयप्रमका बूझरा नाम उच्यमवन्त माना है ।^६ अनुमानतः 'विनयप्रम' शब्द श्रीवदन-का और उच्यमवन्त गृहस्थजीवनका नाम होगा ।

विनयप्रमकी कृतिगोम गौतमराजाके अतिरिक्त ५ स्तुतियाँ और हैं । जिनमें विविध तीर्थंकरोंका गुणकीर्तन हुआ है । प्रत्येकमें १९ २९ के अक्षरप पद्य हैं । डॉ. आरकण्ट अजमेने सीमन्धर स्वामि स्तवन'को भी भाषाशास्त्रके आधारपर जगह्नीकी कृति स्वीकार किया है ।^७ इस स्तवनके २ वें पद्यमें अम्मकम् विषयपद्म जोडि कर श्रीवदुं'के^८ शिख है कि 'विषयपद्म' ही इसके कर्ता थे । 'विषयपद्म' 'विनयपद्म' बबबा 'विनयपद्म'का विगड़ा हुआ रूप है । मिश्रबाबु-विनोदमें इसका उच्य और श्रीवदुस को भी इन्हीकी रचना बतलाया गया है ।^९

१ 'उवा श्री गुहमि (श्री विनकुण्डलमूरिभिः) विनयप्रमादिदिष्येभ्य उवाध्याम्याय वत्तं येन विनयप्रमोवाध्यायेन निर्बन्धीभूतस्य निव्वज्जातु उम्पतिविद्दुवर्धं मन्त्रवनिगवीठमराठो विहितं उद्गुवनेन स्वाभ्राठा पुनर्बन्त-वान् वातः इत्यादि ।

सुरिचारावटे नेमिनाथटे मन्दिरके ज्ञानम्भारमें प्राचीन पद्यावली, कैल्युर्वर कविज्ये, प्रथम भाग, पृ १९, पारकिण्डी ।

२ ईशब्द धुरि अरिहत्त नमीवद् विनयपद्म उच्यञ्जाम बुभीवद् ।

गौतमराजा मन्त्र, पद्य ४० कैल्युर्वर कविज्ये प्रथम भाग, पृ १९ ।

३ विनयपद्म, विनयपद्म किन्नेर प्रथम भाग पृ २१२, अम्मक वि ल १६०३ ।

४ पं नाबूराम मंजी हिन्दी जैन-साहित्यका इतिहास पृ ६२, बम्बयी १९१७ ।

५ कैल्युर्वर कविज्ये, प्रथम भाग पृ १९ ।

६ Ancient Jaina Hymns pp 80 91

७ वही, the texts, pp 124

८ विनयपद्म किन्नेर प्रथम भाग, पृ २१२ ।

गौतमरासा

गौतमरासा' गौतम स्वामीकी भक्तिमें लिखा गया है। गौतम भगवान् महावीरके प्रमुख वचनरत्न हैं। उन्हें भी मोक्ष प्राप्त हुआ था। शैव परम्परामें उनकी पूजा और स्तुतिका बहुत प्रचलन रहा है। संस्कृत और प्राकृतका विपुल साहित्य उनकी भक्तिमें रचा गया है। गौतमरासा' प्राचीन हिन्दीका ग्रन्थ है। इसके अनुसार गौतम मण्ड देसमें गुम्बर नामके गाँवके रहनेवाले थे। उनके पिताका नाम बसुमति था जो विविध गुणोंसे युक्त थे। उनकी माताका नाम पृथ्वी था।

गौतम स्वामीका पूरा नाम इन्द्रभूति गौतम था। वे समूची पृथ्वीमें प्रसिद्ध थे। उन्हें चौदह विद्याएँ उपलब्ध थीं। वे विनय विवेक विचार और अनेक मनोहर मुण्डोंसे युक्त थे। उनकी शरीर साठ हाथ प्रमाण था। उनका रूप रम्भा की भाँति था। गौतमके नेत्र बचन हाथ और चरणोंकी शोभासे पराजित होकर ही कमल जलमें बैठ गये थे। उन्होंने अपने तेजसे हराकर तारावण चन्द्र और सूर्यको जाकासमें भ्रमाया था। उन्होंने अपने कपड़े कामदेवकी धर्तण करके निकाल दिया था। वे मेरुके समान नीर और समुद्रकी भाँति गम्भीर थे। उनकी चरित उत्तम था।

स्वैताम्बर शैव सम्प्रदायमें गौतमरासा'की बहुत प्रसिद्धि है। श्री मोहनकाळ बुकीचन्द्र देनाडिने इसकी १८ प्रतिषोंका विवरण दिया है।^१ इससे उसकी शोक-प्रियता प्रमाणित है। डॉ० ब्रजचन्द्रने इसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है 'उसमें भक्तिका तीव्रतम भाव शैलीकी निरासी ध्यान और प्रवाहकी मधुर गति छिपी है।'^२

१ अंबुदीवि सिरिभरहृषिति शोपीठकर्मण्यु,
मण्डकेशैतन्निव नरेण रिच-रुक्मल संख्यु ।
मण्डर गुम्बर नाम मामु यद्वि पुन्यमसज्जमा
वपु बसे बसुमूह उरुव अमु पुष्पी भग्ना ॥
गौतमरासा पत्र २ हिन्दी शैव-साहित्यका इतिहास पृ ३२ ।

२ वही, पृ ३५ ।

३ शैवगुरु भक्तियों, तीसरी भाग, पृ ५१६-५१७ ।

४ Ancient Jalna Hymns pp ७1

इसका निर्माण वि. सं० १४१२ में सम्प्राप्तमें हुआ था। प्राचीन हिन्दीके कविन काव्यीय 'बीजमराता'का प्रमुख स्थान है।

सीमन्धरस्वामीस्तवन्^१

इस स्तवनके अनुसार सीमन्धर स्वामी पूर्वदिशेके विह्वरनाथ कीस तीर्थकर-में एक है। इसका जन्म पुण्डरीकिनी नामकी नगरीमें भरतखेवकी विक्रत चतुर्विंशतिकाके १७वें तीर्थकर कुम्भनाथ और १८वें तीर्थकर धरहनाथके मध्य-कालमें हुआ था। इसका ध्यासन ब्रह्मी बन्ध रहा है। वे भरतखेवकी ब्राह्मणी चतुर्विंशतिकाके ७वें तीर्थकर प्रथमके समयमें मोक्ष प्राप्त करे थे।^२

स्तवनमें मन्दि भाव पूर्वकल्पसे विद्यमान है। कविने लिखा है कि मन्दिपरिके प्रलय सिद्धर गवनके टिमटिवासे तारायण और समुद्रकी तरंग-माजिका सीमन्धर स्वामीके मुखाका स्तवन करते ही रहते हैं। मयवानका स्तवन बबुन कर्मसे उत्पन्न हुए मन्दि-पटकको नकलनेसे पूर्वकल्पसे समर्प है। जिननाथकर्म वर्धन करनेसे जन्म उपज्य हो जाता है, स्थान कवानेसे लक्ष्मि मिळती है

“मैकगति-सिद्धरि बच-बन्धन जो कुण्ड,
गवनि वारा गवह, बेहुजा-कम मिणह।
अरम-भावर-अके कहति-माका मुणह,
सोवि बनु, सामि तुह अण्णहा पुणपुणह ॥
तहवि जिन नाह निच जम्म अकली-कण,
विमक-मुह अण अणान मंसिद्धर।”

१ गरी १ १ ; हिन्दी केन साहित्यका इतिहास १ १२; केन पुर्वर कविने, मन्दि मान, १ १२।

२ यह स्तवन 'Ancient Jaina Hymns' में १२-१२४ पर मन्दिपरि हो चुका है।

३ भरत-खेवमि सिद्धि-कुंभ-अर-अंतरे
जम्म पुंडरिणी चित्रप पुण्डरकधरे।
माविण प्रथम जिनि उत्तमे सिव-नए
बहुक-नाकेच, सिद्धि गयी सामिण ॥
करी १२ १०।

४ Ancient Jaina Hymns, pp 80-90

घसुह एक कम्म मक पडक निजामण
वाठ करवाणि तुद मँवव बहु गुण ॥१२॥

सुर भक्तोंमें वनग पाताल और भूमण्डलमें मगरी पुरी, नीरनिधि और मेरु पर्वतकुसुमों देव-देवियोंके समूह नारि-नर और किन्नर सीमण्डर स्वामीके आदरपूर्वक भीत पाते हैं

‘सुर भवणि गधणि पायामि मूर्महणे
नवरि, पुरि नीरनिधि, मरु-पण्डव कुळे ।
देव हँवी गणा नारि नर किन्नरा
तुष्ट अस नाह गायणि साधर परा ॥१३॥

ये नगर बन्धु हैं, जिनमें मन्मथनाके सब संघर्षोंको हरनेवाके सीमण्डर स्वामी विहार करती हैं । भक्तवान् कामधट देवमणि और देवतवके समान हैं । उनका नाम देने मात्रसे ही सब इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं

‘धव दे नपर अहिं सामि सीमण्डरो
विहारण मन्निव अण सणव-संसपहरो ।
कामधट, देव-मणि देव-तड ककिवड
पीह धरिओह रहिं सामि तड मिकिपड ॥१४॥

भक्त-कविकी तीव्र इच्छा है कि उसका आगामी जन्म पूर्व बिदेहमें ही विद्युते वह सीमण्डर स्वामीके चरणोंमें बैठकर, उनका दिव्य उपदेश सुन सके । वह वहाँ स्वामीके पुनाके भीम गायिका और उनके रूपको देखकर प्रसन्न होया । उसे पूर्व विवशात है कि स्वामीके शासनमें दीना कैसेसे कम तक जायेंगे और मोल प्राप्त होया

‘कर सुमक आदि करि वषण तु निसुमिमा
वाक जिम देक दह, पाव तुद पणमिमा ।
महुर सरि तुग्द गुण-गाहम इड गायसा
निव गधणि रुव रोमँविड ओहमा ॥
तुग्द वामि टिड वरव परिपाकिओ
इनिव कम्मणि, केवक-मिदिं पामिमो ॥१५॥

मनवान्सी बकिपै मोग-एर राज-एर बहो-एर और हज़-एर खो
बिनुदिया उपमख डोटी है और परमवर भी मिलना है

“मोगएर राजएर भाव-एर मंरएर
बकि-एर हज़-एर बाव परम पर्ये ।
तुम्ह मर्तीहू सख पि लंबउहएर,
एर माहएर तुह सबक जमि गाउएर ६१३॥

इन स्तवनों में इनकीस पद्य हैं। प्रथम बीसवीं प्रत्येक पंक्तिमें २ भाषाएँ हैं। १ के बाद विराम है। बाबाय हेमचन्द्रन छन्दोनुपासनमें इस छन्दका नाम 'बाबकि' दिया है। २१वाँ पद्य हृत्पीठिका छन्दमें है।

स्तवनोंकी बाषामें कावित्व है और भाषोंमें स्वाभाविकता।

४ मेहनन्दन उपाध्याय (वि सं १४१५)

मेहनन्दनके बीजापुरका नाम भी जिनोरधनूरि था। मुरिजीना कथ्य वि सं १३७५ में उत्पाक खेटीकी पत्नी बारनदेहिनी कुसिसे प्रह्लादनपुर नामके नगरमें हुआ था। उन्होण वि सं १३८२ में श्रीजिनदुससमूरिके पास बीजा की और उनका नाम सोमप्रम रखा गया। ब वि सं १४१५ में बाचना बायिके पदार प्रतिष्ठित हुए। बीठरधममूरिके समझे वि सं १४१५ में मुरिपर और 'जिनोरधम बकिबाल दिया। मुरिजीना वि सं १४३२ में समाधि पूर्वक स्वर्नवास हुआ। श्रीमेहनन्दनने श्रीजिनोरधनूरिके वि सं १४१५ के उपरान्त बीजा की होयी। उनके 'जिनोरधनूरि दिवाहक' की रचना वि सं १४३२ में हुई थी। कण मेहनन्दन उपाध्याय और जिनोरधनूरिका उक्त समय एक ही था।

मेहनन्दन उपाध्यायकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं : 'जिनोरधनूरि दिवाहक' 'बकिउपानिस्तवनम्' और 'बीमण्डरजिनस्तवनम्'। तीनों ही भक्तिसे सम्बन्धित हैं। पहलेमें मूढ-भक्ति और अविष्टित दोमें तीर्थकर-भक्ति है।

१. Ancient Jaina Hymns, PP 89-90.

श्री मेहनन्दन उपाध्याय, 'श्री जिनोरधनूरि दिवाहक' श्री कलरकन्द माहण, ऐतिहासिक कैल-काव्य समाज १ ३६ कलकत्ता वि सं १९१४।

या

श्रीम लोच सन्तो मन्म माण मन्नापना १ ७७ अहमदाबाद, १९३ ई ।

‘विनोदसूरि विवाहछठ’

‘विवाहछा’ शब्दको व्याख्या करते हुए श्रीधरचन्द्र नाहटा ने लिखा है, ‘श्रीधरके उत्साहशायक अनेक प्रसंगमें विवाह, व्यस्त मानन्द मंगलका प्रसंग है। इसलिये कवियोने इस प्रसंगका ब्यपन बड़ी ही सुन्दर छंदोंमें किया है। विवाहके वर्धन-श्रवण काव्याकी संज्ञा विवाह ‘विवाहछठ’ विवाहछठी और ‘विवाहछा’ पानी पाठी है।’^१

इन विवाहका काव्या में बीजाशायिक किसी कुमारी काव्याके साथ नहीं अपितु बीजाकुमारी अथवा संवन्धकोके साथ विवाह रखा गया है। इस तरह में ‘विवाहछा’ शब्द काव्य है। बीजा विनेवाका साथ कुछहा और बीजा अथवा ‘संवन्धी कुछहिम है। ‘विनोदसूरि विवाहछा’ में भी आशय विनोदमना बीजा कुमारीके साथ विवाह हुआ है। अर्थात् इस काव्यमें विनोदके बीजा केनेका ब्यपन है। यह एक ललित एवं सरस काव्य है।

गुजरघटाकपो सुन्दरीके हृदयपर रत्नोंके हारकी भाँति पङ्कणपुर नामके नगरमें एक बार श्रीधरकुशासूरि जाये। वे जाने जानक प्रकाशमें सम्भवकोके मोहान्धकारको दूर करनेमें समर्थ थे।

‘अथि गूजरघटा सुन्दरी सुन्दरे उरधरे रवण हाउवमार्ज ।
कण्ठि केकिहर मवक पहरणपुरं सुरपुरं वेम सिद्धामिहाण ॥
अह अउरवासरे पस्सजे पुरवरे अविष बण कमक बण बोहपंता ।
पपु मिरि ‘विनकुसुसूरि सुरावमा महिपके माह तिमिरं हरंता ॥३॥

छठ शरणा अपने परिवारकेहित सूरिजीकी बन्धना करने गया। सूरिजीन कथके पुत्र समराको बेलकर कहा कि यह तुम्हाउ समरा कुमार सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त है और सुविचरताय भी है। श्रेष्ठोकी आज्ञासे वेनेवाके अपने इस पुत्रका विवाह हमारी बीजाकुमारीके साथ कर लो।

१ वर, ‘श्रीमद्भक्तिकविः श्रीधरचन्द्र नाहटा’ में, वि प १६६४ में पृ ३६ व ३६ पर ललित का मुद्रा है। इसमें ४४ पं. है।

२ श्री अन्तर्यामि नाहटा विवाह और मंगल काव्याकी परम्परा गुरुजीव साहित्य, डॉ. विल्लनाथसहाय संग्रहित अन्तर्यामि विवाहकाव्य विन्दी विचारिका अन्तर्गत, गणपती १९२३, पृ १४ ।

‘मह सबक कवलयं कामि सुविचकलय सुरि इन्दुल ‘समरं कुमारं ।
मचिच तुह मंजुषी नवल आर्षदणो परिणवा अम्ह दिक्ता कुमारी ॥११॥’

इस प्रकार सुरिजीने सन कुमारको केनकीसा पानेके बोध बोपिठ किया और भीमपत्नी के बने ।

कुमार बीजा ब्रह्म करनेके लिए बारम्बार जाग्रह करने क्या ली माने उम्माया कि तुम्हारे कमरके समान हाथ अनुपम कम और उत्तम बंध है । येष्ट नाचिके साथ विवाह कर सुखी होगी । नये-नये प्रकारके योगोंका उपयोग करो और अपन उत्तम कामेहि हमारे कृष्णको कीतिके सिद्धपर माक्य कर दो ।

‘‘तथा कमळ इक कामळ हाथ पाय म बावकि हेसितडं ।
कवि अनोपम उत्तम बंध परबाबिसु वर नारि हंडं ॥
नव-नव मंगिहि पंच पवार मंगिणि मया बरकह कुमार ।
अमि-अमि अम्ह कुकि कळसु चडावि हादि मंवादिचह किचिवार ॥१०-१८॥’’

पुन नहीं माना और अपने बावहपर बैठक रहा । एवं कुमारके निरुपम को कमनीने बाला और व्याकुल बाबेहि माँसु बुककाती हुई बोली कि हे वर । ली कुछ तेरे मनको बन्धा लगे वह कर । इस प्रकार पराह कष्टसे स्वीकृति-सूचक बचनोंका उच्चारण कर वह चुप हो गयी ।

‘‘तड कुमर निच्छं अजनि जालेवि
इजहय नमनि नीरं झरती ।
करिण त बचड अं तुम्ह मज भाषण,
अच्छण गद् गद् सरि मर्बता ॥२ ॥

माँकी इन बेवचीमे स्वाभाविकता है और प्रसार भी ।

यह सिद्ध है कि तीव्र मुक्त-बलिसे अनुभावित होकर ही कवि ऐसे रस-रिक्त स्वकीशो बलि कर सक्य है ।

अजित-शाम्भितस्तवमम्

अपवाग् अजितनाथ अरुणसेवकी अनुविपतिनाके वृत्तरे और शान्तिनाथ सोलहवें तीर्थकर है । अंत्युत और प्राहुन साहित्यमें दोनोंके ही निम्ने-मुने अनेक

स्तवन है। प्रस्तुत स्तवन भी प्राचीन हिन्दीमें लिखा गया हीनों टीपकरोकी धरिष्ठा काव्य है।

भक्त कवि एक स्वामपर कहता है कि ममबान् अजित जितन्द्र संसारके गुण है और ममबान् सान्तिनाथ नथाको ज्ञानन्द बेमेबाके है। दोनों ही विस्वको भीसम्पन्न कर कस्याय करते है। शीव मातको पुखी बनाना उनका उद्देश्य है। वे सुखरूपी समुद्रके बिपू पूतके चाँदकी भाँति है। अर्थात् उनको कृपाके उचित होते ही शीवोके मुख-समुद्रमें ज्ञानन्दकी कहरें उठान सक्ती है। उन जितन्द्रको प्रणाम करने उनके गुणोंको गाने और सेवन करनेसे पुण्यके भण्डार भर जाते है। यह पुण्य मनुष्य मवको उच्छन्न बनानेमें पूर्णरूपसे समर्थ है,

‘मंगल कमला कंबुप सुन्न सागर पुनिम चहुप ।
 बाग गुह अजित जितन्द्रपु, संतीसुर नयजालंधुप थ
 वे जितन्द्र परमेधिप वे गुण गाइ सुसंसेधिप ।
 पुण्य मंधार मरेसुप, मानव मव सत्क करेसुप ॥’

भक्त युग-युगसे ममबान्की धरधमें जाते रहे है। वहाँ उन्हें सान्ति मिथी है और सुख प्राप्त हुआ है। यहाँ भी भक्त अजित और सान्तिकी धरधमें गया है। उच्छन्न कमल है कि वे ममबान् उत्सव और मंगलके अग्रगण्य है। उनकी कृपासे संघके समूचे पाल हूर हो जाते है। ममबान्के नेत्र कमलोकी भाँति विद्याक है जलमें-से बयाङ्गी सुयन्त्रि फूटती है। उस सुयन्त्रिको पाकर यह शीव भक्त समुद्रसे पार हो जाता है। अर्थात् अजित और सान्तिनाथकी धरधम जानेसे यह शोका भक्त असार संसारको छँटकर मोक्षमें पहुँच जाता है।

‘वे उच्छन्न मंगलकरण वे सयससंघ सुरिमई हरण ।
 वे अरकमळ बयल नथय वे सिरि जितन्द्राव मवण रयण ॥
 हम भगसिंहि भासिम तनीप, सिरि अजित भाति जित्थ सुइ मणिण ।
 सरमइ बिहुं जिथ पार्प सिरि सिष्णमइण उवक्षाप ॥

सीम धरजिनस्तवनम्^१

हम स्तवनमें ३१ पद्य है। इसकी भाषामें पादुर्ध्व भाषामें सीम्यता और सादृश्य वर्णनमें प्रौढता है। दुःखावन उच्छन्न हुए है। पद्यासनपर बिराजे सीमन्धर

१ यह मन्त्र विष्णु भाग सुवि क्युरादिक्य मवारिन सैव ल्येव मरेभ अदमनावाव १८१ ई में १४ १४०-१४२ पर प्रकाशित हो चुका है।

स्वामी और उद्भवतिरपर सुशोभित सहस्रकिरणरा साक्ष्य क्लेशमय नहीं है ।
उपमान और उपमेयको स्वाभाविक रूपसे ही संघटित किया गया है ।

“त समु अंतरि रचन्हिद्वि बहिर सिंहासशु झककंनु,
त बाबपीडु समु तखि बिमळो मणि मिम्मिड दिप्पंतु ।
त तह सीमबद शिष्यवठ पठमापजडवविद्दु
त सहस्र किरण जिम उद्भवतिरि पुण्य ति जेहि सुदिट्ठु ॥१॥”

बिबाहणमें ठो कविको अनुग्रह सफलता मिली है । दुस्वोका बिबाहण कवि
की सबसे बड़ी कला है । यह वही कवि कर सकता है, जिसकी अनुमति मूख
और नस्पता वैसी हो । एक बिब यह है, ‘सीमन्धर स्वामीके समबहतरणमें जाती
हुई सुर-रजनिमाँ परिवारतहित तुविमार्गोदि बिदायमान है । उनके रूपमें
अद्भुत कल्प है । पहले विमानोंमें बैठके नारन देवायनाओके धरीरमें
स्नान हो रहा है, और इस भाँति उनकी कमरमें पड़ी निकिमियाँ भी हिल रही
हैं । धनसे भरपूर धनि निकलती है । देवियोका हृदय भवबान्की मन्त्रिसे बल-
वित्त है । वे बड़े बलवाले बला विद्याओमें फैलकर भवबान्के नीचे गाती हुई तब
बसरणमें जाती हैं ।

“त रचउर्जतकिकिरिचणि क्यगमंत सुविमाय
त सपरिचार सुररमधिगनि कवकिमक्य विहाण ।
त बहुक मति उक्कसिच हिय दस दिसि समु बसरंत
त धमवसरणि आवई सचक धामिच गुण गार्वत ॥११॥”

इस काव्यमें उपमावर्णित एक भी बहुत है । एक रूपमें लिखा है कि
भवबान्की दिव्यधनि पंचाली जन निर्मल तरबोली भाँति है, जो समुच अपदि
बलाओको बोली हुई बकी जाती है । संसारमें चलते बीबोली बाहू सेबक समुठके
हो धान्त हो सकती है, और भवबान्की दिव्यधनि एक समुठके प्रवाहकी
भाँति ही है । सीमन्धर स्वामीकी दिव्यधनि यपकि बरबते धन मैबोली भाँति
थी है, जिसकी आवाज सुनकर, मध्यस्थी समुठके वित्त करकर नाच
करती है ।

“निमळ व गंगारंगकंनु बन्धविचसचकतमु
सचद्व ५ अंतवदाह कडनमिचवदाह समु ।

सामिन् ए तण्ड वचाणु विम विम गात्रह मेह विम
तिम तिम ए भविष्य चित्त वाचह फरफर मोर विम ॥१५३॥”

बाराध्यके पुष्पोपर रीझकर ही भक्त भक्त बना है। यह छत पुष्पोंके गीत पाता ही रहता है। श्रीमद्भक्तने भी श्रीमन्धर स्वामीकी प्रार्थना करते हुए लिखा है उन विनेत्र भगवान्को जब हो उनके बचनोंमें इतना समूह मरा है कि उसके समस्त चन्द्रका समूह-कुण्ड भी तुच्छ-सा प्रतिभासित होता है। भगवान्के नेत्र कोमल और निद्राक कमलकी भाँति है। देव-बुन्दुभिर्मा भगवान्की महिमाको सर्वत्र चक्षुषोपित करती है। भगवान् जगत्त गुणोंके प्रतीक है, और उनका कृपा कृत्यज पल-भरम ही भक्तको संसार-समुद्रसे पार कर देता है। भक्तको पूरा विश्वास है कि ऐसे भक्तान्को प्रणाम करनेसे मन निरासम्भ होकर भ्रमित नहीं होगा। उसने भगवान्के कृपाकर्मो आसम्भगकी वाचना की है

‘अथ विचर ! सख्यरुहारिवयम् ।
अथ कोमलकमल विसाक नयम् । ।
अथ धरस भविष्यससरिमवयम् ।
अथ महिममद्विक्त् वेवरयण ॥ ॥
विरुसत अर्जत गुणान ठाम ।
सर्वकृपमिच्छिमवित्तवान् । ।
भवतिपुतरवतारवसमरवु ।
पविष्यई आर्त्तवपु देह इत्यु ॥१८२॥

५ विद्वणू (वि सं १७१५)

श्री क्लिनोवकमूरि विद्वणूके भी गुण थे। मूरिबीना समय वि सं १४१५ से १४३२ तक माना जाता है। अतः विद्वणूका भी वही समय है। विद्वणूने अपने गुणोंके लिए लिखा है कि वे तापगणोंमें चन्द्रके समान और अकल्पिभिर्मे त्रिप्रवरके समान थे।

१ लंछ विह संपु लंछ सिरि शिवदरव पुगे
विम्ब तारामण संपु विम्ब अकल्पिजिगुर त्रिप्रवरौ ।
श्री विद्व, पार्लवमीचन्द्रौ वप५५७ शैव गुर्वर कलिषी शीतो मग ५ ४११ ।

विठ्ठलजीके लिंगका नाम 'ठनकर माण्डे' था। राजगुरुक पार्श्वनाथके मन्दिरमें वि सं १४१९ का लिखा हुआ एक लिखालेख है उसपर ३८ श्लोकोंकी एक प्रशस्ति बरियत है। उसमें एक श्लोकसे स्पष्ट है कि उस प्रशस्तिके कर्ता ठनकर माण्डेके पुत्र वैज्ञानिक सुधाचक श्री बीमा नामके कोई व्यक्ति थे।^१ विठ्ठलनाथकपनना नाम बीमा होता स्वाभाविक ही है। विठ्ठलजी रची हुई 'ज्ञानरूपमी चरपरई' नामकी रचना बरतम्ब है।

ज्ञानरूपमी चरपरई

इसकी रचना मनमयी विहार करते समय कवि विठ्ठल वि सं १४२३ माघमास शुक्ल पक्षचौ गुरुवारके दिन की थी।^२ इसमें भूतरूपमीके रिल बरतम्बेशा माहारम्ब और विन-शासनकी भक्तिका उल्लेख है। इनकी भाषा प्राचीन हिन्दी है जिसमें गुजरातीका भी विधान है। यं ताबूतमजी प्रेमीने बसने बुजरातीकी अपेक्षा हिन्दीकी ओर अधिक झुका हुआ माना है।^३ इसमें ५४८ पद्य हैं।

विन-शासनके प्रति सदा प्रशंसित कपी हुए कविने लिखा है कि नरनाथ जिनकेका शासन असीम है उतक बार प्राप्त नहीं विशा या संकटा। जो कोई चतको बहुनिधि पढ़ता बुनता और पूजता है, उसे भूतरूपमीके बरतका फल मिल जाता है।

विनकर सामनि आकर धार जासु न कर्महु कल अपाद ।
पदहु प्रणहु पूजहु निरुद्वेहु, सिपबचमिच्छु कदिचहु पदु ॥

- १ ठनकर माण्डे पुत्र विठ्ठल पयचर गुरु मण ।
करी, पृ ३४२ ।
- २ कर्त्तरीर्षी व सुवर्षी ठनकर मालापत्रेण पुष्पार्थे ।
वैज्ञानिक सुधाचक श्रीभास्वितानेन ॥१८॥
करी पृ ४१ ।
- ३ इत्यर्थिं कागध भीनु बरतचरमई तेषीतमई प,
निन भादवद्व इध्यानि मुद नामद बहु उपनद
नवर विहार मजा र्पचमि पुनु इम्ब पादवद्व ॥
करी पृ २४२ ।
- ४ हिन्दी जैन धारिण्यका इतिहास पृ ३२ ।

धृतराष्ट्रमीका एक यही है कि जो कोई नर मनमें संयम धारण कर इस जगत्को करता है वह कभी बुझी नहीं होगा और इस पुस्तक संसार-समुद्रको तैर जाता है।

‘सिधर्षणमिच्छुः साधुः कोहो नरः करह सो बुद्धि न होह ।

संजम मन धरि जो बढ करह, सो नरु निबद्ध बुद्धद तरह ॥१-२॥

धृतराष्ट्रमीके प्रकटा दर्शन है, धृतराष्ट्रमीकी भक्ति करना। धृतराष्ट्रमीकी ही वृत्तान्त नाम धारवा मा धरस्थली है। कविने चौबीस तीर्थकरोषे प्रार्थना की है कि धारवा उसे अपने सबके रूपमें स्वीकार कर ले। जो धारवा हंसपर चढ़कर चढ़ती है बिछरे हाथमें बीजा मुद्याभित है जो बिनैश्वरे धासन-प्रसारमे लम्बीन है जिसने चारों ओरों को छाव किया है, जो बल्लक कमल पर बिजबती है और जिसके चन्द्र-वैशे मुखसे अमृत सरता है, बिछनु ऐसी धारवाकी भक्ति पूर्वक नमस्कार करते हैं।

‘धर्मिकर जिबहु चढबीस सारदु सामिनि करद जगीस ।

बाहन ईस चढो कर बीण सो जिण सासपि अछहु कीण ॥

भद्रक कमल रूपनी नारि जेग पयापिप वेदुह चारि ।

ससिहर बिंशु अमियरसु पुनइ नमस्कार ठसु ‘बिदुनु’ करह ॥२-३॥’

कविने धर्मोत्कार मन्त्रके प्रति भक्ति प्रदर्शित करते हुए लिखा है कि संसारके विज्ञान-समुद्रमें फँसकर यह जीव चरके सभी धर्म-धर्म विस्मरण कर जाता है। यह श्लेष मान माना सब मोह और सम्बेहमें पडकर मुनिबरोके योग्य न तो जान देता है न तप तपता है और न भोज ही भोजता है। जब धावकके चरमें जगम किया है, तो प्रति दिन मनमें धर्मोत्कार मन्त्रका चिन्तन करना ही चाहिए।

विनासावर कवि नरु परह, चर चढक सबकह बीमरह ।

कौडु मागु मावा (मनु) मोडु चर हंसि परिकड संदेडु ॥

बाव न दिवड मुनिवर बीणु ना तप तपिड न भागिड मोगु ।

साउप चरहि किचड अचताए धनुदिनु मनि चितहु नचकार ॥४-६॥’

६ सोमसुन्दरसूरि (वि सं १४५०-१४९९)

सोमसुन्दरसूरिके पिताका नाम येष्ठि सञ्जन और माताका नाम मासह्वरिणी था। उनका जन्म प्रस्ताहनपुरमें वि सं १४९१ में हुआ था। मने सोम (शत्रु) का स्वप्न देखा था जब उनका नाम सोम रखा गया।^१

देवक सात वर्षकी उम्रमें अपनी बहनके साथ 'सोम'में अज्ञानसूरिके पास दीक्षा ली। उनका नाम सोमसुन्दर रखा गया। वि सं १४९५ में वे सम्पूर्ण जैन शास्त्रमें पारंगत हो गये। उस समय उन्हें बाबरक पर प्रद्युम्न दिया गया। वि सं १४९७ में नाट्यमें उन्हें, श्री देवसुन्दरसूरिने आचार्य परंपर प्रतिष्ठित किया। ये तपायणके ५ वें पट्टर थे।^२

सोमसुन्दर प्रशास्त्र पण्डित ही थे ही भक्त और उदार भी थे। उनके जन्मकालक धिम्प थे जिनमें मुनिसुन्दर, अक्षय्य भुवनसुन्दर जिनसुन्दर और जिनकीर्ति मुख्य थे।^३ श्री गणेशरत्नपति आदि अनेक विद्वानोंने उनका अज्ञात पुस्तक स्मरण किया है।^४ श्री सोमसुन्दरसूरिमें अद्यत्तित अशुभय गिरिनाथ, सोपारक और शारदाश्री आदि अनेक शीर्षत्रिबोली याचारे ली थीं। 'प्रतिष्ठा' के क्षेत्रमें वे अद्वितीय थे। उनके द्वारा तपायण करवायी गयी प्रतिष्ठाएँ बहुत अधिक हैं।^५

मुख्य रूपसे वे संस्कृत और प्राकृतके विद्वान् थे। उनको रची हुई कृतिमें दस प्रकार हैं 'शैलपद्मनवाप्यावचूरि वरुणान्तर्वाच्य' 'अनुविद्यतिमिनवबोलीर्जन-स्तवनम्' 'गुणविमिनस्तवनम्' बुद्धचन्द्रस्तवस्तवी 'अम्बुचन्द्रस्तवस्तवी 'भाष्य वचचूरि कल्याणस्तव 'त्रिबोलीस्तवस्तवकोप अनदेवमाकावाकावबोध' 'वीरघासनवाकावबोध 'पद्मवचकवाकावबोध 'वाचननापनावाकावबोध'

- १ प्रस्ताहनपुरे सञ्जनयेष्ठिनो मासह्वरिण्या- कुली विक्रम संवत् १४९१ वर्षेभ्यः जन्म सोमसुन्दरसूरिनो नाम 'सोम' इति प्राच्यमि नाम।
जैनोक्त संस्कृत मुनिचरित्रेण उन्नादिन प्रथम भाग प्रस्ताहना इह ७५ अन्वयात् १ ३२ ई।
- २ जैनोक्त संस्कृत द्वितीय भाग मुनिचरित्रेण उन्नादिन, अन्वयात् १६३३ ई प्रस्ताहना (गुणवती) इह ८५-८६।
- ३ श्री लक्ष्मणवचि आचार प्रदीप प्रथम स्तोत्र ७-११ जैनोक्त संस्कृत प्रथम भाग, अन्वयात् इह ७२।
- ४ जैनोक्त संस्कृत प्रथम भाग प्रस्ताहना इह १-७८।
- ५ अन्वयात् संस्कृत द्वितीय भाग प्रस्ताहना इह ८३।

'नवतत्त्वशास्त्राद्यबोध और पट्टिपठकशास्त्राद्यबोध ।' आराधनारास' मुजपटी हिन्दीका काव्य है । 'मियबन्धु बिनोर' में इसका उल्लेख हुआ है ।^१ 'नेमिनाथनवरसफागु' रसफागु संस्कृत प्राकृत और मुजपटी मिथिल हिन्दीमें लिखा गया है ।

आराधनारास^२

इसकी रचना वि. सं० १४५ में हुई थी । इसी वर्ष उन्हें बाबक पर मिला था । इस समय उनकी उम्र २ वर्षकी थी और वे अनेक विद्यालयोंमें निपुण हो चुके थे । आराधनारास एक प्रौढ़ कृति है ।

नेमिनाथनवरसफागु

यह एक छोटा काव्य है । यह मयवान् नेमिनाथकी भक्तिसे सम्बन्धित है । जिन नेमि त्रिनेत्रके पीछाकी धारणा भी पाठी है, मछा यदि उनही भक्तिमें तस्मीन क्यों न होवा

समर त्रिमार्द् सकळ विमार्द् सारद् या परदेवी रे ।
गाईसु ममि त्रिजिद् निरंजन रजन अगाइ नमकी र ॥

बाठ प्रतिहारकी महिम्नाको बारण करनेबाछे मयवान् नमोदकरकी पुरन्दर भी भक्ति करते हैं । उन्हों जिनवरके पास छोटी राजमठीने पस्त्यासपुष्पक संवम बारण किया था और पकृत छठ मोल मिला था

प्रथम अक्षरीक विशाक बुळ पगर सुनुमाळ
माद् मलाइरुद् अचळ चामरु प्,
हेमसिंहामणकंत मामेडळ झळकंत
हुंहुमि अंबरिद् त्रिणि छत्र अपरीप ।
ईम प्रतिहारअ घाट, कमर त्रिणा नगुपाड
रचई पुरंदरप धुरि मगति पळ्प,
पार्कीप त्रिनवर वामि संवम मम डळ्यामि
सिचपुरि नुहूर्ती प् राजमठा प् सती प् ॥१३-१७॥

१. मंगलमाल बुध।कमर देसाई उम गुजर कविता प्रथम भाग पृष्ठ ३ शारदिय्यटी ।

२. मित्रबन्धु, मित्रबन्धु क्लिप्त प्रथम भाग पृष्ठ १७ ।

३. मंगलमाल बुध।कमर देसाई उम गुजर कविता कीटी भाग कर्ण १ पृष्ठ १४ पृष्ठ ४३ पर प्रचारित ।

७ उपाध्याय जयसागर (वि सं १३७८-१३९५)

मध्यकालम जयसागर नामके तीन कवि हुए हैं । तीनों ही तीन के और तीनों ही हिन्दी के उत्तम कवि माने जाने हैं । उनमें प्रथम की उपाध्याय जयसागर कहते हैं । उन्होंने त्रिनयनमूर्ति के नाम दीया थी थी जो त्रिनयनमूर्ति के पदों पर थे । थी त्रिनयनमूर्ति उनके विद्याभूषण थे । थी त्रिनयनमूर्ति उनके पदों पर थे जयसागर कहते मुषीभिन किया था ।

उपाध्याय जयसागर गुरुकुल और प्राज्ञके पद्यमाप्य विद्वान् थे । उनकी बहुत रचनाएँ उपलब्ध हैं त्रिनयन सम्बद्ध बोहावलीपर लघुकृति उद्यमगुरु स्तोत्रकृति विजयिनि त्रिनेनी पररत्नावलीकथा और 'पुष्पीकण्ठचरित' बहुत प्रसिद्ध हैं ।

मन्त्रविद्यामें भी वे पारंगत थे । मैरीपिकात्रिधान बाँधमें थी नार्वनाथ त्रिन मन्दिरमें पदुमावलीकृति करकेउत्तरे उन्हें बर्तन किये थे । मैरगाट नामके देशमें नागद्वय नामके दुग्धभानवर नरार्त्तहारार्त्तचैत्यम धारवा उनपर प्रसन्न हुई थी ।

जयसागरके प्राचीन हिन्दीमें लिखे हुए बहुत मुक्तक काव्य प्राप्त हुए हैं, त्रिनयन त्रिनयनमूर्तिकृतुष्पति—(वि सं १४८१) कवरतथावी मुद्रास—(१४८९) पीनमरास 'मैमिनाथ विवाहको—(१४९८) कैम्पपरिपाटी—(१४८७) 'नगरकोट महातीथ कैम्प परिपाटी तत्तदुत्तमनि 'आध्यात्मिक विवाह' तीर्थ और कैम्पमन्त्रिष्ठे सम्बन्धन हैं । इनके अतिरिक्त उन्होंने 'तनुविद्यति त्रिनयनमूर्ति' अष्टापर तीर्थवाक्यी अस्मिन्स्तोत्र' स्वप्ननपार्वनाथस्तवन और 'विह्वलान त्रिनयनम' आदि स्तुति-स्तवनकोका भी निर्माण किया था ।

१ त्रिनयन उन्नी६, दिनीस नाम मन्त्रकला १ ३१ ।

२ सरीपिकात्रिधाने ज्ञापे श्रीनार्वनाथत्रिनयनकने ।

धीरोप प्रयत्नो मैया पदुमावलीमहित ॥

धी मैरगाट देशे 'नागद्वय' नामके दुग्धनिवेशे ।

नरार्त्तहारार्त्तचैत्ये लघुष्ट धारवा मैयाम् ॥

श्रीकृष्णारत्नकण्ठचरितम् श्रीकृष्णचन्द्र नाट्य ऐतिहासिक कैम्प काव्य-

सम्बन्धन कल्पना १९९४ वि सं १ ४ ।

शैल्यपरिपाटी^१ में पाठ्य रायपुर समुच्चयमिदि, निरिहार पाकीनाता और मुनागड मादि अनेक तीर्थोंका वर्णन है। इसमें २१ पद्य हैं जो छोरछ और बस्तु नामके छन्दोंमें लिखे गये हैं। इस कृति में अनेक स्पष्ट उत्तम काव्यके निरर्घन हैं।

'नगरकोट तीर्थ शैल्य परिपाटी'^२ में नगरकोटके तीर्थों मन्दिरो और प्रतिमाओं का आर्थकारिक वर्णन है। मायापर मुञ्जरत्तोका प्रभाव है। अठ स्पष्ट है कि जगन्नाथजी मुञ्जरत्तके ही रक्षुनेवाले होंगे। १५वीं शताब्दीके कवियोंमें दुस्यका विमिश्र करनेकी ऐसी सामर्थ्य बहुत कम देखी जाती है। उदाहरणके लिए,

'ननु ब्रह्मिहि ब्रह्म सुबिह चरम जिणाधरर्षद् ।
 अणु ककोड असु ईसनिहि पामद् परमाणद् ॥
 पासि पसंसदं कोटिकप् गामिहि महि जमिरामि ।
 महमन कोहकि जिन रमके तसु गुण भवसारामि ॥
 इमकुंमासिरे जिण भवणि प सवि ज्जणिया द्धप ।
 देवकिच कोमि मपरि करदं धीरजिन सव'^३ ॥

जिनकुण्डमूरिबगुण्णवी का निर्माण मलिकण्डकपुरमें हुआ था^४। यह एक सरस काव्य है। इसमें सूरि जिनकुण्डकी महिमाका वर्णन किया गया है। 'नगरस्थानी मुञ्जरत्त' भी मुञ्जरत्तिका ही निरर्घन है। सभी स्तुति-स्तोत्र उत्तम हैं।

बहुविधवि जिन स्तुति में २४ जितेन्द्र का स्तवन है। मगधान् आपभवेके वर्णनोके उत्पन्न होनेवाला ज्ञानन्द निरर्घनोय है,

'सुबिहाण्ड बद् आज मई, ब्रिह्म रिमह जिजेस
 नवण कमळ जिन उक्कसद् उगिड मळद् दिनेस ।
 राम बिहि तणु कपसई, दिपडई परमाणद्
 नवण समिच रस असिणक, दाड्ड भादि जिर्ण'^५ ॥

१ 'शैल्यपरिपाटी' की हस्तलिखित प्रति रायच नन्दराजों मुनि मुञ्जरत्तिकाके संग्रह में एक प्रतिपत्र न २-१ पर मौजूद है।

२ इसकी हस्तलिखित प्रति भी बन्धु क नन्दराजोंमें है।

३ नगरकोट स्थानीय शैल्य परिपाटी, पद्य ११-१३।

४ राधा श्री जिनपुराण मदि, नाइदा सम्पादन परिशिष्ट न १ २।

५ अणु गुणर कविता ०३को भाग, १ १४७६।

कविता विरचित है कि जयवान् महावीरकी दरबमे जागते मन-बचन
जायते क्रिये कये सभी राव-रूप दूर हो जाते हैं। तबने जयवान् बीरमे एते
प्रसादकी बाधना की है, जिनसे यह मन-बचने जयवान्के वीरकी सेवा कर सक

“राग होम कवि ओ क्रियत मयायय काप पमाव
तं मिच्छम दुक्कह ह्यत मराव बीर जिन पाव ।
करि पसात सुख तिम किमह, महावीर विमराव
इति भवि महवा जह मरि जिन मवर्त तु पाप” ॥

८ हीरानन्दसूरि (वि सं १४८४-१४९५)

हीरानन्दसूरिकी जन्मा १५वीं सदीके उत्तम कवियामे की जाती है। वे
विष्णुवचनके श्रीबीरप्रमसूरिके शिष्य थे। उन्होंने अपनी कृतिमें मरुमण्डलके
साधौरपुरके बीर मन्त्रका उल्लेख किया है, इतने प्रमाणित है कि वे राजस्थानके
रहनेवाले थे। उनकी माया भी उरल राजस्थानी ही है। जब समयकी राज-
स्थानी बीर हिन्दीमें इतना कान-सेव नहीं था जितना आजकल है। यदि यह जह
कये कि वे एक ही हीं हीं करपुकि न होयो (१) जो हजारीप्रसाद द्विवेदीने राज-
स्थानीका मुद्राणी बीर हिन्दी बोलाने ही कविज्येय सम्मान स्थापित किया है।
इत उरल एत है कि हीरानन्दसूरि हिन्दीके महत्त्वपूर्ण कवि थे। उन्होंने ‘बलु
वाकतेजपाकपाक’ (वि सं १४८४) ‘विद्याविज्ञान पञ्चाङ्ग’ (वि सं

१. वी, पृ १४० ।

२. वी, पृ १४० ।
३. वी, पृ १४० ।
४. वी, पृ १४० ।
५. वी, पृ १४० ।
६. वी, पृ १४० ।

७. वी, पृ १४० ।

८. वी, पृ १४० ।

९. वी, पृ १४० ।

१४८५) 'कलिकातरास' (वि सं १४८९)^१ 'व्याममररास' 'बंबूस्वामी
बीबाहूका' (वि सं १४९५) और 'स्फुक्तिमत्र बारहमासा' की रचना की थी।

कविने विद्याविकास पत्राङ्कीमें प्रथम जितस्वर साहित्यनाम नेमिकुमार और
पार्ष्णाकको लमस्कार करते हुए, धारवासे बरदानकी याचना की है और उनसे
सम्बन्धित मुख्य तीर्थोंके प्रति भी भक्ति भाव प्रदर्शित हुआ है।

'पहिलुं पणमीध पद्म त्रियेसर सिर्तुत्रय अचतर
हमियाकरि श्री शक्ति त्रियेसर उर्जति निमिकुमार।
बीराउकियुरि पास त्रियेसर साचडरे बरमान
कसमीर पुरि मरमति सामिनि विठ मुझनई बरदान ०'^२

'बंबूस्वामी बीबाहूका' बंबूस्वामीकी भक्तिसं सम्बन्धित है। उसके मंगल
पद्यमें और त्रियेसर गौतम गणतर और बेबी धरस्वतीका स्मरण किया है।

'बीर त्रियेसर पणमीध पाप गणहर गाधम मनि घरीध
समरी सरस्वती कवि अण्य पाप बीजा पुस्तक बारिणी ५।
शोस्तिनु बंबू बरित रमास नव नव माध सोहामर्जुन
रपणह संदभा डाक रसाक भविभन भाबिहि सोमसुए ३। २७'^३

'स्फुक्तिमत्र बारहमासा'म मुनि स्फुक्तिमत्रके बारह महीनोंकी जीवनचर्याका
वर्णन-पूर्वक वर्णन हुआ है। बारहमहीन अकाक पङ्केपर जब मरवाहु स्वामी
वसिष्ठमें बसे गये तो पाटकिपुत्रमें भीनसंबके बलिष्ठाता स्फुक्तिमत्र हुए। उन्हें
११ मयोका ज्ञान था। इस बारहमासामें २८ पद्य हैं। अन्तमें लिखा है कि जो
जानम्बपूर्वक बारहमासा पढता है उसके पास बुद्धि-सिद्धि अथवा होकर निवास
करती है।^४

१ कलिकातरास श्रीरामचन्द्र मादियके सम्बन्धके साथ दिव्यी-कनुरात्मल मारणी
हिन्दी परिष्क प्रकाश करे १, अंक १ जनवरी-मार्च १ २० ई में पृष्ठ २२ २३
पर प्रकाशित हुआ है।

२ जैनपुर कविने प्रथम भाग अर्थात् १६२९ ई ३ ५-२६।

३ जैनपुर कविने, तीसरी भाग ३ ४२०-४२६।

४ स्फुक्तिमत्र बारे म-पङ्का ५ जे मर्षे बरि आर्षर कि।

निजा बरि अथवा बबादनुं ये बाके मूरि हीरार्थर कि।

स्फुक्तिमत्र बारहमासा पढाये, जैनपुर कविने तीसरी भाग ३ २१।

९. भट्टारक सफलकीर्ति (वि सं १४९९)

सरस्वती मण्डके की पद्यगयी एक प्रभावशाली भट्टारक व । वे भट्टारक रत्न-कीर्तिके देहकी-मृदुवर, वि सं १९७५ में प्रतिष्ठित हुए थे । उनकी प्रयत्ना विनोदियाये छिन्नामों (वि सं १४९५ और १४८९) में अंकित हैं । उनके दो शिष्य थे—भट्टारक मुनिसाह और भट्टारक लक्ष्मीकीर्ति । सरस्वतीकीर्तिसे ईदर की भट्टारकीय पद्दिकी परम्परा आरम्भ हुई थी ।^१

भट्टारक लक्ष्मीकीर्ति अपने समयके एक प्रसिद्ध विद्वान् थे । उनका संस्तुन मायावर एकादिकाल वा । उन्होंने संस्तुनमें १७ ग्रन्थोंकी रचना की । पुराणनारा धिखान्तसारशीपक मन्त्रिनाथचरित्त पयोधरचरित्त कृपमचरित्त मुद्रणचरित्त मुद्रुमात्रचरित्त बर्ममात्रचरित्त पारबनाथ पुराण मुखाचार प्रदीप शारचतुवि छतिना धमप्रस्तोत्तरभाबकाचार लद्मागिनारकी कल्पमुमात्रचरित्त बर्मदियाक बम्बुस्वामीचरित्त यीपकचरित्त ।

भट्टारक लक्ष्मीकीर्ति प्रतिष्ठाचार्य भी थे । उन्होंने सैकड़ों मन्दिर बनवाने मूर्तिर्पणा निर्माण करवाना और उनके प्रतिप्यदि मूर्तिस्तव स्वर्य आशाय बनकर सम्पन्न किये । उनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तिर्पणे ललाठीन इतिहासकी अनेक बातें अंकित हैं ।

लक्ष्मीकीर्तना समय विहगकी १५वीं शताब्दीका उत्तरार्ध माना जाता है । उन्होंने लक्ष्मीकीर्ति वि सं १४८९ में बहालीमें लक्ष्मीर्पण किया था । वहाँपर ही उन्होंने भाबक पुस्तका पुस्तिका वि सं १४८९ की मुखाचार प्रदीपकी रूपने कनिष्ठ भागा त्रिलयासके अनुपहृसे पूरा किया ।^२

१. त्रैलोक्य प्रशस्ति लघु, प्रथम भाग, विहग १४ ११ ।

२. लक्ष्मीकीर्ति मण्डक प्रथम भाग, प्रकाशना १ १-१ ।

३. त्रिहि बचसरे कुब आदिना बहाली नगर मझार रे,
 लक्ष्मीर्पण निजा करो यीमनी पाबक कीना हर्पे अणार रे
 बर्मिअरे लक्ष्मीकीर्ति बहाई नावे नर नार रे ।
 लक्ष्मी लक्ष्मीकीर्ति विहग पाम्मा लक्ष्मीकीर्ति रे ॥
 लक्ष्मीकीर्ति ही कमासी मका लक्ष्मीकीर्ति लक्ष्मीकीर्ति
 पुस्तिका विहगे लक्ष्मीकीर्ति लक्ष्मीकीर्ति मझार रे ।
 लक्ष्मीकीर्ति लक्ष्मीकीर्ति लक्ष्मीकीर्ति लक्ष्मीकीर्ति
 लक्ष्मीकीर्ति १ १ ।

मठारक चक्रवर्तीसिंह वि० सं १४४४ में, ईश्वरकी गद्दीपर आसीन हुए थे। वि० सं १४९९ में महाराजा (मुहम्मद) में उनका स्वर्गवास हुआ। हिन्दी के लिए श्री चम्पौन जी कुछ प्रयास किया। समीपे फरक्खान् उनके सिष्य रहते। बिनशाम हिन्दीके उत्तम साहित्यकार बन गये।

मठारक चक्रवर्तीसिंहकी हिन्दीमें बिनो हुई पाँच इतिमाँ उल्लेख्य हुई हैं: 'भाराधनाप्रतिवाधसार' 'गमोकारफल्गरीत' 'गमोकारमो' 'मुक्तावलीगीत' और 'शोकहारमन्त्रराम'।

भाराधनाप्रतिवाधसार

इसकी मापा सरल है। काम प्रसादनुकला निर्वाह हुआ है। कविने बिन बापी गुह और निर्ग्रन्थ साधुओंको प्रशाम करके संक्षेमें भाराधनासार कहा है। इसमें संस्कृत भाराधनाका सार है। जो कोई घर-गारी इस भाराधना सारको पढ़ता और सुनता है वह मन्-समुद्रसे पार हो जाता है। वह भाराधना मनुष्योंको ज्ञान प्रदान करती है।

गमोकारफल्गरीत^१

गमोकार मन्त्र पंचपरमेष्ठीकी बन्धनासे सम्बन्धित है। प्रस्तुत इतिमें गमोकार मन्त्रका फल दिया हुआ है। यह एक पीठि-नाम है। उसके प्रत्येक पद्यमें उत्तम ज्ञान सम्बन्धित हुआ है। मापामें प्रसादगुण है।

मेमीश्वरगीत

यह पीठ जयपुरके पं. कृष्णकरजीके मन्दिर मुठका नं ९६ और बँटन नं० ३३८ में लिख है।

मुक्तावलीगीत

यह पीठ जयपुरके बडे मन्दिरके मुठका नं ३६ बँटन नं २४५७ में प्रस्तुत है।

१ श्रीशिवचक्रवर्तीसिंहकी मन्त्रि गुह निराल्य पाप प्रथमवि।

कहुँ भाराधना मुक्तावली सहायि साधुगण ॥

आमेरशास्त्रमन्त्रशास्त्री दन्तविद्विज प्रति पढ़ता क्व।

२ जो मन्त्र ई गुहइ नरमाँ तै आई मन्त्रि नइ गारि।

श्री लक्ष्मीसिंह कहुँ विचार भाराधना प्रतिब्र यमार ॥

करी, अन्तिम पद्य।

३ दि. जैन संज्ञावली मन्दिर नवीनठे एक प्रत्येमें लिख है।

१० श्री पद्मसिद्धक (वि १५वीं शताब्दी अन्त-१६वीं शताब्दी आरम्भ)

श्री वपनिष्कारणी एक मात्र हृदि 'वर्मविचारस्तोत्र' है। उसने ऐसा कुछ प्रकट नहीं होगा जिसके आधारपर उनका बीरम-भूत ब्रह्मा मुद्र-परम्परा धारिते विपन्नम विद्या का सचे। यह हृदि उग्र गुटकेमें निबद्ध है। श्री वि सं १६२१ में लिखा गया था^१ किन्तु वर्मविचारस्तोत्र की भाषामें स्पष्ट है कि उसकी रचना १५वीं शताब्दी अन्त अथवा १६वींके आरम्भमें हुई थी।

वर्मविचारस्तोत्र

इस स्तोत्रमें २८ छन्द हैं। वर्मघातक बुद्धादा वर्मन करनेके कारण ही इसकी 'वर्मविचारस्तोत्र' कहत है। यह शोच नागदाही रूपम-मूर्तिषो ब्रह्म कर लिखा गया है। शोच नागदाके तीर्थनर रूपमनाथ बुद्ध और सुरित्तोको मह करमेवाले हैं। उन जनकानुषा आप करनेसे बीरका मन गुद होना है, और यह संसारके भ्रमभने मुक्त ही जाता है।

सिद्धि सिद्धैसर पद्य वर्मनि पुर कीर्त्त मंडल।

कर्म बुद्धाई पद्मसिद्धक बुद्ध सुरिय विहङ्गल ॥

सामी कर्मई किंनि हुरक भिय मात्मन केरड।

गर्वा विचर किमह गानि सुभ्र भववड करड ॥^२

कविले लिखा है कि मैं जगद्विनाशके निमोदमें जूझता रहा। बहुवि निकला तो एकेत्रिय - जगि बानु और जनस्पति धारि बना मनुष्य ब्रह्म न मिल सका।

"आदि अनादि विषाद् मादि बहु कस्तु धमिड मई।

सखर सावकमात्समिडा मय पुरिब जिग मई।

विमोदह बीमरिड नाह परिपड पणिदिदि।

पुत्रवि वाड तह तड वाड बजसह बुहु मदिदि ॥^३

पूर्वजन्मके पुण्य-तपोपति मनुष्य-पथ मिला। किन्तु इसके प्राप्त होनेमें भी बीरको भी ब्रह्म एक वर्मके बुद्ध सहने पड़े। वह भी मास तक रमणीके नाश-एकके बीचे ब्रह्म-पत्नी बुद्ध सहता रहा।

१ यह प्रस्ता बानु बालकप्रभासकी जैन कवीलकके पास है।

२ वर्मविचारस्तोत्र पदना कव नि सं १४ १ के लिखे हुए पुरोको बलभिक्षिण प्रती।

३ वही बीमरा कव।

‘पुण्यं पुण्यं संजोगि पुण्यं ममुत्तमं पापिण्ड ।
 विधिहं पुण्यं नम मासं सद्धं गच्छिहि संतावित् ॥
 रमणि नाभितकि नाक कारि बुद्धं पुण्यं चच्छद् ॥
 कोसागारिहिं वा मुहैदि पुण्यं जोगि पदित्पद् ॥’^१

भगवान् श्रद्धापूर्वक से दर्शनोत्सव मंडलान्तरों में गये हुए बसिष्ठ किन्ता है कि हे भगवान् ! तुम्हारे दर्शन करने से ऐसा विधि होना है जैसे मुझे विष्णुमणि ही मिल गयी हो जैसे हमारे आंगणमें कल्पवृक्ष विभिन्न फलों से फल देता हो और जैसे हमारे घरमें सुरवेनुका ही बरतार हुआ हो । जिस किसीने भगवान् श्रद्धापूर्वक से दर्शनोत्सव मंडलान्तरों में गये हुए बसिष्ठ किन्ता उसकी सभी मनोकामनाएँ पूरी हो जाती हैं ।

‘इत्यथ भुम्हं विद्याय अथ च विद्यामणि चरियत् ॥
 सुरवेनु अंगणं अथ च विधिहं परिचरियत् ॥
 सुरवेनु अंगणं अथ च विधिहं अथ चरियत् ॥
 अथ मेघं सिरि रिसहं अथ मण्यं चरियत् ॥’^२

इस काव्यकी भाषा में अथर्ववेद और प्राकृतके प्रयोग अधिक हैं । फिर भी इसके शीर्षमें कहींपर व्याख्या उपस्थित नहीं हुआ है । भाषा में प्रवाह है और भाषा में स्वाभाविकता । उपयुक्त दृष्टान्तों से रस उत्पन्न हो सका है ।

११ ब्रह्म जिनवास (वि सं १५९)

ब्रह्म जिनवास अष्टारक शकलकीर्तिके छोटे पाई और सिद्ध वे । वे भी शकलकीर्तिके समान ही उत्तमकोटिके विद्यान् वे । जगकी संस्कृत कृतियोंमें ‘ब्रह्मस्वामीचरित’ ‘हरिर्ब्रह्मपुराण और ‘उत्तमचरित’ का नाम प्रमुख रूपसे लिया जा सकता है । ब्रह्मस्वामीचरित की रचनामें ब्रह्म वेदोंमें सिद्ध ब्रह्मचारी ब्रह्मवासके मित्र-वृत्ति ब्रह्मवेदसे सहायता प्राप्त हुई थी । ‘ब्रह्मपंचविंशतिका’ अथवा ‘ब्रह्मविद्यास’ ब्रह्मकी रचना है ।^३

इनके अतिरिक्त ब्रह्मवेदोंमें ‘ब्रह्मचरित’ अथवा ‘ब्रह्मचरित’ ‘ब्रह्मचरित’

१ गरी, बीर्वा पृ ५ ।

२ गरी १५९ पृ ५ ।

३ बौद्ध धर्मशास्त्रिकासंग्रह प्रकाशना पृ २१ ।

समर्पणरास' 'करवन्धुरास' कमविनायकास' 'धीपाञ्जरास' प्रद्युम्नरास' 'मनपाञ्जरास' इन्द्रमन्त्ररास' तथा 'प्राणवायोप' की रचना की थी। इन सब की भाषा कुजराठी हिन्दी और राजस्थानीवा मिश्र-मुजा रूप है। उनकी भाषा कथ-रेखाको हिन्दी कहा जा सकता है। जिसपर कुजराठी और राजस्थानीवा विशेष प्रभाव है।

उनके ऐसे दस पुत्र-समूहमें जम्बूद्वीपपुत्रा' मन्मथपुत्रा' छात्रद्वीप-पुत्रा' अनुविद्यारूपपुत्रा' मेघमालोत्पापपुत्रा' अनुविद्यारूपपुत्रा' सतोत्पाप और 'मृदालिङ्गपुत्रा' आठ हो गये हैं। इनकी भाषा संस्कृत है।

वि. सं. १४८१ में ब्रह्मविजयासके अनुशासके ही उनके पुत्र महाराज ब्रह्मजीतिने बहालीमें 'भूमिवात्परीप' की रचना की। ब्रह्म विजयासके स्वर्ग वि. सं. १५२ में 'हरिवंशरास' का निर्माण किया। अतः उनका समय १५वीं शतीका अन्तपर्यन्त और १६वीं का पूर्वार्ध माना जा सकता है। उनकी हिन्दी हरिवंशका परिचय इस प्रकार है

आदिपुराण

इस ग्रन्थमें २१५ पद्य हैं। रचनामें संस्कृतके आदिपुराणात्मक स्वरूप लिया गया है। समाप्त करनेकी धीमेधामें सम्बन्ध-विर्वाह' छीनसे नहीं भिन्न सजा। साथ ही सम्बन्धनाम्नका कोई गुण समुचित रूपसे विकसित नहीं हुआ है। फिर भी भाषा काव्योत्सुक है। प्रसादगुणमें औत्सर्ग्य-गुणित की है।

कर्मभूमिके उत्पन्न होनेपर अथवान् नृपनरेवने पटकमौरी स्थापना की थी। उन्होंने सत्कारके प्राधिकारकी अर्पणना विवेक भी प्रशस्त किया था। ऐसा करनेमें वे इसकिए समर्थ हो सके कि उन्होंने स्वर्ग की मुक्तिवशुको प्रत्यक्ष कर लिया था। संसार उनकी अथ-अवकार करता था।

१. करवन्धुरास' आदिनायकास' समर्पणरास' मन्मथपुत्रास' और मन्मथवायोप' अन्तर्गतसम्बन्धकार कल्पुसमें तथा कल्पिण रास' पञ्चाशती मन्त्रिर' देस्ताके शारदामन्त्रारमें सूचित है।

उनके नाम विभिन्न गुणधर्मोंसे केन्द्र की परमानन्द शार्वादे मराठिमन्त्र, कलाकामों पर १४ पर, विद्ये हैं।

२. भूमिपुत्रासके उत्पन्नपुत्राने उत्पत्ती पञ्चके अन्त अन्तमें सं. १५२६, मन्त्रिर' छरी १ नाम का मन्त्रात्मके मन्त्र वास्तव्य अन्तमें १४ वास्तव्य प्रतिनिधि अन्तमें।

हिन्दी नामरत्नाकरकारकी हस्तलिखित प्रति।

इस विनयासमें इन भगवान् के गुणोंको सद्गुणोंके प्रसारके जाना या । भगवान् के बुद्धोंपर ही सम्यक् भव भवमें भगवान् की सेवाकी भावना की ।^१ कथाकोपसमह^२

इस कोषमें यह कृतियाँ संकलित हैं 'वसमस्तजगतकथा' 'निर्बोपसप्तमी कथा' 'श्रीरामपट्टिककथा' 'आनन्दपञ्चमीकथा' 'मोक्षसप्तमीकथा' और 'पंचपरमेष्ठीगुणवर्णन' ।

पंचपरमेष्ठीगुणवर्णन एक मुक्तक काव्य है । उसका प्रत्येक छन्द एक पृष्ठ भावको सङ्ग्रह कर बना है । उसमें नीतिपरता है भाव-विभोरता और कर्म भी । यह पंचपरमपठियोगी भक्तिसे सम्बन्धित एक उत्तम काव्य है । इस काव्यके सुनने और ममज्ञान-भावसे ही जीवनके सभी मलाशयित कर्म पूरे हो जाते हैं और यह धिक्पूरमें पहुँच जाता है । किन्तु सुनते और समझते समय उसका मन निर्मल होना चाहिए ।^३

धनपाछरास^४

इसमें धनपाछके चरित्रका वर्णन है । धनपाछ भगवान् विनेयका भक्त था । स्वाम-स्वातपर उसको भक्तिका उल्लेख हुआ है । वहिका विश्वास है कि श्रीशिव तीर्थकर और स्वामी शारदाको प्रणाम करनेसे मनोवाञ्छित फल उपलब्ध होत है ।^५

१ पद कम स्वामी कापी पाण्डु धर्मार्थमें दीवान् तो मुक्ति रमणी प्रमत्त नामा ए त्रिभुवन अय्यव्यवहार तो । यह गुण मे जानी या ए महपुत्र तथो पसावना मति भवि स्वामी मेबसुं ए, सानु मह गुण पाप तो ।
२ श्री भक्तिमभिरति पत्रि ११-१४ ।

३ अमरराजमन्त्रकी वस्तुविधि मति ।

४ पत्रे गुण मे नावर्क मति बरी निरमल मात ।

मन बंछित कथनवना पार्ने सिद्धपुत्र टाज ॥

५ अमरराजमन्त्रकी वस्तुविधि मति ।

६ इस काव्यकी प्रविष्टि पार्वते कथनके अन्तर्गत है वि स १ ८, भावक सुदी १ रत्नारका कथाकी मना थी ।
अमरराजमन्त्रकी वस्तुविधि मति ।

७ श्री विनय रत्न से टार, तीर्थकर श्रीशिवो ।

बंछित पत्र बहु धान बाजार सारक मामिण धीतधु ॥

अमरराजमन्त्रकी वस्तुविधि मति ।

मिथ्या दुकड़

यह ब्रह्म जिनरामजी एक सठन वृत्ति है। उसमें सादृश्यगत सौम्यत्व है। कवि ने एक स्थानपर लिखा है, 'जैन विनवरक निरसठ ही कमल छिन्न जात है। टीक बैठे हो आदि जिनररके दर्शनमें भग्नाके मन विवसित हो जाने है। बैठे विनवरके आम्पकार पट आना है। बैठे हो मगवान् मोहको बिरीरु कर देते है।'

भक्त मुन-मुनके मनवान्के दरवाजेपर जाने रहे है और वहाँ उर्ध्वमे नि-
उत्थोच होकर जाने पावानी कहा है। उन्हें विरराम वा कि ब्यालु मयवान्
अपरमेव यमा प्रयाग करेने। जैन भक्त भी त्रिमुनके नाम मगवान् विनेत्रके
पाप पया है,

“हूँ विवती कर्कड़के आवनीच ।
एँ त्रिमुन स्वामी सुनि कर्णीच ॥
अ वाच करवा ते कर्कड़ अनुस ।
ते मिथ्या दुकड़ हाठ नर्मस ॥२॥

मगवान्के अन्त बुबादा बचन करत हुए, सतही बनना करना एक पुराण
रिवाज है। वहाँ भी ऐसा ही एक दोहा है

‘जिनवर स्वामी सुगति हिं गामी मिद्रि मवर संकपी ।
मव संचन रीणो समर मकान्धे ब्रह्म जिनदास पाच संदनी ॥१॥’
(भक्ति)

मझापरचरित्र

इसमें भक्त मझापरका चरित्र बर्णित है। संसृष्ट चर्खोंका सहाय किया
कया है। मत्पामे प्रसादबुध है। प्रारम्भमे ही कविन मुनिसुब्रतनाथ (२०वें
टीककर) छारवादेवी गौतम पनवर और गुरु सतकजीतिनी प्रचाम किया है—

“मुनिसुब्रत जिन मुनिसुब्रत भी मवतुं ते सार ।
चारुकर अ बीषर्तुं बीडिअ वडु दान वाचार ॥

१ आदि जिनवर मुनि परमेवर मयाक बुचन विचासपी ।

मुनि कमल विषनर मोह विमिर हर ठलव वधारव मानपी ॥

मिथ्या दुकड़ कल्या पव, अम्परेपकायकारकी प्रति ।

२. राम भक्तकी प्रतिविधि, बर्णित अचक्यकीके कर्तव्यके लिए उत्तर १ २६ में कर्तव्यकी
कपी की ।

मद्राजिनपर १ २६, कल्पुत १६२ १ ।

सारदा स्वामिनि बळीस्तनु जिमि बुद्धि सार हुं बेगी मागुं ।
गणेश्वर स्वामि नमस्कृतं, बळी सकळ श्रीरति गुण मन्थार ॥
तास चरण प्रणमीनें, करे सुरासुर सार ॥१॥

गणेश्वरचरित्र की महिमाका बणन करते हुए कविले लिखा है गुणोंके प्रणहार यक्षोपरचरित्रको सुनने-मानवें ही मिथ्यात्व और राम-मोह दूर हो जाते हैं तथा दिनपुर उद्वेष्य होता है ।

“गुणहृत्यु मदार सुभिर्ह, जे नर धनुविन मर्जे
दिय मी धरी बहू भाव ब्रह्म विणवास ह्म परिमर्जे
तेहमे सिचपुर ह्माम ॥”

सम्यक्त्वरारास

इसमें मयवान् रामकी कथाके द्वारा सम्यक्त्वकी महिमा बतायी गयी है । रामचन्द्र सुन्दर ही थे ही दिनकरके समान प्रतापघाती भी थे । वे दास्यबेता पहामठी धार्मिक और देवसास्य-मुक्तके परम मन्त्र थे । कविन उनकी मन्त्रिणी की है ।

‘अपर्धत जय जगि सार सुदर रामचन्द्र बलामिध ।
कश्मीधर भद्र भरत बाबुध्व ज्यारि पुत्र धरि ज्ञानीह्व ॥
कुल कमल दिनकर सकळ सास्य सुशानर्धत महामती ।
देव चर्मर्हं गुह परीक्षण रामचन्द्र सतिपती ॥१॥

श्रेणिकरास

इसमें राजा श्रेणिकरा वर्णन है । श्रेणिक मन्त्ररा राजा था । उसे विन्धसार भी कहते हैं । इसीका पुत्र अजातपातु था जिसे जैन दास्योंमें ‘कुणिक’ कहा गया है । श्रेणिक मयवान् महावीरके मीठा थे । रीयालीके राजा नेटकी एक लडकी विधवा सिद्धार्थ (महावीरके पिता) की पत्नी को और बूझटी बेचन श्रेणिककी पत्नी । श्रेणिक कहने बीडचर्मगुपायी बना और बारमें महावीरका बन्धन हो गया । महावीरके लमचरणमें श्रेणिक मुकद प्रत्य-वर्त्ता था ।

कविले इस रासके आरम्भमें ही लिखा है कि मैं मयवान् महावीरके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ और अन्य तीर्थकरोंकी भी स्तुति करता हूँ क्योंकि वे मनी-वाञ्छित को पूरा करनेवाले हैं । स्वामिनी धारधारर ग्योधारर होता हूँ मैं अष्ट बुद्धि प्रदान करती हूँ

१. इसकी सम्बन्धिता मी आदेररागधरारमें सूत्र है ।

'बार त्रिजवर और त्रिजवर बसुं ते सार
तीक्ष्णर चडबीसमु बरिष्ठर बहु दान दाठार
सारदा सामिनि बडी तनु बुद्धिमार हुं बेगि मागु
गणवर स्वामी नमस्करु श्री सकुड कीरनि मबठार
श्री मुचबरीरति गुणमनि चर करिसुं राम हुं सार ॥'

१२ मुनि चरित्रसेन (वि नं ११वीं अठारवींका प्रथम या द्वितीय पार)

मुनि चरित्रसेनकी समाधि नामकी रचना अत्यन्त हुई है।^१ इससे मुनि चरित्रसेनके जीवन और जीवनकाकथा कोई परिचय नहीं मिलता। समाधि'की भाषासे ऐसा अक्षर प्रतीत होता है कि यह १५वीं शताब्दीके उत्तरार्धकी रचना है। भाषामें सम्भाव्य अन्वयानुसार पञ्चासह और पाण्डित्य-वैसे अन्वय प्रयोग हैं। क्रियाओंके अकारणरुद्ध हीनसे अयत्नयवा पुट अधिक भासूम होता है। इसकी वैश-रूपा प्राचीन हिन्दीकी है।

यह रचना समाधि-भक्तिके अन्तगत जाती है। इसमें 'सुखदललओ अम्मदलओ समाधिमरण' के आदिकारो वि। मम होइ तिष्ठग बन्धन तव त्रिजवर चरन अत्येण' वाली भावनाका ही प्रभाव है। इसका अर्थ है कि समाधिमरण की अवधान बुद्धिपूर्वक रूपसे मिल जाता है। पद्यवर पीनमन लिखा है कि यदि अन्वयानुकी रूपसे समाधि मिल जाने तो अर्थ ज्ञान और चरित्र समृद्ध होते हैं और अन्वयानुद्धि बन जाता है,

'गणवर सामिनि ए त्रिज संति समाधी ॥

ईमल अणल चरित्त समिखी संमार्थी त्रिजदेवई दिष्टी ।

ओ करैह मो मग्गाइष्टी ॥२१॥

'समाधिमरण'के कारण करनेपर आत्मा और पश्यकके एतद्वही ही भावना भानी चाहिए। दोनोंमें कोई अन्वय नहीं है। दोनों पुनः-पुनः हैं। जीवन की वन और चरित्रन तकी अस्वाधी है कुछ समय बाद यह हो जायेगी। अन्वय है जीवन। अन्वयमें अन्वयका अनुभव करो

१ यह प्रति दिल्लीके सम्राट् अकबरके जन्म संवत् १५६० ई. में लिखी गई थी। अन्वयमें अन्वयका अर्थ है 'मिर्जर संवत् १५६०' और अन्वयका अर्थ है 'मिर्जर संवत् १५६०' की वृत्ति है।

‘घट्टमंड जाधि जिप्या बेहरथ विमिन्ना
 पुमण्ण कम्मदि अण्यत्त मिन्ना ॥ सम्माधी ॥
 बोद्धय जणिय धणु परिमणु णम्मय
 जीव हा । धमु मरीसठ होसइ ॥सम्माधी ॥३९॥

कविले एक स्वागपर किन्ना है कि नमिनापके समाधिभरणका स्मरण करो । ऐसा करनेसे अन्तःकरणका समुत्था विषय नष्ट हो जायेगा । फिर वह अन्तिम दिन धुम होगा वह मृत्युको भी ओतकर मङ्गल बोध दिवलीक प्रालन करेगा ऐसी दक्षिण धाकिनी समाधिका जो प्रतिदिन ध्यान करना है वह अवश्य ही अन्नरामर परकी प्राप्त करता है

“नेमि समाधि सुमरि जिय बिन्नु नासइ ।
 जिय पर मरकरि पाठ पणामइ ॥
 सोइहु सो दिवसु समाधि मरीइइ ।
 कम्मण मरणइ पाणिउ होइइ ॥
 घट्टमी समाधि जो अणु-विणु ज्ञावइ ।
 सो अन्नरामइ मिथ सुइ पावइ ॥५॥”

‘समाधि’की भाषासे सरलता है और भावोप भक्तिका चारुत्व । स्वाधा विनयाने काव्यको सौन्दर्य प्रदान किया है ।

१३ लावण्यसमय (वि स १२२१)

काव्यसमयका बचपनका नाम लक्ष्मण था । उनके पिताका नाम श्रीधर और माताका नाम जाम्बवती देवी था । उनके तीन भाई थे बन्धुपाक क्लिशास और मन्मथदास । एक बहन भी लीलावती । वे श्रीमामी शक्ति थे । उनके बाबा पाटनपरसे बहुमहाबाह्ये आकर बस गये थे । उनके सबसे बड़े पुत्र श्रीधर अन्नराम रहते थे । वही ही लक्ष्मणका जन्म हुआ था । उनकी जन्मतिथि पीप वरी ३ व १५२१ मानी जाती है ।

लक्ष्मणके जन्मासरोपर विचार करते हुए मुनि सन्नयल्लल उनके पितासे कहा मुझ्हाय पुत्र तपस्व स्वामी होगा जबका वह कोई तीव्र करेगा । कहा यति महान् विद्वान् और गुणके बचनोत्तर बलकर अन्त कहा ईशपी होमा

‘सुलभ श्रेष्ठि होसि तपधनी कई ए जासई तीरथ मणी
कई ए पासई मोरठ बती बर बिद्या होसई नृपनी ३३०३

इस हीनकार बाह्यनको तपनच्छपति अरुमीछागरमूरिसे जेठ सुबी दसमी (वि सं १५२९) के दिन पाठनके मध्य पारुषणपुटीके अणामरामें महोत्सवपूर्वक बीसा बी और बलना नाम आबन्धसमय रमा। इस प्रकार आबन्धसमयके बीसापुष अरुमीछागरमूरि और बिद्यापुष समररल से।^१

कविने स्वयं एक स्थानपर लिखा है कि सोमई वर्षमें मुझपर छरखती माताकी कृपा हुई, और मुझमें कवित्व अल्पिना कम हुआ। अिससे मैं अन्य कवित्त चौपई राठ और अनेक प्रकारके मीठ तथा राय-राबिनिबोकी रचना कर सका। सिद्धान्त चौपई इन्हीका एक प्रसिद्ध काव्य है। नन्दवतीबीकी रचना भी इन्होंने ही की थी।

आबन्धसमयकी क्वालि अनुक्तिमें व्याप्त हो बनी थी। बड़े बड़े मानी राजा-महाराजा घरदार और सामन्त जनके घरघोमें झुंजते थे। वि सं १५५५ में उनको पविष्ठ पर मिला। वे अनेक द्वेष-विरोधोंमें विचारण कर उपरोध देते थे। एक बार बिहार कस्टे-कस्टे खोरठ देशमें आये और गिरिनारपर ठहरे। इन्होंने अगहिअबाठ पाठनके पास माऊसमुद्र नामके चौधमें आशुर्मास किया। उस समय इन्होंने वि सं १५९८ में विमलरास की रचना पूर्ण की।^२ वि सं १५८९ में उनका स्वर्गवास हो गया।^३

‘सिद्धान्त चौपई’के आश्रित ही कविने लिखा है कि मयबान् जितेन्द्रके पीठोंमें

१. पुषवचने बईरानी अमु नाठ राठ पय लापी रहिउ
जेठ सुबी दिन दसमी तलठ ठकनबीघई अण्डव बजउ ।
पाठनि पारुषणपुटी पोठाक अज हुई बरपण मुसाक
दिई बीसा अति आर्षवपुरि मण्डपति अरुमीछागरमूरि ।
उंभ समय सङ्ग लापी समई नाम ठविठ मुनि आबन्धसमई
नबनइ बरय बीपवर लीब समररल गुब बिद्या बीब ।
श्री कव १-४१ ए ३० ।
२. छरसति माठ मया तब ल्ही बरस छोकमई बापी हुई
रबिबा राठ मुवर छबन कर कवित्त अउपइ बरब ।
बिबिब तीठ बहु करिआ बिचार एबीबा बीप छरस उंवार
श्री कव ४४ ४५, ए ३० ।
३. बरी कव ४२ ४३ ए ३० ।
४. अणुअरकविओ समय पान ए ३० पारिपयबी ।

नमस्कार करनेसे अपार हृष होता है। सद्गुरु प्रसादसे मुझ देवी सरस्वतीकी प्राप्ति हुई है। मे भगवान् महावीरके गुधाको पाता हूँ बिन्हीं तुमकर ही जीव सिवपुरी प्राप्त कर लेता हूँ।

आव्ययसमयकी अन्य रचनाओंमें स्तुतिमय एकवीथी—वि सं० १५५३ 'पौतमपूज्य वचनार्थ'—वि सं १५५४ 'आशोयम दिनती'—वि सं १५६२ 'नेमिनाथ हमबही'—वि सं० १५६२ 'छेरीसा पार्ष्णनापस्तवन'—वि सं १५६२ 'वैराग्यविनती'—वि सं० १५६२ 'विमलप्रबन्ध'—वि सं १५६८ 'अन्तरिक्ष पार्ष्ण विमलप्रबन्ध'—वि सं १५८५ 'सुमति साधु विवाहमो' 'यद्योमत्र एत' 'रंगरत्नाकर नेमिनाथप्रबन्ध' 'पार्ष्णविनस्तवनप्रभाती और वसुविद्यति-विनस्तवन भक्तिपरक कृतिमाँ है।

प्रायः इनके प्रारम्भमें सरस्वतीकी श्रद्धा की गयी है। नेमिनाथ हमबही के प्रारम्भमें लिखा है 'सरसवचन श्रीमो सरस्वतारे नापस्तुं नेमिकुमारो सामञ्जस्य सोद्दामनो ते रात्रीमती भरतारा रे हमबहा। अन्तरिक्ष पार्ष्ण विनस्तवन' म भी सरसवचनको सरसता मात बोकीस आदि अस रीत्यात लिखकर सरस्वतीसे पाचना की गयी है। 'सुमति साधु विवाहमो' में लिखा है, 'सरसति सामिनि विदु मविदान मज्ञ मनि अति उमाहृदय प। 'रंगरत्नाकर नेमिनाथ प्रबन्ध' में कई पद्योंमें सरस्वतीके पीत वाये बये हैं

'तुस तनु सोहई बरज्जक कवि पुनिम ससिहर परिसकळती
पप चमचम बुग्धर चमळकी हंमगमनि आळरु चमळती ॥३३॥
आळरु चमळती अणि अचळती श्रीगायुस्तक पवर परई,
करि कमळ कमळक अज कुंडक रविमंडक परिळणी करई ॥५३॥
सारु सार द्यापर दबी तुझ पप कमळ विमळ बंदेनि
मायु सुमति सरा वई देवी सुरमति वूरिचिकी भिंदवि ॥२३॥'

'पार्ष्णविनस्तवन प्रभाती' में भगवान् पार्ष्णनाथकी विनती करते हुए कविने लिखा है

१ सवक जिगंरह पाव ननु, दिखवई हरप अपार
अरार जेई बोळितिअं साजळ ममय विचार ।
छेविज सरसनि सामिची पाविज मुमुज पसाळ
सुनि धवीअज अज बीरजिन पाविज दिवपुर भाउ ॥१२॥
नेमिनाथकविचो प्रथम भाग १ ११ ।
नेमिनाथकविचो प्रथम भाग १४ ७१-८५ ।

“बाम्भानंदन त्रिवधर पास तुना त्रिपावन लील विकास ।

बिबलि छदि मवपाग हु पु ईर तुमाठ राम ॥१॥

रूपमदेवकी बन्धना करतें हुए, अनुविमलित्रिमत्तबनके प्रारम्भम हो गिया है,

“कनक ठिकक माळ हार दाईं निहाये

रूपमवध पन्नाके पावना पंक टाळे ।

जर त्रिवधर माळ छूटर पूक माळ

नरमय अतुभ्यळ राग निर्ई राम टाळे ॥१॥

वैराग्य विनयी मे भी भवनात् रूपमदेवकी ही विनयी की पत्नी है ।

मवपात् भवते तारनेवाके कीर मुक्के कारण है

“अथ पदम त्रिजंमर अति अकवमर आर्वाहर त्रिमुचनधर्मीव

अनुजय सुम्भकारण मुनि मरठारण वाचठवी सबक भयीय ॥१॥”

१४ सवगसुन्दर उपाध्याय (वि स १५ ८)

अथेयमुन्दर उपाध्याय बहतापकठके अयतु-वरमूरिवे सिष्य थे । उनकी मुक्त-वरम्पद्य इस प्रकार थी : अथेयवरमूरि त्रिजनुन्दरमूरि त्रिजगलमूरि कीर अयमुन्दरमूरि^१ । उनका समय वि स १५४८ के आठ-यास माना जाता है । उन्होंने छारुचिन्तामनरास की रचना वि स १५४८ में की थी ।^२

सारसिन्धुमनरास

इस रासम २५ पद्य है । इनमें जैनधर्म-सम्बन्धी अनेक शिष्टाशोका बरनेत्र हुआ है । इसकी मायापर मुञ्जलीका प्रभाव है ।

पार्ष्णप्रभुकी बन्धना करन हुए कविने लिखा है कि मे तेईसवें तीर्थंकर पार्ष्णनाथके पीरिय एकचित्त होकर प्रभाव करता हूँ । मुझे यह एकचित्तता मुझे प्रसादसे मिली है ।^३

१ कैमुत्तवरविषय प्रथम मान, पृष्ठ २७, पृष्ठ २२१-२२४ ।

२ कतरमाई बहनाकरें तवत्परि मवतिरि मुधि बसमी मुक्त मानुष्यपुति, त्रिगु त्रिगु मयळ अयकवर् ।

वरी, पृष्ठ २ पृष्ठ २२२ ।

अथपुके वर मन्तिरमे छारुचिन्तामनरासका जो यनि है अतस की रचनाअथक १८४५ वि स ही अस्ति है ।

३ मेचीमय्य थी वाचनाह प्रभु केरा पास

हु प्रभर्मु एकचित्त बई लही मुनुह पनाय ॥१॥

देवी सरस्वतीसे बरवान माँगते हुए कविने कहा 'हे माता सरस्वती ! मैं माँगते एक बचन माँगता हूँ कि आ कविराज मुझसे पहले हुए हैं वेरा मग उनके बरनोंमें बना गहे ।'^१

उपाध्यायजीने मन्त्रकार मन्त्र और शौरह पुराके प्रति मन्त्रिका प्रवर्धन करते हुए लिखा है मैं शमोकार मन्त्र और शौरह पुराका ध्यान करता हूँ । उनकी महिमा बपार है एक बिह्लासे वर्धन करते हुए पार नहीं पाया जा सकता ।^१

पुनर्मन्त्रिते अनुश्रुति होकर उग्राने लिखा है जो कोई इस नामको हृदयमें धारण करता है उसके सब पाप भुल जाते हैं और अत्यधिक सुख प्राप्त होता है । यह दुःखनाशक पार हो जाता है । उसे अधिकतम धारण करना है ।^२

श्री संयोगसुन्दरन अमल पुत्र कर्मसुन्दरको भी आराधना की है । उनके मुख निर्मल यद्यपि धारण करनेवाले से ।

१५ ईश्वरसूरि (वि सं १५९१)

ईश्वरसूरि सप्रेरणकर श्रीशान्तिसूरिके शिष्य थे । उनकी मुख्य-रचयण इस प्रकार है : यद्योमहसूरि शान्तिसूरि सुमनिसूरि और शान्तिसूरि । शान्ति सूरिका समय १५५ वि सं के आस-पास माना जाता है । इसी समय उन्होंने कामरसतपस की रचना की थी । यही ईश्वरसूरिका भी समय है । उन्होने वि सं १५९१ में कलिनायकत्वकी रचना की । ईश्वरसूरिने वि सं १५९७ में माहम्मदके मन्दिरमें आदिनाथकी प्राचीन प्रतिमाका उद्धार कर उस पुनः प्रति

१ माता सरस्वति देवि कन्हई एक मुखबन मानु
अ कविराज आगई हुआए तेह करण लागु ॥२॥

२. प्याऊँ भी मन्त्रकार मंत्र बहुर पुरन मार
बनबना एक बीमडीए न लहोअई पार ॥३॥

३ एक ममा जे शिम बगीछई मबना सईना पातिम नासह
होसई मुख तह अति धमुर ।

ए श्रितसिध्या निनु हईह बरस्य^४ दुखनागर त गिरधम सरस्यई
शिव मुख अविचन पामस्यह ॥२१९ ३॥

४ बघ कीरनि अह गिरधक ए जयगुजर जेह
संबेननिधि मुद मचहए मारापु तेह ॥२॥

द्विज किया था। इस प्रतिमाको श्री यद्योमदसूरि मन्त्रशक्तिके बचसे वि सं १९४ में काये से।^१

ईश्वरसूरिका दूसरा नाम देवसुन्दर भी था। उन्होंने जोबविचारप्रकरण विवरण 'कलितागचरित्र श्रोपाक चौपई' सटीक पद्मापालोच 'नन्दियेव मुनिके छह गीत बद्योमदप्रबन्ध और सुमतिचरित्र'का निर्माण किया। इनमें 'कलितागचरित्र'का दूसरा नाम 'रासकचूडामणि' और यद्योमदप्रबन्ध'का दूसरा नाम 'कस्तुचिन्तामणि' भी है। सुमतिचरित्र'की रचना वि सं १५८१ म बीनाजीके दिन नाडकाईके मन्थिरमें हुई थी। उसकी भाषा संस्कृत है। 'कलितागचरित्र' हिन्दी भाषाका काव्य है।

कलितागचरित्र

इसमें नृप कलितागका चरित्र बर्णित है। कलिताग मन्वान् विनेत्रका परम पत्न था। बच इस काव्यका मूक स्वर भक्तिसे ही सम्बन्धित है। इसकी भाषा हिन्दी है जिसमें प्राकृत और अपभ्रंशके अन्वेषका प्रयोग अधिक हुआ है। उसपर पुनराटीका भी प्रभाव है। ईश्वरसूरिके युव शान्तिसूरिके सापरररर चरित्र'में भी प्राकृत अपभ्रंश और पुनराटीका मिश्रण है।

इस काव्यमें छोलह प्रकारके अन्वेष प्रयोग हुआ है। वे अन्व इस प्रकार हैं: भाषा ब्रह्म रासटक बद्पर कुण्डलिया रसाज्जका वस्तु इन्द्रवक्रोपेण वक्रा बहिल्ल मडिल्ल काव्यार्थबोधी बहिल्लार्थबोधी सुडबोधी वर्धनबोधी यमकबोधी अन्वेष और छोरटी। इस पाँचि म्म काव्य विविध अन्वेष तो निवृत्त है ही श्लेष अक्षर और सरस पुनोपे भी संयुक्त है। कविले स्वय इसके काव्य-बीन्दर्वकी प्रशंसा करते हुए किया है

'मालांकारसमन्व सख्यन्व 'सरससुगुन्तर्हृषं।

कलिर्वाङ्मुरचरित्र ककलाककिचन्व निमुनेह ॥३॥^२'

१ नागुराम प्रेमीने भी इसके बाह्य और अन्त दोनों ही प्रकारके बीन्दर्वकी प्रशंसा की है।^३

१ माधवीन कैलियेज्जमय्य मुनि विवदिविचारी सम्पादित, विहीन धान ११२१ ईपू।

२ कैलासचरित्रके प्रथम भाग, पृष्ठ १०७।

३ कैलासचरित्रकी, तीसरी भाग, पृष्ठ ५१२।

४ हिन्दी के नव-मन-काव्यका इतिहास पृष्ठ १४।

भक्तान् पादार्चप्रभुके पूर्वमवका नाम कसिताग वा । उम्होंने जिनमन्त्री भक्ति से ही तीर्थकर पर प्राप्त किया था । उन यह चरित्र पादप्रभुके ही पूर्वमवका चरित्र है । इसी कारण कविने इसको पुष्प चरित्र कहा है

‘इष पुष्पचरित्र प्रबंध कविक्रमग मृपसंबंध ।

पहु पाम चरित्रह चित उदरिष एह चरित ॥०३॥

श्री ईश्वरसूरिने माळवाके राजा मनीसुहोन (१४९८-१५१२ ई) के प्रधान मन्त्री श्रीपुत्र (श्रीमाली बंध) की प्राचनासे इन कसित वाक्यवा निर्माण वि सं १५६१ में किया था ।

कवि ‘कसितावचरित्र’के प्रारम्भमें ही आदिप्रभु आपमदेव और ठेईछेई तीर्थकर पादार्चनाका ममस्वार करते हुए लिखा है

‘पहम पहम विनाद पहम निबंध पहम धम्म पुर भरमे ।

बसह बसह विनेछ, बमामि सुरनामिष पवबंध ॥ १ ॥

सिरी आससेज नरचर बिशाककुळ ममर मीगिदा ।

भार्गिद् सदिम पामो दिसद सिरी तुम्ह पहु पामो ॥ २ ॥”

१६. वसुस्मृत (वि० सं १५०१)

कवि वसुस्मृतका श्रम श्रीमन्नवयमें हुआ था । उनके पिताका नाम जसवन्त था । वे बड़े ही समर्था और सदाचारी व्यक्ति थे । उनके घर पुत्र-श्रम हुआ जिसका नाम वसु रखा गया । वसु के ज्यो-ज्यो बहन लगा उनमें जीवनकी मिष्टा भी बढ़ती गयी । वैन पुत्रजोके अध्ययनसे उनका मन बेसीरचरके चरित्रमें विषीय करते रहा । उन्होने वि सं १५७१ में बेसीरचरगीतकी रचना की ।^१

कवि वसुस्मृत ‘पहु गोवाचल अर्थात् ग्वाल्मिरके एनेवाके थे । वसु नाम

१ अमृतचरित्रो मयल माग, १४ १ ५ ।

२ वाचन निरीयल अह जनवन्त निहरी जिय जम परंत ।

अह जनन कवि बंधनी पुत्र एक ठाणें पर भयी ।

जनमन नाह जगुद दिन सिरो जीवनमें शिशु जोपट्ट परी ।

नेमि चरित्र ठाणें मग रहू मुनि पुत्रज उर नागो बहू ॥ १ ॥

आनेरताकअवधारकी इन्मिगिदा कवि । पर कवि १८० वि सं की है । इनमें १४ एव है ।

३ वरी, पृष्ठ २ ।

महासाम्राज्य मानसिंह का किरदार दे। कविने महासाम्राज्यके विषयमें लिखा है कि महासाम्राज्य मानसिंहका धर्म मुसलमान और साहजिक बन प्रसिद्ध था। उसके राज्यमें सब सुखी थे और राज्याके ममान ही प्रजा भी सुखोंका उपभोग करती थी। उनके राज्यमें ईश्वरपूजा भी बहुत प्रचलित प्रचलित हो रहा था। प्रत्येक भावक प्रतिदिन उन्हें आराधना कर्मोंका अतिशय रूपसे सम्पादन करता था। कवि चण्डिका भी ईश्वरपूजामें लिख्य करते हुए मयदानु नेमीश्वरके गीत पाते थे।^१

नेमीश्वर गीत

यह एक छोटा-सा गीत है। इन गीतका सम्बन्ध मयदानु नेमीश्वर और राजकुलके प्रसिद्ध वचनसे है। प्रारम्भमें ही कविने अपने भक्ति-पूज्य बाबाकी प्रशंसा करते हुए, लिखा है कि मयदानु जिनेश्वरके लक्ष्मण करनेवाला थीं वह समुद्रसे पार हो जाता है। ईश्वरपूजाको प्रशंसा करनेसे मुक्ति मिलती है। पारसाको ममानसे जगत् बुद्धि उपजाती है, और आशीराम मयदानु नेमीश्वरके गीत पातेसे पुत्र पीतम प्रसन्न होते हैं।^२

अन्तमें भी लिखा है कि इन गीतको पढ़ने और सुननेसे ज्ञान उत्पन्न होता है। प्रत्येक जोषका कर्तव्य है कि मन्त्रको निश्चय करके नेमीश्वरकी कविता पढ़ना।

‘पढ़न सुनन की उपर्यै भवान्
मन निहच्छ करि विष्य चरहु ।
राजमती त्रिभ संजगु जिन्ही
नेमी कुंवर ममी सचक मची मची ।

‘नेमि कुंवर नेमि त्रिभ कवि है ॥’

१. नेमि...नेमि कुंवर ममी सचक मची मची । यह योगेश्वरके प्रतिज्ञा था । एक छोटा-सा लंबा कवि तो वह राज मन्त्र करवीर । मुसलमान बाबा कुं साहजिक और मानसिंह बन मानसिंह । उनके राज सुखी सब लोग राज ममान करहि दिन भोग्यु । ईश्वरपूजा बहुत विधि जैसे भावय दिन कुं करे पटवर्म । निम्नलिखित कविने नेमि कुंवर नेमि त्रिभ कवि है । नेमि-कल्प १ पृष्ठ २ ।

२. प्रथम चण्डिका त्रिभ कवि मुदानु कर्मों सब साधक पावहि पार । कवि मुक्ति बुद्धि बुद्धि निरी, ईश्वरपूजा मुसलमान साहजिक । मुक्तिरूप उर्यै बुद्धि साधक साहजिक ममानसिंह लोहि । पुत्र पीतम को दिव्य पत्नी के पुत्र बाबा मयदानु ॥

१७ भट्टारक ज्ञानभूषण (वि सं० १५७२)

ज्ञानभूषण नामके चार भट्टारक हुए हैं। चारों ही मुख्यतः सरस्वतीमन्त्र और ब्रह्माकारणमयै सम्बन्धित थे किन्तु उनकी साक्षात् मित्र-मित्र थीं। प्रथम ज्ञानभूषण ईश्वर साखाके भट्टारक सकलकीर्तिके प्रसिद्ध और भुवनकीर्तिके सिद्ध थे। 'श्रीमद् बाहुप्रतिमा-सेखसंज्ञह' से प्रकट है कि वे सागवाड़े (बागड़) की नदीपर वि सं १५३२ से १५५७ तक वासीन रहे। ठडुपरान्त अपने सिद्ध विजयकीर्तिको भट्टारकीय पक्षपर प्रतिष्ठित कर स्वयं अध्यात्मरसमें मग्न रहने लगे। वे गुजरातके रहनेवाले थे। उनकी स्वाति चतुर्विधम व्याप्त थी। उन्होंने वेदक मन्त्रिरोका निर्माच गुप्तिवाकी प्रतिष्ठा और विविध टीचसेवोकी माषाएँ ही नहीं की अपितु विभिन्न वैष्णोकी बनताको ब्राह्म्यात्मिक रसका पात्र भी करया। वे व्याकरण छन्द अर्थकार, साहित्य तक और अध्यात्म आवि सास्त्र की कमसोंपर विहार करनेके लिए राजईस से और कुछ ध्यानामृतकी उन्हें कामसा थी। परमाधोपदेश' आत्मसम्बोधन' और 'तत्त्वज्ञानतरंविधी' उनकी विद्वताके दोषक हैं। गुजराती जनकी मातृभाषा थी। उन्होंने हिन्दीमें 'आशीस्वर पद्यु' की रचना की थी।

दूसरे ज्ञानभूषण वे थे जिनका सम्बन्ध सूर्य साखासे था। उनकी मुख्यपरम्परा इस प्रकार मानी जाती है वेदकीर्तिके (वि सं० १४९३) विद्या मन्दि (१४९९ १५३७) मन्त्रभूषण (१५४४ १५५५) छन्दमीचन्द्र (१५५६-१५८२) बीरबन्ध (१५८३ १६०)। ज्ञानभूषण बीरबन्धके सिद्ध थे। उनके पश्चात् ज्ञानभूषण ही भट्टारक बने और वि सं० १६ से १६१६ तक भट्टारक पक्षपर प्रतिष्ठित रहे। उन्होंने 'बीरबन्धररास' सिद्धान्तसारभाष्य' कम्पयमधी टीका और 'पोपहू रासदा' निर्माच किया था।

- १ संवत् १५४२ वर्षे ज्येष्ठ शुदि ८ तमी श्रीमन्मर्षे..... ॥
सकलकीर्तिके उत्पट्टे म श्री भुवनकीर्तिके उत्पट्टे म श्री ज्ञानभूषण
मुकुन्ददेवात् बागडा पोरबाड आसीय स बाहु मताजु'.....॥
जनेच्छान्, वर्ष ४ ६ ३ ।
- २ श्री बुधिसागरचरि, श्रीमद् बाहुप्रतिमा-सेखसंज्ञह प्रथम भाग, २६७, २७२ और २५ ६ प्रतिमा पृष्ठ।
- ३ मन्त्रिरोक वशाक्री, श्रीमद्विद्यान्तराखर श्री श्री श्रियु इ ४३ ४२।
- ४ भट्टारक उत्पत्ताच, बोहरापुरकर सम्पादित, श्रीमद् सङ्घति सरबन्ध तब होनापुर कि सं २४ ६ १६६ १६७।
- ५ श्री परमात्म शास्त्री बीरबन्धररास और भट्टारक ज्ञानभूषण, जनेच्छान् वर्ष १६ किण्ड ४ २, ६ ११६।

तीसरे ज्ञानमूषक अट्टरघाटाके अन्तर्गत हुए हैं। इस पाञ्चांग प्रारम्भ अट्टरक सिद्धकीतिसे हुआ था। अन्होंने अनेक मूर्तियाकी प्रतिष्ठा करापी थी। उनका समय वि सं० १५२ बिन्दु है। उनके बाद बर्मकीति और उत्पत्त्यात् शीकमूषक अट्टरक हुए। ज्ञानमूषक शीकमूषकके अनेक सिष्योंने प्रमुख वे अत् उनके उपरान्त ज्ञानमूषक ही अट्टरक बने। अ्योतिप्रकाश^१ के एक छन्दोच्छेपे पता चलता है कि अन्होंने बिरकालसे मुक्त हुए शैल शिषि पत्रकी पञ्चविको प्रकट किया था^२। वे १७वीं शती (विजय) के द्वितीय पारमें हुए थे।

शैले ज्ञानमूषक काशोर छाञ्चाके अट्टरक रत्नकीति (द्वितीय) के परचाप अट्टरक परपर प्रतिष्ठित हुए थे। रत्नकीतिका समय वि सं १७५५ से १७६६ तक माना जाता है, अत् ज्ञानमूषकका समय इसके उपरान्त ही माना जा सकता है^३। अन्होंने कतिपय मूर्तियोंकी प्रतिष्ठानके अतिरिक्त कोई साहित्यिक कार्य नहीं किया।

अ्यो सम्बन्ध प्रथम ज्ञानमूषकसे है, जिन्होंने हिन्दीमें 'बाहीस्वर पद्य'^४ की रचना की थी। इसके पूर्व जिनपद्यगुरिका 'बुलिमहोद्यु' और राजेस्वरगुरिका 'भेमिबाबोद्यु' बन चुके थे। 'पद्य' एक प्रकारका लोकगीत है। यह प्रायः बहन्तमें गाया जाता था। जाने बरकर अछका प्रयोग कितीके भी जानने-बर्चन और लील्यर्त निरूपणमें होने लगा। शैल हिन्दी कविोंने अन्तान् कितनेअकी

१ सं १५२ र्वे बाबाड सुवी ७ पुरी थी मुखसंवे म थी विनचन्द्र उत्तरे म थी सिद्धकीति अंनकभुकाअवे अचमी वास्तव्ये छात्र थी शिपी मार्गी हवा----- इतिहास प्रतिष्ठित ॥

कैसिसिअन्त्याअरमें अकारित प्रतिमासैव संभव १ ११। अट्टरक सम्बन्ध, कैसैव १ १।

२ श्रीशैलसिद्धिसिपनसिद्ध प्रकट

स्वकीयकार अचवान् कचनानुठीन ।

बाताबबोबिबिता विनय प्रपद्य

धीज्ञानमूषक पनेअममिधुमस्तम् ॥

अट्टरक संवत्साव सिद्धक १११।

३ नागीरके पञ्चीशब्दी अकारित बायानली कैसिसिअन्त्याअर १ १ ०० अट्टरक सम्बन्ध, पार सिद्ध ११।

४ रणकी एक इच्छाविजित प्रति (वि सं १११४), अयेरराअमवहार अन्तुरी अकालन्वा १८ ११ सिद्ध है। अर बातापुरामें राबदे श्री कृ बाकी अरेवासे सिद्धी ली थी।

महिमाके वर्धमें प्रागु का प्रयोग किया है । बनारसीवास आदि कवियोंने अध्यात्म प्रामुखा को भी रचना की ।

'आशीस्वरक्षणु भ संस्कृत पद्य और फिर उन्हींका भाव हिन्दी पद्यमें दिया गया है । इसमें भगवान् आशीस्वरका समूचा बीजमन्त्र वर्णित हुआ है । प्रत्येक तीर्थकरका जीवन पंचकस्यासकामें विभक्त है और इसी रूपमें उपस्थित करनेकी परम्परा पहलेसे बची आ रही थी । आशीस्वरक्षणु' भी इसी शैलीमें लिखा गया है । इसको रचना वि सं १५५१ में हुई थी । इसमें ५९१ पद्य हैं ।

समुने हिन्दी साहित्यमें सूरदासका शास्त्रार्थन प्रसिद्ध है । उन्हीने बाळक रूपकी अनेक मनीषामोक्षा विषय किया है । उक्त यह है कि वे इस क्षेत्रमें अकेले नहीं थे । मध्यकालीन शैव हिन्दी कवियोंने तीर्थकरके गर्भ और जन्मसे सम्बन्धित अनेक मनोरम विर्णोका अंकन किया है । इन अवसरपर होनेवाले विविध वस्तुबोकी छटाको सूरदास छु भो न सके हैं । यह शैव कवियोंकी अपनी शैली थी जो उन्हें अपनी पूर्ण परम्परासे ही उपसम्प्य हुई थी ।

इस छविमें आशीस्वरके जन्मोत्सव-सम्बन्धी अनेक वृत्त हैं, जिन्हें कविने विनयत् ही उपस्थित किया है । जन्मके पश्चात् तत्काल ही शत्रु बाळक-आशीस्वर को पाशुपुत्र सिद्धापर स्नान करानेके लिए ले गया । वैश्याप और-समुद्रसे रत्न-अटित स्वयं-कल्पामें बह भर-भरकर जान लये । उस समय विभिन्न जातोंसे विविध अग्निवा प्रस्तुटित हो बड़ी । उनके लिए उपयुक्त पान्थोका पुनाव कवि-सामर्थ्यका पाठक है,

“आहे रथन कवित अति मोटाड मोटाड कीचड कुंभ
 और ससुत्र घडू पूरीच पूरीच आभीयू जंम ७८१॥
 आहे दूमि प्रमि उचकीप बरजड प्रमि प्रमि मळक भाव
 एतज एतज टेकरज सिनि प्रिभि इकर साव ७८३॥

आशीस्वरकी यानि उठे मोतिमाका एक मोटा-सा द्वार पहना दिया है । उससे बाळकका शोभ्य बडा नहीं । वह एक बोझा-मान बनकर रह गया । किन्तु बेचारी यी अपने दिङ्गको क्या करे । वह अपने पुत्रको विविध आभूषणोंसे सजाना ही चाहती है । वह सोचती है कि बाळकका स्वामाधिक शोभ्य इससे और थी नइ चायेगा । मौकी यह क्षुत्ति भी कितनी स्वामाधिक है ।

१ आहे एकान्त कविका धन पचस कोक प्रमाण ।

पुनड मलिसिई कित्तिई से नर अतिहि मुजाव ॥

आशीस्वर पाणु, अन्धव्याजमन्त्रआशी इलास्मिदिन म्नि, १९११ ईश्व ।

आहे कांठ मोग़ा मोतीपनु पहिरायु हार ।

बहिरीबां भूपय रंगिन अंगि कगा रज मार ॥२८॥”

कविने बालकके प्राकृतिक शौचरसको विविध रूपमार्गके द्वारा अंकित किया है। उसका मुख पूर्वमासीके चन्द्रके समान है। अनुपम है। संसारके किसी पदावधि उसकी तुलना नहीं की जा सकती। उसके हाथ कस्तूरमाला की धाकके समान हैं और वे मुटमो तक लम्बे हैं। अर्थात् उस बालकके महापुरुष होनेकी सूचना देते हैं,

आहे मुख त्रिसु पुनिम अंश अरिन्दन मित पद् पीठ ।

त्रिसुचन मयम मध्दरि सरीयज ओई न होठ ॥

आहे कर सुरतक बरं कात समान सजायु प्रमाण ।

तेह सरीयज कहकहीं धूप मरुपरि अंगि ॥१७७१७९॥

शास्त्र-शौचरस कविनी कल्पनापर निर्भर करता है। यह जितनी उपलब्ध होती शौचरस उतना ही अधिक होता। यहाँ उसकी कमी नहीं है। बालकके नेत्र कमल-रसके समान हैं। अर्थात् कमलके पत्तों-बीजे शीर्षायित और सुन्दर हैं। बालककी बापीमें नीमकटा है। बालकके बाल बाल्य शौचरससे ही नहीं अकिन्तु आन्तरिक गुणसे भी युक्त हैं। उसमें समूने गुण इस भाँति भरे हुए हैं। जैसे मधो अरु बाकीन शरीरमें निर्मल नीर मय हो

“आहे मयम कमल रस सम त्रिक कामक चोकरु बाप्ये ।

अरु शरीरर निरमक सकक अकक गुण साभि ॥१७५॥

इसी भाँति कविने जनबानके निरालर बहनेका वर्णन किया है। आशीस्वर दिन-दिन इस भाँति बढ़ रहे हैं, जैसे छिठीयाका चन्द्र प्रतिदिन विकसित होता जाता है। उनमें धर्म-धर्म अग्नि बुद्धि और कविता प्रस्फुटित होती जा रही है, जैसे समाधिस्थानपर सुन्दर फूल खिल रहे हो

“आह दिन-दिन बालक बाबु भीर तनु त्रिम अन्द ।

रिद्धि विबुद्धि विमुद्धि समाधिछता कुक कुं ॥१९९॥

जीवन आनन्द आशीस्वर सम्राट् बन। एक दिन अपने दरबारमें नीकनगा नामकी मर्तवी मृत्य करठे-करठे ही विवर्णन हो गयी। सम्राट्के हृदयमें वैराग्यका भाव अरुण हुआ। वे सोचने लगे। आयु कमल-रसके समान कचक है तथा जीवन और मन परलोकके नीरनी भाँति अस्तिर है। पुन कल्प और मुनिवत मोह होता है किन्तु विचार तो यह करना है कि मरठे जनय नीर साथ देता है,

“आह आयु कमल रस सम अकक अरक सागिर ।

जीवन मन इस अधिर करम त्रिम करठक नीर ॥१९९॥”

“आह पुत्र कङ्कन्न मुमिन्न तपीय घरीय कहु सापि ।

तेह मंसारि विचारि कहु कुण भावइ सापि ॥१८॥

उनका कथन है कि आत्माके बिना यह घरीर किछो काम नहीं जाता जैसे सुदामके बिना पुष्य निरपक ही है।

‘आहे कुसुम अपम परिमल नीमपठ कहु केहउ सार ।

आपम बइ नहीं काम घरीरि न पुइ कगार ॥१८९॥”

अनेक बैन कवि ऐसे हुए हैं जो एक ओर संस्कृत एवं प्राकृतके विविध विज्ञान् वे अर्थात् सिद्धान्त और तर्कशास्त्रक पारनामोर्तिकाके वे ठो बूछरी ओर सहृदय भी कम न थे। उनका काम्य उनही सहृदयताका प्रतीक ही है। कवि ज्ञानमूपनकी बचना ऐसे ही कवियामे की जाती है।

१८ भट्टारक शुभचन्द्र (वि सं १५७३)

भट्टारक शुभचन्द्र पद्यनम्बिकी परम्परामें हुए हैं। उनका कम इस प्रकार है पद्यनम्बि, सनककीर्ति भवनकीर्ति ज्ञानमूपन विजयकीर्ति और शुभचन्द्र^१। इस धर्मि वे ज्ञानमूपनके प्रसिद्ध और विजयकीर्तिके सिद्ध वे। इन्होंने भट्टारक भी ज्ञानमूपनकी प्रेरणासे ही बाबिराजदुरिके पार्श्वनाथ काम्यकी पंक्ति टीका लिखी थी।

भट्टारक शुभचन्द्रका समय सोलहवीं शताब्दीका उत्तरार्ध और सत्रहवीं का पूर्वार्ध माना जाता है। उन्होंने सं १५७३ में आचार्य अमृतचन्द्रके समयसार कळर्षीपर अघ्नात्मतरमिणी नामकी टीका लिखी थी और सं १६१३ में वर्षी ज्ञानचन्द्रकी प्रार्थनासे स्वामीकार्तिकेयानुश्रेया^२ की संस्कृत टीका की। अतः उनका रचना-काल तो निरक्षय रूपसे वि सं १५७३ से १६१३ तक माना ही जा सकता है। उनके जन्म और मृत्युके विषयमें कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका।

भट्टारक शुभचन्द्र अपने समयके पञ्चमाग्य विज्ञान् वे। उनका संस्कृत भाषा पर अधिकार था। उन्हें “त्रिविधविद्याधर और पट्टमायाकविचक्रवर्ती” की परबियाँ मिली हुई थीं। न्याय व्याकरण सिद्धान्त छन्द अक्षरार बादि विषयोंमें उनकी विद्वत्ता अप्रतिम थी।

१ बाबिराजदुरिकेयानुश्रेया नामक स्तोत्र (१७-१७२) बैनचन्द्रपरमिणाम् प्रथम भाग, पृष्ठ ४२३।

२. ५ आचार्य राम मेनो बैन साहित्य और इतिहास पृष्ठ १७३।

१९ विनयचन्द्र मुनि (१९वीं शताब्दी प्रथम भाग)

मुनि विनयचन्द्र माधुर संघाय मठारक बाकचन्द्रके शिष्य थे । वे विनयचन्द्र मुरिसे स्वहत्या पुत्रक हैं । विनयचन्द्रमुरि चौदशवीं शताब्दीके रत्नसिंहमुरिके शिष्य थे^१ ।

मुनि विनयचन्द्र गिरिपुरके राजा अजयनरेशके राज्य-कालमें हुए हैं । उन्होंने अजयनरेशके राज्य-विहारमें बैठकर ही अपने 'बूनही काम्यका निर्माण किया था^२ । अजयनरेशका समय १६वीं शताब्दीका प्रारम्भ माना जाता है अतः यह सिद्ध है कि विनयचन्द्रका रचनाकाल भी यह ही है । इसके अतिरिक्त जिस बृत्तमें 'बूनही काम्य लिखा हुआ मिला है, वह निम्न समय १५७९ का लिखा हुआ है । इससे सिद्ध है कि काम्यका निर्माण वि सं १५७९ से पूर्व ही हो चुका था ।

'बूनही'^३

बूनही एक प्रकारकी ओड़गी है जिसे रैवरेड विद्य-मिश्र प्रकारके बौद्ध-बृत्ते

- १ माधुर-संघई अथय मुनीनर ।
वचनविधि बालईदु मुद मल-हृद ॥
मुनि विनयचन्द्र, बूनही, हृदय पत्र प्रथम दो बंधनों अनेकाल् वर्ष ५, किरण १-७, १ ११ ।
- २ कौमुदीकेकविनी, प्रथम भाग, पृष्ठ १ ।
- ३ वि-सुबधि गिरिपुर कवि विनयचन्द्र ।
तन्म-संघु नं वर-यकि आयत ॥
ठडि निचमठे मुनिवरै,
अथय करिचहो राय-विहारई ।
कौं विरचय बूनचिज सोइह
मुनिवर वे मुप चारई ॥३१॥
अनेकाल्, वर्ष ५, किरण १-७ पृष्ठ १११ ।
- ४ यह पुराण ५ अंतकालकी संतवाकी अजयनरेशके देराह नामक कौंके क्षेत्र अन्तिममें संरक्षित शासनप्रकारमें लिखा था । यह पुराण पुस्तकालय देराके अन्त्यमण्डलमें बृत्तमें सीरीस नाममें वि सं १५७९ अथवा हल्का अतिरिक्तो डिप्लोमेटाके पुत्र हल्लान राजाके राज्यकालमें लिख्य मल था । अनेकाल्, वर्ष ५, किरण १-७ पृष्ठ ११ ।
- ५ नव नाम की शिखर में वरा मन्दिर अथुराके पुराण सं ११ में भी उल्लिखित है । यह पुराण वि सं १५७७ कैलाप हरी का लिख्य हुआ है ।

दानकर रेंवता है । काम्यकी चुनड़ी बह है जो बिलर प्रकीणकोंसे छापी गयी हो । इसे चुनगी या 'पूषि भी कहते हैं । मुनि विमलचन्द्रके इस काम्यमें एक पत्नीमें पठिसे ऐसी 'चुनड़ी' छानेकी प्रार्थना की है जिस थोडकर जिन-यासनमें विचरामता प्राप्त हो जाय ।

'चुनड़ी में साकेतिक रूपसे बैनमम-मन्त्रकी खर्चाभावा संरक्षण है । उन्हें पढ़कर बैनधर्मके प्रति धडाका अग्र होता है ।

पत्नीको पूरा विरवास है कि ऐसी चुनड़ी में से चरदकामरी जुगुँपायी मीनि धीनक प्रकाश छिटकेया जिससे समूचा भक्षानाम्भवार तट्ट हो जायया । उसकी इच्छा है कि वह दौतक जुन्हाई उससे हृदयमें बैठ ही निवास करे जैसे कामसरोवरमें मंजुपू रहुती है

पयबडें कोमल-कुचकच-जयणी
अमिष शकम अल-सिष-यर-वयणी ।
पयारवि सारुदु काराह जिस
आ अंधारड सबसु वि जामइ ।
सा मट्टु निवमड माणमहि
इस-बच् जिस इकि सरासइ ॥ १ ॥

पत्नीमें मोह महातमरी ठाहनेके लिए बिलरके समान पंचमुरम भी प्राचना की है कि उसका पति ऐसी चुनड़ी लावे जिसके लहारे वह भव-समुद्रमें पार हो सके ।

'चुनड़ी की भावामें प्रातुन और जगजगके पगोवा प्रयोग अधिक हुआ है ।

१ हीरा रंज-श्री-गयदंती ।
पीरड विउ कामइ विरगनी ॥
मुंर आइ मु बैरहरि
मट्टु वप विरजड मुद्रम मुचकण ।
एर जिवावहि चुनदिय
मडें जिप-गामपि मुद्रु विपकण ॥ ३ ॥

२ बिगई कीरि पंच-मुन
बाह-महा-जय-नारद-विपपर ।
गड जिवावहि वरदिय
चुनड पकण विउ श्रीरि वि १ वरकण उपर ।

मदुरक शुभचन्द्रने 'पाण्डवपुराण की रचना वि सं १९८ में की थी। उत्पन्नचन्द्र ब्रह्मानं वि सं १९११ में करवम्बुचरित और वि सं १९१९ में 'स्वाधीकारितिकेयानुप्रेक्षा' की टीका लिखी। 'पाण्डवपुराण' की प्रपञ्चिमें उनके द्वारा लिखे गये २५ प्रश्नोंका बन्धक हुआ है।^१ श्री कस्तूरचन्द्रकी कासडीवालमें उनके ४ डे भी अधिक प्रश्नोंकी सूचना भी है।^२ मदुरक शुभचन्द्रने हिन्दीमें 'तत्त्वसार बुद्ध' की रचना की थी।

तत्त्वसार बुद्ध

इसकी हस्तलिखित प्रति 'टीकियाल शैत मन्त्रि कम्पुल के धास्व-अध्यासमें मौजूद है। इसमें ९१ पद्य हैं। भाषापर बुजरातीकर अधिक प्रभाव है। सरल भाषामें उत्तम भाव प्रतिष्ठित हो सके हैं। भाषाका लिख्यप करते हुए कविने किया है

'कर्मकर्मक विचारनो हे मिच्छेव होल विवाध ।

मोह्य तत्त्व की शिख कड़ी जानवा यालु अस्वास ॥१६॥

कविने यत्र और आठियोंके शेरको सर्वप्रथम माना है। उनकी बुद्धिमें उची कीचोकी धात्वा समाप्त है। आत्मायें बाह्यतत्त्व अपना धृष्टत नहीं आ उफ्ता क्योंकि उफ्ता स्वल्प उरतमाध रूप नहीं है। इसीको ध्यत करते हुए कविने कहा है,

'अल्प नीच कवि अपना बुद्धि

कर्मकर्मक तपो की तु सोह ।

बन्धव्य अशिव वैश्य न सुद्व

अप्या राजा नवि होल सुद्व ॥ ॥

आत्मा पवित्र है। वह शरी-निर्गत दुर्बल-सकल दुर्ग-नीच और तुल-तुल सबसे परे है। ये शेष सबे नहीं उठाते

'अप्या अवि कवि कवि निर्धन

कवि दुर्बल कवि अपना अल्प ।

दुर्लभ दुर्लभ होल कवि ते जाय

कवि सुखी कवि सुखी अतोय ॥०१॥

१ यही बुद्ध १५४ ।

२ मठलिप्याय श्रीकस्तूरचन्द्र कासडीवाल समाहित। नीम्बारातीली अठितानकेय कर्मकी कम्पुल, मन्दाप्या बुद्ध १९ ।

एक स्वानुपर कविते सिखा है कि कुछ विद्यामन्त्रक्य अपना भाव ही जान है। उसका विमलवन करनेसे मोह-माया दूर हो जाते हैं और सिद्धि प्राप्त होती है। आरमाफे सिद्धिमें ही मुक्त मिळता है जग्यजा नहीं

‘शान मित्र भाव कुछ विद्यामन्त्र
 शीतलो मूक्ये माया मोह गेह देहप ।
 सिद्धवर्षा सुखजि मळ हरदि
 जायमा भाव कुछ पृथप ॥९१॥’

गुस्की महिमाना उल्लेख करते हुए कविते स्वीकार किया है कि गुस्की ह्वाके बिना कुछ चिरूपके ज्ञान करनेसे श्रुत नहीं होगा। गुस्की ह्वासे ही कुछ स्वक्य प्राप्त हो सकेया

“श्री विद्याचकीर्ति गुह मनि बरी प्याऊं कुछ चिरूप ।
 महारक श्री ह्यमन्त्र मनि या तु कुछ सक्ये ॥९१॥”

ऐसा प्रतीत होता है कि इस काव्यकी रचना किन्हीं ‘बुलहा’ नामके धर्मप्राप्य व्यक्तिकी प्रेरणासे की गयी थी। स्वान-स्वानुपर उसका नाम आया है,

‘रोग रहित संगीत सुली रे संपदा पूरण ठक्य ।
 बर्मबुदि मन छुदि की ‘बुलहा’ बन्युद्धमि जाय ॥९१॥’

चतुर्विंशति-स्तुति

मट्टारक पुमचन्द्रकी यह इति श्री विद्याम्बर बीन मन्दिर बभीचन्द्रकी जय पुरमें मौजूद है। इसकी भाषापर श्री गुजरातीक्य प्रभाव है।

क्षेत्रपाळ गीत

पाटीरी कि बीन मन्दिर जयपुर गुटका नं ५९ में १९३० संस्मापर निबड है। इस गुटकेका कैलन-नाक दि सं १७७५ है।

अष्टाहिका गीत

यह गीत श्री लक्ष्मण मन्दिरके ही गुटका नं २१९ में पृ २१ पर संनिकित है।

१९ विनयचन्द्र मुनि (१९वीं शताब्दी प्रथम पाद)

मुनि विनयचन्द्र माधुर संशोच महारक बालचन्द्रके शिष्य थे। वे विनयचन्द्र मुरिसे स्पष्टतया पक्के हैं। विनयचन्द्रमुरि औरतुणो घणाम्नीके रत्नसिंहमुरिके शिष्य थे।

मुनि विनयचन्द्र गिरिपुरके राजा अजयनरेशके राज्य-नाम्ने हुए हैं। उन्होंने अजयनरेशके राज-विद्यारथे बैठकर ही अपने जूनकी काव्यका निर्माण किया था। अजयनरेशका समय १६वीं शताब्दीका प्रारम्भ माना जाता है, यद्यपि यह सिद्ध है कि विनयचन्द्रका रचनाकाल भी यह ही है। इनके अति रिक्त विद्युत् मुठकेमें 'जूनकी' काव्य लिखा हुआ दिखा है, यह विद्युत् पत्र १५७६ का लिखा हुआ है। इससे सिद्ध है कि काव्यका निर्माण वि सं १५७६ से पूर्व ही हो चुका था।

'जूनकी'

जूनकी एक प्रख्यातकी शोधनी है जिसे रैपरेज निम्न-लिख प्रकारके श्लोक-मुठे

- १ माधुर-संशोच प्रथम मुनीसच।
रत्नसिंहि बालचन्द्र मुठ वन-हृद ॥
मुनि विनयचन्द्र जूनकी, इतरा वर प्रथम दो शिकनों अनेकाल वर ५, विद्युत् ५-७ व २२ ।
- २ कैलुर्भकविजो, प्रथम भाव, पृष्ठ २ ।
- ३ छि-हृयनि गिरिपुर कवि विनयचन्द्र ।
उप-संशु वं वर-विक्रि जामर ॥
छि विचरते मुनिवरे
अजय भरिचहो राज-विद्यारथे ।
वेरे विरह्य जूनिय सीधु
मुनिवर जे मुठ वारथि ॥११॥
अनेकाल, वर ५, विद्युत् ५-७ वृ २२१ ।
- ४ वर गुणा ५ रीत्यन्तकी वंशवाको अजयनरेशके देराहू नामक शिकने कैलु मन्दिरेके उन्मन्दिना राजाअजयनरेशके शिष्य था। वर गुणा वृक्षमन्त देरके अजयनरेशके वरुमें सीधीन नगरमें वि छ १२७७ जेठ हुआ मन्दिनाको, लिखनरेशके पुत्र अजयनरेशके राजाअजयने लिख गया था। अनेकाल वर ५, विद्युत् ५-७, पृष्ठ २२७ ।
- ५ वर वा-५, श्री विनयचन्द्र कैलु वर मन्दिरे अजयनरेशके गुणवा वं २२५ में श्री वरिण है। वर गुणा वि छ १२७७ वैशाख शुक्ल ७ वा लिखा हुआ है।

डाक्टर होगा है। वायुकी बुनही वह है जो बिना प्रकीर्णकमें छापी मयी हो। इसे बुनही या भूमि भी कहते हैं। मुनि विमदधरके इस वाक्यमें एक पत्नीने पतिसे ऐसी 'बुनही' छपानेकी प्राथना की है जिसे बोझकर जिन-साधनमें विदग्धता प्राप्त हो जाये।

'बुनही में सकेतिक रूपमें शैवधर्म-मन्त्रकी बर्चसोंका संकलन है। उन्हें पढ़कर शैवधर्मके प्रति यदाका जन्म होता है।

पत्नीको पूरा बिन्दास है कि ऐसी बुनही मस दारदूकालकी मुहैयाकी पति सीतक प्रकाश छिपेगा जिससे ममूबा अज्ञानात्मकार गष्ट हो जायेगा। इसकी इच्छा है कि वह सीतक जुन्हाई समके हृदयमें बीसे ही निवास करे जैसे मानसरोवरमें हंसवपु रूठी है

पलकई कीमछ-कुसुम-जपमी
 अमिब गधम आज मिब-बर-बबणी ।
 पमारबि साबंदू आराइ जिन
 आ अंधारड सबसु वि नामह ।
 सा महु जिबमड माणमहि
 हस-बधु जिन हबि सरासह ॥ १ ॥

पत्नीने मोड महात्मको तोडनके लिए बिनबारे समान पंखगुले भी प्रार्थना की है कि उसका पति ऐसी बुनही साबे जिससे सहारे वह मस-समुद्रमें पार हो सके।

'बुनही की भावार्थ प्राण और अणुओंके पयाका प्रयोग अतिव हुआ है।

१ शीत रंग-मनि-जपहीती ।
 गोरड पिठ बोलइ बिलमनी ॥
 मुदर आइ मृ बहुरि
 महु बप विजयड गुह्य मुजवरम ।
 मरु जिगारहि बुनहिय
 हरे जिन-गामनि मुदरु विमरग ॥ १ ॥

२ बिलरि बरिबि बंध-मुह
 महु-महा-जप-गारम-विजयर ।
 पारु विगारहि बुनहिय
 मुदरु गजगह विड त्रोटिबि वर । बन्ना छरर ।

उपहा समूहा का प्राचीन हिन्दूवा है। इसमें कुछ ११ पद्य हैं। इन काय्यार एक विस्तृत संस्कृत टीका भी है। हिन्दु उसके रचयिताका नाम उसमें नहीं दिया है।

निम्नरपंचमार्गिधानकथा

इस कथामें भविष्यवतवा चरित्र लिखा गया है। भविष्यवत मयघानु जिनके का परम यज्ञ का। कथाका मूक स्वर भक्तिमें ही सम्बन्धित है।

प्रारम्भमें ही कविने पञ्चयुग सारवा और कामे युद्धके युग युधि उपमत्तकी कथा भी है।

“पञ्चविधि पंच महायुद्ध, सारव भविषि मयै।

उपपञ्चयु युधि भविषि सुमरिषि वाक युग ॥”

कविता विस्वास है कि जो कोई मध्ययुग इन कथाकी पद्या और पदांश हैं, उनके सब पाप सब-भाजन कष्ट हो जाते हैं। चिन्तु ऐसा तभी हो सकता है, जब कि वह बर्ष और शोभसे मूल्य हो और उसका मन बसमें हो

“भविष्यु पद्म पद्मपद्म हरिपद्म देवु जसे।

मद्यु म करहु म करहु मद्यु पंचयु कथको ॥” अन्तिम ॥

कविता यह भी कथन है कि जिन पापनाश प्रेरित होकर यह पंचमी कथा बनी गयी है वह सम्पूर्ण भाग भविष्य सिद्धिके वर्णन काय्यमें पूरा उपर्य है।

‘जेज अर्थसि महारा पंचमिय बच हो।

भम्भदि छ हरिमायि भविष्यु मिद्धिपदा ॥” अन्तिम ॥

इस कथाकी भाषा भी प्राचीन हिन्दू है। जिनमें अपभ्रंश और प्राकृतके शब्दोंका विषय है।

पञ्चकन्याय्यकरासु

तीर्थकरके बर्म काय्य उन भाग और मोलाकी पंचकन्याय्यक कहते हैं।

१ यह काय्य कन्याय्यक वर्ष २, वि.सं. १-७ में स.स. ११५-११९ तक प्रकाशित हो चुका है।

२ केकर पञ्चकन्याय्यक मन्त्रिर रिन्नी मन्त्रिर चन्द्रके संस्कृति मन्त्रालयी एक हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थि।

३ सुनि भिन्नकन्त्र निम्नरपंचमार्गिधानकथा हस्तलिखित ग्रन्थि, पञ्चकन्याय्यक मन्त्रिर, लिखा मन्त्रिर का।

४ पञ्चकन्याय्यक मन्त्रिर रिन्नी, मन्त्रिर चन्द्रके मन्त्रालयी हस्तलिखित ग्रन्थि है।

५ पञ्चकन्याय्यक मन्त्रालयी काय्य चन्द्रके, जो कन्ये देवार्द्ध नामके हस्तलिखित ग्रन्थि है, का रचना मन्त्रालयी है।

इस काव्यमें चौबीस तीर्थंकरोंक पंचकस्यामकोंकी विचित्रोक्ता उल्लेख हुआ है। यह उल्लेख बौद्धग्रन्थानुसृत है अतः प्रामाणिक है।

कविने लिखा है कि तीर्थंकरके पाँच दिग्गज कस्यामक सिद्धि प्राप्त करानेमें पूर्ण रूपसे समर्थ है।

'सिद्धि सुईकर सिद्धिपदु पञ्चसिद्धि ति अथपथापन कवक ।

विद्धिहि धरण भुष्यमिहव सबधरि जिनकहाणइ निपमक ॥

कविका विश्वास है कि मगवान् जिनत्रके पंचकस्यामकोंकी मन्त्रित सिद्धि करानेको विधीन करती है। यह जनेकानेक वृत्त-उपवासोंके बराबर फल प्रदान करती है,

“पुमस्तु पुरुमि कस्यामक विद्धि निश्चिपदि अहवइ गद्दाणक ।

तिहु आर्यवित्तु जितु मणइ, अडहु होइ उपवास गिहस्पहं ॥

अहवा सबकइ लक्षण विद्धि विजयचं इ सुणि कहिइ समरथहं ॥

मगवान् श्रद्धापूर्वक वासुपूज्य, विमलनाथ और नमिसमुकी कर्म-तर्जिमावा उल्लेख करती हुए कविने लिखा है,

'पहम परिह हुहवहिं आसावहिं रिमइ गम्मु तहि उत्तर सावहिं ।

अंधारी छह्वहिं तहिमि अंधमि वासुपूज गम्मुच्छक ॥

विमल सुसिद्ध अट्टमिहिं वसमिहिं नमिजिण अम्मणु तहवक ॥”

इस पद्यकी भी भाषा प्राचीन हिन्दी ही है। उसपर अनभिज्ञ और प्राकृतका प्रभाव है।

२० कवि ठकुरसी (वि सं १५०८)

कवि ठकुरसी अष्टोत्तराश्वत्थीमें उत्पन्न हुए थे। उनका पौत्र पद्मदत्त था। उनके पिताका नाम बेन्हु था जो एक कवि थे। उनकी माता जयतिष्ठ थी। बोनोका ही प्रमाण पुनपर पदा और ठकुरसी एक उत्तर कवि बन सके।

उनका जन्म अम्पावनी नामकी नगरीमें हुआ था जो उस समय धन वास्यावित्ते विभूषित थी। वही जनबाम् पार्ष्णीनाथका एक जिन-वन्दित भी था वही

१ बेन्हु मूनु गुण गार्डे कवि प्रयत्न ठकुरसी गार्डे ।

वैश्विख वेत्त पर्याण । श्रीवान वशीकृष्णजी जन्तुको दम्पतिविया म्नि, गुरका

बैठकर भट्टारक प्रमाणरु बर्मादेश देन के । वही तोयक नायके विद्वान् और
 लोका शास्त्र पारंग बाबुलोकान् नमिदास नाचुनि और मुस्तय आदि उद्यम
 पावक रहने के ।^१

कवि ठगुरमीने 'हृदय चरित्र' मैत्रमाकाव्यरचना 'दंभेन्द्रिय वेद'
 'नेमीसुरभी वेद' पारंगउद्यमसत्तावतीसा 'विस्तारविशयमात्र' 'सुषुप्ते' और
 लोकाभरस्तवत की रचना की थी । उसीकी माया प्राचीन हिन्दीका विद्वान्
 रूप है । उसमें यत्र-तत्र अर्थार्थके अर्थशास्त्र भी प्रकाश हुआ है । रचनाएँ सरल
 हैं । उसीमें प्रमाणरुप मौजूद हैं ।

सुषुप्त-चरित्र^२

कविने इस कृतिकी वि. सं. १५८ में पीप मासकी पंचमीक दिन पूरा
 किया था ।^३ इस काव्यमें ३५ उपाय हैं । इसमें एक कर्तव्यका आशो-देना चरित्र
 चित्रित किया गया है ।

कविके लक्षमें ही एक हृदय रहता था । वह कर्तव्य का और उसकी पत्नी
 लक्ष्मी तथा आदि। एक बार कस्तीने सुना कि बिरदारकी यात्राके लिए ईश
 का रहा है । उसने वही चक्रणका पत्रिष्ठ आग्रह किया । कविके कहे कि वही
 आकर इन अर्थान् अमिताभने वसत करेगे । त्रिभुंने मुक पशुवाणी करके वसति
 इतिहास ही वैराग्य कारण किया था । उसकी बन्धनास अम सङ्कट होता और
 अमर पद प्राप्त कर सकेगे^४ ।

अपनी बात सुनकर हृदय बेचैन हुआ और अपने एक दूसरे हृदय मित्रकी
 सम्मतिसे पत्नीका उसकी मर्के घर भेज दिया ।

१ व. कमान्तर शास्त्री, कविकर ठगुरमी और कविकर ठगुरमी, अनेकाल वर्ष १५
 किरा १ वृ १९ ।

२. व. व. काव्य कविकर ठगुरमी और कविकर ठगुरमी, अनेकाल वर्ष १५
 किरा १ वृ १९ ।

३. व. कविकर ठगुरमी और कविकर ठगुरमी, अनेकाल वर्ष १५
 किरा १ वृ १९ ।

त्रिभुंने मुक पशुवाणी करके वसति

इतिहास ही वैराग्य कारण किया था । उसकी बन्धनास अम सङ्कट होता और
 अमर पद प्राप्त कर सकेगे^४ ।

४. कमान्तर शास्त्री, कविकर ठगुरमी और कविकर ठगुरमी, अनेकाल वर्ष १५
 किरा १ वृ १९ ।

‘कृपण कहे रे मीठ मञ्जु बरि धारि सताई ।
 जात चाकि बलु ररबि कहे बी मोहि न भाई ॥
 विहि कारण बुद्धकाँ रपय दिन भूए न छाई ।
 मीठ मरणु जाहूँ गुम्हु आर्यो ए भागै ॥
 वा कृपण कहे र कृपण सुणि मीठ न कर मवमाहि बुलु ।
 पीहरि पदाइ ई पाविणी ज्यी को दिन ए हीइ सुलु ॥

अब संघ यात्रासे लौटा तो कृपणने देखा कि कई ज्योय बसीम घन कमाकर कामे है । संघे अपने न जानेपर बुलु हुआ । इसी बुलुसे प्रपीडित होना हुआ वह मरब-सम्पापर छेद गया । उसन कदमीसे प्रार्थना की कि मैंने तुम्हारी कीबन कर एकनिष्ठासे सेवा की अब तुम मेरे साथ बजो । कदमीने उतर दिया पून न तो वैशमन्दिरोमें जाकर मकवानक बर्षम-पूजनादिम ध्यान समामा और न ठीक-यात्रा प्रतिष्ठा तथा बतुविब संवाधिके पोषणमें जन ध्यय क्रिया अत में तरे साथ नहीं जा सकती ।

‘कथि कहे र कृपण झूठ हौं कहे न बोकाँ
 लु को कृपण बुइ देइ गीक कायी तासु बाकाँ ।
 प्रथम कृपण सुलु पडु देव देहुरें अनिज्यै ।
 बुजे जात पतिट्ट हाणु चउछंभहि दिज्यै
 न कृपण हुजे तै मजिभा ताहिनिहणी कया कर्काँ ।
 झलमारि जाइ तुं ही रही बहुरि न सगि घारे कर्काँ ॥

कदमीके इस बतरसे बाल्यिक बुलुकी शोठा हुआ कृपण मर गया । पत्नीने उसके बगकी पुण्य-श्रुतोंमें ध्यय क्रिया ।

इस जाति इस काव्यका मुख्य अंश कृपणकी कृपणतासे सम्बन्धित होकर भी भक्तिसे युक्त है । जिनकेकी भक्ति इस लौकिक तो कदमी—सम्पत्ति प्रदान करती ही है परकीनमें भी पुण्य कर्मके उपयसे कदमी—चरम शोभा मिलती है ऐसा इस काव्यका निष्पत्ति है ।

मेघमासाप्रसक्त्या

नवि ठकुरसीने इस काव्यका निर्माण चम्पावती नामकी नगरीमें बधिरबुध मन्त्रिदासके कहलैते वि सं १५८ आचन सुरी कठके दिन किया बा ।

१ यह काव्य अजमेरके मशरफ हर्षकाँचिते रायलभ्यटारके एक गुरकेमें भक्ति है ।

२ हाणु न साह महति धईते पहाचंभ पुब उपएसते ।

पहाचंभ सहकि असीते अम्बल सावण मासि छठिनिचय मयक ।

मेघमासाप्रसक्त्या अन्तिम मरान्ति, अने काव्य सं१४ विरल १ ५ ११ पार दिक्की ।

इसमें ११५ कवचक और २११ पद्य हैं ।

इस काव्यमें मेषमाहात्म्य करनेकी विधियाँ सांभोपाय वर्जन हुआ है । कवामें निरुद्ध होनेके कारण विधियाँके उत्प्रेषणमें कसता नहीं जान पायी है । यत्र-तत्र मयवान् विनेन्द्र और पंचपुत्रोंकी शक्तिकी बात भी कही गयी है ।
पंचेन्द्रिय वेद्ये

इसकी रचना वि. सं. १५८५ में कार्तिक सुदी ११ के दिन हुई थी । इसमें पाँच इन्द्रियोंकी बाधनाया विध लपस्वित किया गया है । यद्यपि इसका मूळ स्वर उपदेश है किन्तु यहाँ इसकी रम्य है कि पाठक रस-विभोर हो जाता है । इस काव्यमें कवच छद्म पद्य है ।

कविये प्रत्येक इन्द्रियकी हानि दिखानेके लिए, प्रायः बृहान्ताका उदाहरण किया है । इससे काव्यकी रमणीयता और भी बढ़ गयी है । प्राय इन्द्रियका सम्बन्ध बन्धसे है और बन्धतोस्तुनी सर्वत्र हानि लक्षणा है कविये बहु भ्रमरके बृहान्तसे पद्य किया है । एक भ्रमर भ्रमरमें इसलिये बन्ध हो गया कि वह रस भर उसके रसको अन्धाकर के सके । किन्तु सूर्योदयके पूर्व ही एक हाथो बाया और कमलको नाकसहित उड़ानकर पीरोसे कुछक रिया जिससे भ्रमरकी भी प्राय रवागने पड़े । कविका कथन है कि प्राय इन्द्रियकी बरवना स्वीकार करन बाधनायही हाक होता है^१ ।

१ इन्द्रो एक इच्छित्तिमि प्रति अमरराजमन्त्रात्, कल्पपुराणे मौख्ये है । न्व वि सं १५०० में लिखी गयी थी । एक प्रति मया मन्त्रिर ऐश्वरीमें यी है ।

२ संवत् पञ्चाशैर पिण्यास्यो तैरसि सुधि काठिया मासे ।
इ पाँच इन्द्रो बसि उरु लो इरत परत मुख बाधे ॥
कवि म्बुरली पंचेन्द्रिय वैदिक अमेरतामन्त्रात्की प्रति ।

३ 'कमल पयट्ठी भ्रमर विनि बाध कर रस क्व ।
रमणि पयोतो सवुत्सो नीसरि सक्तो न मुहु ।
छो नीसरि सक्तो न मुहो अतिप्राण संहरस क्वी ।
मनासि रमणि बबाई, रसकेसु बाधि अबाई ।
नव उनी लो रवि विमळो सरवर विगरी लो कमळी ।
तव नीसरिस्वो यह छेई रसुकेस्या बाइ बहीई ।
चित्ति निरी गनु इहु मामो विनकर अगिना न पायी ।
कलु पीठि सरोवर सोयो नीसरत कमल पाखडी छेयी ।
बहि सुधि पावतकि बायो अकि मारुवी बरहरि अँप्यी ।
यह गव विपै बधि हुनो अति अहुक अपुटी मुनो ।
अलि मरण करण बिठि बीन अति गनुबाधु डि बीन ॥१॥'
पंचेन्द्रिय वैदिक, ५ अमालन्त शास्त्री, कविर म्बुरली और कव्यो इन्द्रिय अनेकान्त, सं १४ दिनांक १ एव ११ ।

स्वर्गत्रियकी विषमता विखाकारे हुए कविन जित्ता है कि इसी इन्द्रियके कारण वनमें स्वर्गजन्म विचरनेवाला प्राणी सोहेही भ्रूणसाधामें बँधता है, और संकुचके पार्श्वको सहन करता है^१। कीचक राक्षस और संकरन भी इसी इन्द्रियके कारण जनेवों पुःत्र जठामे से।

नेमीसुरकी वेष्ट

इसका दूसरा नाम 'नेमिराजमती बैक भी है। इसका कोई स्पष्ट संवद् नहीं दिया है किन्तु अनुमान है कि जन्मभोग रचनाओंके भास-नास ही यह भी रचा गया होगा। इसमें भगवान् नेमिनाथ और राजसुरके भीवनका परिचय है। इसमें तीर्थंकर नेमीश्वरकी भक्ति ही प्रधान है।

पार्ष्वनाथ सकुन्त सत्ता पत्तोसी

इस काव्यकी रचना वि सं १५७८ में हुई थी। इसकी हस्तलिखित प्रति पं मूचकरजीके मन्दिर जयपुरमें गुटका नं २५ में अंकित है।

गुप्प वेष्ट

इसकी हस्तलिखित प्रति पं मूचकरजीके मन्दिर, जयपुरमें गुटका नं ९२ में लिखी है। यह गुटका सं १७२१ का लिखा हुआ है।

'विष्णामपि जयमाल' और 'सीमन्तर-स्तवन' का उल्लेख पं जसुरबन्ध कासकी वाक्यने किया है।^२

१ वन तस्वर फल घट छिद्रि, पय पीवत ह् स्वर्गर्धर ।

परसज इन्दी प्रेरियो बहु बुल सई बमन्व ॥

बाणो वाव संकुच चाके लो रियो मगकी चाके ।

परसप प्रेरहूँ बुक पायो तिमि अंतुच भावा पायो ॥

पञ्चद्विष बैल म्वाभन्दिर देरलीकी इलसिजिल मति ।

२ परसरा रस कीचक पूरपी गहि भीम सिखातळ भूरपी ।

परसरा रस राक्षस नामह बारपी जनेसुर रामह ।

परमज रस संकर राक्षी तिय जाने मन् ज्यो ताण्यो ।

३ यह काव्य भी वि जैन महा मन्दिर जयपुरके गुटका नं ६६ में और

भी वि जैन मन्दिर वपीण्णजी, जयपुरके गुटका नं ५ में अंकित है।

४ राजमानके जैन शास्त्रमहाशारेकी मन्थ मन्थी भाष ३ प्रकाशना पृष्ठ ६४ ।

२१ विनयसमुद्र (वि सं १५८३)

विनयसमुद्र उपदेशगण्डक हर्षसमुद्रके शिष्य थे। हर्षसमुद्रके भी पुराना नाम सिद्धिपुरि था।^१ विनयसमुद्रका रचना-काल वि सं १५८३ से १६५ तक माना जा सकता है। उन्होंने वि सं १५८३ में 'विश्वमयप्रकल्प चौपई' की और वि सं १६५ में 'रोहिण्येय रास' की रचना की थी। इन समय उनकी बाठ रचनाएँ बनकर हैं, सभी जगह एक समयके अन्तर्फल ही रची गयीं।

ये रचनाएँ इस प्रकार हैं 'विश्वमयप्रकल्प चौपई' 'आराधना चौपई' 'अंबड चठपई' 'मृगावती चौपई' अम्बडबाबा राम 'विश्वसेनरघावती रास' और 'पद्मचरित्र'। इनमें अंबडचठपई की मुनिरत्नमूर्तिके संस्कृतमें लिखी गये अंबडचरित्र'का माधार्क लेखक लिखी गयी है^२ अथवा सभी मौखिक है। इन रचनाओंपर मुद्रापीठा विशेष प्रमाण है।

विनयसमुद्रकी कृतियोंमें मन्त्रिके उद्धरण

'विश्वमयप्रकल्प रास'^३में ४६९ पद्य हैं। इसके प्रारम्भमें-श्री सरस्वतीकी मन्त्रणा करते हुए कविने लिखा है

“देवि सरमति प्रथम प्रणयेवि शीला पुस्तक कारिणी ।

अथ विहासि सु प्रमसि अलकह काममीरपुर बामिणी ॥

'पद्मचरित्र'^४में सीताका चरित्र प्रमाण है। उसके शीकरी महिमाका बचन

- १ श्री उषागण्डक बगहर मूर्ति, चरण चरण कुप चिरण मयूर ।
रथ प्रभु मुनदन मूर्ति, तनु अनुचमि अंघ्र सिद्धमूर्ति ॥
तेह नर बाबक हर्ष समुद्र तनु अमु अलक बीर समुद्र ।
तनु विनये विन का बुद्धि पण्ड रघु प्रथम निरखि ठपेह ॥
विश्वमयप्रकल्प रास पद्य ४६७-४६८, रामानन्दके जैनशास्त्रपरदातेकी प्रकल्पकी भाष १ पृष्ठ २६६ ।
- २ अंबड मेलन हृयो विहास तानु चरित्र सुखी रसाक
की मुनिरत्न मूर्तिको कह्यो तेहचरी धारारथ कह्यो ।
अन अउरी अन्निम प्रमणि ६१वाँ पद्य जैनशास्त्रपरदातेको, प्रथम भाष, पृष्ठ २६६ ।
- ३ वा काव्य, अमपुरने ऐतिह्योटे हि जैन मन्त्रिके पुत्रा नं १२ में अलिग है। रचनाकाकाल वि सं १५८३ लिख है।
- ४ पद्मचरित्रकी रचना वि सं १६५ में हुई थी। इसकी एक हस्तलिखित प्रति अमपुरके शासनपरदातेमें मौजूद है। वह मति वि म १६५३ अनाद भाग अमपुर १४ की लिखी हुई है। अमपुरके अलिग भाग १ पृ १०० ।

करते हुए कविने लिखा है कि जो कोई इनको कहुता और सुनता है उसके मन की सभी आधारे पूर्ण हो जाती है।

“कीपी कषा ए सीठा ठणी लीकठणी महिमा असु बणी ।

मापई मणिम्यो बड्ड गुण पुणी पूरइ भास सदा मव ठयो ॥१० ॥”

‘भाराम घोमा चौपई’^१के आदिम समयान् अरिहन्त और रत्नप्रपरी महिमा का बचन किया गया है।

‘यो जिन शासनि अगि अपठ जिति राजा अरिहंत ।

वधा बर्म मापठ मछड मप मंडय मगबंत ॥११॥

जिनवरि माप्या श्रीसुपड बोऊई जिति सुपवित ।

शान बनई हरिसज बकी चरण ठण गुणजठ ॥१२॥

रत्नप्रप से नर कही पाऊई ते नर प्रम्व ।

बकि बिसोपि संसज कही सुत संयोग सुपुण्य ॥१३॥”

‘मुवाबतो चौपई’^२के प्रारम्भमें श्री धारवा पुत्र चौबीस तीर्थंकर और भगवान् अरिहन्तकी बन्धना की गयी है,

“सासवि वैचति धारवा सुगुदनी ह्य समुद्र ।

बकि समरव अठबीस जिन धारज मवइ समुद्र ॥११॥

श्री जिनशासन धर नधर राजा श्री अरिहंत ।

समवसरम कहीठ समा मापइ श्री मगबन्ठ ॥१२॥

‘विमसेनपपाबतो राठ’^३में ‘नवकारमन्त्र की महत्ताका बचन किया गया है।

‘मवम क्षोर भवि हि बड्ड, होऊ कार जिमसार ।

अठिम सावरइ गंग बकि मंजु बड्ड नवकार ॥१॥

इसी राठके प्रारम्भमें भगवान् धाम्पिनाथ जो पौषर्षे बकरर्षी भी वे की बन्धना की गयी है।

१ भाराम शोमा चौपई बीकानेरमें वि स २५ २ में लिखी गयी थी। उक्तका आदि और अन्तका भाग श्री मोरलाल दुलीचन्द शेरामने दिया है।

बैतुगुर्जरकविभो लीमो भाग, पृ १२५ ।

२ मुवाबती चौपईकी टपना बीकानेरमें वि स २५ २ में हुई थी। पृ ५ १२१ ।

३ विमसेन कस्याली राठकी टपना ज्योपुरमें वि स २५ ४ में हुई थी। पृ ५ १२० ।

“मति त्रिज्वर मति त्रिज्वर सकल मुक्तकर
पञ्चम बके सर पञ्च सतिज्वर सति हुसिय हुसहर ।
अरर सवे त्रिपमद बहुरसर बाबब गलहर ॥१॥

२२ कवि हरिचन्द्र (वि सं की १९वीं छात्राका प्रथम बाद)

बीसोंमें तीस हरिचन्द्र हुए हैं। एक तीस लच्छनके प्रतिष्ठ कवि थे। उन्होंने ‘वर्षसर्मासुरय’ नामके प्रसिद्ध काव्यकी रचना की थी। दूसरे अद्वैत हरिचन्द्र थे जिन्होंने बस-बन्धन इत्यादि काव्यमयने किया है। उन्होंने बरत-टीका भी लिखी थी। प्रस्तुत कवि हरिचन्द्र इन बीसोंमें पृथक् थे। उनकी रचनाओंमें प्राचीन हिन्दीका विकसित रूप पाया जाता है। उनकी एक रचना वि सं १६२ के किये हुए गुणमें मिली है^१। हमने सिद्ध है कि उसका निर्माण वि सं १६२ के पूर्व ही हुआ होगा। कवि हरिचन्द्र अठ्ठवासे बंधमें अल्प हुए थे।

उनकी रची हुई दो इंडिया काव्य हैं ‘अनस्तमितप्रथमम्भि’ और ‘पंचरत्ना-नक’। बीसोंकी ही भाषामें प्राकृत और अपभ्रंशके लक्षणोंका वास्तव्य है। फिर भी उनकी भाषाका मूक रूप प्राचीन हिन्दीका विकसित रूप ही रहा था सज्जा है।

अनस्तमितप्रथमम्भि

यह काव्य १६ लक्षियोंमें पूर्ण हुआ है। पञ्चमिका छन्दका प्रयोग किया गया है। प्रत्येक लक्षिके अन्तमें एक पंक्ति है। इस काव्यका विषय राशि-भोजनके निवेदनके सम्बन्धित है। बीसों इतनी मनीष्य है कि निवेदकी कलाता रचनाओं की आभासित नहीं होती। कविने इस काव्यकी रचना बलि-भ्यसे की है, ऐसा अन्तमें स्वयं ही लिखा है

“मतिपु त्रिजु पञ्चवेवि बलद्विड बहुरावा छंवेन”

^१ ९ अन्तरेणके अनुसार अद्वैत हरिचन्द्र काव्यमय विद्वान्शिल्पके मार्ग का विकार लक्ष्मी थे। राजनेत्रने लिखा है कि अन्तरेणके काव्यकार अन्तरेण हरिचन्द्र और काव्यमय अन्तरेण परंपरिण हुए थे।

रचित ९ नाचुराम मंजी शिव साहित्य और शिवराम, अन्तरेण साहित्यका अन्तरेण मन्थुर १९१४ पृ ३ ।

अन्तरेण ‘अनस्तमितप्रथमम्भि’ रचना अन्तरेण की है। अन्तरेण मन्थुरके गुणका म १० में अन्तरेण है। यह अन्तरेण वि सं १६२ की ही थी का लिखा हुआ है।

छोबमें-अ भयवान् महावीरका स्नातोत्सव मनानेके लिए आया। जाते ही चौबीस ठीकठोको कुसुमांबिकि अस्ति की। भयवान् महावीरको प्रथम किन्ना। वे भयवान् ककि-मछ और कस्तुपको बह करनेवाले हैं। ठगका स्नातोत्सव बीबको सभी पापासे मुक्त कर देना है,

‘आइ जिनिहु रिउहु पणवणिणु, अइबीसइ कुसुमंबिकि इण्णिणु।
 बइइमाथ विणु पणविनि मांवि ककमलु कसुमवि अइइवावें।
 हुकइउ पावेण्णिणु मसुप अम्मु विणनाहें वेसिअ सुण्णिवि अम्मु।
 महु मउअ मंसु नउ अइकसेइ, पणुअर न कवाइ विगसइ ॥

कविने अन्तमें लिखा है कि वह इस काम्यकी गुरु-भक्ति और विन-भक्तिये ही पूरा कर सका है,

‘बीसवा अहू उजापं जापं गुरुमधिप सरसइहि पसापं ॥
 अमरवाक अरबंसे उप्पअइ मइइरिअइण।
 मधिप विणु पणवेवि पअइइअ पइइइवा अविण ॥

पअअइयाण’

कविने प्रारम्भमें ही लिखा है कि मैं उन त्रिनेत्रक पत्राधिक कस्यापोना बर्तन करता हूँ जिसके चरणोंपर इन्द्राके मणि-अठित मुकुट शुभा करते हैं,

‘अहू अहू मणि मुकुट वसु सुविठ अरण विवेहा।
 गम्माविक कइकाण पुम अण्णअ मण्डि विसेप ॥

चारों प्रकारके इन्द्र मन बचन और वाक्ये तीर्थकरके गर्भ अगम तप धान और निर्वाण कस्याचर्कोका महोत्सव मनाने हैं

‘गम्म अम्म तप आण पुण महा अमिअ कइकाय।
 अइविअ अहू आवकिअ मअअकाअ महाण ॥

छोबमें स्वयंके इन्द्रने अने अविज्ञानसे प्रभुके गर्भ-अस्वायका अदसर समसा और उसने बुद्धको प्रभुकी अगम-अपरीको सुन्दर बनानेकी आज्ञा दी

‘सौअम्मिअस अअअिअारा कइकाण गम्म विण अअअारा।
 अगरी रचना अगाइअभी सुअवेरसिअल सिअ अर अिअणी ॥’

१ इसकी इल्लुतिअन प्रति १९२४ ई के विण एक गुरनेमें अअअिअ है। गुरवा अणु अाणअण्णारागी अन अस्तिअअक वास है।

२३ देवकलदा (विष्णुकी १९वीं शतीका उत्तरार्ध)

देवकलदा उपदेशपरम्परेके अग्रगण्य देवकलदाके विषय थे। इनकी गुण-परम्परा इस प्रकार है देवकुमार कमलाकर और देवकलदा। देवकलदाके जन्म-स्वान्तके विषयमें कोई स्पष्ट बख्शिश नहीं मिलता। किन्तु उपदेशपरम्परीय होनेके नाते यह कहा जा सकता है कि वे बुधराज प्राणिके ही रहनेवाले थे। इनकी नायापर भी बुधराजकी अधिक प्रभाव है।

श्रुतिपदा

यह देवकलदाकी एक-मात्र रचना है। इसका निर्माण वि सं १५९९ में हुआ था। इसकी एक हस्तलिखित प्रति दिल्लीके छठ भूषाके विनम्बर जैन मन्दिरमें मौजूद है।

'श्रुतिपदा' एक कथा नाम्य है। श्रुतिपदा राजा सिहरणकी पत्नी थी। इन नाम्यमें उसके शीलमुचका उत्तम वर्णन है। अन्तमें सिहरण और श्रुतिपदा दोनों ही साधु-जीवाचारण कर लो और बहुरपुर नामकी प्रसिद्ध नगरीमें निर्वास-को प्राप्त हुए। बहुरपुर नगरान् शीलकन्यावरी जन्मभूमि मानी जाती है।

इस काव्यको उत्तमकोटिमें मिला जा सकता है। उक्तिवैचित्र्य और भावोन्मेषने ऐसा आकर्षण उत्पन्न कर दिया है कि इससे पाठकके हृदयमें तात्कालिक अवस्था ही ही बाठा है। आत्ममन्त्रमें समात्मपरमके निरूपणने 'रस को जन्म दिया है।

ध्यायमें ऐसा आश्चर्य है कि उपदेश अथवा वर्णनात्मकताकी गुणकता भी परत ही गयी है। सिहरणके पिता जनकरणके पुत्रोंके ईश्वरका वचन ऐसा ही है।

१ श्री कल्याण बर्द्धनियार बाबकर और श्रीदेवकुमार विद्या अरुण अणार।

ठासु पाठि उबधाय कर्मनापर हुमा सर्वबुधमभि रजयाकर पात्रनना बाबाए।

ठासु पट्टि उबधाय कर्मना देवकलदाक महिमाकल दिन-दिन ते करिबल।

अलिपता कोर्द अलिप प्रसिद्धि, १७ १९६-१९ अणुअंरकिकी, धाल १ पृ २३३।

२ वाग सीसरेव नकसिह इरनिह पनरत सह बुधराजरी करिहई।

अलिप शीलप्रथम ए अरित विविधता केरत।

शील उभाठ नापन कलबेरत सह प्रमट रजय ३

दिलम्बर जैन मन्दिर मठके भूषा विनम्बर हस्तलिखित प्रति।

‘कनकवत्यां परि तनु जमिराम त्रिभि कवकरम हीषड नाम ।
 गुणिवन संघ धनु तनु मयाह निरगुण हीषड मम कमकमह ॥
 सूरधीर समरोगधि धीर हाठा अछमिबि विम गंभीर ।
 शोकाह सुककिठ मजुरी बालि सहु को त्रिभि शोकाह अमिराम ॥१० १८॥
 शोकाह्री महिमाका बचन करते हुए कविन मुन्दर चन्द्रामें लिखा है
 सीकई हूह नीरोग पुण सीकई टकई किसेस
 सीकई क्य सक्य हूई, सीकि न हुन कष केस ।
 सीकई अम बगि विस्तरह, सीकि न हूई संताप
 सीकई संचई पुण्य धन साकि पलाकई पाप ।
 सीकई शोकाह सोऊ सवि बिजुप करई सुपसाठ
 हेमादिह सिद्धह तजड सीकई सपक उपाड ॥११-१२॥

जो नर-नारी भावपूर्वक ‘शुपिबसा जोपई’ को पढ़ते हैं और सुनते हैं उनके सभी मनोबाञ्छित काम पूरा हो जाते हैं वे सकल शास्त्रसिद्धान्ताम निपुण बन जाते हैं तथा वे नबरस मकठरथ और जिनबरके मुचोको पहचान उठते हैं,

वे नर नारी मावह मजिसिह,
 जोनी मम ककड निनु मुगिसिई
 माव सकरति मरपुरि ।
 निनु निनु त मनबंकिठ पांगह,
 सकक शास्त्र सिद्धंत बकापह,
 नब तठ नब रस बाधो बालह,
 जिनबर गुन बिहमति ॥१ १-३ २०

२४ मुनि जयलाल (विक्रमाब्दी १६वीं सताब्दीका उत्तरार्ध)

मुनि जयलालकी रचना विमलनाथस्तवन से मुनिगीठ श्रीवत् और गुरु-परम्पराके विषयमें कुछ भी विदित नहीं होता । यह रचना जिन गुटकेमें लिखी है वह बि. सं. १६२६ का लिखा हुआ है इससे स्पष्ट है कि मुनि जयलाल बि. सं. १६२६ से पूर्व कभी १६वीं सताब्दीके उत्तरार्धमें हुए हैं ।

विमलनाथस्तवन

यह बाबू तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथकी मूर्तिसे सम्बन्धित है । बैराठपुर (जयपुर रियासत) में बिद्यमान विमलप्रभुकी प्रतिमाके स्वरूप पर ही इन

१ पर बुद्धका श्री जयलालसाधवी जैन दर्शनार्थक मयारवें मन्त्र है ।

छन्दोका निर्माण हुआ है। कहा जाता है कि यह प्रतिमा बलिधामपूर्व की। उसकी मूर्तिसे पाप तो दूर भावते ही थे पुण्य-बन्धन भी उलझते होते थे। किन्तु मन्दिमें विमोह कवि बंधन तो चाहता ही नहीं मोक्ष को नहीं चाहता उसे तो मर घबमें जाने प्रभुके दर्शनको ही प्यास है

‘तुम दरसन मन हरपा खंदा खेम खकोरा की।

राज शिबि मोगड नहीं मरि मरि दरसन तोरा की ॥१३४”

मनवान्के दर्शन कर भक्तका हृदय हो जाता स्वभाविक है। अक्षर जैसे बन्धके बन्धन नर प्रलय होता है जैसे ही मन्त्र भक्तवान्को बेखकर बाह्यादित हो जाता है। छन्दोके बंधनसे ऊपर उठना आसान नहीं है किन्तु जो प्रभुके दर्शनको ही बन्धनमें चाहता है, उसके लिए यह कठिन भी नहीं है। कविताकी इन दो पंक्तियोंमें ही बलि-रस बीजन्त-सा ही उठा है।

कविता कवन है कि इस विश्वमें प्रभुके अतिरिक्त और कोई नि स्वार्थ भावसे उहासता करनेवाला नहीं है। निरवके उनी प्राणी यहाँतक कि माता पिता और बलिना भी स्वार्थके साथी है। इस कवनका तात्पर्य है कि प्रत्येक प्राणी भक्तवान् जिनका ही उहास ले भावका बाधन व्यर्थ है,

“मात पिता बलिना माई, स्वार्थि सबइ संगई की।

तुम्ह सम प्रभु कोई नहीं इहरत परति सहाई की ॥१३५”

बीजन्तपुरके घेरहमें जिननाथक भी विमलप्रभुका गुणदान करते हुए कविने लिखा है, वे प्रभु उक्त अर्द्धि विद्विगोके देनवाके हैं। उनको मरि करनेके मोक्ष तो स्वतः ही उपलब्ध हो जाता है। वे मनवान् अनुचित संनका संनक करते हैं, और समूचे पाताको बरसे कबाड फेकनमें धबर्न है। मुनि बयकाक बनना करते हैं कि हे भयनन् ! भाव बनना घुम-बर्शन मुझे सेवा प्रदान करें। इससे मरठका बीजन्त कुतार्थ हो उरेपा

“बैराग्युर भी विमल जिनवर सबक रिधि सिधि दापगो।

इमि धुलिड अरिहि निभइ सतिहि तेरमड विषवावगी ॥

भी सबक संनक करण संनक दुरिब पाप निभेदुनो।

भी बयकाक मुनिइ बरइ बेदि नाम मुईसपी ॥१७-१८४”

२५ भट्टारक जयशीलि (विष्णुकी १९वीं शताब्दीका उत्तरार्ध)

भट्टारक जयशीलिने मुनि भी जयशीलि भी कहते हैं। उनकी रचना ‘मधरेव परिम विठ कुटनेमें निबड है, यह विष्णु सं १९६१ बीबाब गुरी १९

का किया हुआ है।^१ और उनका काव्य 'पार्श्व भवांतरके छन्द' जिन गुटनेमें बंकिट है, वह वि० सं १५७९ का किया हुआ है।^२ इसमें प्रमाणित है कि उन्होंने अपनी इन कृतिमोंका निर्माण विक्रमकी १६वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें कभी किया होगा।

वह मुनिविद्यत है कि मट्टारक अथकीर्ति उग अथकीर्तिमें स्पष्टरूपेण सूचक है किहाने सम्बोनुमासन का निर्माण किया या और जो रामकीर्तिके मुद्रके।^३ वे संस्कृतके विद्वान् वे और मट्टारक अथकीर्तिकी उपसृजन लोगो रचनाएँ हिन्दीमें है। उनकी एक अन्य कृति 'ब्रह्मण्य उपदेशमाळा'के नामसे प्राप्त हुई है, जो दि शैल महा मन्दिर अथपुरक गुटका सं २५८ में लिखत है।

'पार्श्व भवांतरके छन्द का सम्बन्ध महाशान् पार्श्वनाथको भक्तिसे है। इसमें तीर्थकर पार्श्वनाथ पूर्व भवोना वर्णन हुआ है। पार्श्वनाथ शैतोंके तेईसवें तीर्थ कर वे। इस काव्यमें वर्णनकी सुन्दरता नहीं है, अपितु एक प्रवाह-सुख शील्य है।

२६ श्री शान्तिरंग गणि (वि की १३वीं शताब्दीका उत्तरार्ध)

श्री शान्तिरंग गणिको रचना शैलबाद 'पार्श्वजितस्तवन' उस गुटकेमें लिखत है जो वि सं १६२६ का किया हुआ है।^४ इससे निश्चित है कि वे इस संवत्से पूर्व कभी हुए हैं। सम्भवतः वे १६वीं शताब्दीके उत्तरार्धमें जीवते थे।

गणर शैलबाद शिवा शीतापुरमें है। उसके शैल मन्दिरमें पास जिनकी प्रतिमा विद्यमान है। कहा जाता है कि वह प्रतिमा अतिप्रमत्त है। उसमें कुछ ऐसी शीतरामता है कि उससे प्रत्येक दर्शक प्रभावित होता ही है। शान्तिरंग गणिके इसी प्रतिमाकी स्तव्य कर 'पार्श्वजितस्तवन' की रचना की है।

महाशान्धी महत्तामें भवतको पूरा विश्वास है। वह जानता है कि महाशान्धी द्वारासे अज्ञान तो दूर होता ही है किन्तु अज्ञान-अज्ञानके अनौपचारिक एक भी प्राप्त होत है। शैलबादकी सुशोभित करलेवाली पार्श्व जितेन्द्र की प्रतिमामें मोहिनी

१ वह गुटका का दि शैल महा मन्दिर अथपुरमें वेदर सं १६२६ में लिखत है।

२ वह मठका व दीक्षन्त शतनाथो दिगद् नामने पौर्वके मठमन्दिरके शाल्य अथकीर्तिकी शीव करते हुए प्राप्त हुआ था।

अनेकाल वर्ष ५, दिगद् ५-७ अथर १६७२ ई व २५०।

३ व महाशान्धी मठी अथमार्तिक अथ दिगद् ५ व ५।

४ वह मठका का व नामनाथगणिकी अथ अथ, अथके पास है।

सक्ति है किन्तु उस सौन्दर्यको भव्यजन ही देख पाते हैं। मुर मर, किन्तु नाम
बीर बरेन्द्र सभी भववान्के चरचाम मुरवर जाना जगम सफल बनाते हैं।

‘पाम त्रिर्लङ्ग लङ्कापाद् मंडल, हरपथरी निगु नमस्व ही।

शर तिमिर सच इन्द्रिहि हरस्वु मगर्भंठित फट चरस्व हो ॥

भुवचन दिनाक मरिच मग मीहद् अक्षुपम कौरभि साहद् हो।

मुर वर किन्तु बाग बरसर पञ्चमद् ग्रह सम पाचा हो ॥”

नगर टीकाकारके पार्ष्व त्रिभुजा का मंत्र बीर मग शैवोंको ही बख्शा
कमना है। उनसे दर्शन करन-मात्र ही मगजी सभी भूमिकापाएँ ऐसे पूरी हो जाती
हैं जैसे मागो व ब्रह्मानुस ही हो। कोई सग मगवान्से स्वभ-निष्पन्नचारिणी
सहमीनी वाचना क्या करे वह तो स्वर्ग ही भववान्के चरचामें स्थित होकर मुची
रहती है। आन्तरिक पक्षिने भी उन भववान्को प्रथम किया है, उन्हें विस्वास है
कि ऐसा करनेसे कुछ दिन-प्रति-दिन बढ़ना ही आवेगा

‘इव पास त्रिभुजर बचनमपहर कल्पतरुवर सौहव्।

भी बबर लपरापाद् मंडल भविष् जगमम मोहव् ॥

भी कनक त्रिफुल्ल सुमीस मुद्गर किङ्करी विनय मुचीसरो।

उद्यु सीस मधि आन्तरिक पञ्चमद् इवद् दिन दिन सुलकरो ॥

२७ श्री गुणसागर (चिन्मन्त्रे १९वीं अष्टाप्तीका उक्तार्थ)

श्री गुणसागरकी रचना ‘पार्ष्वत्रिभुवन श्री उपर्युक्त गुटकेमें ही निष्पन्न है
इस आचार्यवर जनका समय भी वि सं १९२६ से पूर्व माना जा सकता है।
उनकी दूसरी कृति ‘धाम्निनाथस्तवन अयपुरके ठीकियोंक शैव मन्त्रिकमें गुटका
नं १७ में अंकित है।

श्री गुणसागरकी शैवी ही कृतियाँ भक्तिसे सम्बन्धित हैं। पहालीमें भववान्
पार्ष्वनाथकी बीर कुमरीमें भववान् धाम्निनाथकी स्तुति की गयी है।

‘पार्ष्वत्रिभुवनस्तवन’ एक दर्शन-स्तोत्र है। इसमें भववान् पार्ष्वनाथके दर्शनकी
महिमा बतलायी गयी है। भववान्की भक्तिमें विमोह होते हुए कविने लिखा है
कि पार्ष्व-त्रिभुवनके दर्शनोपर लोकावर ही बाह्य है। उनके दर्शनमें मन रंग को
बीर बीत पायो। भववान्के दर्शन सभी संकटोको—बाह्य व मार्ग घाट बीर
सहायमें घटान्न हुए हो भववा मायपासके कारण जाने ही उपसम करनेमें
समर्थ हैं। केवल विघट संघट और वद ही धाम्त नहीं होते किन्तु बरे-बरे

१. पार्ष्वनाथके उक्त गाथाब्रह्मांडकी मन्त्रावली, भाग १ व २ १९२१।

दुरित और पापोंका भी निवारण हो जाता है। भगवान्के दयान्तरण सम्पत्ति (मोक्ष) के कारण हैं उसे प्राप्त करनेके लिए सभी आत्मन्त रंग और विनाश शोकावर कर देवे चाहिए,

‘पास भी हो पाप हरसम की बलि जाइये पास मनरंग गुण गाइये।
पास बाढ बाढ उद्यान में पास मार्ग संकट उपसमै । पा ।
उपसमै सकट चिह्न कडक दुरित पाप निवारणो ।
आर्जइ रंग विनोद बाक अये संपनि करणो ॥पा ॥”

२८ वृचराज (वि सं १५३०-१५९०)

वृचराज हिन्दीके एक प्रतिष्ठित कवि थे। राजस्थानके शैल शास्त्रमण्डारोंमें इनकी अनेक रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। किन्तु किसीमें भी उन्होंने अपना परिचय नहीं दिया है। उनकी प्रसिद्ध कृति ‘नेमिनामचरतु’में केवल इतना लिखा है कि वे मूलसंस्कृत अद्वैतारण परमनन्दिकी परम्परामें हुए हैं। उनके गंध और माता पिता आदिका कोई उल्लेख नहीं है। सन्तोषठिकक अयमाल’में रचना-स्यक्त द्विसार (पंजाब) दिया हुआ है। उनकी रचनाओंपर राजस्थानीका प्रभाव है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि वे राजस्थानके रहनेवाले थे। वे ब्रह्मवाक्यके नामसे प्रसिद्ध थे। ब्रह्मवादी होनेके कारण वे अन्त-अन्त हुएते फिरते थे अतः किसी ग्रन्थके द्विसारमें समाप्त करनेसे द्विसारको इनकी अन्तमूर्ति मान लेना प्रामाणिक नहीं है।

वृचराजका रचनाकाल वि सं १५३०-१५९० माना जा सकता है। ऐसा उनकी रचनाओंसे प्रकट ही है। यहाँमें अपना कुमार नाम बन्ध बोलक और बन्धु भी लिखा है। हो सकता है यह इनका उपनाम हो। इनकी कृति अविद्य भी। वि० सं १५८२ में इनको सम्भवतः कौमुदी’की एक हस्तलिखित प्रति पाठानुसन्तरमें भेंट की गयी थी। उनकी उपलब्ध रचनाओंका परिचय निम्न प्रकार है।

अपना सुख

यह एक काव्य है। इनका निर्माण वि० सं १५८९ में हुआ था। इसमें अयवान् आत्मदेव और कामदेवका सुख विद्याया गया है। अयवदेव मोक्ष कपी कर्मी प्राप्त करना चाहते हैं किन्तु कामदेव बाधा उपस्थित करता है, अतः सुख होना अनिर्वाय ही आता है। कामदेव प्रमुख उदाहरण मीठ माया राग देव है।

बसन्त ऋतुना पुनः । बहु पङ्क्तये जाकर कामनी जोतना मातावरण तैवार करता
 है । बुध एवं शुक्रेण नमा स्व वारण करती है । पुष्प विरचित हो जाती है ।
 मोक्षिल कृष्ण-कृष्णी रत्नकाठी है । अमर पुंवार करते हैं । मुनिनी शृंगार रचती है

“बसन्त बीसाल बसन्त भावत छत्रु बंध मिलित्तिर्ब ।
 शृंगार्य मकवा पवन सुष्ठिव अंब कोरुत सुष्ठिव ।
 रम्यस्थित्य केवह ककिय महुवर सुतर पठिह काह्व ।
 गावति वीच बसति बीया तच्छनि पाह्व आह्व ॥१७॥

सन्तोषप्रतिष्ठा

इसकी एक हस्तलिखित प्रति दि. जैन मन्दिर भावना कुँदी (राजस्थान)
 के मुद्रण संख्या १७९ में पृष्ठ १७ छे ३ तक संरक्षित है । इसमें १२३ पद्य हैं ।
 भाषा पदपर बोझ रत्न कवी अद्विष्ट राधा बंधामपु, गीठिका बोटक
 रदिकला आदि छन्दोका प्रयोग हुआ है । इस नाम्नी रचना द्विहार नगरके
 मध्य दि. सं. १५९१ माहपर सुदी ५ शुक्रवार, स्वाति नक्षत्र बुध लग्ने
 हुई थी ।^१

इसकी भाषा प्राचीन हिन्दी है । उपर रावस्थानीका प्रभाव है । इसमें
 कविले जोब मीह और रोपपर लिखते हुए सन्तोषकी महत्ता स्थापित की है ।
 इसका अन्तिम पद्य ‘रत्न छन्दमें है

‘पदाहि जे के सुख जापुहि
 जे सिकलहि सुख किलाव सुख आन जे सुपहि मनु करि ।
 ते अचिन्त नारि नर अमर सुखत भीषदाहि बनु प्यारे ॥
 बहु संतोषह अपठिक्य अचिन्त ‘बन्दि’ समाह ।
 संपत्त भीषिह संव कहु करह बीच किलराह ॥१२३॥”

जोपके प्रभावको कहते हुए कविले लिखा है कि बहु मुनियो तनको मही
 जोरता

“बल मन्दि सुनीसर जे बसहि सिव रमयि कोरु सिव हिबह मीहि ।
 इकि जोधि कामिा पर भूमि जादि वर करहि सेव बीड बीड मयहि ॥”

१ सन्तोषहु अपठिकर अचिन्त द्विहार नगर संज्ञ में
 जो सुपहि अचिय इक मज ते पादाहि भीषिय सुख ॥१२ ॥
 सवन् पनरह इत्यान बहुहि सिव पायिक पंचमी दिवसे
 सुख नारि स्वाति बुधे जेठ तह जाधि बंधना मेघ ॥१२१॥
 सन्तोषप्रतिष्ठाकी भाष्यरत्नाञ्जलि इत्यधिकार मनी ।

चेतन पुद्गल जमाळ

यह कृति अव्युक्त मन्दिरके जसी गुटकेमें पत्र ३२-४४ पर अंकित है। इसमें १३६ पद्य हैं। उनमें चेतनको पुद्गलकी संमति न करनेकी बात कही गयी है। चेतनको विभिन्न प्रकारसे साधवान कर शिवानन्दकी भक्तिकी ओर प्रेरित किया गया है। इस कृतिकी भाषापर अवलम्बका अधिक प्रभाव है। ब्रजभाषा शब्दाकी प्रवृत्ति उच्चरान्त है।

कविने एक पद्यमें लिखा है कि भगवान् जिनेश्वर इस संसारमें शीपकने समान हैं। इस शीपकने उचित होनेसे मिथ्याकी आशंका न भ्रम जाता है। इसी शीपकने प्रकाशमें यह शीप संसारकी लपटकी भी धरकर पार हो सकता है,

“शीपगु इहु सबनि जगि जिनि शीपा संसारि।
 बासु उद्व सहु भागिया मिथ्या विमल धम्पाह ॥१॥
 जिनि सासण महि शीबहा ‘बकह’ पचा नबकाह।
 बासु पसाए तुमिह तिरहु सागठ बहु संसाह ॥३॥”

भव-भवमें जिनेश्वरके पैरोंकी सेवाकी याचना करता हुआ भक्त कवि कहता है

‘करि बक्या सुसु भीलती तिभुचय्य वारण देव।
 भीर जिनेसर देहि सुसु जवमि जलमि पद सच ०२९॥

चेतन और पुद्गलमें यह मत है। चेतन शिरान्त है और पुद्गल बिलम्बर। चेतनमें गति है और पुद्गलमें जडता। जैसे फूल मर जाता है और परिमल भीमिग रहता है, वैसे ही शरीर नष्ट हो जाता है और चेतन दिग्धा रहता है। इस लक्ष्यको कोई-कोई ही जानते हैं

‘शुभ मरह परमसु भीबह, तिसु बाप सहु कोह।
 ईसु बकह काषा रहह किबल नरापरि होह ०८३०

कवि ब्रह्मन्त होनेमें निपुण है। जबतक मोठी लीपमें रहना है उसके सभी गुण पचायन कर जाते हैं इसी भाँति जबतक चेतन बड़ेके साथ है, उसे बुद्ध-ही बुद्ध भोवने पड़ते हैं

‘जब कगु मोठी लीप महि तब कगु समु गुल जाह।
 जब कगु भीबहा भंगि जह तब कगु पून सदाह ०१ ५३

टंडाणा गाल

टंडाणा टांड शब्दसे बना है। टांडना अर्थ है व्यापारियोंका जन्मना हुआ समूह। यह विरह भी भगवान् प्राणियोंका समूह ही है अतः इस गीतमें टंडाणा

धर संसारके अचम किया गया है। इसमें प्राणीमात्रको संसारसे छत्रप रज्जुके लिए कहा गया है,

“माय विद्या मुक्तमञ्जल सतीता बुद्धु मय खीय विराभाषे ।
 ह्यल परत त्रिम लक्ष्मर नामे ह्यहुं द्रिशा ब्रह्माभाषे ॥
 विषय स्वाराज सब जग बडे करि करि बुधि विनाभाषे ।
 अदि समाधि महारम रूपम मधुर विन्दु कपटाभाषे ॥

नेमिनाथवसन्तु और नेमीन्द्रवरका बारहमासा

बृषपञ्चमी के दो वृत्तियाँ अत्यधिक सुन्दर हैं। पृथ्वीमें नभभीषणा विरहिणी राजीमतीकी इन मनोरथपार्थिका विषय हैं, जो नमिनाथके अकस्मात् वीरपथ लेनेके उपरान्त ब्रह्मन्त आनेपर बना थीं। बृषपञ्चमी राजीमतीकी विरहावस्थाका वर्णन है।

पठिके बचका अनुसरण करनेके लिये राजीमतीने वीरपथ भी ले लिया था। तस्मिन्नी होनक उपरान्त नभभीषणा राजीमतीका ब्रह्मन्तको देखकर प्रथम अनुभव हुआ

‘असुत धनु कड मोर के ममि त्रिभु गढ़ गिरनारि
 गहने ममि मजुकक निह मयह, संजसु कुससु मछारि ॥१॥
 सतिच बसंत मुहाक र बीमह सोरठ हनी
 कोहक कुहकह, मजुकर सारि सब बयह बहसी ॥२॥
 विषलसिरी बह महकै हरि, संवत समसुन कारी
 गायहि गीत स्वराचरि, रंजिच गढ़ गिरवाती ॥३॥”

वद

बृषपञ्चमेके ८ पर रि जैन मन्त्रि नायका मूर्ती (राजस्वान) के पुटना नं १७९ पर १ पर लिखे हैं। दो पर निम्न प्रकार हैं—

‘रंग हो रंग हो रंगु करि त्रिबन्ध प्यार्थी
 रंग हो रंग होइ सुरंग निह मय कार्थी ॥
 कार्थी बनु मजुरंग ह्य सिद्ध अचरंगु पर्वगिषा
 बुक्ति रहइ त्रिड मत्रीठ कपडे ठेच त्रिण अनुंरिगिषा ॥
 त्रिबन्धगनु बरतव रंग ठिबक्यु इसदि कर्म रंगाव हा
 कवि ‘बन्ध’ काक्यु कोहु अथ रंगि त्रिबन्ध प्याव ही ॥३॥
 रंग हो रंग हो मुक्ति बरपी मजु कार्थी
 रंग हो रंग हो मय संसार व कार्थी

साईये बहु ससारि सागरि जीय बहु बुध साईये
 बिस बाहु बहुगति फिरया कोरे सोइ मारगु ध्याईये
 तिमुराह ठारजु ब्रह्म भरईये सुगुण निह गार्ह्ये
 कवि 'ब्रह्म' काक्यु छोह श्रंदा मुकति सिबरंग साईये ॥२॥"

२९ छीहल (वि सं० १५७५)

छीहल छीहलकी सताब्दीके सामर्थ्यवान् कवि थे। विविध सास्त्रमन्त्रारोमें बनकी पांच रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। किन्तु इनमें कविका शक्तिभित् भी जीवन परिचय निवृत्त नहीं है। इनपर राजस्थानीका प्रभाव है। अतः यह सिद्ध है कि वे राजस्थानके निवासी थे। इनकी कृतियाँ मुक्तक हैं। अर्थे भाष्यार्थिक भक्ति का निवर्तन कहना चाहिए। इनमें दो तो रूपक ही हैं। समूची मुक्तक रचनाको रूपके रूपमें निर्मावकी टीकी जीनाकी अपनी है।

पंचसहेली गीत

इसका निर्माण वि सं १५७५ फाल्गुन सुदी १५ को हुआ था। इसमें १८ पद्य हैं। भाक्ति राजसूनी छीपनी कसाकनी और सुनारिन पांच सहेलियाँ हैं। पाँचोंने अपने-अपने प्रियके विरहका वर्णन किया है। वास्तवमें यह परमात्मनका ही विरह है। जब प्रिय मिल जाता है, तो वह भी ब्रह्मके मिशन-वैसा ही है। प्रेम उत्पन्न होकर विरहमें पुष्ट होता है। उसकी साधना अचूरी नहीं रह जाती। प्रिय-मिलन होता है। अर्धे परम आनन्दकी प्राप्ति होती है। यह एक सुन्दर रूपक-काव्य है। इसमें पांच सहेलियाँ भिन्न-भिन्न जीनाकी प्रतीक हैं। उसका प्रिय-मिलन ही ब्रह्म-मिलन है। यहाँ रूपके माध्यमसे ब्रह्म-मिलनकी जगमें विरहजन्य पीड़ा मुख्य है।

भाक्तिका पति उसे बरे मोचनमें छोड़कर कहीं जाता गया है। उसका बुद्ध बनता है। कामक-बदन मूर्च्छा गया है और बनराजि-वैसा घरीर सूख गया है। सियाके बिना उसे एक-एक क्षण एक-एक बरसके बराबर कपता है। बिस घरीर कपी बुद्धपर मोचन-रखते मरे स्तनकपी दो नारपी कने ने वह विरहकी बलिमें

१ यह टीका कृष्णचन्द्रकी राजसूना मन्त्रि, बनसुरके मुख्या व १७४ में कविता है।

२ संवत् १५७५ पंचम पञ्चमसरे पूर्णिमा पञ्चम मास।

पंच सहेली बरनवी कवि छीहल परनास।

पंचसहेली गीत पंच १५, कपी मुख्या।

सूझने क्या है, और सीपनेबाका दूर है। उठने बग्यारी वैद्यकिंमि एक मया
हार गुंवा था। यदि वह इसे पतिके बिना पहुँचे तो बंबोकी बंधारों-ठा प्रति
वासित हो

‘कमकबदन कुमकाहवा सूखी मूल्य बनराह ।
बिज पावा रह एक दिन बरस बराबरि बाह ॥
तन तरवार एक कम्पोजा बुह नारिग रसपूरि ।
सूजन कागा विरह-दक मीचनदाय बुरि ॥
बग्यारी पंलकी गुंवा बबसर हार ।
बाह बुह पहिरत पीव बिन कागाह बंग अगार ॥

पतिके बिना विरहने तन्मोक्षीकी बोलीक भीतर बुसकर उठने घटिरकी
माय है। उठके पत्ते झड़ मने है और बेलि मूल्य मयी है। बग्यारी रात कम्पोजा
कुमर हो मया है। ब्रीधके सम्पन्न दिन बँडे बटें छाया देनेबाका नठि बरदेध
बका मया है। ब्रीधकीके बिलकी पीरकी बुठरा बान ही नहीं लपटा। उठके
तनकी बग्यारी विरहनी बर्गे बु बकनी बतरनीसे बिन-रात नाटका बज
जाया है पूरा म्यौन नहीं कैता। विरहने लसके बुसको नह कर बु बका लंवार
बिबा है, जिम्बु एक कपवार मी मिया है, बी उठकी देहकी बलाकर छार बर
बिया। इतठे लसको बु बोंठ मुनिज मिळ मयी। कथाकीकी देहपर मरमाठे
बोचनकी पत्र अतु बिलरी हुई है। जिम्बु नठि दूर है, अतः वह कितके ताव

- १ सूखी नहह तनोक्षी मुनि बगुटाई बाठ
विरहह मारपा बीव बिन बोकी भीतरि नाठ ॥२४॥
पाठ लंठे लव कज के बेल पाई तन मुनिज
कुमर राठि बसत नी मया पीवरा मुनिज ॥२५॥
तन बाकी विरहह रह पटीया बुलब बसति
ए दिन कुमरि लंठ भरह जाया मीव परवेति ॥२८॥
- २ लीकी लीपनि बाकीया धरि बुह बोचन मीर ।
बुवा बीह न बानई मीरह बीवह नी पीर ॥३१॥
तन बग्यारी बुह बगरनी बरजी विरहा एह ।
पूरा म्यौन न बोचर बिन-बिन नाटह देह ॥३२॥
मुन नाठ बुव बंधारया देही करि बहि छार ।
विरहह बीबा नठ बिन हम बग्यारी कपवार ॥३६॥

होधी खेले । उसे तो 'बिसूरि-बिसूरि कर मरना है।' सुनारिन बिरहूपी समुद्रमें इस भाँति डूब गयी है कि उसकी बाह नहीं मिल पाती । उसके प्राणोंको मदनरूपी सुनारने हृदयवपी अँधीठीपर बसा-बसाकर कोयला कर दिया है ।^१

कतिपय दिनोंके उपरान्त फिर वे पाँचों मिठीं । अब उनके चेहरे आह्लासित थे । उनका छाईं जा गया था । उनके बिल मुँहमें हील रहै थे । बियोप देने वाला बसन्त चला गया । अब वर्षाऋतुका आगमन हो गया तो पति भी जा गया है । मनकी सब आसार्एँ पूटी हो गयी है । तम्बोसनीन चोखी खोसकर, अपार पीचनसे भरे घातकों निकाला और पतिके साथ बहुत प्रकारसे रंग किया मगनसे मगन मिलाया । इसे ही रमस आह्वान कहते हैं । इसके लिए कबीरका बिल मचला था और उससे भी पूर्व मुनि रामसिंहका । ताबक बीच अब इहोसे मिळता है, तो ऐसे ही अँयसे अँग मिळकर मिळता है । बिना एक हुए वह एह ही नहीं छफता । तम्बोसनीका यह मिलन रहस्यवादकी गुरीयावस्था है । परम आनन्द उसीका पर्यायवाची है । वह मिलन देखिए,

“चोखी खोस तम्बोसनी काछवा पाप अपार ।

रंग कीचा बहु प्रीपसुं नवन मिळारै पार ॥५९॥”

पन्थीगीत

यह मन्दिर बीबान बधीचन्द्रजी जयपुरके मुठका नं २७ बेलन नं ९७३ में निबद्ध है । इसमें केवल छह पद्य हैं । यह भी एक रूपक-काम्य है । इसमें प्रचलित कथाका सङ्कारा कैकर रूपकनी रचना की गयी है ।

एक रास्तापीर राहमें चलते-चलते सिंहाके वनमें पहुँच गया । वहाँ रास्ता भूल जानेसे वह इधर-उधर भटकने लगा । ऐसी ही अवस्थामें उसे सामने एक मह मत्त हाथी आता हुआ दिखाई दिया । उसका रूप रौद्र था और वह खोचरै

१ पावा पीवन फल रिति परम पीया डूरि ।

रकी न पूटी थीय की मरठ बिसूरि बिसूरि ॥४२॥

२. ब.र. सुनारने पँचमी अँध करला दाह ।

हुँ तउ बुरी बिरहमह पाठ नाहीं बाह ॥४२॥

हीया अँधीठी मुसि त्रिय मदन सुनार अनैम ।

कोयला बीया देह का मिहमा खेर मुदाग ॥४६॥

अपनी दुःखोंको दूर-उत्तर दिशा रखा था। पवित्र भवमीठ होकर भावने क्या।
हाथी भी उनके पीछे-पीछे चल गया।

जैसे एक भग्ना कुर्वा था। वह भास-भूषणे ईना था। पत्नी उसे न जान
सका और समझे फिर गया। उसने एक तरफ़नी टहनी पकड़ ली जो दुर्रंकी
दीवारमें उन जाती थी। उसके सहारे कटकता हुआ वह बटिन कुछ पीपने
क्या। ऊपर हाथी लड़ा था चार दिशाओंमें चार छर्पे से नीचे अत्रपर मुँह
बाधे पना था। टहनीकी बड़को से बूहे पाट रहे थे।

उस दूरके पास एक बड़ना बूत था। उसमें मधु-मन्थिननोंका कटा
क्या था। हाथीने उसे हिंसा दिया। अवश्य मस्की उठने लगी। ठाव ही कतेसे
मधु भी बू घटा और लक्ष्मी बुरे पत्नीके मुँहपर गिरने लगी। लक्ष्मी रसना
लकन रसास्वादन के पठी। उस जानकरने वह अपने और दु लको मूक गया

“अहिसमो मधु कभो अहिर ऊपर पकृत रस रसना कोषी।

था ध्युं के सुच कामि लीमी सम्भे कुछ बीछरि गयी ॥२॥”

यहाँ मधुना बुरे ही सांसारिक सुख है। शीघ्र बन्धक है। अज्ञान अज्ञान
हाथी है। संसार ही कुर्वा है। पति छर्पे है। व्याभिनो ही मन्थिनो है। निचोर
अत्रपर है। यह संसारना व्यवहार है। अथ है पैवार। तू पेश था। जो मीठ
कपी निजामे लोपे है वे अत्यधिक असावधान है। घटीर और इन्द्रियोंके रक्षने
मटककर इसने जिनैन्द्र-बीठे परम ब्रह्मको मुखा दिया है। अतः प्रसफा नर-वत्य
धर्म है। अहिकरा नवम है कि अत्रक तू नावा शोर्न दुखोंको लख्न करता
रहा है। अब जिनैन्द्रकी बचायी मुक्तिसे तू मुक्तिके परम सुखको प्राप्त कर
सकता है,

“ससार की पड़ु बिबहारी पित जेवहु रे संवारो !

मोह निजा में से सुता से प्राप्ती अति बेगुना ॥

प्राप्ती बेगुना बहुत से जिन परम अह्न बिसारिनी ।

अम भुक्ति इन्दि तनीरसि नर अमम बूधा संवाहनी ॥

बहु काक नावा कुल हीरव सद्या 'अहिक' कहै करि धर्म ।

जिन भाषित उगतिस्त्री ली मुक्ति वद कहौ ॥२॥

उत्तरगीत

यह पीन भी अनर्कत मुटनेमें ही संदलित है। इसमें केवल चार पद है।
इति मुत्तर है। शीघ्र बठ नास धर्ममें रखा है। उसे अत्यधिक बह सखने बगुते है।

बहु सोचना है कि इस बार उबरनेपर जिनमन्त्री भक्ति करेगा । जगम उठा है । संसारकी हवा समीची है, तब वह मूल सब कुछ भूल जाता है ।

‘उत्तर अर्ध में हम मासाह रछौ ।
निद अधामुपि बहु संकटि मछौ ।
बहु मछी संकट उत्तर अंगरि चित्तै चिंता बगी ।
उबरी धनकी बार है हु मगति करिस्था जिजतपी ।
ऐसोक संकट परिदि बालै बहुदि जगत आसन कयो ।
संसार की अब चाहति जागि मूढ सब बीसरि गवा ॥१॥

बासकका जगम हुआ । जमीनपर लोटता रहा । जब कुछ लम्बी साँका लग रोकर पी लिया । मुन्से कार चुती रही । लयन-अकदम और भरपामरपमें कोई अन्तर नहीं किया । बासकपन खी रिया जिनबरकी भक्ति नहीं की । फिर यौवन आया उसके लक्ष्ये चारों ओर चूमा परचन और परणिको ताकता फिर । ऐसा करनेमें उसे आनन्द आया । किन्तु वह मूर्ख यह न समझ सका कि यह ‘विपश्यन्’ है, ‘अमीकन्’ तो जिनकी सेवा है । परबहु विचार देनेन नाम आया मोहने उसपर बधिकार कर लिया । भावपूर्वक जिनबरकी पूजा नहीं की यौवन व्यर्थ ही खी रिया

“आवन मागौ नर बिहु दिमि ममे परचन परतिव कपरि मनखी ।
मनखी परचन देनि परतिव चित्त झाइ नरचप ।
छँदै धमीकन् सेव जिनको विषय विपहक चाप ।
काम भावा भाह ध्यायी परबहु विस्तारिपी ।
पुत्रिषी न जिनबर भावमेधी कृपा जीवन डारीपी ॥३॥

बैरी बुझाया जा गया । सुधि-बुधि गह होने लगी । कालानि मुनना गन्ध कर रिया । नैत्रोकी ज्योति बुँदकी पत्र बनी । किन्तु जीवतके प्रति मोह और बधिक बढ़ गया । झीहकका कचन है कि हे नर । तू भ्रममें पडकर घटकना क्यों फिर रहा है । मुक्तिपूर्वक जिनकेन्द्री भक्ति कर । तू मुक्तिकोकारता आनन्द के सकेवा

‘जरा बुझाया बैरी आहवो सुधि-बुधि नाडी अब पछिगाहरी ।
बकिगाहवो अब सुधि नाडी धनख सबह न कृप ।
जीवन करणि करे ककच नचन मगग न न सूमर ।
अब कई छीहक सुधी रे नर, भ्रम मूढे कई किरी ।
करि मगति जिन को उगति स्त्री रवी मुक्ति छीहक बरी ॥४॥

पञ्चैत्रियवेदि

यह हति वि शैव मन्दिर पानीची बरपुरके गुटका नं १५ पृ १ ७ पर अंकित है। इनमें श्री मन्वो इन्द्रियोजी संवत्सिसे हटाकर त्रिनेत्र भक्तिजी और उन्मुक्त किया गया है। शैवीका वैश्व-साहित्य विद्यालय है। वैश्व धर्म संस्कृतके 'वस्ती और प्राकृतके बलि' से समुद्रमूत्र हुआ है। बाह्यमन्त्रके उच्चारण मान कर उसकी प्रकृतिशक्ति वृद्ध बनना बुझानवाची नामोमे अनिष्टि क्रिया जाता रहा है। शैव वैश्व-साहित्य तीन प्रकारका होता है। ऐच्छिकाधिक ब्रह्मब्रह्मकी और उपदेशात्मक। प्रस्तुत हतिका स्वर टीकरी प्रकारका है। अन्तमें त्रिनेत्र भक्तिजी और मौड़ शैवके कारण उसकी भक्ति-परकता भी स्पष्ट हो गई।

इसमें चार पद्य हैं। मन्त्रको सम्बोधन करके लिखा गया है। मन्त्र अर्थल है अष्टवनेकी उसरी आरण है। अष्टे आराध्यकी भक्तिजी और मौड़नेका नाम मन्त्र बलि करते रहे हैं। बनीरका 'पेशावकी की अर्थ' और तुच्छमीशसकी 'विनय-भक्ति' इस विद्याकी मूलत्वपूर्ण बतियाँ हैं। शैव और मौड़ बतियोका तो उच्चारण परम्परागत बतियार ही है। यहाँ छीहकल लिखा है कि यदि अष्ट पवित्र नहीं है तो अष्ट तप और तीर्थ सभी कुछ व्यर्थ है। पहले अष्टका पवित्र होगा आवश्यक है। अष्टका उपाय है मितवरका विनयन। उक्त अष्ट-समुद्र निरा या अष्टना है।

“कञ्चि विद-अंदि विद्यामी त्रिनेत्र नाम तु काव ।
 शैव अष्ट विरमक नाहीं का अष्ट-तप तीर्थ कराने ।
 का अष्ट तप तीर्थ कराने शैव अष्टोह न छोड़ी ।
 अष्ट अष्ट इन्द्री अष्टु मिष्याती अम्म अष्टकी धंकी ।
 तीहक अष्टे मुरागी रे अर बावरे शीत सवासी अष्टीप ।
 विनयन वरम अष्ट कीजे ती मन्त्र बुद्ध सावर तरोप ॥३॥”

नाम धारणी

इसमें ५ पद्य हैं। यह एक अष्टम नाम्यका निरखन है। इसमें विविध विनयार उन्मीन होकर लिखा गया है। अन्तमें त्रिनेत्रके नाम-आहात्म्यका अर्थ है। उक्त बतियोकी विनयारविद्यारे पर्येने तुच्छता की या अष्टनी है। यह हति मन्दिर टीकियान बरपुरके गुटका नं ११५ में संकलित है। इन गुटकेका लेखन-नाम वि नं १०१२ अष्टेक मुठी २ विद्या हुआ है। 'नामधारणी का निर्माण वि नं १५८४ में हुआ था।

३० भट्टारक रत्नकीर्ति (वि० सं० १६ १९५९)

रत्नकीर्तिके पिताका नाम सेठ बेबीदास और माताका नाम सहजकठे या । वे बीनोकी हुई बड़ जातिम उत्पन्न हुए थे । बागड प्रदेशका भोजानगर जनका जन्म स्थान था । बुद्धि तीव्र थी । बचपनसे ही सिद्ध होने लगा था कि बालक होमहार है । एक दिन वहाँ भट्टारक ब्रह्मब्रह्मि आये । बालककी प्रतिभामें उन्हें प्रभावित किया । उन्होंने माँ-बापकी स्वीकृतिसे बड़े शिष्यरूपमें स्वीकार कर लिया ।

भट्टारक ब्रह्मब्रह्मि अपने मुनिके स्थातिप्राप्त व्यक्ति थे । वे एक ओर सिद्धान्त कर्म्य ज्योतिष स्वाकरण आयुर्वेद एवं मन्त्र-विद्याम पारंगत थे तो दूसरी ओर व्यवहारकुशल तथा प्रभावशाली भी थे । रत्नकीर्ति उनके पास रहे, ब्रह्मब्रह्मि किया । कठिपय बर्षमें ही वे भी प्रामाणिक विद्वान् मान जाने लगे । मृत्युम तो वे ही । ब्रह्मब्रह्मिने उन्हें अपना पट्टाशिष्य प्रीणित किया और वि सं १९४९ में भट्टारक-पदपर अभिषिक्त कर दिया । वहाँ वे संवत् १९५९ तक बस रहे । कुछ पहलसे उनका रचना-काल माना जा सकता है ।

यदि कोई व्यक्ति विद्वान् हो चरित्रवान् हो सुन्दर हो और (किसी) उसके करना तब मूर्खपिण्ड होती रहती हो या वह अतिमालव ही नडलावेगा । रत्न कीर्तिमें ये सभी गुण थे । शीश्वरके जीवनमें घायर वे अपने मुनिके सबसे अधिक सुन्दर मुषक थे । वे दूसरे उषयन ही थे । शीश्वर संघमयी मुक्तिछन्दमी भावि बगल कुमारियोके साथ जनका विवाह हुआ था । उनके शीश्वरके पीत जनक शिष्योने पाये हैं । कवि बनेसकी कठिपय पंक्तिमाँ है

अथ शशिपुत्र सोई छुम माक है ।

बहुन कमक सुम बयन विसाक र ॥

बहुन शक्तिम सम रसना रसाक है ।

अथर विम्बाकक विमित प्रभाक है ॥

कड कमसुमम रेखाजन राजे र ।

कर किसकथ-सम बल कवि छात्रे र ॥

जनका शिष्य-परिवार पर्यन्त बड़ा था । एक शिष्या बीरमठिने वि सं

१ बलात्कारककी दरदराप्राप्ती ही एक कारण था सप्तमीकपुरके शिष्य ब्रह्म ब्रह्मिसे प्राप्त हुए । उनके शिष्य में ब्रह्मब्रह्मि । ब्रह्मब्रह्मिने शिष्य में रत्नकीर्ति । भट्टारक सम्बन्ध, अन्तराज्यमन्त्रालय शोभापुर पृष्ठ २ ।

१९९२ में अणुबल गृहकारणों की मूर्ति प्रतिष्ठित करायी थी।^१ शिष्य बरसापरने बरसापर नगरमें हुए प्रतिष्ठित-महोत्सवका बधन किया है। इसमें मटारक रत्न कीर्ति अथवा संवसहित शायिक हुए थे। शिष्यायें सुमुखबन्ध सर्वस्येष्ट थे। इनकी प्रत्येक रचनामें बुद्ध रत्नकीर्तिका स्मरण किया गया है। उन्हींको बि सं १९५९ में अपने पट्टपर प्रतिष्ठित कर रत्नकीर्ति निरान्त सदावीन हो गये थे।

उनकी रचनायें

मटारक-परते बनक उत्तरवाहित्य सम्बन्ध थे। उनका ठीक विवरण करनेके लिये बठोर हृदयकी आवश्यकता थी। अधिकतर मटारक ऐसे ही हो गये थे। किन्तु रत्नकीर्तिका हृदय सरस था। वे कर्मगत कवि थे। उनका मर्म सर्वत्र प्रकट होता था। उनके रचे ३८ पर इन कवनके लक्ष्मी हैं। रामुक्तने बहुत हटका कित्नु निन्दार मेव नहीं माने। हृदय फलकर बहु बड़े इस विरिणी कोर बालेभी आवाजा थी जहाँ नमीस्वर रहते थे। नहीं तो फिर भीर का करते। यहाँ तो कुछ भी बज्ज नहीं करता। रत्नी कभी समाप्त ही नहीं होती 'बरम्पो ब मांने भवम सिद्धेर।

सुमिरी-सुमिरी गुन मव सख्ख बन उमंगि ज्जे मति थीर ॥

बंभक बन्ध रहत बहिं राके, न मानव तु विहीर ।

नित उमि चाइव गिरि ज्जे माग व ही विधि चम्पुचरीर ॥

तव मव धन बीचन नहीं मावत रत्नी न आवत भेर ।

रत्नकीरति प्रभु वेग मिळो तुम मेरे मव के थीर ॥

नेमिनाथपागु^२

इसमें ५१ पर हैं। इनकी रचना हागीट नगरमें हुई थी। इसका भी सम्बन्ध नेमीस्वर-रामुक्तके प्रसिद्ध कथासंग्रह है। विपन्न कवियोंके बहुत कम

१. उ. १९९२ वर्षे ईशाब्द बरी २. गुन विने श्रीमूक्तने सरस्वतीनन्दे बकात्कारणने श्रीसुन्दरुन्दाचार्यनिये म. ब. मयचन्द्रदेवा उत्पट्टे न. म. मयनन्द तच्छिष्य आचार्य श्रीरत्नकीर्ति तस्म शिष्याभी बाई बीरम्ती निर्य प्रथमति श्रीमहावीरम् ।

परी केन्द्रक १९९, पृष्ठ १११ ।

२. नमिभिरस चम्पुपाठस्युं जे वास्य नर-नारि ।

रत्नकीरति मुरीवर बहे उ कहे धीर्य अपार ॥

हागीट माहि रचना रची प्यप राय केवार ।

थी विन जुन नग जाणीये छाट्या वर वासार ॥

नेमिनाथपागुकी स्तुतिदिन प्रति पृ. ५१ श्री वरदाकीर्ति सरस्वती-जन्म, अथमरीच ।

अनुसूची रचना की है। उनमें अट्टारक ज्ञानमूपणका आशीस्वरफणु सबसे बड़ा है। पिछके पृष्ठोंपर इसका संस्केष हो चुका है। अट्टारक विद्यागुणयके 'भेमिनाय फणु' में भी २५१ पद्य है। तीसरा ब्रह्मराममल्ल रचित भूमिनायफणु है। यह एक छोटी कृति है। प्रस्तुत रचना चौथा फणु है। इसमें रामुच्छकी सुन्दरताका एक चित्र इस प्रकार है,

बन्धुबन्धी धृगकोचनी मोचनी लंजन मीन ।
 बासग भीर्यो भेगिर्तु, भेगित्य मनुकर हीन ॥
 पुगक गक दाप द्यसि उपमा बामा कीर ।
 अघर विद्रुम सन उपमा इंतम् विमंक नीर ॥
 चिबुक कमक पर बह्पद् आबद् करे सुधापाल ।
 भीबा सुन्दर सोमती कण्ठु कपोकने बान ॥

नेमिबाराहमासा^१

यह एक कवु कृति है। इसमें केवल १२ श्लोक छन्द है। बिरहवर्णनके अन्तर्गत 'बाराहमासा' आवश्यक तत्त्व माना जाता था। बाराह महीनामें बिरहिनी-की क्या रथा होती थी यह विज्ञाना ही समीह रक्षता था। जामतीके 'नागमती बिरहवमन'^२ में भी बाराहमासा शामिल है। कविन 'अवेष्टमास का बजन किया है। इस मासमें काम अधिकारिक सदा बठ्ठा है। वह किसी सपामसे उपपन्न नहीं होता। इसकी ऐसी बेबीनी रहती है कि न तो भोजन अथवा लपता है और न कामूपन ही मुझाते है

'जा बेह मासे जग अकहरनो बमाहरे ।
 काई बाप रे बान बिरही किम रहे रे ॥
 अररत अररत उपमे अंग रे । अरंग रे अरताप दुल केदे रे ॥
 केहन कहे किम रहे कामिनी आरति अगाक ।
 बाह अहन नीर चिन माक बाने ब्याक ॥
 कपूर केसर ककि कुंकम केबडा उपवाक ।
 कमक एक अक कडेना बान रिपु बाने बाक ॥

१ इसकी भी इन्सिक्लिपन मनि कस्तु का मन्नामे मीचर है। इसकी अन्तिम प्रशंसि है कि संवत् १६१४ अये कालिकमासे गुरुच पसे अनुसूची विषी भीम विने किञ्चित्तमिर्ष पुस्तक अयपु। श्रीकाछाठने नरीतटपण्ठे विद्यापने अट्टारक भीविद्यामूपन तत् विषय ब्रह्मभी अयगाक पठनार्थ तथा परोपकारार्थ भवतु।

२. इसकी इन्सिक्लिपन मनि, वि. जैनविहार, सचीभी, अरपुरके पाणअथकारमें है।

‘हू हू बंदन पवित्रा करणी मांसि कचर मैकि अति करी ।

त्रिज्वर चरण पूजा करी अचर कर्म की भागी परी ॥

‘राज भोग केतकी मुखास सी माधिपा बंदक जास ।

त्रिज्वर जागै बरै पपाकि जाधि मुक्ति सिर बंभि पाकि ॥३१ ३२॥

सन्ध्याना समय है । पद्मनैराव मिश्रसहित अपने मन्दिरके ऊपर बैठे हैं । चौंसठोफी ओर उड़ते हुए पत्नी मातमानमें सन्न कर रहे हैं । सरोवरके किनारे जाते ही सगरा ‘पुष्क और भी मुकुरित हो उठा । बहूँकि बुझोपर ही सनके बोसके हैं । रिप्याबोका काल मुख काका पड़ गया है । बकवा-बकमी भी पुष्क-पुष्क हो गये हैं । विषम स्वाभाविकता है और रस भी

“विष गत मयी आनखो मान पंवी शम्भु करे असजान ।

मिथ सहित पचबंजै राव मन्दिर ऊपर बैये जाव ॥

देखै पत्नी सरोवर तीर, करै शम्भु अति गहर गहीर ।

इसी दिसा मुख कबो मयो बकवा बकिरी ऊपर कबो ॥

कविने वीर बाळकका बोजस्वी विष खोचा है । हनुमान् कत्रियके पुत्र थे । वीरता इनका स्वभाव था । इनके बाळ-तेजसे राम-बेटाएँ ऐसे विदीर्ण हो जाती हैं जैसे बाळ-सूयसे अन्धकार फट जाता है । सिंह चाहे छोटा ही हो फिर भी बलिबोको मारनेमें समर्थ होता ही है । सचन बुझोसि व्याप्य वन छिठना ही विस्तीर्ण हो अग्निना एक वन ही बसे ‘बकवानेमें समर्थ है

‘बाळक सच रवि बंदन कराय अन्धकार सच जाय पकाय ॥

बाळक सिंह होय अति सूरु इन्धियाय करे बकपूरो ।

सचन बूझ वन अति विस्तारो रचो अग्नि करे बह छारो ॥

जो बाळक अग्नि को होय सूर स्वभाव न छोड़े कोय ॥”

प्रद्युम्नचरित्र

इसकी एक इस्तलिखित प्रति जामेरघाटबगडारमें सं १८२ की लिखी हुई मौजूद है । इस काव्यकी रचना इरसोर गढ़के जिनैश्वर मन्दिरमें हुई थी । बहूँ देव घाटन गुरुके वन भावक कोप रहते थे । प्रद्युम्नमें अन्धता रचना-काल दि स १९२८ दिया गया है । प्रारम्भमें ही कपूके नाम तीर्थकरकी मन्त्रना करते हुए कविने लिखा है कि इनका स्मरण करनेसे मन उल्लासते भर जाता है । अत्यरु कोप दूर हो जाते हैं और दिव्याकीर्ण पुन उत्पन्न होते हैं

'ही वीर्यकर बंधू सगनाथ ।

योह सुमिरण मन होइ उकाह तो हुआ छ भर होय जी सी ॥

विह कारण रही बट पुरि गुण छापासीस सोमे मला बी ।

सोय अग्ररह क्रिया तूर तो रास मणी परधमन को जी ॥

सुदर्शन रास

यह रास कामरसोत्सवमण्डारमें मौजूर है । काम्यकी रचना बैसाब दुक्ला मठमो वि सं १६२९ में हुई थी । यह सम्राट् अकबरका राज्य-काल था । कविने अकबरके लिए लिखा है कि यह इन्द्रके समान राज्यका उपमांग कर रहा था । उसके हृदयमें भारतके पद वर्तनोंका बहुत अधिक सम्मान था

साहि अकबर राजहूँ, ज्यो म्येगये राज अति इन्द्र समाथ ।

और चर्चा उर राती नहीं अहो छ दरसन को रामै जी मान ॥१॥"

काम्यकी भाषापर मुद्राक्षोबा प्रभाव है और उसकी रचना साधारण ही रही जा सकती है । नगवान् आदिनायको प्रशाम करते हुए कविने मंगलाचरणमें लिखा है

"प्रथम प्रणमों आदि त्रिभिन् नामि राजा बुक उरपासी चंद ।

बगर अयोध्या अरुन स्वामी पूरण काल चौरासी सी जी आई,

मरने जी माठ हें उर भरिडं ॥

भाषाष्टरास

इसकी एक प्रति कामरसोत्सवमण्डारमें मौजूर है । इसमें ४ पमे हैं । मूल पद्योत्पी संख्या २७७ है । इसका कवि संवत् १६८९ और रचना सं १६३० है । इसमें राजा धीपादवी कथा है । वे कोटीमठ कहलाते थे । अर्थात् उनमें एक कठीर मठोंका बल था । लोचनमें कामदेवके समान थे । पूर्व जन्मके विवाहसे वे बाढ़ी हो गये । एक राजा अपनी बच्चा मैनामुन्दरीसे लाटाइ होकर उसका विवाह उनके साथ कर गया । मैनामुन्दरी भगवान् त्रिनेन्द्रकी मन्त्र थी । उनसे नन्दवान्की मन्त्र थी और त्रिनेन्द्रकी एव मूर्तिके प्रशासित प्रसन्न ही अपने पतिवा चौड़ ठीक कर लिया । धीपाद पिर कहने-जैने ही मन्त्रागमुन्दर ही गये ।

इस प्रकार काम्यमें त्रिनेन्द्रकी मन्त्र ही प्रमुख है । नवीरम चबानन और अविज्ञानपूर्व आर्षादे काम्यकी कलाय कोटिवा बना दिया है । भाषाने विविधता है किन्तु मूलकनेवाली नहीं । अंशक १८ इस प्रकार है

भासे वहीं मोहन भूषण कम कैरा माप ।

परी बरा में बान नीका राकि करें कर माप ।

मध्यकाव्येन कवियोंने 'विरह' का विवेचन करते हुए 'काम' शब्दका बहुत प्रयोग किया है। किन्तु यह 'काम' शब्द कामदेवका नहीं अपितु 'विरह' का पर्यायवाची रहा है। पहले 'विरह' के अर्थमें काम का प्रयोग होता था। अक्षिरायके काव्यार्त्ता हि प्रहृतिहृतना चेतनाभेगनेषु में भी 'काम' 'विरह' का ही प्रतीक है। अतः कोई यह न समझे कि नेमिनाथके विरहमें 'रानुष काम-प्रपीडिता' रहती थी।

३१ ब्रह्मरायमल्ल (वि सं १९१२)

ब्रह्मरायमल्ल सतरहवीं शताब्दीके प्रथम पारके समय कवि थे। उन्होंने हिन्दीके अनेकानेक काव्योंकी रचना की। इनकी माया सरस और प्रसादबुधसे युक्त है। इनके पूर्व सोलहवीं शताब्दीके अन्तिम पारमें पाण्डे राजमल्ल हो चुके हैं। दोनोंमें मेर साह है^१। पाण्डे राजमल्ल संस्कृत प्राकृत और जगज्जयके विपिह विद्वान् थे। उन्होंने हिन्दीमें तो केवल छन्द-शास्त्र लिखा है। छन्द-शास्त्रमें जो अधिकतर दुष्प्रान्त जगज्जयके ही हैं। कविवर बनारसीरायने इन्हीं राजमल्लका उल्लेख किया है। डॉ. बनारसीरायने इनकी राजमल्लके विषयमें लिखा है कि आप बीनामके बड़े भारी नेता एक अनुसरी विद्वान् थे^२।

ब्रह्मरायमल्ल कायसे ही कवि थे। उनमें हृदयगत प्रवाण था। उन्होंने जो कुछ लिखा हिन्दीम लिखा संस्कृत-प्राकृतमें नहीं। उन्होंने शैल नैय्यायिकी और शैलान्तिकोना भी अध्ययन किया था किन्तु इनकी शृङ्खलासे प्रभावित नहीं हुए। उन्होंने शैल शर्मके मूक दर्शनीको मानवकी मूक वृत्तिशेके साथ भावें बढ़ाया। इनके काव्योंमें सरसता है।

संस्कृत मन्नामर स्तोत्रवृत्ति^३की इनकी रचना माना जाता है। इसके आधारेण राजमल्लका शर्म 'ब्रह्म बंधन' हुआ था। उनके पिताका नाम 'महर्'

१ न. दाबूरायकी प्रेमीने दोबोको एक ही समझा था।

हिन्दी शैल साहित्यका इतिहास ५२।

२. ब्रह्मरायमल्लका शैल, हिन्दी शैल साहित्यका संक्षिप्त इतिहास, ५७।

३. संस्कृत शैल मन्त्रि, दिल्लीकी प्रिन्टिंग प्रेसके नाम सुनि उपलब्ध रहा है, मन्त्र इम विषयमें खोजकी आवश्यकता है।

और माताका नाम 'अम्मा' था। इनकी माता अनेक गुणोंसे सम्पन्न थी और बड़ा दिग् कार्य करती ही रहती थीं। वे जिनमन्त्री भक्त थीं और इसी कारण इनके पुत्र राममल्ल भी प्रती और 'जिनवादकर्मभूप बन सके थे। माताका प्रभाव पुत्र पर पड़ता है। ब्रह्म राममल्लके मुक्ता नाम मुनि धनस्तकौत्ति था। वे मूलसंघ पारसकण्ठके आचार्य रत्नकौत्तिके पट्टपर अचरित्यन थे।

ब्रह्म राममल्लके रचे हुए सात हिन्दी काव्य उपलब्ध हुए हैं। इनमें 'नेमी स्वरराम वि सं १६१५ में 'इनुवन्त कथा वि सं १६१६ में प्रद्युम्न शरित सं १६२८ में सुवधानराम सं १६२९ में 'भोवाठरास सं १६३ में और 'मविष्यदत्त कथा' सं १६३३ में रची गयी। त्रिदोषसंघटी वतकथा भी इन्हींकी कृति है। उसपर रचना-संबन्ध नहीं है। इनकी मायामें गुजरातीका पुट है। अयभ्रंशके शब्दोंका भी प्रयोग हुआ है।

नेमीस्वर रास

यह रास मयवान् नेमीस्वरकी भक्तिमें बना है। उसमें मयवान् नेमिनाथ तथा रामुलकी कथाका आशय लिया गया है। कथानकके इतिकर होते हुए भी काव्य साधारण बोटिका है।

इनुवन्त कथा

जैनोकी प्राचीन कथाओंके अनुसार हनुमान् अंजना-पुत्र थे। अंजना भगवान् त्रिलोकेशी परम भक्त थी। बुद्ध भी उरनुवन्त ही बना। जैनोके बन्मन्त्र रामकी भक्ति कर के अमर हो गये। आराध्यके मन्त्रोकी भी भक्ति होती रही है। हनुवान्की भक्तिमें भी अनेक काव्य और रासादिकोंका निर्माण हुआ है। 'इनुवन्त कथा भी उसी परम्पराका एक काव्य है।

वदन्तै राम हनुमान्के पिता थे। इनके यहाँ भगवान् त्रिलोकेशके पूजनकी रीतिरिवां हो रही हैं। सुमद्रुम और बन्दन पित्त लिया गया है। उसमें वपुर निम्न रिता है। वदन्तैके वृत्त संवदा लिये हैं उनमें-ते गुणलि बिलस रही है। वदन्तैग वृत्तकी वाली मयवान् त्रिलोकेशके चरणोमें समविष्ट थी। उन्हें विन्वान है कि ऐना वरमते आत्मा गुप्त होगी और एक दिन बोट भी दिन आवेगा

१ म म सम्भवतः अज्ञानता प्रथम भाग, रिक्की १ १ ।

२ इगदी एक इगदीग वद, मेड कथाके अदिर रिक्की ३ तथा एक इगदी म म रिक्की ३ म म इगदी म दैग है। इगदी म दैग के अन्तमें अज्ञान-वाम वि म १६१६ वदन्त वदी मवदी रिक्की है।

‘हृ हृ चंद्रम घटिवा परणी मांसि कपूर मेकि धति घनी ।

त्रिधर चरन पूजा करी जहर जगम की याकी घरी ॥

‘राज’ मोग केतकी सुवास छो घाधिवा चंद्रक वास ।

‘त्रिधर’ भरी भरी पचाकि जाति मुकति सिर बंधि पाकि ॥११ ४२॥

छम्पाका समय है । पवनचैराज मिर्भोसहित अपने मन्धिरके ऊपर बैठे हैं । बौद्धलोकी ओर उड़ते हुए पक्षी वासमानमें उड़र कर रहे हैं । छरीरके विगारें जाते ही वज्रा ‘पुष्क’ और भी मुकुरित हो पड़्य । वहाँके वृक्षोपर ही उनके मोसके हैं । विद्याकीका काक मुस काका पत्र पया है । चक्रवा-भकवी भी पुष्क पुष्क हो बने हैं । चित्रमे स्वाभाविकता है और रस भी

“दिल गत मन्थी जाबको मान पंथी लम्प करे असमान ।

मिल सहित पवनचैराज मन्धिर ऊपर बैठे जाब ॥

देते पंथी सरोवर तीर, करे लम्प धति गहर गहीर ।

इसै दिसा मुख काको मयो चक्रवा चक्रिनी अन्तर कयो ॥

कविने और वाक्यका बोधकी चित्र खींचा है । हनुमान् धर्मिके पुत्र ने । गीटाका स्वभाव वा । उनके वाक्य-तैयारी सद्-व्यर्थ ऐसे विधीर्न हो जाती है जैसे वाक्य-मूर्धनि अन्धकार फट जाता है । सिंह चढ़े छोटा ही ही फिर भी बन्धियोंकी मारनेमे समर्थ होता ही है । समय वृक्षोके व्याप्त वन कितना ही विस्तीर्ण ही बन्धिका एक कच ही बसे बधनेमें समर्थ है,

‘वाक्यक नाव रवि चंद्रम करान अन्धकार सध जाब पकाब ॥

वाक्यक सिंह होय धति सूरु इन्धितचाठ करे चक्रचूरो ।

समय वृक्ष वन धति विस्तारो रत्तो बन्धिन करे इह करो ॥

जो वाक्यक इन्धिन को होय सूर स्वभाव न छाड़े काब ॥”

प्रद्युम्नचरित्र

इसकी एक हस्तलिखित प्रति अमेरिकास्थनम्पारमें ४ १८९ की किस्की हुई थी। इस काव्यकी रचना हरसोर पड़के विनेत्र मन्धिरमें हुई थी । वहाँ देव घास्य गुरुके मन्त्र ध्यायक लोग रहते थे । प्रसङ्गमें चक्रवा रचना वाक्य वि स १९२८ दिवा पया है । प्रारम्भमें ही अन्धके नाव तीर्थकरकी अन्धता करते हुए कविने लिखा है कि चक्रवा स्मरण करनेमें मन बत्ताइते भर बाठा है । अन्धरू भीष दूर हो जाते हैं और जिनाकीस पुन उत्पन्न होते हैं

'हो लीपकर बंदू अगलाय ।

तोह सुमिरण मन होइ उछाह तां हुमा छ भइ होय भी सी ॥

ठिह कारण रही बट पूरि गुण छीपाकीस सोम मछा भी ।

होय भइरह किया दूर सो रास मजौ परधमन को जो ॥

सुदर्शन रास

यह रास आभरप्यास्त्रमन्धारमें मौजूद है । काम्यकी रचना वैद्याल मुखला मन्त्रमी वि सं० १९२९ में हुई थी । यह सम्राट् मकबरका राज्य-नाटक था । कविने मकबरके लिए लिखा है कि यह इन्द्रके समान राज्यका स्वभोग कर रहा था । इसके हृदयमें भारतके मद्दु बर्षाओंका बहुत अधिक सम्मान था

साहि भककर राजहै, जहो मंगसे राज जति इन्द्र समान ।

धीर चर्चा उर राखी नहीं छोडी छ' दरसन को राखी भी मान ॥२॥

काम्यकी भावापर गुजरतीका प्रभाव है और उसकी रचना साधारण ही नहीं आ सकती है । भगवान् कारिनाथको प्रथम करते हुए कविने मंगसावरणमें किया है

'प्रथम प्रथमो धान्नि जिगिन्ध नामि राजा कुक उदुवाभी चर ।

बगर बबोप्या अगने स्वामी दूरव काल चौरासी सी भी भाई,

मदरै भी मत हैं उर परिड ॥

भावासरस

इसकी एक प्रति आभरप्यास्त्रमन्धारमें मौजूद है । इसमें ४ पद्ये हैं । कुल पद्यांशों संख्या १९७ है । इसका कवि संवत् १९८९ और रचना सं १९३ है । इसमें राजा भीमालकी कथा है । ई 'बोटीमट' कहलाने से । अर्थात् उनमें एक कठोर मटावा बन था । हीन्यरंभे कामदेवके समान थे । कुंभे कर्मो विवाहने से कोड़ी हो गये । एक राजा जगदी बग्या मैतामुन्दरीने सायब होकर उनका विवाह उनसे लाय कर गया । मैतामुन्दरी भगवान् त्रिनेत्रकी भक्त थी । उनमें भगवान्की भक्ति थी और त्रिनेत्रकी एक मूर्तिके अर्पणन प्रत्ये ही अपने पतिवा को दे दीक कर लिया । कोरण विर परने-दोहे ही सर्वानुसर ही गये ।

एक प्रकार काम्यके त्रिनेत्रकी भक्ति ही प्रथम है । अन्ततः कथामय और कविशुद्ध कथाके काम्यको अन्ततः कोटिवा बना दिया है । भावाय निमित्तता है किन्तु गुणवन्तवाली नहीं । अन्ततः यह एक प्रकार है

“हो स्वामी प्रणमो आदि विषय बड़ी अति होई आबंद ।
संभो बड़ी सुगति स्त्री हो अमिर्गल का प्रणमो पाई ॥”

भक्तिपद्य का

जनपाठकी अपेक्षा ‘भक्तिसमस्तहा’ को माजोबी-द्वारा सम्पादित होकर सन् १९१८ में म्युनिककी टॉमस एन्डेकोमि’से प्रकाशित हुई थी। जनपाठके पद्यभक्तिसमस्तहाके भक्तिपद्यका निर्माण होता रहा। प्रस्तुत काव्य भी उसी परम्पराकी एक रचना है। ‘भक्तिपद्यसमस्तहा’की पंचमी-प्रथम-पद्या भी वही है। इसमें पंचमी-प्रथमा माहारम्ब बतिया गया है। प्रथमा मुख्य आधार भक्ति है। भक्त्यान् विनेत्रकी भक्तिके कारण ही भक्तिपद्य करने सँतेके माई बगुलका द्वारा दिये बने भीषण बुद्धोका सम्मुख कर स्या। उसकी माँ ‘सुदपंचमी’ बत रचनी है, और वह स्वयं भक्त्यान् विनेत्री पूजा करती है। जनः ठीक समयपर एक देवने सहायता की और उसकी पत्नी तथा जन-सम्पत्ति दोनों ही प्राप्त हो बने।

इसकी एक प्रति कि सं १९९ की लिखी हुई आमेरघासमन्धारमें मौजूद है। इसमें १७ पद्य हैं। प्रथममें लिखा है कि इसका निर्माण सं १९१३ में कानिक मुठी बीरसकी सन्निवारके दिन हुआ था। उस दिन स्वाति नक्षत्र और सिद्धि योग था।

इस काव्यकी रचना ईशानदेव देसके सायनेर नामके स्वामीपर हुई थी। सायनेरकी सोमाका वर्णन करते हुए कविने लिखा है कि उसकी भागे विद्याकोमें मुखर बाजार में विनेमें मीठी-हीरीका व्यापार होता ही रहता था। वही भक्त्यान् विनेत्रका एक बहुत ऊँचा मन्दिर भी था। उसमें देवकीमती तोरक टैने ने बहुमुख्य शंकोका पने थे। वही पत्नी जनसमस्तहा रच्य करती था। जनको राज-कुमार उसकी सेवा करती थे। प्रजाकी सब प्रकारका सुख था। बुद्धी और बरिओरी भी आघाई पुरी हँसी रहती थी। वही बड़े-बड़े भक्त्यान् धारक रहते थे। वे जनसमस्तहा करते हुए भक्त्यान् अतिरिक्तकी पूजा प्रतिदिन करते थे

देस ईशानदेव सोमा बनी पुत्रे तहाँ अकि मन्तकी ।

निमक लके बनी बहु धिरे, सुल सं बनी बहु सांगारे । ॥

१. मौजूद से तैनीसा सार कानिक मुठी बीरस सन्निवार ।
स्वाति नक्षत्र सिद्धि योगकोच पीडा लन व्यापै रोग ॥
कल्पित अमलि ।

चहुँदिसि बाणवा मका बजार भरे पटोका मोती हार ।
 मवन अतुंग विजेश्वर तजा सीमै चववा तोरण चपा ॥
 राजा राजै भागवतदास राजकुँवर सेवहि बहु तास ।
 परमा लोग सुली सुल नसें सुली इकिरी पुरसे चास ॥
 भावक लोग नथै मनचल पुखा करहि जयहि भरहंत ।
 उपराउ परी बैरन कास जिहि कहिमिद सुगं सुल चास ॥

३२ कुसललाम (वि सं १९१९)

कुसललाम शैवकालके राजस हिरराजके आश्रित कवि थे । राजस हिरराजका समय सत्तरहवों सताब्दीका प्रथम पाद माना जाता है । कुसललामका रचनाकाल भी यह ही था । बहुत राजसजीक कहनेसे ही उन्होंने राजस्थानीके आदिनाथ्य 'डोका माक छ डूहा' के बीच-बीचमें अपनी चौपाइयाँ मिठाकर प्रवण्यारमणता उत्पन्न करनेका प्रयास किया था । इसपर डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीका कथन है 'मुझे लगता है कि मावपूर्ण पदाके बीच राससीसा आदिके समय कथामुक्तका जोड़नेके लिए ये चौपाई-बग्न पद बाहमें जाड़े गये होंगे । डोकाके दोहोंका कथासूत्र मिठानेमें कुसललामने इसी कौशलका सहारा लिया था ।' यह कहना ठीक नहीं है कि समय-समयपर उसमें बीच-बीच भरी हुई कथाभाषी चिपियाँ लगाकर उसे मुक्तकके आख्यात्मक काव्य बना देनेके प्रयत्न हुए हैं ।^१ इन चौपाइयाँके बिच्छुरसमें कोई व्यापार नहीं पहुँचा है, बल्कि कथाके एक सूत्रमें बीच जानसे 'प्रवण्यकाव्य का आनन्द जामा है तो फिर ये कथाभाषी चिपियाँ कैसे हो सकती हैं । इसके अतिरिक्त ये बीच-बीच-भरी' तो तब हो जब उन्होंने मुक्तकभाषी स्वाभाविकताकी विमर्श किया हो । किन्तु ऐसा नहीं हुआ है ।

कुसललाम अठारठारके समय गुन श्री भी समयसे कथाध्यायके दिग्ग थे ।^२

१ दिव्यी साहित्यका आदिकाल बिहार-राजभाषा-परिषद पटना १९२२ ई. पृष्ठ ६७ ।

२ माम्बलसिंह दिव्यीके विकासमें मन्त्रराजका जैन साहित्यकाल प्रसिद्धत हनाहावाद लखीम नगर १९२४ ई. पृष्ठ २४२ ।

३ श्री परतर मन्थि सद्दि गुनराय गुन श्री समयसे कथामात्र ।
 लेख्यार मन्थ कल १९१९ ई. अन्तर्गतकविसे प्रथम भाग पृष्ठ २१४ ।

ऐसा प्रतीत होगा है, जैसे लम्बे कवित्व-मण्डित कामसे ही मिठी थी। उन्होने मन्त्रि श्रृंगार और कीर-जैसे प्रमुख रसोपर छठन कविताएँ कीं। उनकी श्रृंगार परक रचनाका नाम 'माधवानन्द शीतार्द्र' है। इसे 'माधवानन्द-कामकन्दला' भी कहते हैं। इसकी रचना भी माधक हरराजकी प्रेरणासे ही अगुन सुयो १९ एकिवारदि रिग सं १६१६ मे हुई थी।^१ इसमें छाने पाँच ही शीतार्द्रा हैं। इसमें माधवानन्द और कामकन्दलाके प्रेमको कथा है। कही कोकममरिणा पम्बोधन गही हो छका यही हमको विशेषता है। आज भी यह ग्रन्थ राजस्थान और गुजरातमें बहुत प्रसिद्ध है।

कुछकालयने मन्त्रिसे प्वाभित बनेकानेक नाम्बोकी रचना की और इनमें कविपय मे है : 'श्रीपूज्यबाह्यगीतम् 'स्त्रुक्षिपत्रकतीसा 'तेवहार पठ' स्तम्भनवाधर्वाकस्तम्भनम्' पीडीपास्वनाकस्तम्भनम् और तदकारकम्'।

श्रीपूज्यबाह्यगीतम्

यह गीत ऐतिहासिक जैन-नाम्नग्रहमे संकलित है।^२ कव्य छरत है, भाव सुन्दर और माया रम्य। कविन मन्त्रिपूज माधोसे श्रीपूज्यबाह्यके चरयोमें अपनी पु'पात्रकि मन्त्रि की है।

गुहके प्रवचनोके अर्थको बजाने समझा है, और जहीमें समय होकर म्गो मे मूम बडे है। कविनी कोमलमधुर स्वरमें गुह म्हापत्रके ही गीत या पछी है। 'पूजनी हैसना' से प्रभावित होकर ही मागो बम्बीर यवन बारम्बार बास पछा है। ममूठेकी बिरजन और चकोपकी पुकनपूर्व बाँकोमें मुकरवेधका मूम भाव स्पष्ट लच्छक रहा है

“प्रवचन वचन विस्तार छरत छरवर बजा रे।

कोकिक कामिनी गीत गावह् भी गुह लप्य रे।

१ राधक म्मकि मुपाह बदि, कुंवर श्री हरिपत्र ।

बिरबिपूर मिमभारसि ठास मुगुहक नाम ॥

सकन् लोळ छोकोनरह, बैसकमैर म्जारि ।

अगुन मुदि तेरसि बिबसि बिरबि भावित्यवार ॥

भावा साकी पाँचमह ए चक्रग्रह प्रमाण ।

माधवानन्द शीतार्द्र अन्तिम म्मन्त्रि, म्मन्त्रिर्माधर कचपुर, इह १४७-१४८ ।

२ ऐतिहासिक जैन-नाम्नग्रह अन्तर्कृत भावय द्वारा सम्पादित कम्पना दि न ११ इह ११ ११ ।

गात्रह-गात्रह गगन गम्भीर श्री पूज्यनी वृक्षना रे ।

मखिबण मोर चक्रोर बासह छुम बासना रे ॥६३॥

गुरुके प्यानमें स्नान करते ही धीठक वायु मस्त बाकत बल रही है । सारा संसार मुपनिषदे महक रहा है और वह मुनियि पुरूपरेषकी ही है । गुरु महाराजके वारण्य ही विश्वके छाठों क्षेत्रोंमें घम उत्पन्न हो सका है । यदि ऐसे गुरुना प्रसाद अपकर्म हो सके तो अवश्य ही सुख निष्कना ऐसा प्रकृतको विरवाण है,

सदा गुरु प्यान स्नान कहरि सीतल बहह रे ।

कीति सुखस बिसाक सकक जग मह महह रे ।

सत क्षेत्र सुवाम सुधर्मह नीवजह रे ।

आ गुरु पाय प्रसाद सदा सुख संपजह रे ॥६४॥

स्वूळमद्र-छत्तीसी

यह काव्य श्रीजानेरकी अनूप संस्कृत छायादेरीके एक गुटनाके पृष्ठ ९१ ९८ पर संकलित है । इसमें रचना-नाक नहीं दिया है । कुल ३७ पद्य है । यह काव्य भाषाव स्वूळमद्रकी भक्तिम निमित्त हुआ है । इसकी भाषामें सरमता और भाषामें स्वाभाविकता है । प्रारम्भमें ही 'स्वूळमद्र-छत्तीसी' कहनेकी प्रतिज्ञा करते हुए बचिने लिखा है

“सारद शरद चन्द्र कर निमक ठाक चरण कमक बितकाहकि ।

सुमण संतोष दाह अचक्षण कुं बागर चनुर सुमहु बितचाहकि ॥

सुघणकाम मुनि धामन्द मरि सुगुरु प्रसाद वरम सुग पाहकि ।

करिहं पूळमद्र छत्तीसी अगिसुन्दर पशुर्षय बनाहकि ॥१॥

यह वान्य गुरु-भक्तिके अन्तर्गत जाया है । गुरुकी महिमा अपार है । पिप्य विगत ही अराध करे किन्तु उसे विरवाण रहना है कि वशर बुद्धे कामा मिस ही वापकी

‘विमा बाहक सुजो मबड लजित मुनि

साथ करि तुगुठ कइ पास जाबई ।

बूक अथ मोहि बरी चरण तदि मिर धरि

जाय अराध आपई ननापइ ॥२०॥

१. राजभातमें दिल्लीके इल्लिधिया मन्त्रीकी गेज चतुर्थे मास अगस्तमें काव्य लिखादिन लिखित मन्थान उत्पन्न ११२४ ई १४१२ ई.

श्रुति स्तुतमय निर्मल ही बुके है । अर्द्धीन चारननी मनोंकी विपणित कर दिया है । उनके मुखके वर्णन करनेमें भक्त-वचिने वरन जानकर प्राप्त होता है

‘बम्ब धूमिल रहि निम्नल वाणि
 पाहि कइ मरिम कुल नर कदाचह ।
 वाणि से मछ तब मुजस निनका
 मुखन कुशाक कवि वरन जानम्द वाचह ॥३०॥’

तेजसार-रास

यह रास कुछ अन्वयार्थ उदात्तावरी प्रेरणाके किताब का । इसकी रचना बीरमपुर नामके नगरमें वि सं १६२४ में हुई थी । बाचक कृष्णनामका बचन है कि इस दिनपूजाका जो कोई ब्रह्म है, उनके घर मनोरम पूजा हो जाते हैं ।

श्री वरनर गच्छि सहि गुदराच गुह श्री अमवचम उचमाय ।
 लोकाहसई अर्धवासि सार श्री बीरमपुर नगर मत्तार ।
 अचिकारई विवपूजा नलह, वाचन कुशाक काम इम मजह ।
 अ वाचई नई से भांगकह, तैहना सहमनोरच अकई ३१५-१६॥

यह बीप-पूजाके सम्बन्धित काम्य है । इसकी उपायप्रति पौष पुष्या १४ वि सं १६४४ को उपायप्रतिके सहस्रविषयने राजपुरमें की थी । श्रीसहस्रविषय उपायप्रतिपद्य परमपुत्र अट्टारक श्रीहोत्रविषयपुरिके शिष्य मुखन पण्डित श्री सुमतिर्महक वधिके शिष्य हैं ।

प्रारम्भमें ही शिव-प्रतिमाके पूजनकी महिमाका उल्लेख है । शिव-प्रतिमा जिनेत्रके समान ही है । उतकी पूजा करनेसे इहमव और परमव दोनों ही संवत् पाते हैं,

‘श्री सिद्धारथ बुकसिस्तु चरम जिनेत्रर श्री ।
 पान्मुनि प्रथमी तसतना सोविषयवन्निरोर ॥

१ इति तेजसार बीपपूजाविषये रास उवाच सं १६४४ वैश पौष शु १४ राजपुर नगरे, उपायप्रतिपद्य श्रीभीपरमपुत्र अट्टारक श्री सहस्रविषय-पुरिके शिष्य मुखन पण्डित श्री सुमतिर्महक वधि तन् शिष्य अह्वय-विषयैव लिखितो अर्थ रास ।

अन्वयार्थवचिने, प्रथम भाग पृ २१३।

जिनवर भोमुपि अपदिसर्दं मन्त्रिकमोक्तं पुत्रकात्रि ।

जिन प्रतिमा जिन सारणी मापि श्रीजिनरात्रि ॥

प्रतिमा जिनत्री जिनसूरि आप्पहि पृकंति

अदिमव परमव पुत्र कइई इम मापई अरिहंत ॥१३॥

स्तम्भनपार्श्वनाथस्तवणम्^१

श्री बुद्धकामने इस स्तवणकी रचना ब्रह्माण्डमें वि सं १९५३ में की थी^२ । स्तम्भन पार्श्वनाथकी साविधय मूर्ति है । संस्कृतमें स्तम्भन पार्श्वनाथको कैकर बनेको स्तुति-स्तोत्रोंकी रचना होती रही है । तत्त्वप्रभाचार्य और जिनसोमसूरिके स्तम्भनपार्श्वनाथस्तवणोका संस्कृत 'मन्त्राधिपार्श्वकण्ठ में हुआ है । हिन्दीमें बुद्धकामका 'स्तम्भनपार्श्वनाथस्तवणम्' उही परम्परामें है । इस स्तवणका भावि और बन्ध निम्न प्रकारसे है,

भावि

प्रभु मन्त्रपुरे पास जिनैसर बमजौ

गुण गावारे मुक्त मन उकर भति बणौ ।

शानी बिचरे पइलो अइ न को कइ

तोई पनिरे नीठारव गुरु ईम कइ ॥"

बन्ध

'ईमि स्तम्भो स्तम्भनाथ पास स्वामी नवर श्रीवन्नापतें

अम सहा गुरु भोमुप सुनिब बांमि सास्त्र आगक संमते ।

ए अन्त मूरति सकळ सुरति सेवठा मुक्त पांभीप,

मन्त्रमात्र अंजि काम बांमि बुद्धककाम पञ्चपथे ॥"

गौडीपार्श्वनाथस्तवणम्^३

गौडी पार्श्वनाथकी भी साविधय प्रतिमा है । उसके वर्धन करनेके रोम-शोक दूर हो जाते हैं । श्री यशोविक्रमका संस्कृतमें लिखा हुआ गौडीपार्श्वनाथस्तवण कल्पविक्र प्रसिद्ध है^४ । श्री बुद्धकामका गौडीपार्श्वनाथस्तवण हिन्दीकी रचना है । इसमें २३ पद्य हैं । स्तवणमें गौडीपार्श्वनाथकी भक्ति ही मुख्य है । कविये

१ इसकी हस्तलिखित प्रति श्री दि. जैन अखिर कवीकन्दवी कानपुरके गुरुका सं ६२ में मिली है ।

२ यह कल्प, कटोररके श्री शान्तिविक्रमकी भद्रशरमें प्रेषित है । इसकी दूसरी प्रति कानपुरके श्री गुरुकामकाके अखिरमें गुरुका सं ६२ में मिली है ।

३ श्री-स्तोत्रमन्त्रोद् १ मुनि कानपुरविक्रम-शरत सम्पादित अक्षरप्रकाश ५ ३१४ ।

४ जैन पत्राधिकारो पटना मान ५ ११६ ।

प्रारम्भमें उस तरहकी ही बात बोझकर बहना की है जो सुरभी है स्वामिनी है और बचन-विभागकी बहानी है। वह एक ऐसी व्योक्ति है जो सभी विश्वमें व्याप्त है

‘सरसति सामनी आप सुरभी बचन विकास विमल बहानी
सकल वीति संसार समानी पाद परलमुं वीति युग पाणि ॥१॥’

मौजोपार्ष्णीनामके बहना केवल तर ही नहीं किन्तु असुर इन्द्र देव अन्तर और विद्यावर आदि सभी करते हैं। भद्रबाहु पार्श्व विनेत्र समूचे संसारके नाथ है। भद्रबाहुके दर्शन उस विद्यामयिके समान है जो सभी मनोवाञ्छितोंको पूरा कर देती है। जिसके दर्शनमें ऐसी शक्ति हो उसकी महिमा अरु म्यार है,

‘तेजि बरा अस तुम उदधि तिहां दिव अमंजित
ब्योम बरनि पाबाक जाण सुर बड़े अलंजित ।
असुर इन्द्र बर अमर विविध अन्तर विद्यावर,
सेवे तुम थाव सब न मात्र भुजये निरंतर ।
अगलाप पास विद्यावर कबो मनकामित विद्यामयो
कवि कुसलकाम संपति करन बचकर्मिण गीडीबनी ॥

अन्तिम ककल ॥

नवकार छन्द

इसमें १७ पद्य हैं। इसकी हस्तलिखित प्रति महम्मदाबादके गुजराबिजदरी के बन्धारमें मौजूद है। इसमें पद्य परमेष्ठीकी बहना की बनी है। श्री कुसलकामने लिखा है कि उसका मित्य आप संसारकी सुख-अम्यतिबोकी प्राप्ति कराता है, और छिद्रि भी प्रदान करता है। एकचित्से पद्यपरमेष्ठीकी आराधना करकेसे बनेको अमिळपित आशिषा प्राप्ति हो जाती है

‘विरम कभीई बचकर संसार संपति सुखदायक
सिद्धमंत्र सास्वती इम जये भी अगलापक ।
नवकर सार संसार हे कुसलकाम बाचक कबे
एकचित्से आराधीई विविध आदि बलिब कहे ॥ अन्तिम ककल ॥’

३३ साधुकीर्ति (वि सं १९१८)

साधुकीर्तिकी मूक-परम्परा इस प्रकार है मतिवर्धन मेरुतिक्क इयाकल्लय और बभरमाधिक्य ।^१ बभरमाधिक्य साधुकीर्तिके मूक थे । ये छत्तरमण्डके साधु थे उन्होंने स्वाम-स्वामपर विमलचन्द्रमूरिका स्मरण किया है । एक साधु कीर्ति भीर हो गये है, जो बड़दत्तमण्डके विमलचन्द्रमूरिके शिष्य थे । दोनोंमें विभक्तता स्पष्ट है ।

साधुकीर्ति भक्त-कवि थे । उन्होंने अनेक स्तुति-स्तोत्राकी रचना की । उनमें प्रसिद्ध ये हैं 'पञ्चसंग्रह' 'सत्तर भेदी पूजाप्रकरण' चूनडी 'उपमासा 'सर्ष्वम स्तवन' 'नमिराजपि चौपई' । इनकी मायापर गुजरालीका विशेष प्रभाव है ।

सत्तर-भेदी पूजाप्रकरण

इसकी रचना अष्टाद्विंशपुरमें वि सं० १६१८ भाष्य पुस्तका ५ को हुई थी ।^२ इसकी इस्तकबिहित प्रति जयपुरके ठाकियोंके वि शैव मन्धिरमें गुटका नं ३३ में संकलित है । श्री कस्तूरचन्द्र कासमीबाबुने इसका रचनाकाल वि० सं १६५८ लिखा है जब कि इसके अन्तिम पद्यके वि सं १६१८ लिख है । रचना भास्वि-भाष्य इस प्रकार है,

'ज्योति सकळ जगि जागती है सरसति समस्तु मंद ।

सत्तर सुविधि पूजाठण्णी पमगिष्ठ परमार्जव ॥''

चूनडी

इसकी प्रति जयपुरके ठाकियोंके शैव मन्धिरमें गुटका नं १ २ में लिख है । इस मुरकेका कैलनकाक सं० १६४८ है, अतः यह सिद्ध है कि रचना सं १६४८ से पहले ही हुई होगी । इसकी पूरी रचना 'बाडकपुरि सोहानपड पड मड मन्धिर गार्ई हो' वाक्यों की बनी है ।

रागमासा

इसकी प्रति भी ठाकियोंके शिवमन्धर शैव मन्धिरमें गुटका नं ३३ में लिख है ।

- १ साधुकीर्ति अष्टाद्विंशपुर-अष्टम अन्त भाग पृ २८२-२ ३ जैनपुराण-कविनी मान १ व २२ ।
- २ संवत् १६ अठार भाष्य मुद्रि । बंभवि विववि जमाज् ॥३॥ शैवपुराण-कविनी मान १ व २२ ।

सत्रुंजय स्तवन^१

इसकी रचना १७वीं शताब्दीक प्रथम पारमें हुई। इसकी एक हस्तलिखित प्रति श्री मोहनलाल बुधीचन्द देसाईके पास है। उक्त कवि बन्त एक प्रकार है। कवि

‘बय प्रथमी रं विषयरत्ना छुम भाव कई।
पुंजगिरि रं पाहुनु गुह सुपसाक कई ॥’

बन्त

“इम कवीप पूजाय भाओ गदि संघ पूजा आररई,
साहसिबच्छक करई बचिषों, मय समुद्र कीका तरई,
संपदा सोहग विह मानव रिदि बृदि बहु कइई,
अमरमाकि सौस सुपराइ, साधु कीरति सुख कइई ॥”

ममिराजपि चौपई

इसकी रचना नागौरमें वि सं १९३९ माघ शुक्ल ५ को हुई थी। इसकी प्रति १७वीं शतीकी लिखी हुई ही मौजूद है, जिसमें ५ पत्रे हैं।^२

अन्य स्तोत्र-स्तवन^३

‘एनादशी स्तोत्र’ ‘बिमलमिरि स्तवन’ ‘बादिनाथ स्तवन’ ‘सुमतिनाथ स्तवन’ ‘पुष्करीक स्तवन’ ‘विनादि बलित’ ‘नेमिस्तवन’ और ‘नेमिपीठ’ की सामुदायिकी ही रचनाएँ हैं।

३४ हीरकलस्य (वि सं १९२४)

हीरकलस्य कठोरपञ्चके केशवम्बर साधु थे। इसी शालामें श्री विनयान्त सुरिणा नाम हुआ था जिसका नाम सुनते ही कवि बल रक्तयन्त्र कर खाते थे। पत्नीके पट्टार भाये बलम्बर भी वैचरिच्छक अपाध्याय विद्याभक्त हुए। उनमें अगाध शक्तिबल और मुक्तशोभा समुत्तम सन्तान था। उनके शिष्य हर्षप्रभु नामके मुनि हुए। हीरकलस्य कवीके शिष्य थे।^४

१. कैलाशचरितो मास १ पृष्ठ २ — २२२।

२. कैलाशचरितो, मास ३ पृष्ठ २२२।

३. पृ. १४०।

४. कैलाशचरितो मास १ पृष्ठ २३४-२४ तथा भाग ३ पृष्ठ ७२-३।

हीरकण्ठसका रचनाकाळ वि सं १६२४ से १६७७ तक माना जाता है। हीरकण्ठसकी सात रचनाएँ प्राप्त हैं 'सम्यक्त्वकौमुदी' 'सिंहासन बत्तीसी कुमठिचिप्पस चौपाई' 'बाराबना चौपाई' 'मुनिपति चरित चौपाई' 'सोमवृत्त स्वप्नसंख्याय' 'बठारुत्त नातरां सम्बन्धी संज्ञाय'।

सम्यक्त्वकौमुदीरास

इसकी रचना वि सं १६२४ माह सुवी १५ बुधवार पुष्यनक्षत्रमें हुई थी। कविने रचनास्फुटता उल्लेख करते हुए लिखा है कि मीने इस रासकी रचना 'सवालय' नामकी नवरीमें की बहकि बामिज-स्नेहने मुझे बाँध किया था। इसकी छन्दे प्राचीन प्रति वि सं १६५२ भाद्र बरी ४ भोमवारकी कृष्णी हुई मौजूद है, जिसे बलामुठ परीप बीरबासने अपने पढ़नेके लिए लिखा था। इस काव्यमें १५ पद्य हैं और सभी चौपाइयोंमें लिखे हैं। इस रासमें बनेक भक्तके चरित्रोका सरस बचन है। मायामें रम्य है और भावोंमें यन्त्रिकी सरसता।

सिंहासन बत्तीसी

इस काव्यकी रचना वि सं १६३६ आशोज बरी २ को सवालप देवके अष्टमंत मेढता नामके नगरमें हुई थी। इसकी एक प्रति मेवाड़के सरस्वती मण्डारमें वि सं १६४६ आशिक सुवी १२ रविवारकी कृष्णी हुई मौजूद है। इस प्रतिमें श्लोक-संख्या ३५ है। सभी पद्य चौपाई और चौहोमें हैं। जैसे तो इस काव्यमें विक्रमावित्य भोजका चरित बर्णित है किन्तु वास्तवमें दानकी महिमा बताना ही कविका मुख्य उद्देश्य था। दानकी महिमाका उल्लेख बीन शास्त्रोंके अनुसार ही किया गया है।

कुमठिचिप्पस चौपाई

इस काव्यके निर्मात्र-नामका उल्लेख करते हुए कविने लिखा है इसकी

१ संवत् सोमवृत्तई अठवीस माही पुनम बुध सरोम पुष्य नाराई देह देव सवालप नवरी देह बर्म ठपठ शिखा बाप्पुतह, निहा कीई अठपाई देह ।

कैलधुर्बन्धविभो भाग १ पृष्ठ २३४-२३५ ।

२ राजस्थानमें दिल्लीके इस्तिफिल मन्षाकी खान माल १ डॉ मोहनलाल मेनारिया खण्डारिन, दिल्ली विचारार्थ बरकपुर, १९४२ ई एव १२२-१२३ ।

रचना वि सं १६७७ जेठ सुदी १५ बुधवारके दिन दर्भपुरी नामक नगरमें हुई थी। इसकी एक प्रति वि सं १७५९ की लिखी हुई मौजूब है।

इस काव्यमें मूर्ति-पूजाका समर्पण किया गया है। इस समय मुसलमान और हिन्दुओंके कुछ सम्प्रदाय मूर्ति-पूजाको कुमति मानन लगे थे। इसमें उल्लेख निरास किया गया है।

आराधना चौपई

इसकी रचना वि सं १६१३ माह सुदी १३ बुधवारको नाथीमें हुई थी। इसकी एक प्रति बीकानेरके राज्या कीके पास है, जिसमें केवल ४ पाने हैं। कुछ ही प्रति आठोस बरी १३ वि सं १८६९ की लिखी हुई महार बगधरमें मौजूब है। इसमें केवल ७ पाने हैं। एक तीसरे प्रति और भी है जो १७वीं या १८वीं सदीकी लिखी हुई है, जिसमें ६ पाने हैं। इस काव्यमें २४ तीर्थहरोंकी आराधना की गयी है।

मुनिपति अरिद्र चौपई

इस चौपईकी रचना वि सं १६१८ माह बरी ७ रविवारको बीकानेरमें हुई थी। इसकी प्रति बीकानेरके राज मन्डारमें मौजूब है। इसमें कुछ ७३३ पद्य हैं। इसमें मुनिवर मुनिपतिके अरिद्रकी महिमाका वर्णन है। पूरा काव्य 'मुनि-मन्त्रि' से ओगड़ोठ है।

सायब स्वप्न सहाय

इस छन्दे-से काव्यका निर्माण वि सं १६२२ माह सुदी ५ को हुआ था। नगरमें आनेके पूर्व तीर्थहरकी यात्रा १६ स्वप्न देखा कटती है। उन्हीका यहाँ उल्लेख है। इसमें कुछ २ पद्य हैं।

अठारह मातरा सम्बन्धी सहाय

इसकी रचना वि सं १६१६ यावत् मुम्बईमें हुई थी। बम्बू स्वामीने दिन १८ मासपत्रोका उल्लेख किया है, उन्हीका इसमें वर्णन है। इसमें कुछ ५२ पद्य हैं।

१. शोल्डने सतीसरदान कचपुरी नवरी-उल्लेख।

अडि पुदिम से बुधवार की सबदि बीक-अवतार ॥

देवप्रवर्धिका नाम १ पृष्ठ २४ ।

३५ पाण्डे जिनदास (वि सं १९४२)

'अम्बु चरित्र में पाण्डे जिनदासने अपना परिचय दिया है। वे भाग्यरेके पुत्रबाने थे। उनके पिताका नाम ब्रह्मचारी सन्तोदास था। कुछ विद्वानोंका कथन है कि उन्होंने ब्रह्म सन्तोदासके नाम विद्या प्राप्त की थी। हो सकता है कि ब्रह्मोप विद्या भी अपने पिताके समीप ही ग्रहण की हो। एक ही व्यक्ति गुह्य और विद्या दोनों हो सकता है। यदि ब्रह्म' विशेषण का अलम्बन करता हो तो यह भी असम्भव नहीं है कि श्री सन्तोदासन पुत्रोत्पत्तिके उपरान्त ब्रह्मचर्य धारण किया हो।'

इसका रचनाकाल आद्यवाहू अक्षरका समय माना जाता है। उन्होंने स्वयं को ऐसा ही लिखा है।^१ उनके आध्यात्मिक अक्षरक प्रसिद्ध मन्त्री टोडरसाहू थे। उनके पुत्र बीपासाहूके पत्रके निमित्त ही 'अम्बुस्वामीचरित्र की रचना हुई थी। टोडरसाहूके परिवारक रियसशाम मोहनशाम रूप मन्त्र और लक्ष्मीदास का उत्कल भी उन्होंने किया है। वे सभी धार्मिक व्यक्ति थे और उनकी कथाओं में विघ्न भी। बीपासाहूने मन्त्ररामे एक निपिटिका का निर्माण करवाया था।^२ हा सकता है उन्होंने मन्त्ररामे प्राचीन वैदिक-स्तुपाका भी अक्षरकार करवाया हो।^३

पाण्डे जिनदासके लिखे हुए अनेक नामोंका पता जाता है। वे इस प्रकार हैं 'अम्बुस्वामीचरित्र' 'सोनीरास' 'बल्लरी' 'वेतनमीठ' 'मुनीस्वरोकी अमला' 'माधोरास' और 'पत्र'। इनमें अन्तिम चार ही पचीसतम खंडके परिचय हैं। 'वेतनमीठ की हि वैदिक मन्त्रिण बहीचन्द्रकी अक्षररामेके गुटकार्क २७ में मुनीस्वरो

- १ ब्रह्मचारी मन्त्री सन्तोदास का कुछ बड़े जिनदास।
 तिल या कच्चा कटी मलमाय पुण्य हैत मिठ तत कर ताहि ॥१५॥
 हि वैदिक मन्त्रिण बहीचन्द्रके सरस्वती भवधारकी प्रति।
- २ अक्षरक पाठस्याहू का राज् अक्षरी कथा मन्त्र के नाम
 मूस्यो बिसर्यो अक्षर ब्रह्म पवित्र मुनी सचारी तद्वा ॥१२॥
- ३ कोई अर्धनिधि पासा साहू टोडरक मुठ भाग्यर सताहू।
 ताके नाम कथा यह कटी मन्त्ररामे जिहि निरसरी की ॥१३॥
 अक्षरमदास अक्षर मोहनदास रूप मन्त्र अक्षर किष्करीदास।
 धर्मबुद्धि तो रहीवो विद्या राज करे परचार संजुत ॥१४॥
- ४ अक्षरी भाग्यरी प्रचारिका पत्रिकाकी रचनाविद्या विद्या मन्त्रोकी खंडके वैदिकिक
 व व विद्वानोंके पाठके विद्वानोंका विद्वान् म ३।

को अथवा एक पुस्तक में १९ में 'मापीरासा' पुस्तक में १६२ में और 'नव
गुणिका' में ३२ में संदर्भित है। इनके 'पर-संग्रह' का रचनाकाल वि. सं. १६७१
से ठीक १३ दिना हुआ है।

जम्भूस्वामीचरित्र

'जम्भूस्वामीचरित्र' की रचना वि. सं. १६४२ में हुई।^१ इसमें जम्भूस्वामी
नामक एक जैन भक्त का चरित्र है। इसकी मूल प्रति जिसका अस्मिता कापी
नाम की प्रचारिणी परिचयमें है सं. १७५१ की लिखी हुई है। हिन्दीके प्रसिद्ध जैन
कवि बिजोरीदासने अपने अपनेके लिए लिखी थी। जम्भूस्वामी जैनिक जन्म के बच्चे
से और उनको जन्ममें ऐसी अनेकानेक रचनाएँ बनती चली आ रही हैं। हिन्दी
में लिखा हुआ यह प्रस्तुत चरित्र भाषा और भाव दोनों ही दृष्टियोंसे उत्तम
नोटिका है।

अब राजा बेलिक भक्तवात् महावीरके सम्बन्धमें गया ती मातस्त्वम्के
सम्बन्धमें होते ही असाका मन क्रोधक ही गया

'मातस्त्वम् पाम अब गयो, गयो मान क्रोधक मय मयी ।
तीन प्रवृत्तिना हीनी राह, राजा हरण्ये अंगि न माह ॥८॥
बमसकार करि ब्रह्म क्माह, पुनि मुनि कटे बैये आह ।
परमेश्वर स्तुति राजा करै, बार-बार मगधि अर्धर ॥९॥

योपीरासा

शोध-वर्णिका नाम्य है। इसका विवरण नामी नामी प्रचारिणी परिचयकी
१७वीं वैचारिक खोज रिपोर्टमें पृष्ठ ८९ पर अंकित है। बीकानेरके अल्प
जैन पुस्तकालयमें 'योपी रासा'की कई प्रतिवाँ मौजूद हैं। 'योपीरासा'की
एक प्रति अमेरिकास्थ अन्धकार और एक प्रति महावीरकी धारणास्थानमें भी है।

'योपीरासा'के दो एक अल्पविक मुद्रण हैं जिनमें प्रथम तो आध्यात्मिक
अर्थका प्रतीक है। कवि कहता है, "मैं योहके विद्याक परतको खीरकर बह
रूना। स्तुत अन्धकारको भीति नष्टी छोड़ें वा। अन्धकारपी विकल्पक सर्पके दुष्ट
दुष्ट कर रूना और विषम विषय नरे हुए विषयोंको तो सम्पन्न ही कर रूना

१ सदा ही लोमा में मए बवालीन ता अन्धर बने ।

भाषी कवि पाँच मुद्रण का दिन कथा किपी अन्धकार ॥९१॥

२ राजस्थानमें हिन्दीके इतिहासिक अन्धकारों के अन्धकार ४ पृष्ठ १२६-२ ।

'ना हो राखी या हा विरखी ना कपु मति न जाना ।
 बीह सबै छुह केवल ज्ञानी आप्य समाना जानइ ॥२॥
 माह महागिरि पौदि बहार्के इमिय घृकि न रापइ ।
 कल्प सप्य विहप्य करे बिसु बिचपा बिपम बिच मार्लो ॥२२॥'^१

सम्पत्की

यह काव्य 'बृहज्जिनवाणी संग्रह (पृ ९९-१११) में प्रकाशित हो चुका है। इसका रचनाकाल वि. सं. १९७९ है। इसमें छात्र पद्य हैं। इसमें चौथा पद्य सम्पत्कीको महिमाये युक्त है।

"बैसन गुण बिच जात त्रिके दिन सो दिन बिच-बिच जानि ।
 पन्च सोहि सोही परमिणी भ्रांति न मनमाहि जानि ॥
 भ्रांति सु मिध्वारहि कच्छन संहाय रहित सुविही ।
 यो जावै बिन गछी गही न बद् पावै परमिणी ॥३॥

छावणी

वाक्ये जिनवासकी रची हुई हो छावणी थी वि. जैन अतिशय क्षेत्र महावीर कीके एक अक्षरके मुटनेमें लिखइ है।

"मै मय मय माही देव जनेस्वर पाके
 इन चीरासी कर माहि केरि नहीं भाऊँ ॥
 से से बीवचरम जिनवास छावणी गाई
 तेरी अक्षर अयंविठ ज्योति सदा सुखदाई ॥

वैतनगीत

इस गीतमें ५ पद्य हैं। कविने वैतनको सम्बोधन करके कहा है।

"वैतन हो तेरो परम निष्पन्न काह बखित्री होइ रह्यो हो ।
 विरमीकिक हो बग तेरे हाथ सुकी बाँधि भीकत रह्यो ॥
 कत रह्यो मिध्वा मूँकि बाँधि नि. अता बग अछता करो ।
 जिह्वा रख्यो स्वीरि जगत जाहिरि दिधि कदि केये कुरी य
 इमि प्रकृत परिधि बिहरनु, भागिनी बिहविड जिगदि जेननी
 तिम परम पंडित दिग्ध दिधिई कही तुम रची अतना ॥१॥

माखीरासो

इसमें २६ पद्य हैं। यह एक कवच-नाम्य है। जीव मान्य है और यह एक युग है। कविता कवच है कि यथार्थके अन्त उद्देशके समान है। उन्हीं लगी कवच काव्य।

‘माखी बरखी हा मा रई कवच कावच की मूप ।
 बाधि मुसाधी गडगरी कुरी कवचा मचरुपि हो मानी ॥३॥
 सुरहाकि कुरी माखिया हंसि हंसि से कवच बाय ।
 अंगि मु राई रे अरुतो अथ माका कुमकाह हा माखी ॥५॥

पद

जिनकासके पदोंमें अल्प कवचके रूपकी स्वामाविष्टता सर्वत्र व्याप्त है। एक पदकी कवचमय पंक्तिमें इस प्रकार है

“आर्षदकरो आर्षद करता विरह कही अवि मारा ।
 सुप समूह का दाता भाई महार्णव कवकारा हो ॥२॥
 ऐम प्रमु को नाम अथिक जन पकक न आठ बिसारा ही ।
 जिनकास नाम कविहारी करि हो मोहि निस्तारा हो ॥३॥”

३६ त्रिभुवनचन्द्र (१०वीं शताब्दी विष्णुम वर्त्मनि)

त्रिभुवनचन्द्र हिन्दीके प्रथम कवि थे। वे आपरेके रूनेवाले थे। उन्हीं पाण्डे कवच और कवि बनारसीराजका सम्निध्य प्राप्त हुआ था। उनकी रचनाएँ उसी रंभमें रंभी हुई हैं। वो बनारसी-अष्टककी मुख्य रचना थी। उनके पारिवारिक जीवन और मुद्र-वस्त्राके विषयमें कुछ भी विरिष्ठ नहीं है। वे अरुनी रचनाओंमें केवल ‘चन्द्र’ का प्रयोग करते हैं।

उनकी हिन्दी-रचनाओंमें अनित्य पचासठ पदार्थ्य वर्धन प्रास्ताविक रोह और फुटकर कविता है। प्रथम दो संस्कृतकी अनुवाद-भाव है और अथर्विष्ट दो मौखिक इतिहास हैं। भाषा सीधीके आचारपर चन्द्रचक्र भी इन्हींकी इतिहास मालूम होती है। उसमें कविके जयनाम चन्द्रका ही प्रयोग है। त्रिभुवनचन्द्र १०वीं शताब्दीके प्रथम पाण्डे कवि थे। उनकी रचनाओंमें अल्प ही कविता साहित्य निबन्ध है।

अनित्य पंचाशत

इसकी प्रति वामेकरके वास्त्रमण्डारमें मौजूद है। इसमें पद्य-संख्या ५५ तथा छन्द मधिसतर छप्पम और सर्वथा है। इनकी दूसरी प्रति बयपुरके पण्डित कृष्णकरजीके मन्दिरमें विद्यमान गुटका नं० ३५ बैटन नं० ३१९ में निबद्ध है। इस गुटकेपर मिलननाम दि सं० १९५२ पद्या हुआ है। इससे सिद्ध है कि 'अनित्य पंचाशत की रचना १९५२ से पूर्व हो चुकी थी। बनारसीवासीका कल्याण मन्दिरस्नात' भी इसी गुटकेमें निबद्ध है।

प्रारम्भिक संज्ञाकारणमें ही कविने अत्यधिक सरस ढंगसे उस भगवान्की बय-बयनार की है जो संसारमें 'परमात्म के नाम प्रसिद्ध है,

'सुख स्वल्प अनूपम मूर्ति वासु गिरा कल्याणमथ सोही ।
संज्ञमर्बत महामुनि जोष जिन्हों पर धीरज चाप भरी है ।
मारत की रियु मीह तिन्हें यह तीक्ष्ण सारक पंक्ति हो है ।
सो भगवत सदा जपवत नमीं जग में परमात्म जो है ॥'

शारीरक सात्त्विक हृष और शोकको वास्तविक नहीं मानते। वे इन दोनोंसे ही निरपेक्ष रहते हैं। इस विचारसे सम्बन्धित एक पद्य देखिए,

'जहाँ है संयोग तहाँ होत है विभोग सही
जहाँ है जन्म तहाँ मरण की भास है ।
संपति विपति शोक एक ही मचन हासी
जहाँ बसे सुख तहाँ दुख की बिकास है ।
जगत में बार-बार फिर नावा परस्पर
करम जबरस्था हूँसी विरठा की भास है ।
नट कैम भेष और और रूप होहिं तयें
हरष न सोग म्वावा सहज अदास है ॥५१॥

अन्तमें संसृज्य 'अनित्य पंचाशत'के रचयिता आचार्य पद्यनम्बिकी वादना की है।

चन्द्रसप्तक

इसकी प्रति जैन सिद्धान्त भवन वाराणसी मौजूद है। इसमें १ पद्य है। कवित्त और लक्ष्मीका ही प्रयोग निभा गया है। यह एक शीघ्र रचना है। भाषा सरस होती हुए भी सरस है और भाव तीबरे-साथे होते हुए भी मधुर है। कवित्तमें न तो प्रशंसनी कमी है और न कार्त्तिक्यकी। सभी पर आध्यात्मिकतासे ओत प्रोत है। पदाहारणके लिए,

“गुप्त सदा गुणी मारिं गुप्त गुणी मित्र मारिं
 मित्र तो विभावता स्वभाव सदा हेमिपु ।
 सोई ई स्वरूप अप्य अप्य सो न ई मित्रार
 मोह क अभाव में स्वभाव सुद पतिण ॥
 कहीं श्रम्य सामत अनादि के हो मित्र मित्र
 घापने स्वभाव सदा देसी विधि कलिपु ।
 पाँच अङ्क रूप धूप चेतन मङ्गल क
 जानपनीं सारा चंद माये यों बिसलिपु ॥”

३७ कुमुदचन्द (वि सं १९४५-१९४७)

इसका अन्त बीपुर नामके पाँचमें हुआ था । पिताका नाम सराफक और माताका नाम पद्माबाई था । कुमुदचन्दके नामसे विख्यात था । मधुवाक मोहके ‘मोक्षपराजय’ से चिन्तान् परिचित हो गये । मोह मुजपती बगिचा होते थे । अक्सय ही कुमुदचन्दके पूर्वज मुजपतने राजस्थानके बीपुर इाममें जा बसे होंगे । उनकी रचनाओपर राजस्थानी और मुजपतीका प्रभाव है । प्राचीन हिन्दी राजस्थानी और मुजपतीमें विशेष अन्तर नहीं था । अतः कुमुदचन्दकी कृतिमेंलो इनमें-से किसी एक कायानी बहुत प्रभाव नहीं है ।

उन्हें लगते ही उदासीन प्रवृत्ति और अध्ययनशील मन्त्रित्व मिश्र था । पञ्जीका प्रभाव यह हुआ कि वे युवावस्थासे पूर्व ही उदासीन हो गये । अध्ययन शील होनेके कारण उनकी सीमा ही व्याकरण भाष्य और सिद्धान्तपर अधिकार कर लिया । बहुतकर रत्नकीर्ति अपने मित्रके शानकी देखकर गुम हो गये । बारडोडीमें गया पट्ट स्थापित किया था । उनपर कुमुदचन्दको वि सं १९५९ में अधिकार कर दिया । इतकपर से वि सं १९८७ तक प्रतिष्ठित रहे ।

१ मोक्षपरा शृंगार सिरोमणि साहू सराफक शास्त्र रे ।
 बापो मन्त्रिक कुमुदचन्दतो पद्माबाई सोझात रे ॥
 बर्मसाकरकान् मूल ।

२ मन्त्रु लोक कल्पने बीधासे प्रपट पत्रोपर काव्या रे ।
 रत्नकीर्ति तीर बारडोडी बर धूर मंत्र कुमुद चन्द रे ॥
 मारि रे मनमोहन मुनिवर परस्वतो गणक सौमिन ।
 कुमुदचन्द मन्त्रारण करया अधिकार मन मोहत रे ॥
 अन्तेन कवि कुमुद ‘कुमुदचन्द’ ।

३ यही ।

कुमुदचन्द्रकी क्याति अधिक पैकी मुख रत्नकीतिसे भी अधिक । राजा और नवाब भी उनकी प्रशंसा करते थे । उनके विद्याबलसे बड़े-बड़े विद्वान् बचपत्नी ही पये थे । जहाँ जाते जनता उनके पीछे हो जाती । इसका कारण वा विद्वत्ताके साथ-साथ बानीकी मधुरता और हृदयकी पवित्रता । उनका विषय बर्मसागरमें एक भीतमें लिखा है कि वे जहाँ बिहार करते मार्ग कुंकुमसे छिद्रक रिये जाते थोक मोतियोंसे पूरे जाते और बचाप पाय जान समते ।

कुमुदचन्द्र विद्वान् ही नहीं बलितु साहित्यकार भी प्रथम काटिके थे । सबउक्त उनकी २८ रचनाएँ और अनेक पर तथा विनितियाँ प्राप्त हुई हैं । इनकी रचनाबामें भी अधिक हैं । उनका सम्मान नमीस्वर और रामुक्के प्रसिद्ध कथाकसे है । नेमिबिनभीत म रामुक्का शीर्ष-अर्पण करते जहूँने लिखा है

“स्य कृष्टहा मिटे जहूँकी थोके मीठ्यो बाणो ।

बिहुम उठही पदकक ग्येठ्यो रसनी कोठ्यो बर्याणो ॥

सारंग बचपी सारंग बबनी सारंग मनी इबामा हरी ।

बंकी करि ममरी बंकी बाँकी हरिनी मारि रे ॥

‘नेमिमाय बारहमासा’ प्रथमपीठ और ‘द्विण्डोक्त्यागीत’में रामुक्का बिच्छु मुञ्जर हो बटा है । फलमुनमास ज्ञानन्दका बना होता है । पलिनहीं पतियोकें साथ फ़ग खेळ्यो है । उनके बचन प्रथमतयासे सर्वत्र बिछे बन रहते हैं । किन्तु रामीमती क्या करे, जसने पतिने बैराग्य के लिया है । बहु लौटकर नहीं आवेया । उसका बिच्छु पूट पड़

“कागुण केसू कुळीथो नर मारी रमै नर काग थी ।

इस बिबोद करे बणा किम बाह धरुथो बैराग थी ॥

‘बनबारागीत’ में २१ पद्य है । यह एक कथक-काव्य है । इसमें मनुष्य बणबारा है । त्रिभु ठरह बणबारे इतर उतर धूमते-फ़िरत हैं जती भाति यह मनुष्य संसारमें प्रमथ करता है । दिन-रात पाप कमाता है । संसारके बन्धनसे कभी छूटा नहीं

“पाप करुबाँसि जनठ बीबदुबा पाखी नहीं ।

साँचो न थोकियो थोक मरम माँ साबहु बाकिबा ॥”

१ मुन्दरि रे सहुबावो ठहो कुंकुम जहो देबडाको ।

बाळ मोतिये थोक पूपावो बडा सतनुव कुमुदचन्द्र न बचावो ॥

बन्तागरकन भीत ।

कुमुदचन्द्री विनयिणी मन्दिारसनी विषकारिणी ही है । जनना संनजन मन्दिार ठीकबान बयपुरके गृहना नं १३१ में प्राप्त होता है । इस कुन्देवा केनननाड वि सं १७७९ दिवा हुआ है । एक विनयीकी कुठ पत्त्रियाँ इस प्रकार है

“प्रमु पार्थ कागी कर्णं सव वारी ।
 तुम मुन को अरज भी जिनराज हमारी ।
 बनीं कस्त करिद्वेज जिनराज पाम्बो
 हूँ सवै संसारनीं हुष बाम्बी ।
 अथ श्री जिनराजभी क्व दरस्वी
 अथै डोषवा सुप मुवावार वरस्वी ॥
 कहव्य रणवधिटा नवविधि वारी
 मारीं धाम्बे कळपतर आत्रि आवा ।
 मववाहित दाम जिनराज पाम्बी
 यथो रोग अठय मीहि सरव स्वामी ॥”

कुमुदचन्दके पर मन्दिार सूचकरबनी पाण्डपा बयपुरके गृहना नं ११४ म भीवठ है । एक कवये प्रमुको मीठय जनाकम्ब देते हुय मचन कविने लिखा है

“प्रमु मेरे तुमकु प्यमी व चर्हीय ।
 सखय विबल बैरत सेवक नूँ मीम परा कथी रहिय ॥
 विचन इरन सुख करन सवनि नूँ पित्त भितामनि कहिय ।
 अकरत धरत अचण्डु कृपासिण्डु को विरद भीवहिय ॥
 हम तो हाय विचनै प्रमु के अथ आ करै सो महिय ।
 तो मनि कुमुदचन्द कर्णै धारणागति की सरम उ रहिय ॥

जनकी कृतिबोमें ‘माण्डवाङ्गवलिङ्ग’ एक अष्टकाव्य है । इसका कबालकमें मरठ बीर बाङ्गवलिङ्गके प्रसिद्ध मुडकी कथा है । सोनो ही मववान् अपवदेवड वळनत्तो पुन व । मरठ बड़े भीर बाङ्गवलिङ्ग कोटे थे । मरठन अणन अठयतिवको धार्ममीन बनानेके लिए बाङ्गवलिङ्गको भी कृकान्य बाह्य । सोनोमें इन्ह मुड हुआ । बीठ बाङ्गवलिङ्गकी हुई दिन्नु तन्हे सभारसे वितृप्ता हो पनी बीर वै बनमें आकर तप करने लगे ।

पूरे काव्यमें दो रस प्रबुध कवये पलन सके हैं । बीर बीर धाम्य । बाङ्गवलिङ्गका कमुषा भीवन एक आदर्शवर्तिन है । वे बीरताके बरेण्य भीर धामिके अग्रदूत हैं । वे ही सोनो रनोके नायक हैं । इन्ह मुडको बाठी हुय अकक एक कुरद है,

“बाप्या मस्क भलाडे बळीजा
 सुर भर किल्लर बोवा मकाभा ।
 काछवा काळ कयी कड तणी
 बोळ बांगड बाळी बाणी ।
 सुवा इंड मन सुड सभागा
 ताबेंताबेंलारे भागा ।
 हां हां कर करि त बाया,
 बळी बळ पडया क राया ।
 इळारे पड्यार पाड
 बळगा बळग करी त जाड ।
 पग पडया पाईणी-तळ बाज
 कडकडता तड्यर छ माजे ।
 नाय बन्यर बाळ बन्यर
 सुटा मपगळ फूटा मापर ।
 गड गडता गिरिचर त पडींभी
 फूट करंता कलपति बराया ।
 गड गडगडीमा मडिर पडींभी
 दिग इंतीच मकवा बळ बळीमा ॥

इस काव्यका निर्माण वि सं १९७ व्युत्पन्न दुबका छठको हुमा था ।
 इत्येक एक हस्तलिखित प्रति आमारशास्त्रमन्थार जयपुरक गुटका न ५ में
 १ ४ स ४८ तक अंकित है ।

‘शुपम-विवाहका’ एक महत्त्वपूर्ण कृति है । इसकी रचना वि सं १९७८
 में आशानगरमें हुई थी । यह अपर्युक्त गुटकेमें ही पृ २२७ स २१४ तक
 लिख्य है । इसमें शुपमदेवकी मक्ति १६ स्वप्न ईकनडे केवर शुपमदेवके विवाह
 पयसका विवर बयान है । जन्ममें वैराग्य धारण करण और मोक्ष-प्राप्तिका लक्ष्य
 है । यह सब कुछ प्यारत हाकामे सम्पन्न हुआ है । अल्पिप्त हाक मुख्य है । चलते
 ‘विवाहका’ पद सार्थक छिद्र होला है । मक्तिपरक कृतियामें भीतिक विवाह
 ‘विवाहका’ नहीं कहलाता अब आराध्यदेव बीरानुमांरी संयमधी या मुक्तिवपुका
 बरण करता है तो यह ‘विवाहका बोवाहका बीवाहको’ मादि उजाकाले
 अविहित पाता है । शुपम विवाहका’की अल्पिप्त हाकमें मुक्तिवपुका साथ
 शुपमदेवका विवाह हुआ है ।

इस काव्यमें अनेक हृदयग्राही कुरव हैं। श्रवणदेवता कण्ठमण्डकण्ठी त्रिह
पुत्रीके साथ विवाह होना या उसके तीर्थदर्शन एक विषय है,

“कह महाकछ राव है, खेहुनुं अग अत गाव रे ।
तम कुंजरी स्में सोहे रे बोलां जनमन मोहे रे ।
मुन्दर बेनी पिछाक रे अरव जलो सम म्हाक रे ।
नवन कमकच्छ कावे रे सुग पूरवचत्र राव रे ।
बाके साहे ठिकनु कुक रे अवर सुरव ठनुं महि भूके रे ॥”

श्रवणदेव माँ महेश्वरीके कर्णमें जाये। इन्की आकासे विविध देविनी माँकी
सेवा करने आ गयो। सेवामें उन्कीन देविनीका मन्त्रि-भाव देखिए

‘एक नित्य निहचारे एक बचाके पाव ।
एक बाजकुड अरकवे सारके बाव ॥
एक अनी समारे, नचये काजक सारे ।
एक पीचक काव एक अमरा सिजप्यारे ॥
एक अमर गूये एक अये ठमोके ।
एक वग ठे पाके कुंजम सुरंग राक ॥

अम्क बनरान्त बाकक श्रवणदेव बीरे-बीरे बहने कये

“दिन दिन अय बीपतो कर्इ बोवतअ तिम चंद रे ।
पुर बाकक साये रमे सहु सउजन मर्नि बाजंद रे ॥
मुन्दर बचन सोहामण्ये, बोके बाहुअडो बाक रे ।
रिम अिन बाज कुंजरी पौ चाके बाक मराक रे ॥

उपरोक्त रचनाओंके अतिरिक्त कुमुदचम्पने ‘नेत्रीरवर हृदयी - ८७ पद्य
‘अण्डरिणीत - १७ पद्य ‘दण्डतनचर्मरुतपीठ - ११ पद्य धीकपीठ - १ पद्य
‘सप्तम्यतनपीठ - १३ पद्य ‘अर्थापीठ - १४ पद्य अरतेस्वरपीठ - ७ पद्य
‘बास्वनाचपीठ - १९ पद्य अन्धोरुडोपीठ - १३ पद्य आरतीपीठ - ७ पद्य
अन्मकम्पाचरपीठ - ८ पद्य ‘विन्द्यामपिपास्वनाचपीठ - १३ पद्य बीपाचली
पीठ - ९ पद्य ‘नीतमस्वामी बीरई - ८ पद्य ‘बास्वनाचपीठ विन्दी - १७ पद्य
‘अर्थाचरपीठ - ३ पद्य ‘बास्वनाच विन्दी - १ पद्य मुनिमुकुटपीठ -
७ पद्य ‘नीत - १ पद्य ‘अोडालपीठ - १ पद्य ‘बीपीठ तीर्थकर देह
प्रवाच बीरई - १७ पद्य और ‘बेकनिका विन्दी - १४ पद्यकी भी निर्माण
दिया था।

३८ कवि परिमल्ल (वि सं १९५१)

कवि परिमल्लकी कुल-परम्परा इस प्रकार है चौबरी चन्दन रामदास आसकरन । परिमल्ल आसकरनके पुत्र थे । चौबरी चन्दनका प्वाक्षिमरके राजा मानके दरबारमें अत्यधिक आदर-सम्मान होता था । रामदास और आसकरनने उस दरबारको सुरक्षित रखा । कवि परिमल्लका जन्म प्वाक्षिमरमें ही हुआ था किन्तु वे आगरामें रहते थे । प्वाक्षिमरमें मानसिक कष्ट रहनेके कारण उन्होंने धारवाको अपना निवास-स्थान बनाया था वैसे कि वही आगरे में तबि सख्तु' थे स्पष्ट है,

'ता आरी चन्दन चौबरी कीरति सब जग में बिस्तरी ॥
जाति बरहिबा गुन संभार । अति प्रताप कुल मंडन थीर ॥
ता सुत रामदास परधीन । नंदकु आसकरनु सुबकीन ॥
ता सुत कुल मंडन 'परिमल्ल' । वैसे आगरे में तबि सख्तु ॥”

उस समय आगरेमें सम्राट् अकबरका शासन था । उसकी प्रशंसा करत हुए कविने लिखा है, 'बहु दूतरे सूर्यकी भाँति तपता है उसके राज्यमें कहीं अनीति नहीं है और उसने समूची पृथ्वीको जीत लिया है

'बखर पाति साहि होइ गवौ । ता सुतु साहि हिमाड मपी ॥
ता सुतु अकबर साहि सुजातु । सो तप तपै बूसरो भातु ॥
ताके राज न कई जनीति । बसुबा सर करै सब जीति ॥३९॥”

कवि परिमल्ल बरहिबा जातिमें उत्पन्न हुए थे । उस समय बरहियोंके अनेकों घर प्वाक्षिमरमें थे । सभी वैभव-सम्पन्न मर्यादापूज और यशस्वी थे । उनमें सर्वोत्कृष्ट होनेके कारण ही चन्दन चौबरी कहलाते थे । बहनेका तात्पर्य यह कि कविका जन्म एक उच्च परिवारमें हुआ था ।

भीषास चरित्र

यह काव्य अत्यधिक लोकप्रिय था । इसकी इतनी हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं कि यहाँ सबका उत्प्रेक्ष्य अतम्बव ही है । यह प्रतियोंका विवरण बाघी नावरी प्रचारिणी पब्लिशरजी बीसवीं वैवायिक रिपोटमें दिया गया है । वे प्रतियाँ क्रमशः वि सं १८ ७ १८३५ १८५६ १८७४ १९१३ और

१ भीषासचरित्र पृष्ठ ३, बाघी नावरी प्रचारिणी पब्लिशरजी की प्रकाशित रिपोर्ट में ५ ।

१९२६ की किन्हीं हुई हैं। एक प्रति आमेरशास्त्रमण्डार बयपुरमें^१ बृहती बयपुरके टीकियोंके हि ब्रह्म मन्त्रमें^२ और तीसरी बयपुरक बभीचम्बरीक मन्त्रमें मौजूद है।^३ दिल्लीक पंचामती मन्त्रमें भी एक प्रति है। इन सबम प्राचीन प्रति आमेरशास्त्रमण्डारकी हैं। यद्यपि बाघी नामकी प्रचारिणी पत्रिका को १९३३ विवरणिकाके सम्पादनार्थमे इसका रचनाशाल वि सं १९४९ निवारित किया है, किन्तु उसी प्राचीन प्रतियोंमें वि सं १९५२ दिया हुआ है।

यह एक उत्तम कोटिका प्रबन्ध-काव्य है। इसमें महाशय्या भीषाकका चरित्र वर्णित है। उसकी पत्नी मैनासुन्दरीमें त्रिलोक-मन्त्रिण ही अपन पति भीषाकका कोढ़ ठीक किया था। भीषाक भी अन्धान् त्रिलोकका भक्त हो गया था। इस काव्यमें और और मन्त्र रचना समन्वय हुआ है।

इसको पढ़नेसे स्पष्ट ही जाता है कि रचयिता एक ग्रीह कवि थे। उन्होंने आमेर और आम्बिकरका शहीद चित्र पारिषद किया है। भीषाक और मैना सुन्दरीके जीवनकी अनेक घटनाओंको सुन्दरताके साथ चित्रित किया गया है। बर्न और बयम पाप और पुण्य ईश्या और अहिंसाके भक्त-प्रतिपादोंको भी सुन्दर ढंगसे दिखाया है। अन्तमें ब्रह्मचर्य और उच्चरे 'मन्त्रिणक पीठों' से ही महाकाव्य पूर्ण हुआ है।

कविन त्रिल-शासन त्रिन-जगता और त्रिन-मुनियोंके चरणोंमें अपनी भद्रा समर्पित की है।

“बंदी त्रिन शामन को ब्रह्म अप्य साव जाती अचक्रमः ।

बंदी गुण से गुण के मूर, त्रिनके होच न्याय की पूर ।

बंदी माता सीह बाहिनी जातेँ सुमति होच अति बची ।

बंदी मुनिचम से गुण ब्रह्म अचरस महिमा अद्विच ब्रह्म ॥

प्रत्यक्ष अन्वित ॥”

भीषाक चरित्र दोहे-भीषाकयोमें किया गया है। जहाँपर भी पति-बंध और अन्य भग नहीं हुआ है। अनुप्रासोका प्रयोग भी सुन्दर है। यद्यपि उसकी भाषामें उत्कृष्ट शब्दोंका प्रयोग अधिक हुआ है, किन्तु उसकी पठि-धीलता नहीं की चिह्नित नहीं होने पायी है। भाषामें ब्रह्म अचरी सुन्दरकाव्यी और मारनाहीरा

१ मन्त्रिणमय बयपुर, पृष्ठ २०७। इन प्रतियां निरिक्तान वि सं १९५४ दिया गया है।

२ आम्बिकरके ब्रह्म शास्त्रमण्डारोकी सम्पादनी, भाग ३ पृष्ठ २१६।

३ पृष्ठ १४७।

मिथ्या है। वही हीनो सीनो वहीँ दिवो सिमी बज्रहूँ और वही वहाड़े मुवासिनि सीमाय और मन्त्रुं भाति सन्वीक प्रयोग है। मिथ्या होते हुए भी भाषाको 'संपूर्ण' की संज्ञा नहीं दो आ सकनी बजाकि उसमें साहित्यिकता है।

३९ वादिचन्द्र (वि सं १९५१)

ये मूमर्षवके भट्टारक ज्ञानभूषणके प्रसिद्ध और प्रभावशालक विषय थे। इनकी महा मुजराणमें कर्णोपर थी। इनकी मुदररम्पय विद्यानपि मल्लिभूषण लक्ष्मीचन्द्र औरचन्द्र ज्ञानभूषण प्रभावशालक रूपमें वही जाती है।^१ वादिचन्द्र एक समर्प साहित्यकार थे। उन्होंने संस्कृत और मुजराठी मिथित हिन्दीमें कृत्वा। इनका संस्कृतमें कृत्वा हुआ 'पार्श्वपुराण १५ स्तोकप्रमाण है। उसकी रचना बम्बईके नगरमें कालिक मुनी ५ वि सं १९४४ को हुई थी।^२ 'ज्ञानसुयोदय' नाटककी तो बहुत ही क्वालि है। उसका निर्माण मात्र मुनी ८ वि सं १९४८ को मधुवनपरमें हुआ।^३ 'पञ्चतूत' तो कालिकासके मेघतूतके आधारपर रचा गया एक छरस लक्ष-काम्य है। इसमें कुल १ १ पद्य हैं।^४ 'यद्योवरचरित्र बंकरैस्वर त्रैलोक्यके विस्तारणि वास्तवावके मन्दिरमें वि सं १९५७ में पूर्ण किया गया।^५

१ वादिचन्द्र जीवाल भास्वान, प्रसिद्धि क्व २-८ शैव साहित्य और इतिहास पृष्ठ ३५७ पारटिप्लयी २।

२ अनुमान्नी रमास्वाके बर्षे पद्ये समुज्ज्वले।

कालिकासि पंचम्या बम्बईके नगरे मुवा ४

वास्तुपुराण प्रसिद्धि, ३ स्तोक, प्रसिद्धि-प्रमाण माग १ नीरमेधामन्दिर दिल्ली प्रलाभना पृ २४ पारटिप्लयी १।

३ अनु-वेद रसास्वाके बर्षे माघे सिताष्टमी दिवसे।

धीमाम्भूजतपरे मिथोऽर्थ्यं बौधमरम्भ ॥

पाल्नाबोरक नाटक, प्रसिद्धि, ३ पद्य, शैव साहित्य और इतिहास पृ ३५५, पारटिप्लयी ४। क्व बम्बई, शैव प्रभावनावर कालिकास बम्बईमें सन् १९१६ में, पं माधुवन मेरीके अनुवादसहित प्रकाशित हो चुका है।

४ इन एत-बाधको रत्नीक ४ इदवपालकी कारालीपालने सन् १९१४ में हिन्दी अनुवाद मल्लि जेन साहित्य प्रसारक कालिकास बम्बई द्वारा प्रकाशित किया था। क्व क्व भिन्नुवमन्त्र मेरुकी कालिकासके वेरक्य गुण्यकमें बया है।

५ बंकरैस्वरमुषामे धीविलासिनि-बरे।

सन् १९५७ रसास्वाके बर्षे-वारि मुनाम्भकम् ४

वास्तुचरित्र प्रसिद्धि १३१ क्व प्रसिद्धि-प्रमाण प्रथम म्यान दिल्ली प्रलाभना पृ ४ पारटिप्लयी ४५५।

'सुखोचना चरित' की एक इस्तकिलिन प्रति वि. सं. १९९१ की लिखी हुई मिली है।^१ अक्षररचना इसमें कुछ भ्रम हुई होगी।

अन्तर्लि मुजराती मिथित हिन्दीमें भी अनेक रचनाएँ की। उनमें महत्त्वपूर्ण में हैं 'धीपास आख्यान' भरत काहुवनी अन्व आरचना पीठ' 'अम्बिका कथा और 'बाणवपुराण'।

धीपास आख्यान

इस आख्यानकी एक प्रति बम्बईके ऐश्वर्य वदनाकर सरस्वतीमठमें मौजूद है। यी मोहनलाल दुकीचन्द बेसाईने त्रिष प्रतिपाद अम्बिका कथा है यह वि. सं. १९७९ पीठ वरी ३ की लिखी हुई है।^२ आख्यानके विषयमें पण्डित बाबूराव की प्रेमोने लिखा है कि यह एक नीतिकाम्य है और इसकी भाषा मुजराती मिथित हिन्दी है।^३ इसकी रचना संभवतः बनगी लषाके कइनेसे वि. सं. १९५१ में हुई थी।^४ इसमें आक्षेपकी कोई कमी नहीं है। गो रसोला प्रयोग हुआ है। भाषामें ब्रवाह और सरलता है। वाक्योंमें अविचलर बौद्धे और चौपाईया प्रयोग हुआ है। प्राथमिक संवसचरण देखिए,

'आदि देव प्रथमि अमि अंति श्री महाधीर।

बाग्वादिनि बहने अमि गदध गुण संधीर ॥"^५

"सरसति सुममति अन्व अर्जुनरि गीर गदध गयेम अमि चरि।

बोद्ध एक हु सरस आख्यान सुन के सख्य सहु साधबाव ॥"^६

इस नामके कइनेसे त्रिनेत्रके प्रति अक्षिपूर्व भाषाका उदय होता है। अक्षर विचि स्थिर होकर अक्षरानुकी अक्षरमें अक्षर आता है। शब्द केने त्रिपुत्रा करनी और अक्षररूप आरम्भ करनेमें अक्षर अक्षर है। अक्षररूप अक्षरके अक्षररूपमें और अक्षरको आरम्भ करनेमें अक्षर आख्यानका अनुभव कर चला है। इस पीठके बावनेसे अक्षर-आरम्भको अनेक प्रकारके संयोज प्राप्त होते हैं

"अक्षररूप पिर अक्षर करीने सुखान्धी मिथ सख्य अक्षर ॥१॥

१ इसकी एक इस्तकिलिन प्रति इन्दरे शाकनकरारने मौजूद है और इसकी रचना कथाकार वि. सं. सरस्वतीमठमें है।

२ कैलाशचरितको टीको भाग ५ ५।

३ कैल टाकिल और अम्बिका ५ १००।

४ संभवतः अक्षर की लषा अक्षर कीको ए प्रथम थी।

कैवली धीपास सुन अक्षर सुन अक्षर करो अक्षररूप की ॥१२॥

५, कैलाशचरितको, टीको भाग, ५० ८०३।

राम हीने जिनपूजा कीने समकित मनै रातिने जा ।
 सुप्रभ मणिपु अक्षरकार गणिए असत्य ब विमानिने जी ॥१॥
 कोम लकीने प्रह्य धरीअ सांमसपानुं कळ एह जी ।
 ए गीठ ब नर नाश सुणस अनेक मंगळ तद रोह जी ॥११॥

भरत-बाहुबळी छन्द

इसका अस्तित्व भी मोहननाथ कुसीबम्ब देसाहने शैवमुक्तरकविजी नाम ३
 पृ ८०४-५ पर किया है। इसका एक पद्य हम प्रकार है

बोकि बाधीच्छेद गण्यजु कुण्य रत्नाकर
 लबनि एक तुं मक अक्षर महिमा महिमाकर
 तुं असकळ अरदेव जित मवतारण
 आर्धीतवा ब कोक विहनु नरक निवारण
 अयमद्वय बधित मभो बाहुबळ जग आपीरुं
 भगति पामा माव सुं तुम गुण एक बरानोह ॥३८३॥

भारावना गीत^१

इसकी प्रति छारदापुरमें पाखनाथ शैर्यालयके सरस्वतीभवनमें धर्मभूषणके
 शिष्य ब्रह्म बाधजीकी लिखी हुई मौजूद है। यह एक मुक्तक काव्य है, और अंशमें
 कुल २८ पद्य हैं। प्रत्येक पद्य अर्धश्लोकी भक्तिसे सम्बन्धित है। प्रथम पद्यमें ही
 सरस्वती और गणेशकी वन्दना करते हुए कविने कहा है कि जो कोई इस
 आराधनाको पढ़ेया अथवा सुनेगा उसके पापना तो छेप-मात्र भी न रह जावेगा।

“श्री सरस्वती नमो नर बाध गारुधा यमेश्वर राव ।
 कर्तुं आराधना मुक्तिसेस सुधे वाप न रहे कबठेस ॥१॥”

अम्बिका-कथा

इस कथाकी रचना वि सं १६५१ में हुई थी। इसकी एक हस्तलिखित
 प्रति लखनऊके श्री विद्यमठेन और प्रति रामरामजीके पास है। हमने देवी
 अम्बिकाके प्रति अति भाव प्रदर्शित किया गया है। यह कथा प्रकाशित हो
 चुकी है।^२

१ बरी पृ २।

२ अन्तर्गत मास अम्बिकाकथा अनेकाल वन ११ दिवा ३-४।

पाण्डव-पुराण

इसकी इस्ततिखिन प्रति अयपुरके ठेरहान्धी मन्दिरम मौजूद है । इसकी रचना कि सं १९५४ में मौजबई हुई थी ।

४० गणि महानन्द (कि सं १९९१)

लगायतने प्रसिद्ध धीहीरविजयमूरिकी गिण्यारम्परामें एक धी विद्यालय हुए । उनके सिष्य गणि महानन्द थे । गम्बजपुरा महानन्द मुजरागके रहनराके थे क्योंकि अरबी रचनातर मुजरागीका अधिक प्रभाव है । ऐसा प्रतीत होता है कि मुजरातो उनकी मातृ-भाषा थी । अरब पूर्वाचारोंका सम्मान करत हुए उनोंने लिखा है कि धी हीरविजयमूरिके अकरर बादशाहको उरबेम दिया था और धीविजयसेन गणिमे अरबके दरबारम अरब नामसे एक विद्वान्को बाद-विवाहम पठासत किया था

‘ओ विजयसत राजघार है ।

जिणि आदि अकररकी समा मीहि मद्र मुरि कींधा काधा बजुब मग है ।
मिण्वासत रेचड़ी करी र जिनि गरुजु गहजु जिनघासवि रंगरे ॥

महानन्दकी एक-भाव रचना ‘अरमा-मुन्दरी रास है जो रासपुरमें कि सं १९९१ में रची गयी थी । अरमा इनुमातृकी माँ थी । उनपर अनेक आपत्तियाँ आयीं किन्तु वे जिनैन्द्रकी मन्दिरे विचछिड न हुईं । उनका सारा जीवन घटित-का ही जीवन है । उनकी तुलना मीरासे नहीं की जा सकती । मीरामे जीवनिक कसकी नपथ्य समझा अनीकिरमें ही विभोर गयी रही । अरमाने जोक और बजोक दोनों ही का समान रूपसे लिखा है किया । पहले मुरस्वायामके कर्तव्योंका भी पाठन किया और पीठपापी मगबन्धु प्रेम भी किया ।

१ दरबानपरद्वाराक कर्ते नियेव मासि चड्रे ।

मोबजानगरअगारि पाण्वाका प्रभावक ॥९७॥

मन्दिरेमगह मयम मग, दिल्ली, मलाकवा हउ रव पाठमिण्वाकी है ।

२ गणि मशकन्द अरमातुन्दरीरास अन्तिम प्रसति अँग सिखान्त मयन आर-की इस्ततिखिन गणि ।

अरमा मुन्दरी रास अन्तिम प्रसति, कव ११ ।

अञ्जना सुन्दरी रास'

इस रासमें अञ्जनाक जीवनकी विविधता चित्रित की गयी है। अञ्जनाकी विरहावस्था इन सबमें उल्लेख है। कहीं प्रियसे मिलनकी उत्सुका है वहीं प्रिय के इष्ट अनिष्टकी चिन्ताम खाना-पीना तक विस्मरण हो गया है। और कहीं प्रिय की स्मृति-जम्प विमोचताम वस्था तकको बिगुलक कर लिया है। सब कुछ नैसर्गिक है बनावटका आभास भी नहीं। वहीं पतिव्रता जब अनारण ही पति-द्वारा विर सृष्ट जाती है। ता इस दुःखको प्रथम निम्नकी स्मृतिसे उपगम कर केती है। उसकी सामग भ्रमवशात् अञ्जनाको परसे निकाल दिया उस समय वह पतिप्री की। उस समयका कल्याणक वृक्ष काव्यका मार्मिक स्वस है। किन्तु अञ्जना ने मन्वानका सहारा न छाया। उसक जीवनका यह मास गहरी मयबध्मनिसे युक्त है।

बोध-बोधमें प्राकृतिक दुर्योधन विचल नी स्वामाविष्ट उपम हुआ है। बसल भा गया है। बारा और बलमासा पूरक मयी है। कसियामें बहार मान समी है जैसे बुझुमका रंग बाहकर बारा और छिटक दिया गया है। एसी पोमा-क मध्यम सुहरी अञ्जना हाथमें मन्वी किम अपनी सन्धियाक पाप झीड़ा कर री है।

'पूजिब बगह बलमासाय बाधाय करई रे टकाक ।
करि बुझुम रंग शकीय बोकोय झम्म झाक व
बकह लक रंही कपी साकसा सहीयर साब ।
अञ्जना सुहरी सुहरी मन्वा भदा करी हाथ ॥५४॥

मनुकर पुजार कर री है। कायल बीछ रही है और मलमानिक बह रहा है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि महानुप मरगत विरहिणियाको बहट देनेक निष्ट ही यह सब आयाजन दिया हो। अभी तो अनियाका गुजारमें मारणा विचार कायलकी वृक्षमें कस्तमे मिश्रितको हूक और मन्व-मुपग्य पवनमें उहीरतकी भाव है।

"मनुकर करई गुजारय मार विचार बईति ।
कायक करई परहूकड़ा हूकड़ा मैकवा बंग ॥
मन्वबाचक भी बककिड पुलकिड पवन प्रबंद ।
मन्व महानुप पासाह विरहावि विर ईंड ॥५५॥"

१ हाकी कल्पितगी धनि - न विद्याक नवन भासामे मीचर है। समे नन ५२ क-४ है।

इसी वसन्तमें बेधठा नन्दीश्वरको यात्रा करते हैं। वहाँके मन्दिरमें बडानके लिए उनके हाथमें सुवर्णित कूक होते हैं

‘युधि समई नदीश्वर चरइ सुरवर बाइ बाब ।

हैसह गजन बहँता कर गृही कुमुमनी पाब ॥५९॥”

बंजनाको वीम मुनिमोक्षी भक्तिमें आनन्द मिळता था। वह प्रायः उन्हें आहार दिया करती थी। एक बार उसने आहार देनेके लिए ‘नन्दन नामके मुनि का पत्रिमाहून किया बिन्दूने अपने बुद्धव तपसे संसारको भीठ किया था। वी चरम-सरीरी से। उनके मुक्तोको भाकर प्रत्येक मनुष्य आनन्दका अनुभव करता है, और उसके सब मनोबंछित पूरे हो जाते हैं

इन्धि वरिपातु अजना सुंदरी बंदव थीर ।

ब्रह्म माच बेरी प्रकळ किन्धि जीत्या का बड़वीर ॥

चरम करीरी सुगुल गर गाला होइ आर्जद ।

घइ मनबंछित संपदा इस बोळइ यधि महाबंद ॥५९-५०॥”

यहाँ रामसिंह तामरने महाशक्ति द्वारा रचित एक ‘आर्जद स्तोत्र’की बात कही है। इसमें ४३ पद्य हैं। किन्तु अब वह प्रमत्तित हो गया है कि वे महाशक्ति एक विश्व व्यक्ति से। उनकी रचना आर्जदसिंह सिद्ध है कि उसका निर्माण विष्णु-की चौदहवीं शताब्दीमें हुआ होगा। आनन्द का प्रकटन ‘तन्मेकन-पत्रिका’में हो चुका है।

४१ मेघराज (वि सं १९९१)

वे पार्श्वकन्नपुरिवक्त्रके छात्र थे। इनकी पुत्र-परम्परा इस प्रकार थी : पार्श्वकन्न समरकन्न राजकन्न और भवकन्नधि। मेघराज भवकन्न अधिकाे सिध्य से। इसी शताब्दीमें एक बृहरी मेघराज भी हुए हैं वे मेघमच्छक कछुवाठ से और जो विपम्बर बह्म-शाक्तिके सिध्य से। उन्होंने ‘शान्तिनाथ चरित’ की रचना की थी। किन्तु मेघमच्छक शतरूपी शताब्दीके पूर्वार्धमें और मेघराज शतरूपी हुए से। एक तीसरे मेघराज और वे जो ज्ञानुन-विके सिध्य से और जिन्होंने ‘शतर बेरी पूजा का निर्माण किया था।

मुनि मेघराज एक प्रीठ साक्षित्यकार थे। याच भाषा और सीधी सीधी बुद्धिमो-

से इनकी रचनाएँ सत्काम्यकी कोटिमें आती हैं। उन्होंने स्वान-स्वानपर रोचक ढंगसे बर्णकारोंका प्रयोग किया है।

सयम प्रवहण

इसकी 'राजचन्द्र प्रवहण' भी कहते हैं। इसमें राजचन्द्रसूरिके साधुजीवनकी महत्ताका अन्वेषण है। इसे हम साधु-भक्तिका प्रथम कह सकते हैं। इसमें रामचन्द्र सूरिके पूर्वाचार्य सोमरत्नसूरि पासचन्द्रसूरि और समरचन्द्रसूरिके माता-पिता और आचार्य बनने आदिका भी वर्णन किया गया है। इसकी रचना बि. सं. १९९१ में हुई थी। इसकी एक प्रति सं. १९८१ आषाढ सुदी १५ की तिथी हुई। बयपुरके ठोकियोंके मन्दिरमें बेष्टन नं. ३३९ में बंधी रखी है। इसका आरम्भ और अन्त इस प्रकार है

रिसहु विमिसर जगठिकठ नामि बरिह महार ।
प्रथम बरेसर प्रथम दिन विमोचन जब साधार ॥१४
चकी पंचम आजीह सोकमठ विनराय ।
शांतिबाध अगि शांतिकर नर सुर मजमह पाष ॥२॥

अन्तिम - राय बम्पाठी

"गणपति हरिसमि अति आर्णद ।
श्रीराजर्षिह सूरिसर प्रवपठ वा अगि हु रविचन्द्र ३३९०
प्रथम प्रवहण मास्मिगावठ नबर लम्मावठ माहि ।
संबठ सोक अजह इकसम्भै आजी अति उडाह ।।गछ।।
सरपण अगि गुद साउ शिरोमणि मुनि मेचराज ठसु सीस ।
गुण गणपति वा मानह माचह पडुचह आस अगास ॥३५९॥"

अन्य रचनाएँ^१

इनकी अन्य रचनाओंमें 'मल-बसवणी रास' शीक अजीनो रास' 'पार्ष्णिकर स्तुति तथा सत्काम्य-स्तुति' और हैं। इनमें 'शास्त्रचन्द्र-स्तुति' जग पारष्णिकरकी बन्धना है जिनके नामपर 'पार्ष्णिकरसूरिपञ्च' ही शक बडा वा। 'सत्काम्य-स्तुति' में गुक्की स्तुति भी पयी है और वह एक मुन्दर पीठि-नाम्य है।

१ जेष्ठसंस्कृतिको अक्षर १ इ ४०१४ २।

४२ सहजकीर्ति (वि स १९९१ १९९०)

यह सागनेर जयपुरके रहनवास थे। इनकी कृतिमेंसे इनके पारिवारिक जीवनका कुछ भी पता नहीं चलता है। यह खरखरमच्छरी नाम धामाके साधु थे। इनोंने मुनि जिनमिश्रका शिष्यापुत्रक स्वरूप लिया है। इनके मुखा नाम आचार्य हेमनाथन था। इनकी विधेय रचानि थी। इसकी मुद्र-परम्परा इस प्रकार थी जिनसावर रतनार रत्नरूप जमनाथन सहजकीर्ति। इनके 'समुद्रम महात्म्य रास'से आचार्य जिनमिश्रमूरि और मन्नाद् अकबरकी भेंटका वृत्त विहित होना है। इनकी रचनाकाल। संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकारसे है

प्रीति-छत्तासी

इसकी रचना सागनेरमें वि सं १९८८ में विजयवर्मजीके दिन हुई थी। इसकी प्रति जयपुरके टोम्बोके मन्दिरके गुम्बजा नं ९७ में संपूरीत है। इसकी एक प्रति पं विठ्ठलविजयके विष्णु बोधाके द्वारा धानिक्र उपलब्धके पहलेके लिए लिखी हुई बड़ोदराके घासमण्डारमें मौजूद है।^१ उसका कवि और शब्द वैशिष्ट्य, कवि

‘प्रीति न किमिष्टी क्षीती आपई, इकइविशु अरिहंतजी
भाषई कोटि उपाच करउ कइ, कामई मंत न संतकी।’

काल

‘‘प्रीति छत्तीर्णी ए जयरागि अथिक मनि हितकारजी
बाकक सहजकीर्ति कइइ भाषइ, श्री संज जयवर्मकारजी।

‘पारस-ब्रजम बडवीध’ ‘जिनपधरवर्धन’ ‘पासवितस्वानरधन और ‘वीठ तीर्थकरस्तुति सं चारा मल्लिमाम्बकी नाम्य जयपुरके शीघ्रमन्दिरीक शीघ्र-मन्दिरमें मुद्रा नं ११९ में लिखत है। इनके रचनाकालक विषयमें कुछ भी विहित नहीं है। हो सकता है कि खरखरी सताजीका जन्मिण पाद ही इनका रचनासमय हो क्योंकि इनकी प्रीति छत्तीसी कविकी रचना ठीकी समय हुई है।

समुद्रम महात्म्य-राम

इसकी रचना कास्यकॉस्ट में सं १९८४ में हुई थी। इसकी एक प्रति नि

१ श्री जिनमिश्र मिश्र जिन दिग्गज ठगु पाटई कित कावई

अरवण साहि सभाकन रजी एकनिवि मीन कुलावइ र।

रामक्य मनात्म्य रास कन नाम नव ७^१ई, कैलाश-रविमिषी, मान / ५ ५ २।

कैलाशकविषी मान / ५ ५ २।

सं १८४५ कार्तिक शुक्ला ५ की तिथी हुई मौजूद है, जिसका उल्लेख श्री बेरार्ड महोदयने किया है।

सुवर्जन श्रेष्ठि रास^१

इसकी रचना बगडोपुरमें वि सं १९९१ में हुई थी। इसमें सेठ सुरसतनका जीवन परिचय वर्णित है। यह भगवान् त्रिनेत्रका परम भक्त था। पूरा ग्रन्थ भक्तिसे ही ओतप्रोत है। प्रारम्भिक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

केवल कमलाकर सुर कोमल बचन विकास
कविपण कमल दिवाकर पञ्चमिव चर्कविधि पाम ।
सुरवर किंजर वर ममर सुन चरणकर्म बास
सरस बचन कर सरसती नमीपद् सोहाग बास ।
बासु पसापद् कवि कहर कविजगमई जसबास
हंसगमपि सा भारती देव मुझ बचन विकास ।

बिनराजसूरि गीत^२

यह गीत ऐतिहासिक शैव काव्य-संग्रहमें प्रकाशित हो चुका है। इसमें १८ पद्य हैं। बिनराजसूरिकी महिमाका वर्णन करते हुए कविने लिखा है,

'राजक 'मीम' समा मछी रे काक 'शैसकमेर मझार ।
परबात्री बीटा मियह रे काक पाम्बड बच लपकार ॥१॥
श्लोक तन्पड कमपा कवी रे काक सूरि कियड महकार ।
माबावह मानह बही रे काक कोम व चित्त किगार ॥२॥

पुस्में इतने गुन है कि कवि सतका वर्णन नहीं कर पाता -

'बिन माहि बहु गुण सूरिका इतिबद् प्रकट प्रमाण ।
वरनवी हुं नचि सङ्ग, तसु विद्या तन्वड गान ॥३॥

गुरके दर्शनसे परम ज्ञानन्व निकला है,

'सद्गुरु बंदिबद्, श्री बिनराज सूरिन्' ।
वरसन अधिक ज्ञानेद् जंगम सुरतव कंद् ॥४॥

१ शैल्युर्वरकविषो भाग १ इ ४२४-४९ ।

२ शैल्युर्वरकविषो, भाग १ इ १९ ।

३ ऐतिहासिक शैव काव्यमण्ड ३ १७४-१७९ ।

जैसखमेर चैत्य प्रवादी

इसकी रचना वि सं १९७९ में हुई थी। इसमें ७ गीत हैं। जैसखमेरके चैत्याकी नमस्कार किया गया है। उसका आदि पाप देखिए,

‘साधु साधवी आचक आची श्री संभवर्द्ध परिवार रे माई
श्री बिनराज सृष्टिर हरवर्द्ध जैसखमेर मझारि रे माई।
चैत्र प्रवादि करह बिचि सेठी, बाबर्द्ध बाबिच सार रे
गावर्द्ध गीत मजुर सर गरी उत्तर गच्छ जयकार रे माई ॥

अन्य रचनाएँ

सहजगीतने ‘कबाचठी राम’ वि सं १९६७ ‘व्यसन सप्तरी’ १९६८
‘दिवराज बच्छराज चौपई’ १९७२, ‘सागर सेठिकवा १९७५, ‘धीकरास’ १९८९
और ‘हरिस्वन्द चौपई’ १९९७ की भी रचना की थी।

४३ ब्रह्मगुलाल (वि सं १९९९)

श्री ब्रह्मगुलाल रचरी और बन्धवार बाबोके समीप ‘टापू नामक पाँके
रहनेवाके थे। यह बाब भी आपरा जिकमें यमुना नदीके किनारे बसा हुआ है।
इसके तीन ओर नदी बहती है, अग यह एक छोटा नूरा प्रायद्वीप ही है। इस
भौमिक परित्रापासे जगमिन्न होनेके कारण ही उसका नाम टापू बल पडा
होवा और उस प्रचलित नामको ही कविने लिखा है। श्री बन्धवारकी
कथाकीबातन लिखा है कि ब्रह्मगुलालकी आबिमारके रहनेवाके थे।^१ किन्तु सत्य
तो यह है कि सन्धाने जपन क्रिया को रचना पर बोधाचल’ बर्दान् व्याप्तिमें
की थी^२ किन्तु वे बहकि रहनेवाके नहीं थे।

^१ किन्तु बन्धवार, भाग १ व १ २२।

मध्यदेश रचरी बन्धवार, ता समीप टापू नुबमार।

इसका व्यापकका अन्तिम प्रकल्प, इलाहिया प्रिन्टि, श्री शास्त्रिणा वि
केन बन्धवार अन्तिम।

२ प्रकल्पितम् अन्तु, अन्तु १९२ प्रकल्पना १ २१।

४ ब्रह्मगुलाल लिचारि बनाई यह बोधाचल बानी।

उपपनी बर्द्ध बल विरामी लाहि सलेम मुनलाम।

अन्तु विवा अन्तिम पाठ प्रकल्पितम् अन्तु, १९२ व २१।

श्री ब्रह्मगुप्ताजीके मुख्य नाम महारथक जगन्मूयण था । वह अपने समयके प्रसिद्ध विद्वान् और समग्र युव थे । उन्होसे ब्रह्मगुप्ताजीने ज्ञान उपाधिगत किया था और उन्होंने प्रेरणासे कृपण जगन्मूयणहार का निर्माण किया ।^१ वह बाबदाह बर्हीपीर का समय था । उसका शासनकाल संवत् १६६२ से १६८४ तक माना जाता है । श्री ब्रह्मगुप्ताजी भी इसी समय हुए हैं । उनकी जेपन-क्रिया^२ सं० १६६५ में और 'कृपण जगन्मूयणहार'^३ सं० १६७१ में बना ।

उस समय टापूका राजा श्रीरघुसिंह या जो तेज और त्याग दोनोंमें ही समान रूपसे निपुण था । वह अपने भक्त्य युक्तोके कारण कुसुम शीपकके समान माना जाता था । वह अपने मन्त्रकमें गो-रक्षाके लिए प्रसिद्ध था । भगवान्ने उसे शारीरिक उद्धार बताया था । उसीके राज्यमें बर्मदासबीक भतीजे मन्मुदामजी रहते थे जो अपने कुक्के सिरमीर और शान देनेमें सेठ सुबर्जनके समान थे ।^४ वे ब्रह्मगुप्ताजीके बलिष्ठ मित्र थे यहाँतक कि ब्रह्मगुप्ताजीके मुनि बननेपर वे स्वयं भी भुक्तक हो गये थे और ब्रह्मगुप्ताजीके साथ ही रहते थे ।^५

ब्रह्मगुप्ताजी सच्चे कर्माकार थे । एक बार उन्होंने सिंहका शेष बताया तो कुछ ऐसा लम्बा सिंहका भाव थाया कि उससे एक राजकुमारकी हत्या हो गयी । राजकुमारके पिताको सम्बोधन करनेके लिए जब बौद्ध मुनिका शेष कारण किया तो फिर सच्चे बौद्ध मुनि हो गये ।

मुनि ब्रह्मगुप्ताजीके छह रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं 'जेपन-क्रिया कृपण जगन्मूयण कथा' बर्मदासबीक समयसरनस्तोत्र जगन्मूयण क्रिया और 'विशेष-शोषण' । इनमें 'विशेष-शोषण' जयपुरके ठोकरियाके मन्दिरमें है ।

- १ जगन्मूयण महारथक पाद करो ध्यान-जंतरगति आह ।
ताकी शिवमु ब्रह्म गुप्ताजी श्रीजी कथा कृपण हर-शाह ॥
इत्यर्थ जगन्मूयण कथा अन्तिम प्रशस्ति इत्यतिथिप्रति श्री शास्त्रिणाव दि बौद्ध मन्दिर, मन्मथपुर ।
- २ सोरह सै पैंसठि संमन्त्रर कातिव तीज अघियाही हो ।
जेपन क्रिया अन्तिम पाद, प्रकृतिसमय जयपुर, इ २२ ।
- ३ सोरह सै इन्हारर वेठ नुमीहि विश्व सुमरि परमेठि ।
कृत्य जगन्मूयण कथा अन्तिम प्रशस्ति, मन्मथपुरकी इत्यतिथिप्रति ।
- ४ इत्यर्थ जगन्मूयण कथा अन्तिम प्रशस्ति, मन्मथपुरकी इत्यतिथि ।
- ५ गये मनाने श्री मन्मुदामजी पत्नी बर्म महिमा जाती ।
भुक्तक होकर साथ हो किमे शेष बासना सब हानी ॥
अभि दुन्दुभि मन्मुदामजी मुनिकी कथा ।
- ६ ठोकरिया मन्दिर, जयपुरका इत्यर्थ म १२५ ।

अतः उनको बाकासुगामिनी और बन्धमोचिनी विद्याएँ सिख हो गयीं। सेठ जब इनको किचाड़ोमें बन्ध करके बन्धा जाता या तो वे इन विद्यावाक्यों के बन्धपर सहस्र कूट चैत्यात्मकी बन्धना करने जाती थीं। सहस्रकूट चैत्यात्मके समीप रत्न तो बिखरे ही रहते हैं। एक बार वे पड़ोसिनको ले गयीं तो वह बहुत-से रत्न समेट लयीं। सेठको उसीसे बहकें रत्नाकी बात बिलित हुई और एक दिन वह बिमानकी नुशाबमें बैठ गया। किन्तु संयोगवशात् बिमानका वह भाग छू गया और सेठकी मृत्यु हो गयी। बोना सेठानियोको दुःख तो हुआ किन्तु सन्तोषपूर्वक विनेन्द्रपूजा और मुनियोको ध्यान देनेमें मन लगाना अतः वे इहलोककी सा समाप्त कर स्वर्गमें बंधे हुए हैं।

इस प्रकार 'रूपय बगवान कथा'में विनेन्द्रको मन्त्रित हो प्रमुख है। इसी कथामें एक जैन आचार्यने राजा बभ्रुवर्तिको विनेन्द्रकी मूर्ति-पूजाकी रूपयोमिता बतलायी है। उन्हाणे कहा कि प्रतिमा-पूजन पुष्पका निमित्त है, सससे आत्मा बान्धनमें परिधनित होती है। प्रतिमा-वर्धनसे नपाय गल जाती है।

‘प्रतिमा करणु पुष्प निमित्त विभु कारण कारज नहिं मित्त।

प्रतिमा रूप परिणयै प्रापु शोचानिक नहिं ध्यारि पापु।

आब जोम माबा विभु मान प्रतिमा कारण परिणयै प्रापु।

पूजा करत होइ यह माह वर्धन पापु गळे कपाड ॥’

धर्मस्वरूप

इसकी प्रति आनेरसाहनमन्धारम मीमूर है। इसमें पद्य-संख्या ९२ है। इसकी रचना धारणव मुक्ता तृतीया सं १७२ में हुई थी। इसमें जैन धर्मका स्वरूप वर्धन है।

कविने प्रारम्भके मंगलाचरणमें सरस्वती और गणपतिके चरणोंकी बान्धना की है किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि बान्धना सम्बन्ध जैन धर्मसे नहीं है। क्योंकि “श्रीवे बाणी श्री विजयचर सार, संसार सन उतरै पार” और ‘मन्धिर बंठी क्षीरव होइ बीजवच चरम जपे सो होइ’ स्पष्ट रूपसे जैन धर्मकी महिमाको बतानेमें समर्थ है। एक नही बनेक जैन कवियान सरस्वती और गणपतिकी बान्धनासे अबमें सम्बन्ध प्रारम्भ किया है। सरस्वतीकी मन्त्रित हो जैन-परम्परामें बहुत प्राचीनकासे जमी भा रही है, किन्तु गणपतिको भी विद्याके अधिष्ठान् के बंधके रूपमें हिन्दीके जैन कवियोने स्वीकार किया वा।

१. कृष्ण कण्ठकन कथा धर्मालम्बणी प्रति।

२. प्रथम मुमुरी सारदा गणपति जगु पाप।

पुष पाडो भी त्रिप तथा मुनो भय्य मन लाप ॥

४४ उदयरज जती (वि सं १९९०)

‘मिथबन्धुविमोह के रचयिताओंमें इनके आध्यात्मिक नाम महापद्म पदविह्वल सिद्धा हैं, जिन्होंने वि सं १९९१ से १९८८ तक राज्य किया। किन्तु उदयरजकी छिपी हुई मजबूतीसे ये स्पष्ट है कि इनके आध्यात्मिक बोधपुरके राजा उदयविह्वल थे। इसी आधारपर श्री अणवरत्नश्री गण्ड्याने ‘मिथबन्धुविमोह’ का निराकरण किया है।^१

उदयरज बोधपुरके पासके रहनेवाले थे।^२ मिथबन्धुजोन उन्हें बीकानेरके रहनेवाला किया है।^३ हो सकता है कि बीकानेरमें उनका जन्म हुआ हो और बोधपुरमें आश्रय लिया हो।

‘मजबूतीसे’ में अपना परिचय देते हुए कविने सिद्धा है कि यह ग्रन्थ मैंने १६ वर्षकी उम्रमें बनाया और समस्त निर्मात्मिकाएँ सं १९९० हैं।^४ जब यह लिखित है कि उदयरजका जन्म सं १९९१ में हुआ होगा। इनके पिताका नाम महेश्वर, माताका नाम हरपा आताका नाम सुरचन्द्र पत्नीका नाम पुरबलि पुत्रका नाम सुदन और मित्रका नाम रत्नाकर था।^५ ये अठारहवीं शताब्दीके विषय थे। महेश्वरने चम्पलमकरविही बौद्धोंकी रचना भी की।

इनकी रचनाओंमें ‘बुधबावनी’ मजबूतीसे ‘बीबीस दिन सबैया’ और

१ मिथबन्धुविमोह प्रथम भाग, पृष्ठ १९५।

२ राजस्थानमें दिल्लीके इच्छासिद्धि प्रयोगकी ज्येष्ठ भाग २, परिशिष्ट १ पृष्ठ १५२-१५३।

३ साम समय उदयविह्वल बास समय बोधपुर।

मजबूतीसे, पृष्ठ १२।

४ मिथबन्धुविमोह, प्रथम भाग पृष्ठ १९६।

५ शोकहर्ष संनपठे कीव जल मजबूतीसे।

मोनु अरस छनीत हुय ननि बावह ईसी।

मजबूतीसे, १० वें पन्नी प्रथम दो वकिलाँ।

६ समपि पिता महेश्वर जन्म समये हरपा घर।

समपि आठ सुरचन्द्र मित्र समये रमयावर।

समपि नकिन्न पूरबलि समपि पुत्र सुदन विद्यावर

रूप जने अठार जो भी समये आपन रह्य

बादराय हह कधी रती अठार समये मह महुय ॥

मजबूतीसे पृष्ठ १२।

'मन प्रसंसा-बोद्धा' अत्यधिक प्रसिद्ध है। 'मित्रबन्धु-विभोव'में रीतिज्ञान महताम की भी इनको ही रचना माना है। इसके अतिरिक्त शैल विरहिणी प्रकाश भी इसीका रचा हुआ है। मुगलबाबरी कहीं मुमापित बाबरी और कहीं मुगलमाना के नामसे प्रसिद्ध है।

मदनछत्तीसी

इस काव्यकी रचना वि सं १६६७ फास्मून बरी १३ शुक्रवारके दिन हुई थी। इसका रचनास्थल आपपुर उज्जयिनी नगराबाह नामका स्थान माना जाता है। उस समय वहाँ अकबर नामका राजा राज्य करता था। प्रत्यक्ष अकबर मदनबान् त्रिनेत्रकी भक्तिसे मुक्त है। भाषाके प्रवाह और भावोंकी प्रीकटा को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि कविकी काव्य-शक्ति वर्णित रूपसे विकसित थी। एक स्थानपर कविने अकबरको सम्बोधन करते हुए कहा है कि तू मदनबान् त्रिनेत्रसे प्रीति कर। यह प्रीति सांसारिक सम्बन्ध और मानापमानोंकी दूर करने में पूर्ण रूपसे समर्थ है।

प्रीति आप परबळे, प्रीति अरती परबळे ।

प्रीति गात्र गाळवे प्राति सुपर्यश विटाळे ॥

प्रीति अज बर वारि कैव दे जोक काडु ।

प्रीति काळ परिहर प्रीति पर खडे पाडे ॥

अन धडे देठ हुरग जंग में अमल अर्धे अजरो अरे ।

अदेराज काई सुणि आठमा इया प्रीति त्रिचक्र करे ॥

इस छत्तीसीको पढ़नेवालेके दुःख उस दूर हो जाते हैं और वाप पलायन कर पाने हैं।

अनुसार अरब प्रणाम करि मैं अनुकमि मख्या कवित ।

कैलाक छत्तीसी शोधना हुरत काह वारी हुरति ॥"

गुण बाबरी

इस काव्यकी रचना बबेरदूमे वि सं १६७६ बीगाण मुक्ता १५ को हुई थी। इसकी पहली प्राचीन प्रति वि सं १७३६ को लिखी हुई प्राप्त है। इस

१ मित्रबन्धु-विभोव प्रथम भाग पृष्ठ १६४ ।

२ कवि काशुष निबन्धाणि अकबर मुद्राकार मसूरत ।

महाशय्यक मंगारि प्रभु अकबरान् पृथी वनि ॥

अकबरछत्तीसी पृष्ठ १०१ ।

३ गुण बाबरी, अन्वय प्रदर्शित, पृष्ठ १८ अकबरछत्तीसी पृष्ठ १०६ ।

प्रतिष्ठा मन्त्र मन्त्रिणाभिवाचने पूर्वपुरके मन्त्र मुद्रात्क साह्य मन्त्रिक्री इत्यन्तरीकं
पद्यने चिन्त्र लिखी की । धूमरी प्रति भुवन विनास मन्त्रिण द्वारा चि नं १८१
माप करी ९ वा गुणक्रमे लिखी हुई समय मन्त्रार बीजानरमें मौजूद है । तीठा
प्रति जयपुरके बड़े मन्त्रिरमें जगन्नाथ मुद्रका नं १२४ में लिखत है ।

इस प्रणवमें मन्त्र काव्यकी मन्त्रि पाश्चात्तर निराकरण कीर आत्माकी उन्म
वन कर अध्यात्मनम्बन्धी पचाही रचना की गयी है । इसमें कुल ५७ वद है
प्रारम्भिक संमन्त्राचरणमें ही प्रणव अक्षर क्य परमेस्वरको मन्त्रकार करते
कविने कहा है

“अकाराव नमो अक्षर्य अक्षरार अक्षरं परं

गहिर गुहिर गंभीर प्रणव अक्षर्य परमेस्वर ।

चिप्ट इव त्रिकाक चिप्ट अक्षर केवामय

पंचभूत चामेदि पंच इन्द्री चामय ।

त्रिमन्त्र चंन्द्र चंन्द्रारि पुरि मित्र साचक चामेदि सह

मन्त्रसार चंन्द्र गुर समत उद्दिपुत्र अक्षर कहि ॥१॥

अन्त करवकी निमक बनालसे ही तब नाम चकते है । बाह्याहम्बर तो ल
है । चिप्ट चिप्ट का उच्चारण करनेसे क्या होगा है यदि काम कोच कीर क
को नहीं कीन किया । अटाकोके बचलसे क्या होता है यदि पाश्चात्क न छोडा
सिर मुझनेसे क्या होगा है यदि मन न मुझ । इसी प्रकार चर-कारने छेदने
क्या होता है यदि कैराव्यकी वास्तविकताको नहीं समझा

सब चिप्ट किन्तु किन्तु, कोच नहीं वहीं काम कोच कक

कति कदनापों किन्तु को वहीं मन मोक्षि विरमक ।

अटा कवाको किन्तु, कोच पार्श्व न कोचक

मन्त्रक मूल्या किन्तु मन की माहि न मूल्याक

कुलाके किन्तु मिक कीच का मनमाहि मन्त्रकी रवह

चरकार उन्मो सीपक किन्तु अन्तर्ह्य उद्दी कहह ॥५३॥

अपनी इस वाचनीको प्रार्थना करते हुए कविने कहा है, 'अक्षर्य उन्म
भुव मेव, पुन्नी बाबाय भुव अन्त कीर अह्या-विष्णु-ब्रह्म है तब
वह वाचनी रहेपी कीर अक्षरौत्तर अन्तनी चन्म बहनी ही वाचनी । इस वाच
के कहने सुनने कीर लिखलसे भी अनेकों अक्षि-उद्दिना प्राप्ता होती है
सम्पत्ति बढने है कीर भुव मिचता है । एक कविताके कहने-भावसे ही मनु
पण्डित ही जाना है

‘एकरोइ कबिच कहई बुचई, तिकी मनिप पंडित कहइ
उरैराज सपूर्ण सुख करइ तिन्नी अनेक वाता कहइ ॥५०॥

श्रीवीस जिन संवेया

इसको १९वीं शताब्दीकी सिन्धी हुई एक प्रति बीकानेर बहदुराजभण्डार में सुरक्षित है। इस काव्यमें श्रीवीस तीर्थंकरकी भक्तिमें २ संवेयोंका निर्माण हुआ है। सभी भक्ति-रसक सत्तम बृहत्तम है। रचना प्रौढ़ है। उसका भावि मान देखिए,

“प्रथम ही लोभकर कम परमेश्वर कम
बंध हा इकराकु अदतस ही कहाची ६ ।
दुपम कौउन पग छोरी रहै र्थग जाये
दण्ड मक दुब ताकी कुझी आधी है ॥
राज अहि कर करि सिद्धाचार भय मय
समया संताप शान केवक ही पायी है ।
नामिराज ७ को नंद नमै सुरनर हृन्द
उदय कहत गिरि सत्रुज सुहापो है ॥१॥

मनमदसा दोहा^१

इसको एक प्रति जयपुरक बड़े मन्दिरके मुठका नं १२४ में निबद्ध है। मन-को सम्बोधन करने अनेक दोहोंका निर्माण हुआ है।

बेध बिरहहिणि प्रघाभ

इसकी एक प्रति बि सं १७७२ कार्तिक सुदी १४ की लिखी हुई जयप वैजप्रभासम्य बीकानेरमें सुरक्षित है। इसमें कुल ७८ दोहे हैं। सभी श्रृंगारिक भक्तिसे अंतर्प्रोत है। बिरहकरते प्रपीडित नापी बजरामकनी बेधके पाठ काठी है और उसके सभी रोप ठीक हो जाते हैं।

‘एकल जिन अजबामिनी दिक् में बई उदार ।
ही कुलहारी मीद पै जाइ दिलाई मारि ॥
को बिरहिन त्रिब स्तोत्र में कर जयनी जिन घास ।
रिगत पाव क्यों कर हने मनी बैद पै पास ॥२॥

१ राजस्थानमें दिल्लीके इलाकियुनि मन्नाथी ज्येठ मास ४ अमरकन्द नाहटा उरक-पुर, १६४४ इ. १९९ ।

२ राजस्थानमें दिल्लीके इलाकियुनि मन्नाथी ज्येठ मास २ इ. १२-१३ ।

बग

“अपन करने कंग सू रस बस रहिबा ओह ।
उद्दारा उम गारि र्हुँ बमें बुहागन हाइ ॥
जाँ कगि गिरि साधर अचक आम अचछ रू राग ।
ताँ कगि रंग रागा रहै अचछ ओहि मजराग ॥७८॥”

४५ हीरानन्द मुक्तीम (वि सं १९९८)

माह हीरानन्द अफतसेठके पुत्र बोधबाल बौद्ध थे । वे भावराजे राजेशाने थे । उनके पास अरिभित्त बग था ।^१ भावराजे सर्वोत्तम बौद्धविद्यामें अपनी पचना थी । सहजारा सलीमसे अरिभित्त सम्मान्य था । उन्होंने सम्मैरसिद्धरजीकी माताके लिए संघ निकाला था । इसका उत्कल्ल अविहार बनारसीछात्रजीके ‘अर्धनवानक’में हुआ है । उन्होंने लिखा है कि वि सं १६९१ वैश सुवी २ को हीरानन्द मुक्तीमने प्रयागपुर नगरसे सम्मैरसिद्धरको संघ अछाया । स्वाम-स्वाधर पर पथ भेजे गये । थारो ओर लुचना कीक बनी । बनारसीछात्रजीके पिता अडवरीन के पास भी पथ आया और वे इस माताके निमित्त बोधेपर अडकर अरवारको छोडकर तुरन्त अछ पडे और नन्दजीसे वा विजे ।^२ उसी वर्ष संघ वापस भी कीट आया । अनेको अर भजे वा बीमार हो गये । अडवरीन भी बीमार अरस्था में ही अर आये थे ।

इस माताका अनुग्रह अविहार प्रस्तुत करनेवाका एक हस्तलिखित गुटका भी अगार

- १ साहित्य छाह सलीम की हीरानन्द मुक्तीम
 मौनवाल मुन बाउरी अरिभित्त की सीम ॥२२४॥
 अरकनामक, ४ मन्तराम प्रेमी अरारित्त, अम्^१ १६३७, पृ २२ ।
- २ आधी संघत् अरकल्ल बौद्ध मात विग हुन ॥२२६॥
 विग प्रयागपुर नगर सी कीजी अरुम तार ।
 सप अनायी विहार की अठरपी रंगा पार ॥२२५॥
 ठीर ठीर पनी रई अई अवर विग विग ।
 बीठी आई सीन की आचहु आग विविग ॥२२५॥
 अरवरीन उव अठि अई र्हुँ तुरंग अरवार ।
 आइ नंदजी की विजे अवि बुटुम्ह अरवार ॥२२७॥
 वरी, पृ २३-२९ ।

बन्धनी माहटाको मिला है । यह सरतरगच्छके मुनि सेजसारके विषय बीरविजय का सिद्धा हुआ है । इसका नाम है बीर विजय सम्मतछिखर शैत्य परिपाटी । इसके अनुसार एक सरतरगच्छीय संघ आपरेसे बछा था । साह हीरामन्दका संघ को दसाह्वादासे बछा था बनारसम इस संघसे आकर मिला गया था । साह हीरामन्दके साथ हाथी बोडे रथ पैसल और तुपनहार भी थे । वहाँसे बगदपुरी और पाबापुरी आदि अनेक तीर्थोंकी बन्दना करता हुआ तथा बडे-बड़ विष्णोको नार करता हुआ संघ छिखरजो पहुँचा । वहाँ २ टुक और बहुत-सी मूर्तियोंकी बन्दना की । लौटते समय संघ राजगृहोके पवित्र पबता तथा बड़नाबमें योतम बलवरक स्तूप और जनकानक जैन मन्दिराकी पूजा करता हुआ पटना भाया । वहाँ संघ १५ दिन टहरा और छाह हीरामन्दकी ओरसे सबको पहिरावभी की गयी । जौनपुरस संघके व्यक्ति अपने अपने स्थानका बसे मयें ।

इसस छाह हीरामन्दका जैन तीर्थोके प्रति भक्ति भाव स्पष्ट है । यह बहुत कम कालको विरित होना कि वे एक भण्डे बनि भी थे । उनकी रची हुई अध्यात्म बावनी एक सुन्दर काव्य है ।

अध्यात्म वावनी

इसकी रचना वि० सं १९९८ में मायाड़ मुची ५के दिन हुई थी । उसी रूप सामपुरम भोजिग विद्यानदास साह बेभीदासके पुत्रके पठनार्थ लिखी गयी इसकी एक प्रति उपलब्ध हुई है ।^१ इस काव्यमें ५२ अक्षरामे-से प्रत्येकका सैकर एव एव पद्यकी रचना की गयी है । सभी पद्य अध्यात्मसे जोनप्रोन है । सत्तवाध्यकी भाँति ही बड चेतन को सम्बोधन करके अपने हृदयस्थ भावोंको स्पष्ट किया गया है । आपास प्रवाह है ।

‘ऊकार सरपुरष ईह अकब भगोचर
 अंतरजाम विचारि पार बाबई नहि को नर ।
 एवाम मूक मनि आदि आनि अंतरि दहरायड
 आतम तनु अमूर रूप तनु ततविज बाचड ।
 इस बहदि हीरामन्द संघरति अमक आहहहु एवाम धिरि
 सुह सुरति सदिन मनमई धरड मुगति मुगति हावक एवर ॥१॥’

१ श्री अमरपुर साहवा दास हीरामन्द मन्वेदाका विवरण को (सामान्यतया ५५ बरिपारी, बनेकाल वर्ष १४ दिनांक १ १४ १ ०-१ १) ।

२ सुन्दरबिन्दु प्रथम भाग १४ ५१९-५०१ ।

अन्त

‘मंगल करत जिन पास आस पूरण कछि सुरतर
मंगल करत जिन पास दाम चाक मय सुरनर ।
मंगल करत जिन पास आस पथ सबई सुरपति
मंगल करत जिन पास पास पथ पूजइ दिनपति ।
मुनिराज कहई मंगल करत स्वपचारि श्री दाम्द सुच
बाबध बरन बहु कक करहु संवरति हीरानंद सुर ॥५ ॥”

४६ हेमचिन्मय (वि सं १९)

हेमचिन्मय बृहदाद्याके प्रसिद्ध आचार्य हीरचिन्मयमूर्तिके प्रशिष्य और चिन्मयसेनमूर्तिके शिष्य थे। हीरचिन्मयमूर्तिके समाधारण व्यक्तित्व का उपर्येक विद्वत्ता भी उत्तम नाटिकी थी। सम्राट् अकबरने उन्हें वि सं १६३९ में दो बार आमन्त्रित किया था। उनका आर्थिक स्वाधन हुआ और उन्हें बन्दूक-की पदवी भी मिली। श्री चिन्मयसेनमूर्तिके भी सम्राट् अकबरने वि सं १६५ में निमन्त्रण लेकर बुलाना था। उन्हें सम्राट् हीरचिन्मयकी उपनिधि विमूचित किया गया था।^१

श्री हेमचिन्मयने आचार्य हीरचिन्मयकी महत्ताका पदुपासन करनेवाली बनेका नेक स्तुतिपंक्ती रचना संस्कृतमें की थी। उनमें-से एक ठा आनीतक पद्यका पद्याङ्कके शिखाकेसम अंकित है। इसमें १७ श्लोक हैं। अपने मुक्त चिन्मयसेनमूर्तिके अर्चनार्थमें उन्होंने ‘चिन्मय प्रसति’ का निर्माण किया। यह भी संस्कृतमें ही लिखी गयी है। इसके अनिर्विकल उन्होंने कचारलाकरकी भी रचना की। इसकी प्रसिद्धि बहुत अधिक है।

हेमचिन्मय हिन्दीके भी उत्तम कवि थे। उन्होंने हीरचिन्मयमूर्ति और चिन्मयसेनमूर्तिकी स्तुतिमें छोटे-छोटे बहुत-से हिन्दी पद्य बनाये हैं। तीर्थकरकेकी स्तववाके भी कुछ पद्य रचे हुए मिलते हैं।^२ ‘मिथकमुनिमोह’ में भी इनका उल्लेख है।^३ यहाँ इनके वि सं १६६६ में बनाये हुए स्तुति पद्यकी बात कही गयी है।^४

१ Vide P P 285-276 Bhandarkar commemoration V June मोहनलाल गुप्तोन्मय केमारी Jain Priests at the Court of Akbar भातुकर कवि वि-गी जैन प्रवचनाला समी, भूमिका पृष्ठ ६।

२ व नाचूराम प्रेमी हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास, १६२७, पृष्ठ ४४।

४ मिथकमुनिमोह प्रथम भाग पृष्ठ ६९।

४७ नन्दलाल (वि स १९०)

कवि नन्दलाल बाबरेके पास 'बीसुता' के रहनेवाले थे। उनके पूरब बयागामें रहते थे। इनके पिता भवजदास गौसुतामें जाकर रहने लगे थे। १. नाबूरामश्री प्रेमोत्तम इनकी बंध-परम्परा — बमरमी प्रेमलाल भवजदास और नन्दलालके बपमें स्वीकार की है।^१ किन्तु नन्दलालके 'मयोपर' और 'सुरधन चरित' के स्पष्ट है कि उनके पिताका नाम 'मयरी' बचवा 'भेरो' था। जो संकल्प है कि भवजदासका बचपना नाम मयरी ही। नन्दलालका बंध बघवाक और मोन पायक था।

नन्दलालकी माँका नाम चन्दन था। वे धार्मिक प्रवृत्तिकी महिला थी। नन्दलालका मुकाब भी बर्मकी बोर था। वे विद्वान् थे और कवि भी। उनकी सुबनतापर रोषकर ही प्रसिद्ध पण्डित हैमराजने अपनी विदुषी पुत्री 'बीनी' का उनके साथ विवाह कर दिया था। उनसे कुलाकीदासका जन्म हुआ जिसने अपनी माँकी प्रशंसा करते हुए लिखा है, 'सुशुभ की लालि कीचौं सुकृत की बालि सुम कीरति की दालि अणकीरति-कृपालि है। स्वस्व-विद्यानि पर स्वस्व की रत्नबालि रमाहू की राबि कीचौं बीनी बिलबालि है'^२ ॥

नन्दलालके बुझका नाम बट्टारक विभुवनकीर्ति था। उनका यह बतुर्किर्में विस्तृत था। विभुवनकीर्ति अतके पारंगत विद्वान् थे। उनके श्री गुरु मुनिदास सुखेमकीर्ति इतने पवित्र विद्वान् थे कि उनका नाम केने मानस हो पाप परमवच कर बाते थे। सुखेमकीर्तिके गुरु बट्टारक बघकीर्तिका तो बहुत अधिक नाम था। बारी बोर उनके संयमकी क्याति थी। उन्होंने कामदेवकी बसमें कर किया था। नन्दलालको ऐसी विद्वान् और पावन परम्परा बुझके कल्पे मिली थी और उनमुकर ही वे स्वयं भी बने।

कविने अपने समयके बाबरेकी प्रशंसामें बहुत कुछ लिखा है। उस समय वहाँ बाबरेके गुरु बट्टारकका राज्य था। उसके शासनमें सब प्रथा सुधी थी।

१ १ नाबूरामश्री हिन्दी केन साहित्यका इतिहास, पृष्ठ १२२।

२ बघवाक बरबंध बीसुता बरिष का। पीरक बोट प्रसिद्ध बिल्हू का टर्नक थी। माताहि चन्दन नाम पिता मयरी मम्बो लम्ब बही मनमोह मुनी बल का बन्दी ॥ बारी मयरी म्पारिषी बलिहा इत्तलिदिन म्पनीकी जेबघ २ ना धार्मिक निररथ, लम्ब का म्बलालका निररथ।

३ कुलाकादास पावटकपुराण प्रसति।

४ सुरधनचरित, म्पतलि, पृष्ठ ११-१२ का पृष्ठ १ ५ २०वां धैवार्मिक निररथ।

कोई धार्मिक प्रतिबन्ध नहीं था। साहित्यकार भी स्वतन्त्र रूपसे लिख रहे थे।

कवि मन्त्रसालकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं। यशोभरचरित्र 'सुवर्णचरित्र' और 'मूढ विनोद'।

यशोभरचरित्र

'यशोभरचरित्र' की एक प्रति तथा मन्दिर बिस्फीके सरस्वतीमण्डारमें प्राप्त है। यह बि. सं. १९७२ की लिखी हुई है। दूसरी हस्तलिखित प्रति बि. सं. १८९९ की लिखी हुई जयपुरके बभोचन्वजीके दि. शैल मन्दिरमें है। काशी गावरी प्रचारिणी पत्रिकाकी बीसवीं वार्षिक रिपोर्टमें जिस 'यशोभरचरित्र' का उल्लेख है उसका वैधानिकता नहीं बिया है। मन्त्रसालका इस काव्यका निर्माण बि. सं. १९७७ थावन मुक्ता सप्तमीको किया था।^१

इस काव्यमें शैलचर्मके प्रमाद भक्त महाराज यशोभरके जीवन-चरित्रका वर्णन है। जयभ्रष्टके प्रसिद्ध कवि पुण्डरीकसे लेकर मन्त्रपाल तक अनेक यशोभर चरित्रोक्त निर्माण हो चुका था। अठ काव्यका कथानक ठो पुराना ही है, किन्तु काव्यत्वकी दृष्टिसे नयापन है। उसमें चौपाई छन्दना प्रयोग किया गया है। भाषामें प्रमादगुण है और मनिषीकटा। काव्यके प्रारम्भमें सरस्वतीकी बरना है

'हे कर जाडि नर सरसती बड़े बुद्धि उपजं छुम मठी ।
जिन नामी मानी जिन भावि तिनकी बचन चट्परी परबाल ॥
विजुष बिहंगम अब बन चारि कवि कुळ कवि सरावर मार ।
भवसायर नू तारन भाव कुनव कुनव सिवमी भाव ॥
वे नर सुन्दर त नर बळी, जिनकी पुजुमि कया बहुबळी ।
जिनका तें सारद नर हीयो सुख सरिण सु अमरु अळ पीयो ॥'^२

भाषाके वर्णन करते हुए दबिने लिखा है कि वहाँ भक्तान् जितेन्द्रके

१ जहाँगीर जना देऊ काहि थी मुक्तिगान मूरुसो याहि ।

बाव देव भंभी मठि गूड़ छत्र चमर निचासन मू ।

पग बन बुरन तुंग जनानु, बगहि निरुंक पम के नाम ।

सरसनचरित्र, अमिन्न मरामि, पप १, २, ३ वरी ।

२ संवत् १०११ कपिक मत्तरि थावन पाम ।

मुकुल सोम दिन सप्तमी बड़ी नया मुनु पाम ॥

यशोभरचरित्र अमिन्न मरामि पप १ ।

३ यशोभरचरित्र, काहि नाम मन्त्रके भी बभोचन्वजी दि. शैल मन्दिरकी एक लिखित प्रति ।

मस्जिदों की जमी नहीं थी। अनेक वर्गमन्त्रालय वर्गकय रूपमा व्यय करके जिन मन्दिरोंका निर्माण करवाया था। उनमें जिनमूर्तियोंकी प्रतिष्ठा भी हुई थी। जैन पुराणोंकी प्रतिष्ठितियाँ ही रही थीं। जैन कवि मन्दि-संस्था के विना रचना में प्रवृत्त थे

‘होदि प्रतिष्ठा जिनकरगनी धर्मिदि बसबैत बहुधनी ।
एक करवादि जिनकरधाम कागें बहूँ अर्धपिब दाम ॥
एक जिनका क परम पुराण एक करहि संतीक प्रमाण ।
राज जन कोक सकदि न हुरै कविता कविठ तपी तप तपे ।’

सुवर्णमन्दिर

सुवर्णमन्दिरकी एक प्रति पंचायती मन्दिर दिल्लीमें मौजूद है। कवि मन्दि-आस्था इस काव्यको वि सं १६६३ मास सुवर्ण पंचमी सुवर्णके दिन रचा था। काव्यमें सेठ सुवर्णका मन्दिर विचित्र किया गया है। यह एक बस्तु सेठ था। इसकाय इस काव्यमें प्रारम्भमें अन्त तक मन्दिनी भाग ही प्रकाशित हो रही है। कथातन्त्रपर आरम्भमें ‘सुवर्णमन्दिर का पुरा प्रमाण है।’ काव्य और माव बीजो ही सुवर्ण है। पुरा काव्य ‘बीजो’ अन्तमें लिखा गया है।

आगेके विधानी निर्णय होकर अपने-अपने वर्गका पाठन करते थे इस काव्यको निरूपित करनेवाली एक बीजो वैशिष्ट्य,

‘अब कन पुराण तुम अवास्तु । बसहिं निर्णय वर्ग के हास ॥
अन्तबीस हमारु बीज अन्तर बंद वैरि विष्णुस ॥

गुह बिनोद

‘गुह-बिनोद की एक हस्तलिखित प्रति अजमेरके पण्डित बृजकरजीके मन्दिरमें रखे पुस्तक में ९ में लिखत है। इसमें अन्तारम-सम्बन्धी पर और मीठ है।

१ कठोकरचरित्र, पृष्ठ २१४-२१५, जना मन्दिर दिल्लीकी हस्तलिखित प्रति।

२ अन्त बीस हमारु बीज अन्तर बंद वैरि विष्णुस ॥

माव अन्तारे पाप गुह नामर दिन पंचमी।

कवि बीजो पाप नंद करी मनि साधनी ॥

सुवर्णमन्दिर अन्तिम प्रमाण पृष्ठ ६-७ की।

३ मैत्रा नंदि आदि बी बीजो ताहि विधि काव्यो बीजो ॥

सुवर्णमन्दिर अन्तिम प्रमाण पृष्ठ ११ की।

४८ कवि सुन्दरदास (वि सं १९७५)

शैव कवि सुन्दरदास हिन्दीके सप्त सुन्दरदासके पृथक थे। शैव कवि सुन्दरदास बायड़ प्राणके रहनेवाले थे। दिल्लीके भास-नामका प्रदेश बायड़के नामसे प्रसिद्ध था। कहा जाता है कि ये साहुबर्ही बायड़ाहके कृपापात्र कविबोमें-से थे। बायड़ाहने इनको पहले कविराम फिर महाकविरामका पद प्रदान किया था। वे बौरंगबर्हके समय तक जीवित रहे। सप्त सुन्दरदासका जन्म 'भौसा' नामक स्थानपर हुआ था जो जयपुरसे १९ कोस पूर्वमें स्थित है। इनके पिताका नाम चोखा और माताका नाम सती था। इनकी रचनाबोमें सुन्दर विलास ही अधिक प्रसिद्ध है। वह अष्टात्मका ग्रन्थ है। शैव कवि सुन्दरदास भी अष्टात्मवादी थे। बोबोकी माया बीबी और भावधारामें बहुत कुछ साम्य है किन्तु दोनोंका अन्तर भी स्पष्ट है।

शैव कवि सुन्दरदासके चार ग्रन्थोका अनुसन्धान हो चुका है : सुन्दर सतसई सुन्दर विद्यास सुन्दर श्रृंगार और 'पाञ्चदश पंचासिका'। काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिकाके सम्पादकोने जब सुन्दर श्रृंगार की खोज की तो उसके प्रारम्भमें "श्री जिन्याप नमः पुनः गणेशाय नमः देवी पूज् सरस्वती हरके पात्र । नमस्कार कर जोर के कई महाकविराव ॥"^१ लिखा हुआ प्राप्त किया। उसपर टिप्पणी लिखते हुए उन्होंने कहा इसके प्रारम्भमें श्री जिन्याप नम क्यों लिखा है यह प्रश्न अपने सभी आरक्षकोंके साथ उपस्थित है।^२ किन्तु हिन्दीके शैव कवि प्रायः अपनी रचनाबोके प्रारम्भमें भगवान् विदेन्द्रके साथ-साथ देवेश और सरस्वतीकी भी कथना करते रहे हैं। श्री अक्षयकीर्तिले तो अपने 'विद्यापहार स्तोत्र'के प्रारम्भमें 'विदेवनाथ विमल गुण ईस । विहरमान कही जिन थीस ॥ अथा विष्णु गणपति सुन्दरी । वर बीबी मोहि बागेश्वरी " तक कहा है। कवि सुन्दरदासके पदोके मध्यमें स्वात-स्वान्तर भगवान् विदेन्द्रके गुणोकी महिलाका वर्णन है। इसके लक्ष्य जिन-भक्त होना सिद्ध ही है।

१ का ना म वक्रिण्य Annual Report Search for Hindi Manuscripts-1901 No 3

२ डॉ. योर्गनाथ मैकारिच राबल्लानी नाग और साहित्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रकाश, वि सं १ ५ १९२।

३ का ना म वक्रिण्य Annual Report search for Hindi Manuscripts 1901 No 3

४ देविकवरी।

५ का ना म वक्रिण्य १२वाँ वार्षिक विमल अक्षयकीर्ति वैष्णव विवरण।

सुन्दर शृंगार

शाही नागरी प्रचारिणी पत्रिका में सुन्दर शृंगार की सा इस्तकबित प्रतिपीठा संस्केप है। पञ्जी शीचपुरके राजकीय पुस्तकालयमें मौजूद है। इसमें १० पद्य हैं। यह कि सं १७ १ में लिखी गयी थी। कुठरी भी भाग्यतावर पत्रिके विषय व शीचनभापरन नामपुरमें कि सं १८१५ में लिखी थी। टीगरी इस्तकबित प्रति मेवाडन प्रतिष्ठ राजकीय पुस्तकालय सज्जन बाभोविज्ञानमें प्रस्तुत है। यह प्रति कि सं १८११ की लिखी हुई है। इसमें ४५९ पद्य हैं। इसके अनुसार समुता ठटपर बसे हुए भागरे नगरमें बैठ हुमा छाडवाही बादयाह राज्य करण बा

“नगर भागरा बसत है अनुवा तड मुन बाब।

तहाँ बावसाहो करे बैअ साहिजिहान ॥१३॥”

कम्पुरके पण्डित बृषकरजीके मन्दिरम विराजमान मुटना नं १२६में भी भी सुन्दरशासत्रीका ‘सुन्दर शृंगार’ लिखत है। इसकी एक इस्तकबित प्रति कठिनव शीच महावीरजीके धास्नमण्डारमें मौजूद है। प्रति सुन्दर है। विषय शृंगार रसते सम्बन्धित है।

पाखण्ड पचासिका

यह रचना कम्पुरके बड़े मन्दिरमें विराजमान मुटना नं १२ में लिखत है। इसमें पाखण्डकी मुटा बना गया है। इस नाम्यते प्रमाणित है कि कठिराव सुन्दरशास मोधीनु, रामतिह और बेवसेनकी परम्परामें से। कम्पामे बाह्य कर्म ककारोंके शरिरयागकी बात नहीं है।

सुन्दर सतसह और सुन्दर चिछास

दोनों कृतिनां कनकलनवरके कि शीच मन्दिरके एक मुठकेमें संकबित हैं। यह मुटना स्वर्ष सुन्दरशासत्रीमें मस्कपुरमें कि सं १६७८ में लिखी था।

दोनी रचनाओंमें भाष्यरिनकतासे बरे पद्याका बनावीत हुआ है। कवि अपने ‘बी को सम्बोधन करते हुए कहता है, शीरे शिवा। तु विषयवैतकी छोट से विषय तुझे तुम प्राप्त होवे। तु सम्पूर्ण विद्वाराकी छोड़कर शिवाके तुम ना।

१ म्प मा प कठिका Annual Report Search for Hindi Manuscripts 1901 No 3

रास्न्याकमे दिग्दोके इस्तकबित प्रथोकी छेव, भाग १ ३ १२५।

२ धास्नापनार शीच शिवा शीच साहित्यक्य शक्ति शिवाम इह १७०-१।

तेरी महत्ता इसीमें है कि तुझे फिर इस जलुमठिमें न आना पड़े और एसा ठमी हो सनेमा जब तू क्षण-क्षणमें भगवान् जिनप्रके पुत्र मायाग। अपनी भारमामें बित्त समानभासा पुरप अचक पद प्राप्त करता है,

जिहा मरे छाँड़ि विषय रस ज्यो सुख पावै ।
सब ही बिकार तजि जिन गुण गावै ॥
घरी-घरी पक-पक जिन गुण गावै ।
पात जलुर गति बहुरि न आवै ॥
जो मर बिज जातसु बित्त आवै ।
सुन्दर कहत अचक पद पावै ॥

पद

सुन्दरदासजीके लिखे हुए पद्य मन्दिर ठोसियाल जयपुरके मुठका नं ११ म और रि जैन मन्दिर बहीनके द्वाखमन्दारके परसंग्रहमें संकलित है। एक पद्यमें जोबकी मूलता बताते हुए कविने लिखा है कि वह एक जोर ता संसारका धामन्द चाहता है और दूसरी जोर मोक्षमुक्त। जिलु पद्य तो बीसे ही है बीसे नार्द परवरकी भावपर अडकर समुद्रस पार होना चाहे। अय्या बनाय कृपाभागी और चाहे विधाम यह असम्भव है। वह पद्य इस प्रकार है

'पापर की करि भाव पार-इधि उतरयो चाहे
कग उड़ावनि काज सूइ विण्वामनि चाहे ।
कर्म छाँड़ बाइक तनी रणे जूम के धाम
करि कृपाण सज्जा रमै ते कयो पावै बिसराम ॥

कवि सुन्दरदासकी अपने आराध्यकी महिमामें अटूट विश्वास था। उनका आराध्यने बिदुलपका ध्यान धरके संसारके मुक्ति प्राप्त की थी। उसका समान विरवमें जोर कोई नहीं है। अतकी भक्तिसे रोग-विरोध दूर हो जाते हैं

'इह मय संसार सौं जी हिरई धरि करि ध्यान
एवान धरती बिदुल्य सौं जो अरुणा ई कचक ज्ञान ।
राम बिरोग न संबर हो मन बजिन चक हाइ
कर जोई सुन्दर भजे एवामी तुम सम और न काइ ॥"

१ बही १४ १२१ ।

२ मन्दिर ठोसियाल जयपुरका मुठका नं ११ १४ २ १५ १६ ।

३ रि जैन मन्दिर, बहीनके द्वाखमन्दारके परसंग्रहमें संकलित मति १४ ३२ ।

धर्म सहेली

मुम्बईवासी की यह कृति श्रीमान् श्रीमान् श्रीमान् के मन्दिर अथवा गुरुकुल में ५१ में लिखी है। रचना सरस है। इसमें केवल ७ पद्य हैं।

४९ पं० भगवतीदास (वि सं १९८)

पं० भगवतीदास अम्बादास शिंदे के बुधिया नामक स्वामय उत्पन्न हुए थे। उस समय बुधिया बन-बान्धाविते सम्पन्न एक रिवाज थी। अब तो वहाँ अम्बहार बसिक है।

भगवतीदासका कुछ अपवाद और गीत संस्र बा। इनके पिता किरतनरामने बुधियास्वामे मुद्रित करार कर लिया था। भगवतीदास बुधियासे श्रीगणेशपुर (देहली) जाकर रहने लगे थे। देहलीमें मोतीबाजारके पार्सिमन्दिरके पास ही पश्चिमकी रा निवास-स्वाम बा।^१

कवि भगवतीदासके मुम्बई नाम अट्टारक महेन्द्रदेव बा जो उस समय दिल्लीकी अट्टारकीय बहीवर प्रतिष्ठित थे। महेन्द्रदेव वायस्यसंघ मानुरमन्त्रीय अट्टारक मुम्बई (वि सं १५७९) के प्रसिद्ध और लक्ष्मणदेवके शिष्य थे। भगवतीदासने अपनी प्रत्येक रचनामें महेन्द्रदेवका उल्लेख किया है।

कवि भगवतीदासकी अविनाश कृतिवाँ अम्बादासकी रचनाका (उन् १९ ५-१२) में पूर्ण हुई। कतिपय अवसिद्ध रचनाएँ धाह्यकी रचना (उन् १९२८-५८) में भी रची गयीं। कविने बहीवीरकी प्रशंसा भी की है।^२ रचनाको-का निर्माण किसी एक स्वामय पर न होकर देहली आगरा द्विभार केविया संनिष्ठा आदि अनेक स्वामयोंपर हुआ। इनकी २५ कृतिवाँ अपरम्प है। शिन्में

१ मरालि इस्तीलाउनु सलावा बलि अनेकाल वर्ष ११ इह २ २, बार दिग्ग २।

२ अट्टारक अम्बदास, अट्टारपुरकर, बीकानेर अम्बदास सोलापुर, १९२ ३ ५२२ केव सला (२३६-५ ३)।

३ अर राम अथवा जहागीर वा किरिब अगति सिद्ध आनि ही।

धधि राम बनु विधा अर ही संघन मुम्बई मुम्बई ही ॥

मुम्बई मुनि महेन्द्रदेवकी अपरम्प नमु पाठ ही।

अट्टार मुम्बईया बुधिया बहान भगवतीदास ही ॥१५॥

मुम्बई शिन्मन्त्रि मुम्बई, देहली बहान, केव सला २३६ इह २३।

'ज्योतिषमार और वैद्यविमोह' नामकी दो रचनाएँ भी हैं। अथसिष्ट २३ साहित्यिक कृतियाँ हैं। वे व्याख्यात्मकता और भक्तिसे पूर्य हैं। इनकी भाषा सरस हिन्दी है। भगवतीवासने 'नवाककेवकी और ज्ञानिच्छादिमन्त्रवली'की प्रतिक्रिया भी की थी। रचनाश्रोता परिचय निम्न प्रकार है

मुगति रमणी जूनड़ी

इसकी रचना बुढिया पवित्र वि सं० १६८ में हुई थी। उस समय बड़ीगीरजा राज्य था। इसमें ३५ पद्य हैं। यह एक रूपक-काव्य है। इसमें मुक्ति रमणीको जूनड़ी बनाया है। यह जूनड़ो ज्ञानकी सखिलम भिषोकर सम्यक्त्व रूपी रूपमें रची जाती है। जूनड़ी किशोरके भोजनका सत्तरीय रबीन वस्त्र है।

समु सीतासतु

कविने पहले वि सं १६८४ में बृहस्तीठासतु का निर्माण किया था किन्तु रचना बड़ी हो गयी थी और उसमें आकर्म्य भी नहीं रहा था अतः उन्हेल छोटे वि सं १६८७ बीच पुनः जूनड़ी नामकारको सखिल करके शीतलकट कर दिया।^१ अब यह जगज्ज्य है।

'समुसीतासतु' में रावणकी पत्नी मन्धोदरी और सीताका संवाद दिया है। मन्धोदरी सीताको रावणके साथ सम्भोग करनेके लिये प्रेरित करती है और सीता अपने सतीत्वपर दृढ़ रहती है। ये संवाद १२ मञ्जीमोमें-से प्रत्येकको लेकर लिखे गये हैं। आषाढ़के संवादाकी कतिपय पंक्तियाँ देखिए,

मन्धोदरी तब बोकड़ मन्धोदरि दानी रनि अषाढ़ जनकट बहदायी ।
 पीव गप् से फिर कर अषाषा पामर नर निव भदिर अषाषा ॥
 कचहिं पपीहे दादुर मारा दिवरा उमग घरव बहि घोरा ।
 बाहर कमहिं रहे श्रीवासा तिच विव बिनु किहिं उमग असासा ॥
 मन्ही बूट झरत झर काषा पावस नज अगसु दरसावा ।
 दामिनि दमकव निधि अंधिबारी, विरहिनि काम-बान बरि मारी ॥
 मुगचहिं भोग सुमहिं सिरर मारी ज्ञानव काह भई मनि मारी ।
 मरुन रसाहन हुइ जग साक संजम-नेसु कचन विवहाक ॥

१ ज्योतिषमार और वैद्य विमोहकी मरालिका 'बाराक सम्प्रदाय'में लिखेक ६ १ और ६ २ पर निबन्ध है।
 २ यही लिखेक ६ ४ व ६ ५।
 ३ बचकी बन्दिर देलीकी 'समु सीतासतु' की इकरनिर्माण प्रति।

जब कवि हम शरीर मर्हि तब कहु कीजहु भागु ।

राज तजहि मिधा भमर्हि हउं भूका सब कोगु ॥

सोखा : सुक-नासिक मृग-दा विह-बहनी जाकुकि बचन कबहु सुनि रहौ
 अपना विह पइ असुठ जाती अबर पुन्य रवि-सुग्ध समावी ॥
 विह चितबनि किनु रहहु अतन्दा विह गुन सरठ बहुत अस कंदा ।
 मानम प्रेम रहहु मबपूरी निनि बाकिमु मंगु नार्हि हरी ॥
 सुख चाहहु ते बाबरी बरपति सग रति मानि ।
 जिह कवि शीत बिधा मरु, तपय गु वा अग्नि ॥
 कृप्या लो न सुझाह, जसु जब लाठी पीजिय :
 मिराणु मरु बदि चाह, अक धोरहु बकि रेतकहु ॥”

मनकरहा रास

यह एक उपक-काव्य है। इसमें मन्का 'करहा' बनाया गया है। करहा अट्टे वा कहुते है। सबसे पहले मुनि रामसिंहने अपने 'पाहुड बोहा'म मन्के साथ करहा की अपमा की है। मुनिको राजस्थानी में अठ अठके द्वारा ही बनी इस अपमामें मौलिकता और स्वामाविष्टता है। यं मयवतीराज पजावी ब। अन्होंने अपमय ही मनकरहा 'पाहुड बोहा से किया होना किन्तु केवल एक धरत के लिये कोई रचना 'बाधो' नहीं हो जाती। 'मनकरहा रास एक सरस और मौलिक कृति है। प्रथम २५ पद्य है। वहाँ सत्कारकी ऐतिहासिकमें मन्ककी करहाक प्रथमकी कर्ताकी नहीं पमी है।

ओगीरास

इसमें ३८ पद्य है। अन्तम बताया गया है कि यह भीष इन्द्रिय मुक्के कारण सत्कारमें मटक रहा है। उसे पाहिय कि अपमं मनको सिंघर कर करने ही आन्तरिक धर्ममें विराजनाम विराजनाकी शिवनायकना ब्रजन करे। ऐसा करनेसे वह बच-समुद्रमें पार ही जायेगा—

“पेलहु हो तुम पेलहु माई, ओमी अतमहि सोई ।

बद-बद अन्तरि बसहु चिदात्मनु अऊनु न कलिपु कंई ।

मब-बन मूक रहीं अमिराचरु, सिधपुर-सुख बिसराई

बसम धरीशिव शिव-सुख-तजि करि विषयनि रहिउ सुमार्ई ।

अन्त कनुप-गुण-नाम राजहि शिन्धुकी हउं बकिहारी ।

मनिधरि भ्यानु अचहु शिवनाथक जिह उतरहु मबवारी ॥”

चतुर बनजारा

इसमें ३५ पद्य हैं। यह एक व्यङ्ग्य-काव्य है। इसमें उन बीबको चतुर बनजारा कहा है, जिसने अपने अनुभवों के बल पर संसारको असार समझा है। अनेक जीन कविवरों की अपनी उपमा बनजारों से की है।

बीर जिनिन्द्र गीत और राजमती नेमीसुर डमाल

बीर जिनिन्द्र गीत में पद्य हैं। उनमें मयबान् महावीरकी स्तुति की गयी है। पद्योंमें सरसता है। राजमती नेमीसुर डमाल में राजमती और नेमीसुरके प्रसिद्ध वचनोंको लेकर २१ पद्योंमें लिखा गया है।

टड्डाणारास

एक भाष्यारिक्त रचना है। इसमें बताया गया है कि यह बीब ज्ञानी है किन्तु अपने प्रमुख गुणोंको छोड़नेके कारण अज्ञानी बन गया है। उसका कर्तव्य है कि धुलकण्ठान् वारण कर केवलज्ञान प्राप्त करे। अन्तिम पद्य है—

‘अर्ध-सुखक धरि प्यामु अन्वपम कहि निष्ठु केवलज्ञानाये ।

अपति हाम भगवती पावहु साम्ब-सुहु निष्ठायाये ॥

अनेकार्थ नाममाळा

यह एक कोष-ग्रन्थ है। इसके तीन अध्यायोंमें क्रमशः ६३, १२२ और ७१ श्लोक हैं। अनेकार्थ शब्दोंका पद्य-बद्ध ऐसा कोष हिन्दी साहित्यकी अनुपम निधि है। इसकी रचना बनारसीवासीकी नाममाळाके १७ वय उपरांत हुई। किन्तु इस-जैसी सरसता नाममाळामें नहीं है। इसका रचनाकाल वि. सं. १६८७ आषाढ शुक्ला तृतीया गुरुवार और रचना-स्थल देहली-अहमदशाह माना जाता है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति पंचावती जीन मन्दिर देहलीके छात्रमण्डलमें निबद्ध है।

मृगांक डम्बा चरित

इसका निर्माण पं. अण्णवीरामने वि. सं. १७ अगहन शुक्ला पंचमी शोमवारके दिन शिवार नगरके वर्धमान मन्दिरमें किया था। इन शब्दोंका मापा अप्रमत्त है किन्तु उनमें द्वितीका बहुत बड़ा अर्थ दर्जित है। फिर भी यह अप्रमत्तकी अन्तिम कृति मानी जाती है।

इसमें अण्णवेना और शिवरचन्दके चरितका वर्णन है। अनेक विपत्तियाँ आयी किन्तु अण्णवेना अपने मनीषणर बुद्ध रही। यह एक लघु-काव्य है। अन्तर्गत आदर्श है।

आदित्यप्रसारास आदि

५ 'मयवतीशानकी अर्धविह इतिवां साधारण है, किन्तु इनमें नहीं-नहीं साधारणता भी है। वे रचनाएँ इस प्रकार हैं— 'आदित्यप्रसारास' (२ पद्य) 'पञ्चबाहारास' (२२) 'सप्तकवचारास' (३४) 'विचारीरास' (४) 'साधु समाविराम' (३७) 'सहिष्णुकारास' (४२) 'हरण अनुप्रेषा' (१२) 'सुगन्धदधमीकथा' (५१) 'आदित्यवारकथा' (४६) 'जनपमीकथा' (२९) 'समानीहमास' 'आदित्यास स्तवन' 'आश्रित्यास स्तवन' ।

५० पाण्डे रूपचन्द्र (वि सं १६८०-१६९४)

५ 'नाचूराम प्रेमीने 'अर्ध-वचानक' के संशोधित संस्करणमें रूपचन्द्र नामके चार व्यक्तियोंका उल्लेख किया है।' इनमें प्रथम वे हैं जिनके साथ बैठकर कवि बनारसीरास अर्थात्मचर्चा किया करते थे। दूसरे वे हैं जिनसे 'गोमन्टसार बीवकाण्ड' पढ़कर बनारसीरासका सिम्पल्य दूर हुआ था। तीसरे वे हैं जिनोंने संस्कृतमें 'समवसरण पाठ' की रचना की और चौथे वे हैं जिन्होंने 'पाठक समव सार' की भाषा-टीका लिखी। इनमें दूसरे रूपचन्द्र ही पाण्डे रूपचन्द्र हैं। कवि बनारसीरासने उन्हें 'गुरु' अथवा 'पाण्डे' कहकर अतिहित किया है। ५ प्रेमी-ने पाण्डे रूपचन्द्र और समवसरण पाठ' के रचयिता ५ रूपचन्द्रको भिन्न माना है। किन्तु सत्य यह है कि दोनों एक थे। दोनों संस्कृतके विद्वान् थे दोनोंने बनारसमें शिक्षा पायी और दोनोंका समय भी एक था।

'समवसरण पाठ' की 'निबन्ध ज्ञानकस्याचार्या' भी कहते हैं। इसकी रचना वि सं १६२ में हुई थी।' इसकी प्रशस्तिसे स्पष्ट है कि पाण्डे रूपचन्द्रका जन्म कुछ देसक सलेमपुर नामके स्थानपर हुआ था। उनके पितामहका नाम माम्ठ और पिताका नाम मयचानदास था। जनपदाचारासकी दो परिलयाँ थीं। पहलीसे ब्रह्मदास और दूसरीसे हरिदास मृगति अथवा मयचानदास कीर्तिचन्द्र और रूपचन्द्रका जन्म हुआ। रूपचन्द्रका बंधु अथवाक और मोक्ष वर्म था।' उन्हें

१ ५ नाचूराम प्रेमी अर्धवचानक, पृ ८२ ।

२ पृ ६ २३ ।

३ मयचानदास पाठ, मूल भाग ३४वाँ खण्ड प्रथम भाग, दिल्ली

४ श्री प्रथम पृ २३२ ।

५ पृ ५ मूल भाग, पृ २-३ पृ २४ पृ ४-५, पृ २३६ ।

शिक्षा प्राप्त करनेके लिए बनारस भेजा गया। बड़ी खुशकर सन्धाने ब्याकरण और रसम और शैल सिद्धान्तमें निपुणता प्राप्त की। उस समय बनारसमें ब्रह्मण्य ही शैल शिक्षाका प्रबन्ध होगा।

बनारससे लौटकर पाण्डे कपचन्द्र दरियापुरम आये। बर्हीपर ही उनका परिवार रहने लगा था। वे आगरा भी गये वे जैना कि बनारसीरासजीके 'अर्थ-वचानक' से विचित्र हैं। बर्ही उन्होंने निहुना साहुके मन्दिरमें निवास किया था।^१ इस मन्दिरमें भट्टारक था उनके शिष्य प्रशिष्य ही ठहर गफ्त से सम्म नहीं। इसी आचारपर वे 'नागुरामजी प्रेमीका अनुमान है कि वे किसी भट्टारकके शिष्य थे। उनकी पाण्डे संज्ञा भी इसी अनुमानका समर्थन करती है। उस समय भट्टारकके शिष्य पाण्डे कहलाते थे।^२

पाण्डे कपचन्द्र विद्वान् थे और कवि भी। उन्होंने शैल ग्रन्थमें विवक्षित अध्यात्म पक्षको मनी प्रति समझा था। उसी आचारपर वे बनारसीरास और उनके अध्यायी शिष्योंके उस भ्रमका उन्मूलन कर सके जो समयसार ही रामस्त्रीय टीकासे उत्पन्न हुआ था।^३ बूसरी और बन्धोने हिन्दीय पीठि-रचना को जो उत्कृष्ट काटिका साहित्य मानी जाती है। उनके नीति-काव्य इस प्रकार है परमार्थी दोहासतक 'वीतरमार्थी' मंगलगीत प्रबन्ध 'नेदिनाय रामा' कठोचना गीत।

अनकथाकके अनुसार पाण्डे कपचन्द्रजीका देहावसान वि सं १६९४में हुआ था।^४

परमार्थी दोहासतक

यह काव्य बहुत पढ़के 'कपचन्द्र गणक' नामके 'शैल शिष्यी' में प्रकाशित

१ अनायास इस ही समय गहर आगरे धान।

कपचन्द्र पठित हुआ आवी आयम धान ॥

निहुना साहु देहरा किया तत्रा आव विग डेरा किया।

उर अध्यायी किया विचार ग्रन्थ बंधायी नाम्मटमार ॥

मर्कटपालक, बन्दे कपचन्द्र १६५० पृ ६३-६३२ पृ ७०।

२ श्री प्रथम सन्धरथ, १३४२ ई परिशिष्ट ४ पृ ७०।

३ श्री मरुतिग संस्कार्य पृ १ १ २६४ २६५, और २६४ पृ ६२ और ७०।

४ रिदिगिन समी वरम डी बाध। कपचन्द्र की आई मोच ॥

मुनि मुनि कपचन्द्र के शैल। बनारसी नयी दिह शैल ॥६३५॥

हो चुका है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति बौनसिद्धान्तमन्त्रण आरामें भी मौजूद है।

यह काव्य अक्षरार्थ तत्त्वके मनोरम पद्योत्तमै मुक्त है। यदि आरामाष्टि नम-
मन्त्रीमत्त दूर हो जाय तो यह ही परमात्मा है। कबीरने भी माया उचित बीबकी
आरामाको बड़ा कहा है। किन्तु यह आत्मा ऐसा सामान्यवान् होते हुए भी
कर्मोंके कारण संसारमें भ्रमण करता है। उद्योगो सम्बोधन करते हुए कविने
कहा है

“अपनी पद व विचार के अहो जगत के राय ।
भववन कावक हो रहे विष्णुपुर मुनि विसराय ॥
भववन मरमत्त ही तुम्हें भीतो क्यक जनादि ।
जब किन्तु बरहिं सकारहे, कत हुल्ल बेकत बादि ॥
परम अतीन्द्रिय मुक्त मुनी तुमहि यथो मुक्तभाव ।
किंचित् इन्द्रिय सुल ज्यो विषयव रहे सुमाय ॥
विषयव सेवते ज्यो तुज्या तें न मुझाय ।
ज्यो अक सारा पीचरें वाय् तुवाधिकाय ॥

पाण्डे कावचक बृहान्त होनेमें निपुण है। कर्ममें दिग्भ्र-प्रतिविम्ब मात्र तमुक्ति
कर्मसे प्रतिष्ठित हुआ है। एक स्तानपर उन्होंने लिखा — बेतनसे परिचय बिना
अप-तप ज्यमें है टीन बीसे ही बीसे ज्योने बिना तुवको अटकनैसे मुक्त हान नहीं
जाता। यदि बेतनसे परिचय नहीं तो कर्तोंके कारण बरनेसे क्या होता है। यह
तो बीसे ही है बीसे वाग्दठे रहित खेतकी बाड़ी बनाना बेकार है

‘बेतन बिद बरिचक बिना अप तप सवै निरत्य ।
कम विव तुस जिमि अटकनै जावै कज् न हत्य ॥
बेतन सौ परिचय नहीं कहा ज्ये जत बारि ।
साकि बिहूने खेत की बुजा बजावत बारि ।

यह काव्य एक प्राचीन कुटनेमें शोहरत अटक' के नामसे निबद्ध है। यह
कुटका बनारसीबासके अन्त्य मित्र कुँवरपालका लिखा हुआ है।^१ इसमें अतिरसके
मुक्त एक गुच्छर पद्य लिखा है

“अधु तेरी परम विभिन्न सभोहर मूर्ति क्य बनी ।
जंग जंग की अनुपम सीमा बरनि व सकत कनी ॥

१ जिन दिनेश' मात्र ४ अंक १-५।

२ यह गुच्छर श्री कुँवरपालने वि. स. १९०५-१९०६ में लिख. का. १, अ. १५ का
३ बाबू रामजी प्रेमीके पास श्री अक्षरकन्दजी नाट्याने देखा था।

सकल विकार रहित विजु भंवर सुदर सुम करनी ।
 विराभरन भासुर छवि सोहत कोटि लक्ष्म तरनी ॥
 बसु रस रहित सोठ रस राजत रक्ति इहि साधुपथी ।
 जातिविरोधि बंधु जिहि देखत तमत प्रकृति अपनी ॥
 हरिसनु हुरित हरि चिर संकित सुर-नर-अग्नि मुहनी ।
 रूपकन्द कहा कहीं महिमा विमुचन मुकुन्द-मथी ॥

गीत परमात्मो^१

यह काव्य भी भारतको सम्बोधन करके ही लिखा गया है । सद्गुरु अमृतमय तथा हितकारी बचनोसे जेनको समझाता है, किन्तु यह चेतना नहीं । जब चेतन ज्ञानकर है और समझानेवाला कोई साधारण व्यक्ति नहीं अपितु स्वयं सद्गुरु है तब तो उसे समझना ही आश्चर्य । किन्तु यह नहीं समझता यह ही भारद्वाजकी बात है

“जेनन अचरन मारा यह मर जिय भाषै ।
 अमृत बचन हितकारी सद्गुरु तुमहि पढ़ाषै ।
 सद्गुरु तुमहि पढ़ाषै चित है, अरु तुमहू हो ज्ञानी ।
 तबहू तुमहि न लोको हू भाषि चेतन तरन क्यानी ॥

इसके विपरीत यह आत्मा विषयोम एसी चतुर है कि कोई उसकी बराबरी नहीं कर सकता । और यह चतुरता बिना किसी गुरुके प्राप्त हुई है । कविका तात्पर्य है कि साधारण विषयोंमें ऐसा तीव्र आकर्षण होता है कि यह चेतन उसमें स्वयं क्षिप्त हो जाता है ।

विषयनि चतुराई कहिय, को सरि करै तुम्हारी ।
 बिन गुरु फुलन बुझिया कैमें चेतन अचरन मारी ॥

निर्बुधवादी सन्तोषी मांति कविने कहा है कि यह जेनन अपनी वस्तुको भूककर इतर-उतर भटक रहा है । यह वादलके कबोको छोड़कर लिच्छका ग्रहण कर रहा है । उसकी वस्तु हमके ही अन्दरमें विद्यमान है । यदि चतुर चेतन स्वानुभवकी बुद्धिसे उसे देखे तो देख सकता है

१ इसके बाद भीन परमाने कहीं समझ जैन प्रणय रत्नाकर काव्यात्मक चर्चामें प्रकाशित हो चुके हैं । इसके इस भीन, इतिहासात्मी मन्त्र १ पञ्चासाल वाक्यमाला संशोधित मन्त्रार्थ क्रियमाण १ २६९-२६९ समार मन्त्रार्थमें प्रकाशित हैं ।

'अरनी बस्तु सँभारि बिमरी कडा हन उठ मटक ही ।
 बहिरमुन मूखा मया कन छोडि कन तुव मटक ही ॥
 निज बस्तु भँतरगन बिसात्रिन चिदात्मरु निरैतमा ।
 रषामुमव बुद्धि मन्त्रिं वि दग्धि च न चतुरमति चतमा ॥

संगल गान प्रथम

इसे 'पंचमं वच' भी कहते हैं । इसमें तीर्थंकरके मय अल्प तप ज्ञान और मोक्षको लेकर भक्तिमूलक बचता रचना हुई है । यह वाच्य बहुत अल्प छोड़िये हुए । उक्तम कुछ एसा हीमर्थ है या ज्ञान भी प्रत्यक्षको आशयित करता है ।

मयवानुषो मर्ममें जाया हुआ जानकर, इन्होंने कुक्षेरको भेजा और उनमें मयवानुषो मगरोकी कनक और रत्नाम बहुर अतिथीय बना दिया । मयवानुष निगाके घरमें छह माह पूर्वमें ही रत्नामकी बर्षा आरम्भ हो गयी । अचिन्तवादिनी बचिया प्रकृत ही-हीकर जलनीकी सेवा करने लगी

“जाके गरम कम्बालक चलपनि साहवा ।
 मयपि हान परवान सु इन्द्र पराहो ॥
 रचि मय वारह आजन मयवि मुहायनी ॥
 कनक रचनि मनि मंदिन मरिद अलि बना ॥
 अति बनी वारि पयारि करिना सुवन उपवन साहव ।
 नर वारि सुन्दर चतुर सुन भ ईर वन मन साहव ॥१॥”

मयवानुषा अन्तोत्सव मनानेके लिए इन्द्र परिवारमण्डित स्वयंसे बच गया । मार्गमें अन्धकारके मूल हुए । जलनी कमरमें बैठी कनककी किञ्चिन्विषासे मयुर स्वर निकलता था । अष्टौष कनकनी अग्नि जा रही थी । अज्ञान-व्यापारों पड़ना रही थी । उन्हें देखकर तीनों लोक मोह गये

“दकदकहि धरतर नरहि नवरस हान भाव मुहायन ॥
 मनि कनक किंकिनि पर विचिच सु जमर मंडप साहये ।
 वन वर चंवर हुआ कनकका ईरि विमुवन मोहव ॥२॥”

वैशङ्खानके उदरमय मयवानुके समवधारणकी रचना हुई । उसमें मयवानुकी सेवा करकेचाले गारी और नर, वरमानन्वेषा अनुभव करत है । मारुत वच मयवानुके चारों ओर मोक्षन प्रमाण पूज्यको जाहकर मुख बना देत है । मय

१। अनेक बार इस कुछ है । यह ज्ञानवीर बुकायवि भारतीय वाच्यीय अर्थों,
 २। ई मं ५ ६४-२ पर प्रकाशित हुआ है ।

कुमार मन्मोहनकी सुहावनी कृति करत है। देव भववाणके देरोके तीये कमलाकी रचना करतै है।

“अनुसरे परमानन्द मय का नारि नर ब सवता ।
आमन प्रमान बरा सुमाजहि बह्रां भावन दवता ॥
पुनि करहि मयकुमार गीबादक सुवृष्टि सुहावनी ।
पद् कमलतर मुर त्रिगर्हि कमल सु परणि मयि सोमा बना ॥१९०”

छपुमगल

पाण्डे कपलन्दरी लिखी हुई यह कृति श्री शैल मन्दिर बड़ौतके पुटका नं ५५ बटन नं १७२ पृ ४५ ४७ पर अंकित है। इसमें केवल पाँच पद्य हैं प्रत्येक पद्यमें छह पंक्तियाँ हैं। कविने प्रथम पद्यमें ही अपनी छपुना प्रशंसित करत हुए लिखा है कि हे प्रभु ! तुम्हारी अतुल महिमाका ठीक-ठीक विवेचन तो गणराज भी नहीं कर सकतें मैं तो शक्ति शून्य हूँ बिल्कुल तुम्हारी कृपासे मुचरित होकर कुछ बहता हूँ

‘शै शै श्रिन दवन क देवा मुर नर सकल कर तुम सवा
अहमुत है प्रभु महिमा तरी बरनी न आय अकप मति मेरी ।
मरी अकप मति बरनि न आय अतुल महिमा तुम तर्हि
गणराज बचननि सो अगोचर पूर्य पद् अदातजा ।
मैं सकति रहित शिबसराज ईपति विपति काज न श्रिब घरी ।
तुम सकति बसि बाबाक है प्रभु किमपि बस अचेतन करी ॥

मेमिनाय रासा

‘मेमिनाय रासा का प्रति आमेरके भट्टारक महेश्वरकीनिके प्रथम-मण्डारके एक गुटकेमे निबन्ध है जिसे पं परमानन्दजीने सन १९४४ में देखा था। ‘मेमिनाय रासा’ एक सुन्दर कृति है। उच्चका भाषि और अल्प माय निम्न प्रकारसे है,^१

भाषि

एनबिधि पच परमगुण मज-बच-काच ति-सुद्धि ।
मेमिनाय गुण गावड उपजे विमल हृदि ॥
भारत द्वा सुहावनी पुद्गमीपुर परनिद ।
रस गारम परिपूरनु बल-जन कमल समिद ॥”

१ अश्वति समझ प्रथम भाग, दिल्ली, पलाकना दृष्ट १ ।

धन

‘क्याचन्द दिन दिनवै हो चालतु को रामु ।
 मैं इन लोक मुहाववा बिरप्पौ किचिन् रामु ॥
 जा यह सुरवति माचहिं चित दे सुनहिं जे काम ।
 मन बाँधित कर पाचहिं ते नर नाति मुजाव ॥”

खटोछना गीत

यह गीत वैष्णवीके शास्त्र-मण्डारम मीनूर है। यह अनेकान्त रूप १ किरण
 २ म प्रकाशित हो चुका है। इनमें १३ पद्य हैं और सभी अष्टात्म रससे युक्त
 हैं। उनमें काव्य-मग्न रसबोधता भी है। उनका एक पद्य देखिए,
 सिद्ध सदा जहाँ निवसहीं चरम सरार प्रमाण ।
 किंचिदून मराबोझित मूया गगन समान ॥

अन्य रचनाएँ

अपूर्वक रचनाओंके अतिरिक्त ‘साकह स्वप्न फल’ और दिन स्तुति नाम-
 की दो रचनाएँ और प्राप्त हुई हैं। पहली अजपुरके बड़े मन्दिरके गुटका नं १२९
 म लिखी है, और दूसरी अजपुरके बघोचन्द्रीके मन्दिरके गुटका नं १२९ में
 अंकित है।

पाछे क्याचन्द हिन्दीके एक सामर्थ्यवान् कवि थे। इनकी भाषाका प्रचार
 गुप्त आत्मन् चलान् करता है, जो सीधे-साधे भाव मर्मको रस-विमोह बना
 देते हैं।

५१ हर्षकीर्ति (वि सं १२८१)

हर्षकीर्तिन छोटी-छोटी मुक्तक रचनाओंका निर्माण किया है। उनमें अष्टात्म
 और मन्त्रि रसको अधिकता है। इनको मायावर राजस्थानीका प्रमाण है। इससे
 सिद्ध है कि वे राजस्थानके निवासी थे। जो सचता है कि वे अजपुर अथवा उसके
 आस-पासके राजवाड़े हों। इस समय अजपुर ऐसे जीयाका केन्द्र हो रहा था
 जो राजस्थानी विभिन्न हिन्दीम किन्तु रहें थे। वे हर्षकीर्ति हर्षकीर्तिमूरिसे स्पष्ट-
 रूपसे पृथक् हैं। हर्षकीर्तिमुरि तथापण्डके अन्तर्हीनिमूरिसे सिद्ध वे। अन्तर्हीने
 मुजरातीय केवल विद्वत् पंड विद्वत्सेवानी स्वप्न प्रवृत्त की रचना की। हर्ष
 कीर्ति हिन्दीके कवि थे। इनकी रचनाधामे रस है और अतिशीलता। रचनाओं-
 का विवरण विस्त प्रचार है

पञ्चगति बेल

इसकी रचना बि सं १९८३ में हुई थी। इसकी एक हस्तलिखित प्रति पंचायती मन्दिर दिल्लीमें मौजूद है। दूसरी प्रति जयपुरके टोल्मिओके बि शैल मन्दिरके गुटका नं १३१ में संकलित है। तीसरी प्रति जयपुरके बबीचन्दजीके बि शैल मन्दिरमें गुटका नं ५१ में लिख्य है। इसमें कृपिका रचना-काळ बि सं १९८३ दिया है। यह गुटका बि सं १७५४ का लिखा हुआ है।

इस अभ्यमें पाँच इन्द्रियोसे सम्बन्धित विषयोंका ब्यक्त हुआ है। उन विषयोंमें जेवनेमें शौच निवारण आता है। जोषका कर्म्य है कि इन्द्रियोका बाध न बने और भगवान्में ध्यान आगाये।

नेमिनाथ राजुल गीत

इसकी प्रति जयपुरके बबीचन्दजीके दिपम्बर शैल मन्दिरमें स्थित गुटका नं० १६२ में लिख्य है। इसमें कुल १८ पद्य हैं। सभीमें भयवान् नेमिनाथ और राजुलको लेकर भक्ति लिखायी गयी है।

मोरबा

इसकी प्रति जयपुरके बबीचन्दजीके दि शैल मन्दिरके गुटका नं ११८ में लिख्य है। इसमें भी नेमिनाथ और राजुलको लेकर विविध भाषाका प्रबलन हुआ है सभी भयवद्विषयक रनिसे सम्बन्धित हैं। आदि और अन्त देखिए।

प्रारम्भ-राज सोरठी

“भदारी रे मन मीबा दू धो गिरनारया उदि आयेरे।

बसिजी सबो कुं कहियो राजसती कुल्ल प सौमे ॥ भदारी ॥

भक्तिम

‘ओल गवा जिन राजइ प्रमु गढ गिरनारी मजार है।

राजक ली सुरपनि हुषो स्वामा हर्षकीर्नि सुचारो है ॥ भदारी ॥”

नेमीश्वर गीत

इसकी प्रति बबीचन्दजीके बि शैल मन्दिरमें गुटका नं १६२ में लिख्य है। इसमें कुल १९ पद्य हैं। यह भयवान् नेमीश्वरको भक्तिमें रचा गया एक शक्ति-नाम्न है।

शाम तीर्थकर जलड़ी

इसकी प्रति जयपुरके टोल्मिओके शैल मन्दिरमें विराजमान एक पाठ-संग्रहमें संकलित है।

चतुर्गति प्रति

यह प्रति मी जयपुरके बभीचन्दजीके दिगम्बर जैन मन्दिरमें विराजमान गुटका नं ४३ और १४८ में निबद्ध है। पड़लेका कैलनकाक वि सं १७८२ और हुसरना म १७९९ पेट्ट कही ११ है। जयपुरके श्री पण्डित लंमनरजीके मन्दिरमें गुटका नं २ और १८ में मी इसही प्रति संरक्षित है।

कम द्विपडासना

इसही प्रति जयपुरके बभीचन्दजीके मन्दिरमें गुटका नं १६२ में लिखी है। इसमें १८१ पद्य है। जयपुरके ठीकियाके जैन मन्दिरमें भी गुटका नं २९ में इसकी एक प्रति संरक्षित है।

शाम्य रचनार्थ

‘अहमेत्यादिपित्त’ और मज्ज क पद-संग्रह’ जयपुरके वं लंमनरजीके मन्दिरमें गुटका नं १८ में निबद्ध है।

५२ जनककीर्ति (१७वीं शताब्दी विष्णु उत्तरार्ध)

जनककीर्ति अरठरगण्डविद्यालयाके प्रसिद्ध जिनबन्धुसूरिकी शिष्य रत्नारामे समयकमन्त्र शिष्य जयमन्दिरके शिष्य थे। इनकी समुची श्रम्य रचनार्थ पुत्राणी और शिन्धीम लिखी हुई है। बहुत पढ़ने ही भी मोहननाक बुलीचन्द केसाई इनके द्वारा बुझराठीम रची कही ‘अमिताभ राठ’ और ‘श्रीरठी राठ त्रीनी रच नाओना विपद्य उत्केछ कर चुके है।’ बीना ही रचनार्थ १७वीं शताब्दीके अग्रिम पावरी कृतिर्था है। इनका निर्माण अमरु बीजानेर और जैनमेरमें हुआ जन मर अनुमान किया जा सकता है कि ये कही ठरठक रचनेवाके थे। इगडेल ‘उत्थाय मुठ तावरी टीका’ पर एक विस्तृत शिन्धी टीका लिखी है की गद्यमें है।^१

इनकी शिन्धी कृतिवाम कीठ अविश है। सभी भगवान् वा किती क्वपि बुगिणी स्तुतिमें लिखे पये है। बाध्यकी बुद्धिमें भी इनकी रचना प्रीड़ है। भावा बुझराठी शिन्धी है जिसमें है के स्वानपर ‘के वा प्रयोग किया गया है। उन कृतिवोंका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकारसे है

१ जेजु लक्षिका भाग १ पन्ने १६ २ है पृष्ठ १३०-७२।

२ इसकी मंगि जयपुरके अमिरीके जैन मन्दिरमें कैपल न ४ में कीजु है। इसका लेखनाम स ७४४ वांकि कही ६ है।

मेघकुमार गीत

इस छोटे-से पीठि-काम्यमें कवि मेघकुमारकी स्तुति की गयी है । इसमें कुल ४६ पद्य हैं । इसको प्रति जयपुरके ठोकरियोंके विम्वर शैल मन्दिरमें सेप्टन ४ ४४० में लिख्य है । पद्यमें केवल दो पंक्तें हैं । इसका अन्तिम भाग इस प्रकार है

‘जी बीर जिगंद् पसाह, जे मेघकुमार रिधि गाह ।
 छाही अगळी बीनस थीआह, बसी संपति सगळी पाह ॥
 जे सुमीबर मेघकुमार जीभी चारिण पाळउसार ।
 गुणैरु जी माणीक सीस इम कनक मणव बीस हीस ॥

विनराज-स्तुति

इसकी प्रति जयपुरके बबीचनबीके हि शैल मन्दिरमें गुटका नं० १२५ में लिखी है । इसकी लिपि सांगानेर में ४ १७५९ अक्षगुण सुरी ६ को हुई थी । सापामें गुजरातीका पर्याप्त सम्मिलन है ।

बिमती

इसकी प्रति भी जयपुरके बबीचनबीके हि शैल मन्दिरके गुटका नं० ५१ सेप्टन नं० १ १७ और गुटका नं० १ ८ और सेप्टन नं० १११८ में लिख्य है । यह ‘बहु भी विनराई’ से प्रारम्भ होती है । यह धनवान् विनेन्द्रकी भक्तिसे सम्बन्धित एक पीठ है ।

भीपाळ-स्तुति

इसकी प्रति भी उपर्युक्त मन्दिरके ही गुटका नं० १ १ में लिख्य है । इसमें भीपाळकी स्तुति है । बीसा कि इसके धीरेकसे विरिण है । भीपाळ मन्वान् विनेन्द्रका परम भक्त था । यह भक्तकी भक्ति है ।

पद्

अनरकोटिके पद् हि शैल मन्दिर बड़ीतके पद्-संग्रहमें संकलित है । अतिपद् पद् जयपुरके ठोकरियोंके शैल मन्दिरमें विराजमान गुटका नं० १११ में भी लिख्य है । जयपुरके छावनोंके मन्दिरके गुटका नं० १४ और बबीचनबीके मन्दिरके सेप्टन नं० १ २३ में भी उनके पदाका संकलन है । एक पद्यमें उन्होंने लिखा है कि जयवान्का नाम कैनेसे निरचय ही पिबपद् मिलता है,

“नर चारी जो गाई रे माई

विहकरी पिबपुर बावही ।

कनककीरति तुम गाँव रे माई
अरिहंत नाथ द्विषै धरी ।
अब कीपो बाब लो कीम्यो रे माई
जिन को नाथ सदा मको ॥^१

एक दिन रे परमें अपने देवको अनुपम कहते हुए कविन सिखा है,
‘तुम माता तुम चात तुमही परम बन्धी थी ।
तुम अप संघ देख तुम सम और बर्ही थी ॥
तुम मनु दीनदयालु मुझ हुए बुरि क्यो जी ।
कई मोहि बचारी में तुम सरण गही थी ॥
संसार अर्बतन ही तुम प्याव बरो जो ।
तुम इरसन विन देव सुरगति माहि क्यो थी ॥’^२

कर्म मटाबलि

इसकी प्रति बबपुरके कबीरदासजीके दि शैव मन्त्रमें पुटका नं १८ में सुरक्षित है । इसमें शैव ब्रह्मसुधार बाठ बमोहर गुरा प्रभाव बिलामा गया है । एक पद्यमें कविने लिखा है कि अपने आराध्यमें प्रेम-निष्ठ होनेसे यह बीच पर समुद्रके पार पहुँच जाता है

“अम्भी संसार अमठ न तुम भेद कह्यो थी ।
तुम स्त्री बेह बिचारी परस्त्री नेह कीये थी ॥
पहवा नरक मझारि अब उभारि क्यो थी ।
तुम स्त्री प्रेम कोरा से संघार तिरे थी ॥
कनककीरति करि माव श्री जिन मयति रये थी ।
पद मुन नर नारि सुरगा मुच कहो थी ॥”

५३ कवि बनारसीदास (जन्म वि सं १९४३ मृत्यु वि सं १०)

पारिवारिक जीवन

बनारसीदासका लिखा हुआ ‘ब्रह्मचानक’ है,^३ जिसके आधारपर यह धनका जीवनभूत प्रस्तुत किया जा रहा है । प्राचीन और मध्यकालीन साहित्यमें ‘ब्रह्मचानक’ पहला आत्मचरित माना जाता है ।

१ मन्त्र कबीरदासजीकी प्रति ।

२ मन्त्र बामोहारी प्रति ।

३ ब्रह्मचानक, १ भागुराम प्रेमी द्वारा सम्पादित होकर, मंतोरेविन साहित्यशाखा बनारस से सम्बन्धित १९५० में प्रकाशित हो चुका है ।

कवि बनारसीदासजीके पितामह श्री मूलदासजी हिन्दी और फ़ारसीके विद्वान् थे। मरहारेके नवाबने उन्हें अपना मोदी नियुक्त किया था। वि सं १९०८ सावन सुदी ५ रविवारके दिन मूलदासके घर पुन-जन्म हुआ। उसका नाम लक्ष्मसेन रखा गया। वि सं १९१३ में मूलदासका स्वर्गवास हो गया। उसकी धन-सम्पत्ति नवाबने के ली। माँ-बाँते जौनपुरमें भाकर रहने लगे। वहाँ लक्ष्मसेनकी लगसास थी। नामा मरनसिंह बिनाकिया जौनपुरके प्रसिद्ध बौहरी थे। उस समयका जौनपुर अधिक समृद्धिवासी था। वहाँ हीरे-जवाहरातका बहुत ख़ासा व्यापार होता था। वह चार कोसमें बसा हुआ था। उसमें ५२ बाजार थे। इस नगरको पठान जीनसाहने बग़ाय़ा था। बनारसीदासके समयमें जौनपुरका नवाब कुलीचरण था जिसके अस्वाचारसे प्रपीडित होकर बौहरी इतर-इतर भाग पड़े थे।

लक्ष्मसेनजी बड़े होकर आनरेम ज्ञान और सुन्दरदासजीके साथ व्यापार करने लगे। इसके पूर्व वे कुछ समय तक बंगालके मुक़्तदास लोदीक़के दोतदार भी रहे थे। सुन्दरदासके साथमें व्यापार शुरू पसा। उसी समय इनका विवाह मरठके सुरदास धीमास्नी पुत्रीसे हो गया। प्रथम पुत्रके स्वर्गवासी होनेपर लखौन रोहतकके पासकी सती माता की बात की। दो बार बात करनेपर उनके सं १९४३ माघ सुदी एकादशी रविवारके दिन एक पुत्रका जन्म हुआ जिसका नाम विक्रमाजीठ रखा गया। छह मासके बालकको लेकर वे मगवान् पार्स नाबकी पुत्रा करनेके लिए बनारस पड़े। वहाँ उनकी प्रार्थनापर पुत्रातीने जाधी बाँध दिया मगवान् पार्सप्रभुके यज्ञ में मुशसे प्रत्यक्ष होकर कहा है कि इस बालककी कोई चिन्ता नहीं रहेगी यदि पार्स-प्रभुके जन्म-स्नानके नामपर इसका नाम रखा जायेगा। उसके निर्देशानुसार विक्रमाजीठ बनारसीदास हो पड़े।

धाराई वर्षकी उम्रमें जर्षत् वि सं १९५४ माघ सुदी १२ को बीरा-दासके कन्याधर्मसती पुत्रीके साथ उनका विवाह हुआ। जिस दिन पुन-जन्म करने जायी उसी दिन लक्ष्मसेनकी दूसरी पुत्रीका जन्म और नामीना परल हुआ। सोना नाम एक साथ क्रिये गये। बनारसीदासजीके तीन विवाह हुए जिसमें-से प्रथम ही लक्ष्मसेन स्वर्गवासीनी हो गयी। बनारसीदासजीके गी बाळक बनने सभी बाल-वचकित हो गये। उनमें दो लड़कियाँ और सात लड़के थे। उसपर बनारसी दासजीने यह कहकर शम्भोप बाराध किया

‘एतत् इति जो हेल्पि, सत्पारथ की मँत्रि।

उभो जा की परिगह बरे, त्यो ता की अपसंति ॥”

बनारसीदासजी शिक्षा-दीक्षा

आठ वर्षकी अवस्थामें बनारसीदास षट्षात्तम विद्या ग्रहण करने लगे। बहूँ बुरके पास वे एक वर्षमें ही शिक्षता-पत्रना लीख गये। इसके पश्चात् १४ वर्षके होनेपर बहूँने पण्डित देवदत्तके पास विद्याभ्यास किया और नाम-माका अनेकान्न ज्योतिष मल्लभार, बीजशास्त्र और चार ही कुटुम्ब स्वीकृति। इसी समय बीजपुरमें कृष्णभ्यास अययवर्मजी आये उनके साथ मानुषनर और रामचन्द्र नामके दो पिण्ड भी थे। मुनि मानुषनरसे बनारसीदासना स्नेह हो गया और वे उनके पास विद्याभ्यसन करने लगे। मुनिजीसे बहूँने पंचमन्त्रि-काव्य कौञ्ज जैन स्तवन सामयिक तथा प्रतिष्ठाभादि पाठ लीखे। इनके प्रति बनारसीदासजीकी अत्यन्त मन्दा भी। बहूँने अपनी प्रत्येक रचनामें यहाँतक कि 'नाटक समयसार'में भी उनका स्मरण किया है। बनारसीदासजी कवि-मन्त्रिमा जन्मगत थी। बहूँने १५ वर्षकी अवस्थामें एक 'नवरस रचना किछी त्रिपमें 'सावित्रीका विरोध करण' का। उसमें एक इबार बोझा बीनाई थे। सोष्ट ज्ञान होनेपर बहूँने यह रचना योगीमें प्रकाशित कर दी। इसके लक्षकी कवित्व अविश्वता परिचय ही दिखता ही है।

बनारसीदासका ब्रह्म और मोक्ष

बनारसीदासना ब्रह्म बीमाक और मोक्ष विद्वांसिमा था। इनकी ब्रह्मसिद्धि विषयमें बनारसीदासने लिखा है, "दोहृत्तके पास विद्वांसि नामका गाँव था जिसमें राजवंशी राजपूत रहते थे। वे सब एक हीन बुरके अन्तर्गत हीन हो गये। यही कारण मन्त्रकी मन्त्रा पदार्थके कारण उनके बुरके नाम बीमाक पडा। वहूँके राजाने उनके बीमाका नाम 'विद्वांसि' रख दिया।" इसपर टिप्पणी करते हुए वे मानुषनर प्रेमीने लिखा है "इसमें इतना ही ठीक मन्त्रम होता है कि विद्वांसि गाँवके कारण इनका पौत्र विद्वांसिवा हुआ बीमाके अविश्वस दोषीके नाम स्वामीके कारण ही रखे गये हैं परन्तु समस्त बीमाक आदिके उत्पत्ति-स्थानके विषयमें वे कुछ नहीं कहते।" अधिक प्रेमीकी नृष्टिमें बीमाक आदिकी उत्पत्ति बीमाक स्वामी हुई थी जब मिथिलाक कहलाया है। इसके अन्तर्गत अहमदा-बादके अजमेर आनेवाली रेलवे काइन्पर पाकनपुर और बाबू स्टेशनसे अययव

१ अन्तर्गतमन्त्र, दोहरा ८-१ १ १।

२ अन्तर्गतमन्त्र, परिशिष्ट, १ ११।

३ भी, ११८।

५ मीछ दूर गुजरगठकी बार बबस्थित है। हुएगठांपके समयमें यह नगर मुर्जर बैसकी राजधानी था।

बनारसीबास और उनका सम्प्रदाय

बनारसीबासजीका बन्ध स्वैठाम्बर सम्प्रदायमें हुआ था किन्तु म ने स्वैठा म्बर पे और न विषम्बर। उस समय बापरेमें बध्यात्मिमोकी एक सीटी या पोष्ठी थी जिसमें सदैव बध्यात्म बचा हुआ करता थी। बनारसीबास उसीके सदस्य थे।

‘समयघार की राजमछकी कृष्ण बाछ-बोच टीका पढ़कर, बनारसीबासको बध्यात्म बचामिं को बचि उत्पन्न हुई थी यह वि सं० १९९२ में पाण्डे रूप बाबजीसे ‘गोमट्टघार’ पत्रके उपरान्त परिष्कृत हुई। परिबामस्वरूप ने बध्यात्म मतके पन्के समर्थक बन सके। यद्यपि बनारसीबाससे पहले ही बापरेमें बध्यात्मिमोकी सीटी थी किन्तु उनके जानेके बाद उसमें स्वामित्व आया।

बनारसीबासके पाँच साधो थे पं क्यचन्ध चतुर्मुख ममवनीबास कुँवरपाठ और बर्मबास।^१ ये सब दिन और रात बैचक बध्यात्म बचामिं ही नहीं करते थे किन्तु सबकुच साहित्य-गुञ्ज भी करते थे। बनारसीबास और उनके दस साहित्यिक रहने बध्यात्मबासकी अनुमूर्तिमय काव्यका रूप दिया। बिमसे उसमें स्वामित्व तो आया ही बाकर्षम श्री उत्पन्न हुआ। बनारसीबासके बासका समुचा बैन-हिन्दी साहित्य उनके काव्याकी बन्धस्वैठनासे प्रभावित है।

बनारसीबासका दो सन्धोसे मिञ्जन

कहा जाता है कि बनारसीबासजीकी महारत्ना तुळसीबाससे भेंट हुई थी। तुळसीबासजीने रामायणकी एक प्रति बनारसीबासजीको दी थी और उन्होंने विराई रामायण पठ माँह^२ पर^३ की रचना कर रामायणके प्रति धजा प्रदर्शित की थी। तुळसीबासजीका स्वर्णबास वि सं १९८ में हुआ था उस समय बनारसीबासजी अवस्था ३७ वर्षकी थी। दोनोंकी भेंट होना असम्भव तो नहीं है। पं नाचुरामजी प्रेमीका कथन है ‘यदि पोस्वामी तुळसीबाससे छात्ना होनेकी बात सच हीठी तो समझ सस्केच बर्द्धनबासक’ में अवश्य होता। हो सकता है कि इस बन्धाकी पीय समझकर ही उन्होंने अपने जीवनवृत्तमें कोई स्वान म

१ पृ १७३-७४।

२ नाटक समझार, उम्रिलाठ बासकी हिन्दी-टीकासहित, बैन मन्धरवाकर बायोडब, बन्ध, वि सं १९७७, मरति पत्र ४६-४७, पृ ३३७।

३ यह पद बनारसी-विनास बचपुर, १९४४ ई प २१२२२ संकलित है।

४ बर्द्धनबासक, पृ २१।

दिया हो। यह सब है कि तुलसीका यद्यत् उनके जीवनकालमें नहीं था। इसके अतिरिक्त व तुलसीकी रामायणकी प्रशंसा पढ़ते ही कर चुके थे।

दुमरे सप्त सुन्दरबासनी है जिससे बनारसीबासनी भेंट हुई थी। सुन्दर बासनीका जन्म वि सं १६५१ और मृत्यु वि सं १७४६ में हुई।^१ उनका रचनाकाल वि सं १६६४ से आरम्भ हुआ था। दोनों समयकाहीन थे। सुन्दर प्रस्तावकी^२ के सम्पादन व हरनारायण घमसि बोगासी भेंट होनेकी बात किन्हीं है। पण्डितने यह भी लिखा है कि बोगामें आपसमें पद्योंका आदान-प्रदान भी हुआ था। वं नापूरामजी प्रेमीने इस सेंटकी सम्मति माना है।^३ अर्थकालक में इस बटनाका भी पल्लव नहीं है। बनारसीबास स्वयं सप्त वे और सतमें सप्त-समायमकी इच्छा स्वामाधिक थी।

बनारसीबासका साहित्य

बनारसीबासने 'नवरस रचना' 'नाममाळा' नाटक समकाल, बनारसी विद्यास बचकालक' 'मोह विवेक मुठ मीसा और कुछ फुटकर बराना निर्माण किया था। बनारसीबास उत्तम कौटिके कवि थे। उनकी रचनाकालमें रस-प्रवाह है और बलिनीकता भी। जीवनस याथा और स्वामाधिक भावोन्मेष उनका मुख्य गुण है।

नवरस रचना

बनारसीबासने इसकी रचना वि सं १६५७ में की थी। इस समय उनकी अवस्था १४ वर्षकी थी। रचनाका मुख्य विषय था 'हरक'। बनारसी-बासने वि सं १६६२ में इस कृतिकी बीमतीमें बहा दिया था। इस रचनामें एक हजार दोहा-बीचार्यं थे।

नाम-माळा

इसकी रचना वि सं १६७७ आश्विन सुदी १ को जौनपुरमें हुई थी। यह एक छेटा-सा सप्त-बीस है। इसमें १७५ दोहे हैं। यद्यत् हमरा मुख्य आधार 'बनारस नाममाळा' की दिग्गु उद्यमें हिन्दी बसुत और प्राकृत तीनों

१ मोशीबाल केदारिध टाककालकी भाषा और साहित्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन स्थान वि सं २००० दिल्ली संस्करण, पृ २१६-२१७।

२ अर्थकालक, बुद्धिवा दृष्ट १४।

३ बनारसी नाममाळा और देवा मन्दिर, दिल्ली, पृ १७१-१७२।

मायाओके घण्टोंका समावेश हुआ है।^१ यह एक मौलिक कृति है।

नाटक समयसार

‘नाटक समयसार’ बनारसीबासणी सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसका निर्माण कापरेमें जि सं १९९३ आश्विन सुदी १३ रविवारके दिन हुआ था। उस समय बाबूसाहू साहूबाईका राज्य था।^२

‘नाटक समयसार’में ३१ श्लोक-श्लो २४५ श्लोका-श्लोका ८९ श्लोकाई १७ श्लोका-श्लोका २ अक्षर १८ कवित्त ७ अक्षर और ४ कुण्डलिका हैं। कुण्डलिकाएँ ७२७ पद्य होती हैं।^३

‘नाटक समयसार’का मुख्य आधार है आचार्य अमृतचन्द्र (९वीं शताब्दी विक्रम) की ‘आरम्भस्याति’ टीका जो आचार्य कुम्भकुम्भके प्राकृतमें लिखे गये ‘समयसारपाठुङ्ग पर, संस्कृत कालखण्डमें लिखी गयी थी और राजमहन्नी पाम्भे (१९वीं शताब्दी विक्रम) की ‘बाबूबाबिनी’ टीका जो हिन्दी-भाषामें रखी गयी थी। किन्तु ‘नाटक समयसार’केवल अनुवाद-भाष नहीं है इसमें पर्याप्त मौलिकता है। ‘आरम्भस्याति’ टीकामें केवल २७७ कालखण्ड हैं जबकि ‘नाटक समयसार’में ७२७ पद्य हैं। अन्तका ‘बोधवर्षी गुणस्वाग अक्षिकार’ जो विक्रमकुण्ड स्वतन्त्र रूपसे लिखा गया है। आरम्भ और अन्तके १ पद्योंका भी ‘आरम्भस्याति’ टीकाके कोई सम्बन्ध नहीं है। जिनका सम्बन्ध है वे भी नहीं है। कालखण्ड का अभिप्राय जो अक्षर्य किन्ना गया है किन्तु विविध दृष्टान्तों उपमा और उल्लेखाभासे ऐसा रस उत्पन्न हुआ है जिसके समस्त कालखण्डोंका संबंध है। ‘नाटक समयसार’ साहित्यका धर्म है जब कि ‘समयसारपाठुङ्ग’ और अक्षरी टीकाएँ इसगते सम्बन्धित हैं। ‘नाटक समयसार’में कविनी भावुकता प्रमुख है, जब कि ‘समयसारपाठुङ्ग’में वाचनिकता पाण्डित्य।

‘समयसार’ और ‘नाटक’

अपने स्वभाव व गुण-वर्णनोंके स्थिर रहनेको ‘समय’ कहते हैं। उहाँ इत्य - जीव अजीव धर्म अक्षर्य आकाश और काळ - अने गुण-वर्णनोंमें स्थिर रहते हैं अतः वे सब ‘समय’ कहलाते हैं। उन सबमें ‘आरम्भ-इत्य’ (जीव) भावक

१ ‘माया प्राकृत संस्कृत विविध गुणवर समेत’

२ बनारसी नाममाला दिल्ली, टीका कथ।

३ नाटक समयसार, काली प्रकाश, पृ १९-२० इ २४।

४ वरी मरणि पृ ३३३, इ २४२।

होनेके कारण सारभूत है और उसका ही मुख्यतया कथन करनेके कारण इसका नाम 'समयसार' है।^१

आचार्य ब्रह्मबुधने 'समयसार' को नाटक नहीं कहा था किन्तु बभ्रुवर्णन-नामने अपने संस्कृत ककष्यमें इसे नाटकही संज्ञा प्रदान की। बनारसीवासने भी इसे नाटक कहा है। इसमें जीव-जरीज-जलन-रत्न-संवर-निर्मल और मोक्ष-सात-उत्पन्न-अभिनय-करते हैं। इनमें प्रधान होनेके कारण जीव-नायक है और जरीज-प्रतिनायक। दोनोंके प्रतिस्पर्धी-अभिनय-विभिन्न-कथनोंके द्वारा प्रदर्शित किये गये हैं। आत्मा (जीव) के स्वभाव और विभावको नाटकके अंगर-रूपमें बतलानेके कारण इसको 'नाटक-समयसार' कहते हैं।

नाटक-समयसारमें रूपक-रस

आत्माकी नट-सत्ताकी रस-भूमिकर-ज्ञानका स्वाभाव-बनाकर-सर्व-मूल्य-करता है। पूर-बन्धना-नाश-उपकी-भाव-विद्या है, नवीन-बन्धना-संवर-ताक-पीडना है, नि-प्रकृत-आदि-बाध-जय-इसके-सङ्घाती है। समताका-जाकार-स्वर्ण-का-उपकार-है, और-निर्मलकी-ध्वनि-ध्यानका-मूर्धन-है। इत-प्रति-बहु-राम-और-नृत्यमें-जीव-होकर-आत्ममें-उपजीव-है

पूर्व-बंध-नाशे-सो-वा-सर्गात-कहा-प्रकृतसे
नव-बंध-बंधि-ताक-वीर-उद्धरि-कै।
निर्लक्षित-आदि-जह-बंध-संय-सखा-बोरी
समता-अक्षय-बापी-कै-सुर-भरि-कै।
निर्मल-ताक-नाशे-ध्यान-निर्बंध-नाशे
ऊपरी-महा-बंध-में-समाधि-रीति-करि-कै।
सखा-रंग-धूमि-में-मुकत-मयी-विहू-काक
नाशे-सुख-दिष्टि-नट-ध्यान-स्वाय-धरि-कै ॥^२

ए-बुनर-स्वाकर-आत्माको-‘पातुरी’-बनाया-गया-है। एक-नटी-रस-और-आमू-भोष्ट-उपकर-रातके-सम-नाटक-पाकारमें-‘पट’-भाषा-करके-बाठी-है-ठी-विहीको-बिछाई-गही-देती। किन्तु-नव-दोनों-बोरेके-समाधान-ठीक-करके

१ आचार्य ब्रह्मबुध-समयसार, पृष्ठी-वि-के-प्रकाशना-वापेठ, आगरा-करवी-१९२१-दुपरी-नाका-अन्त-काल-आचार्यकी-संज्ञा-दीप्त-ह-१-२।

२ बनारसीवास-मन्त्र-समयसार, श्री-दुर्गादास-आत्मकी-दीना-सहित, के-प्रकाश-रत्न-प्रकाश-कार्य-कर्म, वि-सं-१९२९, अ-११-ह-२१२-२१६।

‘पट’ हटाया जाता है तो समाजके सब लोग उसको महीमांति देख लेंगे हैं। ठीक ऐसे ही आत्मा को मिथ्यात्वके परदेमें डेला हुआ या जब ज्ञानके समानागमके उभायेमें प्रकट होता है तो सभी लोग उसे देख सकते हैं। आत्माको इस रूपमें देखनेवाले जीव संसारके शायक बनते हैं

“शैले कोऊ पातुर बनाय बस्य आमरण
 भावनि अजारे किसि भाङ्गी पट करि कै
 हुइ भीर बीरसि संवारी पट पुरि कीजै
 सकळ समा क जोग दुर्जे दृष्टि धरि कै ॥
 तसैं ज्ञान सागर मिथ्याधि प्रीथि भेदि करि
 उमरपी प्रगट रही निहुँ छोड मरि कै ।
 ऐसो उपदेश सुनि चाहिपु अगल शोच
 सुखटा संभरै जा जाक सी बिसरि कै ॥१३५०

शैल अचेतनकी संगतिमें अचेत हो रहा है, सभीको कविने निराशा करके प्रस्तुत किया है। शैल कायाकी विवशारीमें मायाको शय्यापर भो रहा है। मोहके झरोखेमें उसके नेत्रके पकड़ डक गये हैं। कर्मोंका बलवान् शय्य ही श्वासका धर्म है। विषय-भुक्तके लिए मरकता स्वप्न है। इस मूढ़ रूपमें आत्मा तीनों वास मग्न रहता है,

“काया विवशारी में करम परबक धारी
 माया की संवारी सेज आरु कमपना ।
 शौच करे श्रेष्ठ अचेतनता बीरु शिव
 मोह की मरीर बहै कोचन को रूपना ॥
 उदे बक जोर बहै श्वास को शय्य भीर
 बिपे सुपकरी जा की भीर बहै सपना ।
 ऐसी मूढ़ रूप में मगन रहै तिहुँ जाक
 पावे ज्ञान-जाक में न पावै रूप अपना ॥ १३५१”

नाटक समयसारमें भक्ति

कवि बनारसोदासने कवया भक्तिका निरूपण किया है और यह हम प्रकार है

‘अरुत कीरतन बितबन लेखन बंदन प्रधान ।
 अमुना समता कृपना गीषा भरित प्रधान ॥१९८१”

कविनी यह भक्ति नहीं अछिन्त नहीं अछिन्त-विन्त नहीं सिद्ध नहीं भुवनेनी नहीं छात्रु और कही सम्पन्नद्वितीयके चरमार्थे समर्पित हुई है। अर्थात् कविने यदि एक ओर सगुणकी वन्दना की है तो दूसरी ओर निर्गुणकी आराधना। अतारमीशायतन आत्मा' ज्ञानका नहीं किन्तु भाव-श्रेयका विषय है। अर्थात् आत्मासम्बन्धी सिद्धान्तको नहीं अपितु आत्मानुभवको अपने इस गायकका मुख्य विषय माना है। अर्थात् कहा 'युद्ध आत्मके अनुभवके अन्वयसे ही मोक्ष सिद्ध सकता है अथवा नहीं।' कलरा यह भी कल है कि आत्माके अनेक गुण पर्यायीके विरूपमें न पककर युद्ध आत्मके अनुभवका रस पीना चाहिए। अपने स्वस्वमें लीन होना और युद्ध आत्माका अनुभव करना ही श्रेयस्कर है।^१ इस भाँति कलरा आत्मा श्रेय कम और अवाप्त अधिक है। मयवान् सिद्ध युद्ध आत्मके प्रतीक है। इनको वन्दना करते हुए कवि कहता है

'अविनासी अधिकार परम रस आम हैं। समाधान सर्वत्र सहज अभिराम हैं ॥
सुख सुख अविच्छन्न बनाहि अर्थात् हैं। अगत शिरीमति सिद्ध सदा अवर्थात् हैं ॥'^२

शिराज यह ही है, जिसने युद्ध आत्माके दर्शन कर लिये हैं। यह युद्ध आत्मरूप शिराज बट-मन्दिरमें विद्यमान है। कविने इसके चरनोंमें अपनी भक्ति समर्पित करते हुए कहा है,

'जामे कोकलकोठ के सुभाव अतिमा से सब
अगो ग्वाण अकृति विमल सैतो आत्सी ।
हमंज अचीव लीपी अंतराज अंत लीपी
गपी महामोह मपी परम महारसी ॥
सोही बट-मन्दिर में श्रेयत्र प्रगट रूप
दुम्पी शिराज छहि अर्थात् वन्दारपी ॥'^३

१ युद्ध परमात्मा को अनुभवी अन्वय कीर्ति

यही मोक्ष रस परमारण है इतनी ॥

गायक सम्पन्नद्वार १। १९५, १ १८८।

२ गुण परती में द्विष्ट न दीर्घ ।

शिराजविषय अनुभवी रस पीने ॥

आप सम्यक् आप में लीने ।

इतनी शक्ति अनुभवी कीर्ति ॥

वही १। १९७ प १८९।

३ वही मयवाचरण पृ ५-६।

४ वही १। १९५, पृ ५९।

बनारसीरासने भक्तियोंके विधानके नामसे भी अभिहित किया है । विद्वान्मयी स्तुति करते हुए उन्होंने लिखा

“शोभित निज अनुसूति जल विशालम् भगवान् ।
सार परमार्थ भावना सकल पदारथ जान ॥”

बनारसीरासनीने समुदाय ईश्वरकी भक्तिमें भी अनेकानेक पद्योंका निर्माण किया है । भगवान् पार्श्वनाथकी स्तुति करते हुए उन्होंने कहा कि भगवान्का स्मरण करने-भाषणे ही भक्तोंके सब भय दूर हो जाते हैं ।

‘महान्-कृपण-विष परम धरम-हित सुमिरत भगति मगति सब दस्ती ।
सकल-जगद्वत्त सुखद सपत्त-जन कर्मठ ब्रह्म निज भक्त बचरसी ॥”

भगवान् विनेश्वर पापकपी धूलको दबानेके लिए बाइलके समान हैं । वे भक्तोंके भयको दूर करते हैं । पते कमी गरजमें नहीं जाने देते और उसे भय समुद्रसे पार कर देते हैं । वे भगवान् कासेबके बन्धी बन्धियों जकारके लिए आम्निक समान हैं

पर-भय-दखहर सकल सकल जन-गत भय-भय हर ॥
जमदकन बरक-पद-कपकरण भगम जतद भय सकल परम ।
बर-सकल-महान्-बच-हरवहन अप अप परम भयभय करम ॥”

शिव-विष्णु भी विनेश्वर-जैसा ही हैं । उसका पद जगते हृदयमें प्रकाश उत्पन्न होता है । मलिन बुद्धि पवित्र ही जाती है ।

‘बा की जल अपत प्रकास जी हिरै में
छोड़ सुखमति होइ जुती तु मखिच-सी ।
कहत बचरसी सुमहिमा मगद बाकी
सोई शिव की छवि सुबिद्यमान शिव-की ॥”

बनारसीने साधुकी शक्ति करते हुए कहा है कि साधु, धर्मका प्रखर और प्रयोगा उन्मुक्त करता है । वह परम शान्त होकर नमोति करता है और मोक्ष कर संसारमें विराजता है ।

“भारम की महान् भरम को बिहोवन है
परम भरम है के करम सी करपो है ।
ऐसो सुबिताज सुबछाक में विराजमान
निरति बचरसी नमसकार करपो है ।

शिवनाथी भगवान्के हृदयके शास्त्रसे निकलकर शास्त्रके समुद्रमें

प्रसिद्ध हुई है। इन सम्पादक विषय भाग सभसे है। निम्नोक्तियों में। ऐसी किन्हीं
बातों सभारमें सदा समबन्ध ही

‘पासु हरे हरे हीं विक्रमी सरिता बस है सुत-सिन्धु समानी ॥

पार्श्व श्वेत नपातम कच्छम सख स्वकव्य मिश्रत बगानी ॥

सुद छटी न कटी सुरसुद, सदा बग मीहि कमी विपवानी ॥

बनारसी विकास

यह बनारसोद्योगी कुम्हार रचनाओंका संग्रह है। बायेंके दीवार
बनबीबनने वि सं १७ ई. स. सुबो ९ को उत्तरी दिक्की रचनाओंको एक
स्नानपर संकलित कर दिया था। और उस संकलनका नाम रखा था ‘बनारसी
विकास’।^१

बनारसी विकास में बनारसीबासकी ५ रचनाएँ संनृहीत की गयी हैं।
जिनमें ‘कर्मप्रकृतिविधान’ नामकी कविता है, जो काव्य सुबो ७
वि सं १७ को समाप्त हुई थी। सुकत मुक्ताबकी संस्कृतके सिन्धु
प्रकरणका पद्यानुवाह है। इसमें कुछ पद्य बनारसीबासके निज कुम्हारपालके रचे
हुए हैं। ‘बाल-बावनी’ बीद्यम्बर नामके किसी कविकी रचना है। जिनमें
बनारसीबासका सुक-नीर्तन किया गया है। अवशिष्ट रचनाओंमें ‘विनयहसननाम’
सिद्धमन्दिर ‘शिवपत्नीसी’ धर्मसिन्धु शत्रुघ्नी ‘छारवाटक’ ‘नवसुवर्ग’
विधान अष्टप्रकाशेदितपूजा बसबोक अक्षितनामके उन्म’ ‘छान्तिनाम
स्तुति’ छानु बन्धना’ और फुटकर पद्य पंचपरमेष्ठी और बेरिबोकी कविता
सम्बन्धित हैं। ‘भ्याल बलाही’ अष्टातम काव्य ‘अष्टातम पीठ अष्टातम
पद्यपत्र और ‘परमार्थ द्विदोषना’ आस्ता बह्य अथवा सिद्धकी मन्त्रनाम रची
गयी इतिहास है।

अपर्युक्त ५ रचनाओंमें केवल चारके निर्माणका नाम दिया है। ‘बाल-
बावनी वि सं १९८६में ‘विनयहसननाम’ वि सं १९९ में सुकत मुक्ताबकी
वि सं १९९१ में और कर्मप्रकृति विधान’ वि सं १७ में रची गयी थीं।
बकी हुई इतिहासका रचनाका अर्थकपालके विहित हो जाता है।

बनारसी विकास की फुटकर रचनाएँ उत्तम नामकी निरर्धन हैं। जिनमें
कवि और आध्यात्मिकता को है हो माधोप्येय भी कम नहीं है। इसके छान-छान

१ बनारसी विकास अथवा, १ २४२।

२ इनमें ४४ पद्य हैं, जिनमें २१ उक्त दो बनारसीबासका मन्त्र है, और बसके बाद

३ २४ २७ ३०, ३ और २, चार पद्योंमें ‘कीरा’ वा कुम्हारपालका।

अर्थकारिता प्रयोग भी नैसर्गिक रूपसे ही हुआ है। भाव और कला दोनों ही पक्षोंमें शोचनीय है और मर्यादा भी।

एक स्वातंत्र्य कविता प्रकट की है कि न जाने कब इस मनकी दुबिधा जायेगी और यह अपन निरंतरक के स्मरणमें ही लगायेगा। न जाने कब हमारे लक्ष-बातक आरमाकपी बनने टपननेवाकी अमृत-बुद्धिका स्वार सेंगे तथा न जाने कब हम उनकी ममता त्याग कर आरमाका सुभ ध्यान लपार्येगे

‘दुबिधा कब है ही या मन की।

कब जिनमात्र निरंतरक सुमिरी ठमि सदा जन जन की।

कब रवि साँ पार्ये हग बातक, बुँद अत्यय पद बन की।

कब ह्यभ्यास जहाँ समता गहि, कर्क न समता तन की ॥

दुबिधा कब है ही या मन की ॥”^१

सन्त कवियोंकी भाँति बनारसीबासल कहा कि यह जीव मूर्ख है क्योंकि यह उस ईश्वरको ससारम बुँदना फिरता है जो उसके घटमें ही विद्यमान है। उसका यह बुँदना बस्तुही मूलके भ्रमणकी भाँति ही व्यर्थ है

ज्यों धुगनामि सुबास सों हृदय बन शीरे।

त्यों तुझमें तेरा धनी तू लोचन शीरे ॥

करता भरता भोगता घट सा घट भाही।

जात बिना सबगुण बिबा तू समुद्रत भाही ॥

बनारसीबास ईश्वरको देवाना देव मानते हैं। उसके चरणाका स्पर्श करने मानसे ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है। अठारह शोषोष्ठे रहित उस प्रभुकी सेवा करना परम कर्त्तव्य है

“जगत में जो देवता का देव।

आमु चरन परमें ह्प्रान्दिक होत मुकति स्वबसेव ॥ जगत ॥

बहि तनरोग न भ्रम नहि बिबा शोष अमरह मिन।

मिरे सहज जाऊ ता प्रभु की करति बनारसि सेव ॥ जगत ॥”^२

छारदा वैशोकी स्तुतिमें भाव-विभोरता है तो अनुप्रासकी छटा भी। उसमें संकीर्ण-सा मानस्य उपद्रिहित है,

धर्मात्मा अजीवा सदा निर्बिकारा। बिपै वासिका लंछिनी रंग धारा ॥

पुरातन विद्येय कर्तृहरार्थ। जमा देवि बागेदरी शैल बानी ॥

१ अमृतान्तर कविता पद्य १३ बनारसी विद्यालय अमृत, पृ २३१-२३२।

२ पद्य, पद्य १३, पृ २३२।

कद्योका मुद्रेका विभेका विधानी । अगज्जन्तुमिवा विचित्रायसामी ॥
समस्तावकोका निरस्ता विधानी । नमो देवि भागीश्वरी शैवधानी ॥^१

अर्थकथानक

अर्थकथानककी रचना वि. सं. १९९८ में हुई थी।^१ इसमें बनारसीरासके जीवनके ५५ वर्षकी 'आत्म-कथा' है।^२ यह नाम स्वयं बनारसीरासका दिया हुआ है। उन्होंने अपनी १ वर्षकी मासु मातृकर ५५ वर्षोंके माकी भावुमें सामिक किया और इसका नाम 'अर्थकथानक' रखा। किन्तु इस रचनाके दो वर्ष उपरान्त ही उनका स्वयंवास हो गया। अतः 'बनारसी-व्यक्ति' में भाषेना जीवन होया एक अनुमान-मात्र है।

इस कथानकमें ९७५ श्लोके-बीपाइयाँ हैं। उनमें बनारसीरासके जीवनकी धर्मस्वर्गी बटनाओंके साथ साथ उत्कृष्टतम भारतीय सामाजिक व्यवस्थाका भी ब्यार्थ परिचय मिलित है।^३ आमतो १ वर्ष पहलेके साधारण भारतीय जीवनका दृश्य व्योका-रयो उपस्थित किया गया है।^४

यह एक सख्त आत्म-न्या है। इसमें जो कुछ कहा गया है, संक्षेपमें और निष्पक्षताके साथ। बनारसीरास खुदसेकीने लिखा है अपनेको उदयन रखकर अपने उत्कर्मों तथा दुष्कर्मोंपर बुद्धि डालना उनको विवेकनी तराशुर बावन लोके पाव रती ठीकना उद्यम एक महान् कथापूर्व कार्य है।^५ डॉ. मठाप्रसाद पुस्तका कथन है, 'कभी-कभी यह देखा जाता है कि आत्म-कथा लिखनेवाले अपने चरित्रके वाक्यापूर्व बंशोंपर एक मानरन-सा डाल देते हैं—वदि उन्हें सर्वथा बहिष्कृत नहीं करते—किन्तु यह शेष प्रस्तुत कैकधर्मों निकुणु नहीं है।'^६ डॉ. माधुराम प्रेमीने भी लिखा है इसमें कविने अपने बुजुर्गोंके साथ-साथ शोषोका भी उद्घाटन किया है और सर्वत्र ही सजासि काम किया है।

१. आर्याभक्त कथ ७, बनारसी विज्ञान ५ (१९९-१९७)।

२. अर्थकथानक, पृ. १७० ५ ७४।

३. वही, पृ. १११ ५ ७४।

४. अर्थकथा डॉ. मठाप्रसाद पुत्र द्वारा सम्पादित हिन्दी साहित्य परिषद् प्रकाशित विनविचारक, मुम्बई ५४ १५।

५. बनारसीरास चन्द्रशेखरी, 'हिन्दी-का कथन आत्मचरित्र' अनेकाल वर्ष १, किराण १ ५४ ११।

६. वही, ५४ १४।

७. अर्थकथा प्रकाश मुम्बई ५४ १४।

अर्थकथानक, अर्थकथानक मुम्बई ५४ ११।

इसकी भाषाके विषयमें स्वयं बनारसीदासजीने कहा है कि बहु मध्यदेशकी बोलीमें लिखा जायगा।^१ मध्यदेशकी सीमाएँ बरसठो रहो हैं किन्तु प्रत्येक परिवर्तनमें ब्रजभाषा और यही बोलीके प्रदेश घामिल रहै ही है।^२ बनारसी दासजीकी भाषा ब्रज भाषा है किन्तु उसमें पश्चिमिन् यही बोलीका भी सम्मिश्रण है। डॉ. हीरानाथ वर्तन लिखते हैं मध्यप्रान्त में उर्दू-अरबीक शब्द नाड़ी शास्त्रमें आये हैं और अनेक मुहावरें तो आधुनिक यही बोलीके ही रहै जा सकने हैं। इसपर-से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बनारसीदासजीने मर्द्धप्रान्तकी भाषामें ब्रजभाषाकी भूमिका केन्द्र, उसपर मुसलमानोंमें बढ़ते हुए प्रभाववाली यही बोलीकी पुट दी है और इसे ही उन्होंने मध्यदेशकी बोली कहा है।^३

'मर्द्धप्रान्त'के स्पष्ट है कि बनारसीदासके जीवनमें सबसे बड़ी शिरोपता यह थी कि वे अष्टाद्वी और दुर्धरवा विद्वान् बनते हुए अपने जीवनकी अष्टाद्वीकी ओर ही बढ़ते गये। वे किसी एक रीति रिवाज या परम्पराके बंधने न रह सके। एक समय या जब आधिपत्यो ही उन्हींने अपना धर्म समझ रखा था। परिवर्तन हुआ और वे जैन भवन बन गये।

"कहै शाय कोउ न तजै तजै भवतया वाह ।

श्रीमद् बाणक की दसा तरन भए मिति जाह ॥

उरै होत सुम करम के मई असुम की दानि ।

तारै तुरित बनारसी गहा करम को दानि ॥"^४

नित उक्ति प्राप्त जाह जिन मौन । वरसन बिनु न करै इनीन ।

शौर्य नेम बिरति बरषरे । सामायिक पत्रिकीना करै ॥

हरी आदि रातो परवां न । आब जोष बैगन-बनगान ।

पूजा बिधि साथै दिन जाड । वदै बीजाती पर सुग-नाड ॥^५

बनारसीदासजी यह जैन ब्रिज निरव प्रति बढ़ती ही गयी। जब हीराबादने शाह करके लाप हो गी और जायति शाह ही-ध्यावाकी गये। अहिष्कारकी पूजा करनेके उपायसे वे हृदिनापुर पहुँचे वहाँ घान्ति-मुग्ध और अरुनाथकी ब्रिजमें एह ब्रिज बनाया जिनका वे निरव ब्रिज वाड करते थे।^६ उन ब्रिजको देखिए,

१ मध्यदेश की बोली दानि । नरिज वाउ नरी द्विज दानि ॥

२ अष्टाद्वी १४०, १४१ ।

३ अष्टाद्वी १४०, १४१ ।

४ डॉ. हीरानाथ वर्तन 'मध्यप्रान्तकी भाषा' अष्टाद्वी, पृष्ठ १११ ।

५ अष्टाद्वी १४० - १४१ पृष्ठ १११ ।

६ अष्टाद्वी १४०-१४१ पृष्ठ १११ ।

“श्री बिसौन बरस सूर रूप राय सुंदरन ।
 अचिरा सिरिजा देखि कर्हि किम देख प्रससन ॥
 एसु बंदन सारंग छाप बंदाधर कंचन ।
 चाकीस वैलिस तीस चाप कपा कवि कंचन ॥
 सुखरासि बनारसिदास मनि निरखत मय जानई ।
 इमिनापुर राकपुर बापपुर सांत कुंडु घर बंई ।”

मोह विवेक पुत्र

इसमें ११ पद्य हैं। मोह-बीगई छन्दोका प्रयोग किया गया है। इसकी अनेकानेक हस्तलिखित प्रतियाँ शैल-मण्डारोंमें पायी जाती हैं। बीकानेरके अठार नवमीय मण्डारके एक पुत्रकेसे ‘बनारसी विद्यार्थ’के साथ यह भी लिखा हुआ है। इसकी पाँच प्रतियाँ बनपुरके छास्र मण्डारोंमें भी सुरक्षित हैं। बीकानेरवाली प्रतिके मन्दिरे सम्बन्धित हो पद्य इस प्रकार हैं

“श्री शिव भक्ति सुदृढ़ जहाँ सदैव मुनिवर संग ।
 कई श्लोक तहाँ में बही कन्धी सु आवन रंग ॥१८॥
 अविमचरिणी विचम्यति जातम ब्रम सहाय ।
 कई काम पैसी जहाँ, मेरी तहाँ न बसाव ॥३२॥”

शैल बर्म बीतपयी है। रासक बर्ष है मोह। मोहनो बीतयेमें ही बीकानरी चार्पकता है। ज्ञान बही है जो मोहनो बीत के। अत मोह और विवेक यह मुत्र शैल-मण्डारके अगुक्त ही है। बनारसीरासके पूर्व इत विषयपर अनेक कृतियाँ रची गयी थीं। उनमें मद्य पाठ मोहनो ‘मोहपराजय’ बाबिनन्दसुरिक ‘ज्ञानसुषोभय’ हरदेवका ‘मनवपरामय चरित’ बागदेवका ‘मदतपराजयचरित’ और पाहकक ‘मनकपहापठ’ प्रसिद्ध हैं। समीमें मोह और विवेकका पुत्र है। बनारसीरासने अपने पूर्ववर्ती तीन कवियों—अम्क लालरास और बोपाके ‘मोह विवेक-मुत्र’ का लक्ष्य किया है। वे उनसे प्रभावित थे। तीनों हिन्दीमें लिखी गयी थीं। प्रस्तुत कृतिके किम् वे मूलाधार कहीं।

बनारसीरासने ‘मोह-विवेक-मुत्र’ का निर्माण नवरस’ रचनाके बोधोंमें प्रवाहित करनेके अनुराग ही किया हुआ। ‘राम’ की प्रतिक्रियासे यह स्पष्ट ही है।

१ श्री १८२८१ एड १२।

२ बीर बाबी वर्ष ६, अंक १६-१८ में जो अन्तर्गतकी मारदा-रता प्रकाशित हो चुका है। बीर-मुल्ला-अम्क, मन्दिरोला राधा बनपुर से मुल्लाबाद बनने की विवृत मुता है।

हमस सिद्ध है कि यह उनकी प्रारम्भिक कृति है। इन उनकी पौसी बनारसीकी अन्य प्रौढ़ कृतिजैसे नहीं मिलनी। आज द्वितीयक अनेक अज्ञातप्राप्त कवि हैं जिनकी प्रथम रचनाएँ उनकी प्रतीत नहीं होती।

इन कृतिके अन्तर्गत तीन पद्यों बनारसीका नाम भी दिया हुआ है। फिर भी प्रामाणिक निष्कर्षके लिए ठोस विचारकी आवश्यकता है।

माँसा

बह रचना अजपुरके बपीशम्भुकाके मन्दिरके गुटका नं० २७ में लिखी है। इसमें ११ पद्य हैं। इसका छठी पवित्र देगिए,

‘मातृपञ्चम अमाकक हीरा द्वार मंसाकी ममा

मये पद

य मायूरान प्रेमीके द्वारा सम्पादित ‘बनारसी विद्यामणि’ तीन पद्ये पराका संग्रह किया गया था। अब अजपुरके प्रकाशित बनारसी-विद्यामणि में ही और नये पराका प्रकाशन हुआ है। पाठ्यो मन्दिर अजपुरके गुटका नं० २२ पृ० ११६ पर मैंने बनारसीराजका एक नया पद देखा है - नू बहू मूको नू बहू मूको अज्ञानी है प्राणी !

५४ मनराम (१०वीं शती रिक्त्य उपास्य)

उनकी रचनाओंमें यह सिद्ध है कि मनराम कन्नड़ी उपासकी कवि थे। वे बनारसीराजकी समयमान्य थे। उन्होंने अपने मनराम-विद्यामणि में बनारसी रामजीका शहर स्मरण किया है। उनकी रचनाएँ भी बनारसीराजकी मणि ही आध्यात्मिक-रसके भोगयोग हैं। उन्होंने नहीं सोचीका प्रयोग किया है। जो महत्ता है कि वे केरलक आठ-नाम विनी प्रदेशके रहनेवाले हों। जैसे उनकी कृतिजैसे यह विदित नहीं होता कि वे कहांके निवासी थे और उनके माता-पिता का क्या नाम था ? जो कन्नूरके रामजी रामजीका नाम उन्हें संस्कृतका प्रौढ़ विद्यान् बना है क्योंकि उनकी रचनाओंमें संस्कृत शब्दोंका प्रयोग किया गया है। किन्तु यह आधार बहुत निर्बल है। केवल संस्कृतके उपासका प्रयोग करने-मानके कोई संस्कृतका उपासक विद्यान् नहीं बना या सकता। उसी रचनाम का संश्लेष कविय विमल प्रसारके है

१. श्री रामजीका नाम 'राम' है जो नये कवियके नाम केनेका वर्ष १४ दिनांक १० दिसंबर १९११।

मनराम-बिछास

इसकी प्रति बयपुरके छेकियाके दियम्बर जैन मन्दिरके बेहान नं ३९५ में निबद्ध है। इसमें कुल १ पृष्ठ और १९ पद्य हैं। इनका संग्रह किन्हीं किष्किरी-बास नामके स्वकितने किया था। उसने लिखा है "मेरे बित्तमें ऊपरी मुनमनराम प्रकाश। सोचि कीनए एठे जिये बिहारीराम ॥ अर्थात् बिहारीरामने देवक संग्रह ही नहीं किन्तु सम्पारण भी किया था तभी तो वह मुक पद्योको मुद्रा कर सके। यह काव्य सुभाषितोति सम्बन्धित है। इसमें दोहा सबैबा और कवित्त आदि विविध छन्दोका प्रयोग किया गया है। प्रारम्भमें ही दंब-परमेष्ठीकी वन्दना-में मन्त्रि है, और सरलता भी

'करमादिक अरिज की हरे अरदंत नाम सिद्ध की काज सब सिद्ध को मजब है।
 कसम सुगुण गुन आचरत आकी संग आचारज मणति बसत आके मज है ॥
 कपाण्वाच प्वाच तै अपाचि सम हाव साव परि पूरज को सुमिरण है।
 दंब परमेष्ठी की नमस्कार संभराज चाबै मनराम जोई पावै निज जन है ॥

मनरामके स्वकारका विशेषण करते हुए मनरामने लिखा है कि - वह सब काम निर्विकार, निरवल निरुक्त निर्मल क्योति प्यानगम्य और शान्त है, बतला वर्जन कर्हातक किया जाये। जिस किमीने मनरामके इत करनी जान किया है, छिदर कपे बिरवमें कुछ और करनेकी नहीं रह जाता

"निर्विकार निरुक्त निरुक्त निर्मल क्योति--
 प्यानगम्य प्वाचक करी को तादि बरनी।
 निहचै सकय मनराम जिन जायी ऐसी
 तकी और करिज रहवी न कसू करवी ॥१५४॥"

मोहकर्मकी सामर्थ्य तभीको विवित है। उसने सबके तभी प्राथिवीको प्रमये जान रखा है। प्रभवयात् ही वह जीव अदेवोको देव मानकर अपनी सेवा करता है। लक्ष्मी देव तो उद्यनी देखने भोतर ही रहता है, किसे मुकपर वह इधर-उधर भटकता फिरता है

"देवो अनुराई मोह करम की जग तें
 प्राची सब रावै जन साणि कै।
 देवनि की देव सी सी बसै निज देह अज
 ताची मूक सबत अदेव देव माणि कै ॥१५४॥

मनरामने अंभानी लार्जता इसीमें मानी है कि वे आठम्यकी ओर बने रहें,

और उनके बनाये मागपर बकतेमें ही अपनेको कूटकृत्य मानें। यह पद्य इस प्रकार है

शैल सफ़ल निरपे नु निरंजय
 सोल सफ़ल बलि ईसर झाबहि ।
 यवन सफ़ल त्रिहि सुवत सिद्धांतहि
 सुपन्न सफ़ल अपिए दिन बाबहि ।
 दिशों सफ़ल त्रिहि धर्म वसै भुव,
 करन सुफ़ल पुम्बहि प्रसु पाबहि ।
 बाल सफ़ल मगराम बहै गनि
 अ परमारथ के पय बाबहि ॥१०॥

मगधान्के नामकी महिमाका उल्लेख करते हुए कवि मनरामने लिखा है कि यदि कुछ मनसे चौबीस त्रिनेत्रके नाममात्रका उच्चारण किया जाय तो बचकपी सय बीसे ठहर सकता है

‘मय छुड़ मनराम चौबीसी त्रिनेत्र नाम—
 मन्त्र करे मय म्याक कैने छर्राति है ॥१॥

यह संसार बहुत ही विचित्र है। इसमें अनिच्छित मूर्ख रहते हैं। वे चलका घोड़ी कहते हैं जिसको बैरव बैय-भूया घोड़की है किन्तु उसके मनको नहीं देखते जो घोड़ीसे मरा है। जो मनको बेचकर चौबीसी नरक करते हैं वे ही जानी हैं। ऐसे व्यक्ति सम्पत्तिसे भी अधिक चौबीसी सम्मान करते हैं,

‘मन भोगी तन भोग कलि भोगी कहत मिहान ।
 मय भोगी तन भोग तनु भोगो जानत जान ॥१॥
 ससै अरथ छुत बाह पर पुख्य भोग सनमाय ।
 ए समसै मनराम जो थोकत सी जग जान ॥२॥

रोगापहार-स्तोत्र

इसकी प्रति जयपुरके बबीबन्दजीके दिगम्बर शैल मन्दिरमें विराजमान मुद्रका नं १७ में लिखत है। इसमें रोगोंको दूर करनेके लिए मगधान् त्रिनेत्रके प्राथमा की गयी है। मरु-कविकी विश्वास है कि मगधान् त्रिनेत्रकी उपासनासे आत्मानमें ऐसे विधुष्ट भावोंका संचार होगा जिससे धार्मिक और मानसिक सभी रोग स्वतः विभोग हो जायेंगे।

बत्तीसी

इसकी प्रति जयपुरके छोटिसोके दिगम्बर शैल मन्दिरमें मुद्रका नं ११ में

निबद्ध है। इसमें १४ पद्य हैं और सभी मयवान् विनेन्द्रकी चकितले सम्बन्धित हैं।

बङ्गाणकका

इसकी एक प्रति जयपुरके बबीचन्द्रजीके दिगम्बर जीवन मन्दिरमें विराजमान गुटका नं० १२६ में मौजूद है। गुटकेका केवलनाम सं १७ ४ आवाज सुरी ५ दिया हुआ है।

अक्षरमाळा

इसकी प्रति जयपुरके बबीचन्द्रजीके दिगम्बर जीवन मन्दिरमें गुटका नं ४२ में संकलित है। ५२ अक्षरामें-ले प्रत्येकपर एक-एक पद्यका निर्माण किया गया है।

धर्मसङ्केतो

इसकी भी प्रति उपर्युक्त मन्दिरके ही गुटका नं १६२में निबद्ध है। यह गुटकेके पृष्ठ १६३पर लिखा हुआ है। इसमें कुल २ पद्य हैं। इसमें जीवन धर्मकी महिमाका बख्शेय है।

पद्

इसके अनेक पद्य प्राप्त हैं जिनमें मयवान् विनेन्द्रके मन्दिन रचना ही आधिपत्य है। इनके ही पद्य जयपुरके बबीचन्द्रजीके मन्दिरमें विराजमान गुटका नं १७ में संकलित हैं। उनके धीर्यक अमघ- भेदन यो पर गाही तैरो और 'बिन तै नरमवि यो ही ओयो' है। इनका तीसरा पद्य इसी मन्दिरके गुटकानं २९ चौका पर इसी मन्दिरके गुटका नं ९९में निबद्ध है। चौथेका धीर्यक बहिरा जाय पवित्र नई नेरु से प्रारम्भ हुआ है। यह पद्य टोकियाक जीवन मन्दिरके गुटका नं १११में भी लिखा हुआ है। मत्तणके अनेक छंद पद्य हैं जिनमें जीवन मन्दिर बबीचके 'पवनसङ्घ' की एक हस्तलिखित प्रतिमें संकलित है। अतिथय क्षेत्र महावीरकी के शासनमण्डारकी एक बहवकी हस्तलिखित 'पानसङ्घ' की प्रतिमें भी मैने मत्तणके कठिपय पद्य देखे हैं।

गुणाक्षरमाळा

इसकी एक हस्तलिखित प्रति जयपुरके ठोकियोके वि जीवन मन्दिरमें गुटका नं १३१में संकलित है। यह गुटका वि सं १७७९ मन्दिर बबी ३का लिखा हुआ है। इस नाममें ४ पद्य हैं। सभीमें मयवान् विनेन्द्रके मुर्छाका वर्णन है। 'हे मारि तुने नरमय प्राप्त किया है, हमकिए मयवान् विनेन्द्रकी मन्दिन नर ऐत जायते मुक्त पद्य केविए,

“मन बच नर वा ओहि कैरे बंद सारह जाचरे।

गुण अक्षरमाळा क्युं गुणा कटर मुक्त पाई रे।

परम पुरष प्रणमो प्रथम र श्री गुरु गुन धाराधारी रे ।

स्वात स्वात सातिनि कई होई सिधि सब साधा रे ।

भाई नर भव पायो मितल को ॥”

इत जीवन हीरा-लसे बग्नको यों ही मैवा बिया भगवान्का मजन नहीं
रिया

हा हा हायो जिन कीर करि करि हासी धार्मी र ।

हारा जनम निवारिया बिना मजन भगवानो रे ॥

पढ़ै गुन भर सरह रे मन बच काय आ पाहारे ।

भीति गई भति सुन कहै, पुन न स्थापै ताही र ॥

भाई नर भव पायो मितल हा ॥

५५ कुँअरपाल (वि सं १९८४)

कुँअरपाल कवि बनारसीछात्रके जनम्य मित्र थे । जिन वीच साहित्यमें बैठ-
कर बनारसीछात्र परस्पर-बर्षा बिया करते थे उनमें कुँअरपालका भी नाम है ।
बनारसीछात्रके उपरान्त कुँअरपाल सचमात्र्य हो गए थे । पाण्डे इतराजने उन्हें
कौरपाल ग्याता-अधिकारी कहा है ।^१ महोशाम्याय मेधविजयने 'पुक्ति प्रबोध' में
इतनी सर्वप्रामग्या स्वीकार की है ।^२ कविने स्वयं समर्पित बलीसी म पुरि पुरि
कुँअरपाल जस प्रगटपी लिखा है ।^३

१ अथर्वव प इन प्रथम कविय अणुमुत्र नाम ।

कविय प्रमोनाशम नर कौरपाल पुनबाब ॥

पमदान से वच जल मिनि बैठे इक छोर ।

बरमारण करवा करे इनके कथा न और ॥

नाटकमन्त्रमाट, प्रकल्पित पद्य २१, २३ र २३७ ।

२ काक बोध यह बीनी बिये मो गुम मुगहु कहुँ मैं लीने ।

नगर आगरे से हिनकारी कौरपाल ग्याता अधिकारी ॥

बाबड देमगाज प्रथमबनारसी बालक टोछा पच बीना ।

३ बाल्यभ्याय मेधविजय, कुशियजय अथर्वदेव-के-अजीवन रोनाम्बर लम्बा लम्बाम
पद्य २-४ के बीचकी टोछा ।

४ पुरि वु कअरपाल जस प्रगटपी बहु बिय ताप बन अर्पितरह ॥

परमदान जस बहर मग पति बडनाला बिननर जिन बीरह ॥

मुन्नापल मर्दकन बर्षकी अथर्वदेवे कुँअरपालके शि-निघ्न कथा प्रकथा
११वीं पद्य ।

कुंजरपाकका नाम जोसवाल अर्थात् चौरडिया चौरमें हुआ था। गौरी दासके दो पुत्र थे - अमरसिंह और जमु। कुंजरपाक अमरसिंहके पुत्र थे।^१ जमुके पुत्रका नाम बरमदास या बरमसी था जिसके सख्खेय बनारसीदासने अबाह्यताका व्यापार किया था।^२ वं नाबुरामजी प्रेमीने उनका अग्रसत्यान अंतकमेर माना है। वि सं १७ ४में गजकुसुममण्डित उनके पदमेके किये संवहृषी मूत्र अंतक-मेरमें ही लिखा था।^३

एक गुटका वि सं १९०४ १९०५ में स्वयं कुंजरपाकक हाथका लिखा हुआ उपलब्ध है।^४ इसमें आनन्दपलके पद 'इत्यासंइह माया टीका' 'फुटकर लक्ष्या' और बहुविधति स्वभावि रचवाएँ संवर्णित है। इसमें कविकी स्वयंकी कृतियाँ भी हैं। इनके अन्तमें 'चेतन कंवर' उपनाम दिया गया है। एक पदमें कविने लिखा है कि जिन प्रतिमा' ममबान् जिनै-इके समान ही होती है। उनके निमित्तको पाकर हृदयमें राम द्वेष नहीं रहता। जिन-प्रतिमाका रचन जिसको मन्था नहीं कबता वह निष्प्राबुष्टि है। अनिमेष नजोसे जिन-प्रतिमाको देखनेसे सब कर्म नष्ट पाते हैं।

जिन प्रतिमा जिन सम छेलीबह,
तन्को निमित्त पाप हर अंतर राम होय वहि देखीबह ॥
सम्बन्धिप्यी होइ बीब जे जिन मन ए मति देखीबह ।
बहु बरसन जाई न सुहाबह, मिन्बामत मेरीबह ॥
बिचबत जिन चेतना अनुर नर नयन मंच अ मेलीबह ।
अबसम कृपा करवी अनुपम कम करह जे सेलीबह ॥
बीतराग कारण जिन भावन इवन्ध ठिय ही देखीबह ।
चेतन कंवर जये जिन बरिष्पति पाप पुत्र हुइ छेलीबह ॥”^५

१ चित्तमणि जोसवाल अर्थात् चतुस चौरडिया बिरह बहु हीत्रह ।
गौरीबाम अंत परवत्तन अमरसीह तनु नर नहीत्रह ॥
नही, ३३में बन्धी प्रथम दो कविकाँ ।

२ अग्रसत्यान पद ३८९ ३८४ इ ३८४ ।

३ नही परिशिष्ट, इ १ २ ।

४ इ ग्रन्थ की अन्तकमेरवी कहरवने व नाबुरामजी प्रेमीके नाम जैना था और अन्तकमेर नाम था ।

५ अग्रसत्यान परिशिष्ट इ १ २ ।

एक दूसरा गुटका और है जो कुँवरपाकक पढ़नेके लिए जग्य किसी केसाकने सिखा था। इसमें कुँवरपाककी लिखी हुई 'समकृष्ट बत्तीसी नामकी रचना भी संकलित है।' इसमें ३३ पद्य हैं। ३१ ३३ तकके पद्योंमें कविका अपना परिचय है। अवशिष्ट पद्य 'क' से 'ह' तकके अक्षरोंसे आरम्भ हुए हैं। इसका विषय 'भागम-रघु' से सम्बन्धित है। इसका अन्तिम पद्य है—

'बुधा उच्छाह सुजस घातम सुनि उत्तम त्रिके परम रस निम्ने ।
 क्वचं सुरही निज बरहि बृष बृह, गपाता तेरह प्रम गुन गिम्ने ॥
 निजबुधि सार विचारि अष्वात्म कथित कपीस मेट कवि किम्ने ।
 कँवरपाल अमरेस तन्मूख अविहित चित आदर कर किम्ने ॥

५६ यशोविजयजी उपाध्याय (वि सं १९८ १७४३)

'सुजसवेलीभास' के आचारपर यशोविजयजीका जीवन-परिचय बड़ा बहुत प्राप्त होता है। यदि यह कृति न होती तो हम उनके विषयमें भी सिवा अनुमान रचनेके और कुछ न कर पाते। सङ्गोने स्वयं अपने विपुल साहित्यमें यहीपर अपने विषयमें एक अध्य भी नहीं लिखा। यह भारतीय परम्पराके अनुरूप ही था। 'सुजसवेलीभास' के रचयिता मुनिवर काशिविजयजी उनके समकालीन थे। अतः कृतिकी प्रामाणिकता अक्षमिद्वय ही मानी जानी चाहिए।

अपवृत्त रचनाने यशोविजयजीके नाम-रचयिताके विषयमें कुछ नहीं लिखा है। अभीतक इस विषयपर मतभेद वा विभु अथ महाराजा वर्ध ईशके वि सं १९४ के तात्पर्यसे सिद्ध हो गया है कि उनका जन्म मुजरातके कनोडा^१ बरौमें हुआ था। यह तत्कालीन पम्भूनाक्षेत्रमें शामिल था। आज भी यह गाँव 'कपेजगरी' के विनारे बना है। उतमें कनीडिया ब्राह्मण और पटेलोंकी आबादी है। किसी समय वहाँ बहिष् भी अच्छी संख्यामें रहते थे। मध्यकालमें यह गाँव 'काचोरा' के नामसे प्रसिद्ध था।

यशोविजयजीके पिताका नाम नाटयज और माताका सीताम्बदेवी था। दोनों वर्धनरामज शरणीक और धरार कृतिके प्यलित थे। उनका प्रयाज

१ यह गुटका भी श्री कलकलजी आर्यने ५ नाटयज प्रेरीके पास मेजा वा कनीडियात है।

२ अक्षरान्तक, १ १ १।

३ वर्धनराम राज्य कानेवाली रेलवे स्टेशनपर इसका स्टेशन बीपीव है समने वार तीन परिवर्तने कनोडा गई है।

यद्यत्पर भी पदा । यत्र बघोविजयने बचपनवा नाम वा । तत्रा एक छोटा भाई और वा मित्रवा नाम वर्णित्वा वा । बीजली राम भद्रमग-सी जोड़ी थी । एक बार वे माँके साथ बघाभय गये वही गुरुवरण मूर्द्धे भक्त्यामर मुना । यद्यत्परको उठी क्षण मात्र हो गया । यद्यत्पर संतुष्ट ही दूर उन्हेंने मुन्यपत्नी भी पढ़ना मुक्त नहीं थी थी । बाळपत्नी इस अद्भुत स्मरण-शक्तिवा परिचय सबसे पहले माँको प्राप्त हुआ । उन्होंने तीन दिनसे यद्यत्पर इत्यत्र नहीं बिना वा । तीव्र बर्षाके कारण वे भक्त्यामर नहीं मुन्य नहीं थी अत्र भोजन करने करती । बाळक बचपनको अब यह विरिण हुआ ही उसने गुरुत्त ही माँका भक्त्यामर मुना दिया । उन्कारण मुन्य वा । माँ उक्त बाळकमें बर्षाके म्यक्तिगतका आशय वा सही । बर्षाके कालपर उन्होंने वह सब गुरुवरणो मुनाया और बात हवाकी तरह बहते-बहते अद्भुतवाचक पहुँची । वही प्रसिद्ध हीरारवरीके चतुर्थ पट्टपर पं गयविजयत्रीने मुनी । उन्होंने प्रयास किया । सफल हुए । परिणामस्वरूप वे पि सं १६८८ में बाळक यद्यत्परको उसके माँ-बापकी स्वीकृतिके साथ बीजा दे सके । अब वे बघोविजय हो पये ।

पं गयविजयत्री प्राकृत संतुष्ट मुन्यपत्नी म्यावरण कोय म्योतिष्ठ कवि विद्याभोग्य पररण वे । उनके साक्षिण्यमें बघोविजयवा विद्याभयन प्रारम्भ हुआ । वे प्रतिभाशाली तो वे ही थीम ही म्युत्तरण हीन कये । एक बार बहमराष्टरमें उन्होंने बहाववाचन किये । तनकी अद्भुत स्मरण शक्ति और प्रखर बुद्धि प्रभा मिठ होकर सेठ बनजी मुराने से तद्वत्त चाँदीकी हीनार उनके कल्प अध्वनके लिए प्रदान की । वे बाराहसी पने और बर्षाके सर्वोत्कृष्ट विद्वान् धर्मचार्यत्रीने पद्वर्धनका बाराहसी किये । तीन वर्ष उपरान्त बर्षाके चके जाये । फिर पि सं १७ १ १७ ७ तक चार वर्ष आचर्यमें किनी म्यामाचार्यके पात्र वर्धन तर्क ज्ञान पये ।

यह समयमें मूर्द्धे वा पाता कि उन्होंने तीन वर्ष उपरान्त ही बाराहसी मर्षो छोड़ दिया और आचर्यमें वह श्रीम-वा म्यामाचार्य वा मित्रसे उन्होंने तर्क-ज्ञान पये । क्या वह विद्वान् बाराहसी विद्याभोग्ये बर्षिक ज्ञानी वा ? बचप्य ही बघो-विजय-त्रीसे प्रतिभाशाली बनने तीन वर्षमें 'पद्वर्धन' का मुक्त अध्वन कर किया हीया । किन्तु तीन म्यावके तर्क-सार्थी विवेचनकी श्रुता उन्हें आपरा के भावी हीवी । तन समय बर्षा विद्वान् तन्प्रचारके अनेक परिणत रहते थे । तीन म्यावके क्षेत्रमें उनकी विद्वता अत्यन्त थी । उनसे प्रयासि होकर ही पं बाराहसीवाच विद्वान्

हन मकं ये । पाण्डु क्यचत्पद्मी तिष्ठता साङ्गके मन्दिरे ठडरे ही रहत थ । अष्ट सहस्री शैल विगम्बर न्यायका कुण्ड प्रन्थ है । यद्योत्रियत्री उमपर एक उत्तम टीका सिद्धान्त समर्थ हो सके । हो सञ्जा है कि उन्हाने इमरा अभ्यवन मानरेमें किया हो । अगाध विद्वत्ताक साध कौने यद्योत्रियत्री । पुत्रराज तो इसी प्रतीया में था । अहमशाबादके सुदेवार म्हाकतज्ञानि अपने दरबारमें उनका ध्यानदार सम्मान किया । बड़ी उन्हाण अपनी विद्वत्ता और स्वरत्नसन्तिके परिपायक अउरत अचधान प्रस्तुत किये । सब प्रभावित हुए और युवासाधुके पौन नामे जान लगे । अहमशाबादमें ही वि स १७१८ में उन्हे उपाध्याय पदमे विभूषित किया गया ।

वि सं १७१९ से १७४१ तकका समय उनके साहित्य-सृजनका काल था । उन्हाण तीन सौ प्रबोका निर्मात्र किया । संस्कृत प्राहण पुत्रराती और द्वितीयपर उनका समानाधिकार था । उन्हाने इन्ही चार भाषामोंमें लिखा अमकर लिखा । इससे भारतीय ब्रह्मण और साहित्यके विद्यार्थी सबैव अनुप्राणित रह्ये ।

यद्योत्रियत्रीका स्वर्गवास वि सं १७४१में 'डमोई नामके नगरमें हुआ । आज भी वहाँ छह शैल मन्दिर और दो पाठशाळाएँ हैं । उस सम्म इसका नाम बर्मावती था । यह छाट देवकी प्रमुख नगरियामें गिनी जाती थी । प्रसिद्ध न्यायवेत्ता श्री देवसूरिजी और श्री मुनिचन्द्र सूरेश्वरजीका जन्म इसी नगरेमें हुआ था । प्रसिद्ध मन्त्री बस्तुपाहने यहाँ एक सीमाधुर्य भी बनवाया था । पं नाचूरामजी प्रेमो डमोईको यद्योत्रियत्रीका जन्म-स्थल मानते रह्ये । अब यह मायना अण्डित हो चुकी है । यद्योत्रियत्री पून इहाचर्म सञ्जी मामुना अनाथ पाण्डित्य और नीरवठे साध लयमय १५ वय जोवित रह्ये । श्रीमद् देवचन्द्राचार्यके उपगाल्त भारतीय बरा एक बार फिर प्रकाण्ड विद्वत्ताके नैजसे नीरवान्निग हा उठी थी ।

साहित्य सृजन

उनके द्वारा रचित तीन सौ प्रबोका परिचय बना न तो सम्भव है और न प्रसंगानुमोदित । उन्हाने मुटन क्यसे तक और जायमपर लिखा । वि-नु न्यायरत्न छत्र अलङ्कार और वाक्यके क्षेत्रमें भी उनकी गति अप्रतिहत थी । उन्होने टीकाएँ और भाष्य लिखे । अनेक मोक्षिक हृदिभोका भी निर्मात्र किया । उनमें 'गण्डमन खण्डभाष्य -'में उन्की वैनी विद्वत्ताक मानस्तम्भ है ।

१ आज भी यह दक्षिण-पूर्व रह्ये सारनर, वहीदामे ११ मील दूर स्थित एक शेरम है । इसकी भाषादा तास इबार है ।

२ पं नाचूराम प्रेमो दिल्ली के साहित्यका इतिहास बन्दे लग् १९१७ ई १ १२ ।

केन मन्त्रि-काव्यकी पृष्ठभूमि की भूमिका में लिखा जा चुका है कि केन काव्यमै केवल साहित्यिक ही नहीं होते थे वे केवल-त-केवल मन्त्रिसम्बन्धी साहित्य भी रचने अवश्य थे। की पद्योपनिषद्की मुद्रणालयमें बनेक स्तम्भ सन्तान पीठ और बालनाकाका निर्माण किया है। बतारस और जातरमें रहनेके कारण हिन्दी पर भी उनका अच्छा अधिकार था। उनका बसविकास हिन्दीका प्रसिद्ध काव्य है। इसके अतिरिक्त 'आनन्दचन अष्टपदी' विगण्ड ८४ कोश' और 'साम्ब अटक नी उनकी हिन्दीकी ही कृतियाँ हैं।

असबिळास

बहु काव्य सन्तान पर बने स्तम्भ संप्रह नामके मुद्रित संकलने बना है। इसमें ७५ मुक्तक पर हैं। सभी जिलेन्द्रकी मन्त्रिसे सम्बन्धित हैं। एवमें लिखा है कि मन्त्रि व्योही प्रमुके ध्यानमें मग्न हुआ कि उसकी समूची बुद्धिवा पक्ष-भाजन गष्ट हो गयी। मन्त्रको जातरकाव्यकी विष्णुम हुरि-हुर और ब्रह्माकी निबिर्षा भी तुम्हें बिछाई देती है। मन्त्र तो अब अपने प्रमुकी ब्रह्म निबिर्षा स्वामी है। उसके रखे जाने उठे और कोई रस मग्न ही नहीं

'इम मग्न पने प्रमु ध्यान में।

बिसर गई बुद्धिवा तब-मग्न की अचिरा सुत गुन गान में ॥

हरि-हर-मन्त्र-पुरन्दर की रिधि आचरत वहि कोड भाव में।

बिबालम्ब की मीन मन्त्री है समाया रस के पान में ॥

इतथ मिन तुं बहि विछारम्बा जन्म गंधाचो अज्ञान में।

अब तो अविधारी है कैरे, प्रमु गुन अरतथ लज्जान में ॥

गई बीनवा समी हमारी प्रमु तुम्हें समन्वित दाव में।

प्रमु गुन प्रमुभव के रस जाते आचरत नहिं श्लेड ध्यान में ॥

आनन्दचन अष्टपदी

इसमें हिन्दीके केन सन्त आनन्दचनकी स्तुति की गयी है। कहा जाता है कि जपाध्याय पद्योपनिषद् और आनन्दचनकीकी भेंट हुई थी। आनन्दचन तबसे अन्धकाररसमें मग्न रहते थे। वे कभी अमकोमें नुमते और कभी मुन्नाबोम बोध साधना करते। मन सम्पर्कमें घायल ही कभी जाते। अब जाते तो तुम्हें और मुन्नाबोम पीठकीमें अवरोध देते। अबबूत-से इस साधुकी बात धीमद् पद्योपनिषद्कीमें भी सुनी थी। वे इनमें मिलना चाहते थे। एक बार अर्जुन श्लोकके तमीपस्य वाचमें

१ आनन्दचन परसंभवमें १ १९४ पर कर चुकी है। वह समय अन्धकाररस-मत्सरक मन्त्रक बन्देते थे ५ १९४६ में प्रकाशित हुआ था।

यशोविजयजी व्याख्यात कर रहे थे। उस सभाम एक बार उदासीन-सा बड़ साधु बैठा था। वे जानम्बपन थे। उनके घोंट हुई। यशोविजयजी इस घांति प्रभावित हुए कि अपनेको रोक न सके। अष्टपत्री उनके भावोद्धारोंका सही प्रतीक है। यशोविजय तिस व्याख्यानरसके पण्डित थे बड़ ही जानम्बपनका अनुभूतिमोम महाराज उनका था। जानम्बपन व्याख्यान ही थे। यह ही तो कारण था कि यशोविजय-जैसा विद्वान् इन्हें देख भाव-विमुक्त हो उठ्य। उनकी संपत्तिस यशो विजयम भी व्याख्यानरसकी महूरें उठने लगी थी। इसीको उन्होंने लिखा है कि 'पारस की संपत्तिस लोहा भा स्वर्ण' हो जाता है

'जानम्बपन क संग सुखम हां मिठे जब तक जानम्बसम भया सुखम ।

पारस मग कोहा जा करसत कचन हात हा ठाक कस ॥

तीर बार जां मिठ रहे जानम्ब जम सुमति सलीके मग यथा ह एक रस ।

मय लपाह, सुखस बिकास मय सिद्धरसक्य साथ धममम ॥

जानम्बपन मार्गमें चलते-चलते जा उठने थे। उनके मुनपर आंफसे म्यारा रूप सर्वत्र बरमदा उठता था। वे कभी मुपति सर्वास बुर नहीं होत। उनके मित्त-कर यशोविजयकी गौरवका अनुभव हुआ

'मारा जन्त-जपत गात जानम्बपन प्यार रहत जानम्ब मरपुर ॥

ठाक्रे सक्य म्य त्रिहुं कोक भे म्यारा बरगत सुय पर बुर ॥

सुमति सली के संग निधमित्त पारत कचहुं न होत ही बुर ॥

जशोविजय कय मुता जानम्बपन हम तुम मिठे बुर ॥

जानम्बपनको पहचानन छिए अपने बिलब धीतर भी जसी जानम्बकी अनुभूति होनी चाहिए। जानम्बपन जानम्बके ही बन है। न जानम्बके अराम उजाग है। उन्होंने 'सुख अलखरब' के मुनका अनुभव किया है। जानम्बपनके सही दर्शनके छिए इसी भावभूमि तक उठना हीना

"जानम्ब की गग जानम्बपन जाये ॥

बाह सुय सहज जचन अकल पद था सुय सुखस बग्याम ॥

सुखम बिलाम जब प्रगटे जानम्बरम जानम्ब अगव लजाव ।

जिमी रसा जब प्रगटे जित धंनर मोहि जानम्बपम विद्याम ॥"

द्विपट 'बीगसा बास'

यह रचना न हेमराजकाके विद्वान्त बीरामी बाब का अष्टम करलके

१ राजभाषामे लिखाके इस्तिलाजि मन्दीही राज भाग ४, अरबपुर सन् १९४४
५ ११६।

वा संघोंके बीचम व्यवस्था ही मौजूद रहे हुये। आचार्य चिन्मोहन ऐनने श्री मधोबिहारीके आचार मानकर ही लिखा है, 'मेरठा नवरत्न आनन्दचनके साथ मधोबिहारीके कुछ समय बिगाया वा इसलिए य बीना ही समसामयिक थे। आनन्दचन कुछ समयमें बड़ हो सफल है। अतएव सम्भव है कि १९१५ ई. सं १९७२ के आस-पास उनका नाम और १९७५ ई. सं १७१२ के समयमें देखासनाम हुआ हो।' बतारस विश्व विद्यालयके पण्डित विश्वनाथप्रसाद मिश्र भी इसी आचारपर उनकी १७ वि. सं के आस-पासका माना है।^१ यह सच है कि उनके विषयमें कोई निश्चित विधि ता नहीं थी वा अकनी किन्तु वे सतरहवीं शताब्दीके अन्तिम और अठारहवींके प्रथम पारम व्यवस्था मौजूद थे यह निश्चित है।

आनन्दचन एक उदार हृदयके व्यक्ति थे। यद्यपि उनकी शिक्षा-बीजा बीन समयमें हुई थी और बीनत्वक प्रति उनकी प्रगाढ़ प्रथा भी थी किन्तु उन्होंने बीनधर्मके उच्च धर्म और पाठशालाके पहुँचनेकी भी स्वीकार नहीं किया जो अन्तिम धुतकालके उपरान्त धर्म-संगे कुछ होता ही था वा रता वा। जिन संकुचित सीमाओंकी ओरनेक किए एक बार बीनधर्मके ज्ञानि की थी उन्होंने यह स्वयं आचर्य ही पया वा। आनन्दचन उनके निकटकर बाहर जा लगे हुए। आचार्य चिन्मोहन ऐनने नबनानुसार उनपर मध्य युगके 'मर्यादा सहजवादी'का विशेष प्रभाव पडा। यह सच है कि उनके माघ नबीर, बाहु और रज्जव आदिसे मिलते हैं, किन्तु यह भी सच है कि वे बनारसीके सम्प्रदायवादीसे अत्यधिक प्रभावित थे। 'आनन्दचन बहुरंगी' उन्ही आध्यात्मिक धारासे प्रभावित हैं, जो बनारसीवासीके हैं वा। हममें कोई प्रभाव नहीं है कि वे "साधु वेद्य स्वाय करके मरमी नदोंके समान बीच अवाचर्य पढ़ना करते और शिक्षा, शिक्षका प्रभृति मती-अन्यत्र विद्य बाध-यत्न केकर नुमा करते थे।^२ यद्यपि उनके विचार वेद्य-भूषाके समकाल नहीं थे किन्तु इससे यह प्रभावित नहीं होता कि वे बीन साधुकी वेद्य-भूषा स्वाय

१ आचार्य चिन्मोहन ऐन, बीन-धर्मकी आनन्दचनका नाम, बीना मद्र १ जनवर १९१५ पृ. १।

२ विश्वनाथप्रसाद मिश्र बनारस कविता, मुम्बई पृ. १२।

३ श्री लालूराम धर्माल कुँवरवाल-बीरविवाके वि. सं १९८४-१९८२ के किताब हुए एक पुस्तकके आचारके आनन्दचनके नाम १७वीं शताब्दीका मध्य भाग मान्य है। उन्होंने कौनसे उन्ही के आचारके अन्तिम और आनन्दचनकी संस्था भी लिखा शिक्षा किया है। अन्तिमपालक, मद्र १ ११९ ११७।

४ आचार्य चिन्मोहन ऐनके अनुसार वेद्य, वाता जनवर १९१५ पृ. १।

कर मरमी-मनतकी चारण करते थे। बेध-भूया शोभी ही है और मेरी बुद्धिमें उम्हाने बागो की ही सिद्धाफल की। एक यणी ज्ञानमागर हुए हैं त्रिनकी टोनासे यह स्पष्ट है कि वे शैल साधुके बसमें ही रहते थे।

उत्तरमध्यकालमें आनन्दचन घनानन्द और आनन्द मामके कई कवि हुए हैं। उनमेंसे मुजानवाले घनानन्द और शैल आनन्दचनको आचार्य विनिमोहन सेनने 'शैल मर्मी आनन्दचन वाले सेनमें एक हो प्रमाणित किया है। सायब आचार्यजी का यह अनुमान विश्वसिद्ध सेंसरके 'सरोज' में घनानन्दके लिए निर्धारित सँ १७१५ पर आधारित है जो अब नष्ट प्रमाणित हो चुका है। आचार्य प विश्वनाथप्रसाद मिश्रन उनका समय अठारहवीं सताब्दीका अंतिम पाद अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध किया है।^१ यद्यपि दोनोंके विचारोंमें बड़ी-बड़ी बृहत् साम्य है किन्तु फिर भी घनानन्दने मुजान को कभी नहीं छोड़ा जब कि आनन्दचन इस अष्ट अक्षर प्रयोग सायब ही नहीं किया हो। एक तीसरे आनन्दचन मन्त्रवाक्यके वे जिनका सम्पादक भी 'शैलमन्त्रवाक्य'से हुआ था। अतः उनका समय सोलहवीं सताब्दीका उत्तरार्ध ठहरता है और न चतुर्थक दोनोसे पूर्वक प।^२ एक चौथे आनन्द और हुए हैं जिनकोने काम-विज्ञानपर 'कोक मंजरी का निर्माण किया था। बहुत दिनों तक इनको और घनानन्दको एक ही माना जाता रहा^३ किन्तु अब इनका पृथक्त्व स्पष्ट हो गया है।

आनन्दचनकी रचनाएँ

इनकी दो रचनाएँ हैं एक तो 'शौचीसी' और दूसरी आनन्दचन बहुरी। शौचीसी मुजयसीमें है और 'बहुरी' हिन्दीमें। शौचीसीमें शौचीस स्तोत्र है जो शौचीस तीर्थकरोंकी स्तुतिमें रचे गये थे। इनके रचना-कालपर विचार करते हुए पण्डित विश्वनाथप्रसाद मिश्रने अष्टादशवासी आनन्दचन अने 'ससोविजय' नामके सिद्धाका आधार केन्द्र किया है कि उनकी शौचीसीकी कई पंक्तियाँ सर्वथी समयमुन्दर। सँ १६७२। त्रिपुरासुरि। सँ १६७८। सकलचन्द्र। सँ १६४ और प्रीति विमल। सँ १६७१। के जिन स्तवनाथि प्रथमोम जाये चरबासे निकली

१ 'आनन्दचन अष्ट सन् १६०० ई में प विश्वनाथप्रसाद मिश्रका लेख आनन्दचन का जीवन सन् ५ १२ और आनन्दचनके प्रस्तावना पृ १।

२ का का प्र पण्डित सँ २३ अक्ष १ में प विश्वनाथप्रसाद मिश्रका लेख मन्त्रवाक्यके आनन्दचन पृष्ठ ४२।

३ डॉक्टर विक्रमनन्दा दि मोंडर्न इन्डियन सिन्द्रेयर ऑन इन्डियन एज १९, संख्या १०७।

है हमारे चौबीसीवा समय से १९७८ के अनन्तर ही व्यूहता है। किन्तु हममें कोई निश्चिन्त तिवि विदिन नहीं हो सकी। यी के एम सावेरीके अपन 'भाइल स्टोम इन बुजराणी फिटरपर में एरह रूपसे हमका रचना सवत् १९७७ बिना है। हमपर यी बसाविजयवी अपाप्याम आनविमळनूरि और आनतारने पुनक पुनक बाछावदोव टबाकी रचना की थी। पछोविजयवीम अित मूक प्रतिनी सिवा ससमें केवक २२ एनन से किन्तु आनविमळनूरि और आनतारकी प्रतिनारने २४ एतवन से और अन्हाण उन नवार टबाकी रचना की। यह चौबीसी पिछके टबा-सलिग चौबीस एतवन आनन्वचन चौबीसी नायमे भावक भोर्मासिद्ध नापिकने पइसि प्रकाशित हो चुकी है।

आनन्वचन बहुतरयी

यह हिन्दीकी प्रसिद्ध रचना है। यद्यपि बुजराठी प्रकाशनेके बछको भायानो बुजराठीमें बाछनका प्रयास किया है किन्तु बछका मूक रूप छिन नहीं सका और बाक बहु बड़े-बड़े विद्वानकी बहिमें भी हिन्दीकी ही छनि है। इसके बनेका प्रकाशन हो चुके हैं। सवत् १९४४ में बहु बम्बईके यावक यी भीमसिंह माषिकके महसि प्रकाशित हुई। इतमें १ ९ पर है और कोई भूमिका अथवा टीका-छिननी नहीं है। इमरा प्रकाशन भीमुत् मोतीचन्ड पिरवरछल नापडिया सोनीनिरके सम्पादनमें आनन्वचन पञ्जरलावकी प्रथम धाम के नामसे बिन बर्न प्रतारण नमा भावनपर' से हुआ। इसमें बहुतरयीके केवल ५ पद्यापर विवेचन किया है। यी बुद्धिसावरवीक बहु विवेचनके साथ आनन्वचनपक्ष-संघर सम्पात्म आन प्रमारक महल बम्बईके प्रकाशित हुआ है। यह एक सुन्दर ग्रन्थ है। और आनन्वचनकीके परोवा धारार्थ विस्तारमें समझाया गया है। बहुत दिन पूर्व रामचन्ड नाय्यमाकासे भी एक 'आनन्वचन बहुतरयी' छी थी। इसमें १ ७ पर है। रचनाके धीर्यकेसे एरह है कि इन छतिय ७२ या कुछ अधिक पर होन चाइयि, किन्तु हमका यह बर्न नहीं है कि से १ से यी अधिक हो जायें। फिर तो हमका नाम घटक पर बायेका। आनन्वचन बहुतरयी' के १ ७ परोपर भागीत छयठे रूप प नाचुरामवी प्रेमीने किया है। आन पडना है, इसमें बहुत से पर औरने मिका विसे बने हैं। बीडा ही बरिभम करकेसे इमे माकम हुआ है कि हमका ४२ वां पर 'अब हम अवर नय न मरेंगे और अन्वका पर 'युम आन विमी कूनी बरत से दोनो घानतपयवीके है। इमी तरह अचि करकेसे औरनेका

१ का ना ५० बनिवा बर्न २१ अक १ में व मिलनावपनार मिलना सेक अन्वचनके आनन्वचन' १ ४५।

भी पता चक सकता है।^१ हमकी बड़ी हुई सख्याको आचार्य क्षितिमोहन सेनग भी सखेइकी दृष्टिसे देखा है।^२ मेरी दृष्टिमें श्री महााराज बुद्धिसागरजीका 'आत्मवचन पत्र-संग्रह' अत्युत्तम रचना है। इसका रचना सं १७०५ स्वीकार किया गया है। 'मिथवानु विमोद' में भी यह ही रचनाकाक विमा गया है।^३ यह अठारहवीं शताब्दीक प्रथम पाषकी कृति है।

भक्तिके विषयमें आत्मवचनकोके जमे हुए विचार थे। लौ उचना विधिउ गुण माना है, मन कही भी जाये किन्तु उसकी लौ भयवानुके चरणोंमें ही लगी रही तभी यह भक्ति है अन्यथा नहीं। कबिने उसीको विचित्र और सुन्दर दृष्टान्तोंसे पुष्ट किया है।^४

ऐसे जिन चरण फिर पद काक रे मना

ऐसे अरिहंत के गुण गाक रे मना ।

उदर मारण के कारले रे गडवा बन में जाव

बाटी चै बहुतु विसि फिरै, बाकी सुरत बछइना मरि ॥

अर्थात् जिन प्रकार उदर-मारणके लिए धीरे बनमें जाती है बाघ चरती है और चारों ओर फिरती है परन्तु बनका मन बनने बछड़ामें लगा रहता है। ठीक इसी प्रकार मंमारके सब काम करते हुए भी इमार मन भयवानुके चरणोंमें लगा रहे और अरिहंतके गुण बता रहा, तभी यह भक्त है।

'साथ पाँच सखेइचाँ रे दिक मिक पार्याये बायै ।

ताकी दिव लक एक हँसे बाकी सुरत गगइना मार्यै ॥

सखेइचाँ विल-मिलकर पानी धरनेके लिए तारुज या कुर्सेपर जाती है। पारसेमें टाकी बजाती है और हँसनी-खेळती भी है किन्तु उनका ध्यान ठिकके बजेपर ही लगा रहता है। ठीक इसी भाँति मंमारके अन्य काम करते हुए भी इमार मन भयवानुमें लगा रहना चाहिए।

'बटवा नाथे नीक में रे कोक करै करत छोर ।

बाँस मही चरते चहै बाकी चित न चहै कहुँ छेर ॥

मठ बाँस छेकर रस्सीपर चढ़ता है और उसपर अपना उत्तम नृत्य दिखाता है जिसकी कुछछटा देखकर कोक जोर गुक मचाने है। इधर-उधर देखते हुए भी

१ दिग्गी जैन साहित्यस्य इतिहास पाण्डिथ्यर्षी पृ ३१ ।

२ अथवाचं विमिमोदस सेनस्य अस्तु लक्ष्म, पृ ४ ।

३ मिथवानु विमोद भाग २ सख्या १४४११ पृ ४२४-४२५ ।

४ आत्मवचन पत्र संग्रह श्रीमद् बुद्धिसागरराज गुजराती अन्वयानुसृत अन्वयानुसृत मंमारक मण्डल अन्वयै वि म ११९ पृ १३, पृ ४१३-४१४ ।

उमका ध्यान रस्मीपर ही रहता है। जैसे ही संसारके बीच बस-प्रवेश सुनते हुए भी हमारा मन सदैव प्रभुमें ही लक्ष्मीन रहना चाहिए।

यक्ति-नाशिरथमें कपुता-प्रवर्तन' मन्त्रका मुख्य गुण पाता जाय है। आत्मवचनकी कपुतामें हृदय रमा है और इसी कारण उसमें दूसराको विधोर बना देनेकी क्षमि है। मन्त्र एक प्रेमिकाकी भाँति अपने आराध्यके आत्मकी प्रतीक्षा करता है और बेचैन होकर पुकार उठता है, "मे रात-दिन तुम्हारी प्रतीक्षा करता हूँ पता नहीं तुम वर कब आओगे। तुम्हारे किए मेरे समान लखी है किन्तु मेरे किए तो तुम बनेगे ही हो। बीहरी काकभ्र बोल कर लगता है, किन्तु मेरा काक ही बभूष है। जिसके समान कोई नहीं ब्रह्मा उसका क्या मूल्य हो उठता है? इन भावके दो पद्य देखिए,

"मिथुनिय भाँई तसो बाइकी बरे भायो रे डोका।

मुज सरिला एज काक है मेरे मुही बभोका ॥ मिथ ॥१॥

बाहुरी मोक करे काक का मेरा काक बभोका।

ज्या के बह्यार को नहीं उसका क्या मोका ॥ मिथ ॥२॥"

आत्मवचनका उदाहरण भाष था। वे एक अक्षर उलटने पुकारते थे। उसको कोई राम खीम म्हादेश और पारसनाम कुछ भी नहीं, आत्मवचनको इसमें कोई भावति नहीं थी। लला काव्य था कि मिम प्रकार किन्ती एक होकर भी पाव-मेरसे बनेक नामी-भाप नहीं जाती है उसी प्रकार एक अक्षर-वच आत्ममें विभिन्न बभूषाबोले कारण बनेक नामीकी बभूषा वर की जाती है। उन्हाले वचन इस कथनकी राम खीम हृदय म्हादेश ब्रह्म और पारसनामके नामीकी व्युत्पत्तिमेंसे सार्क्य बनाया है। यह पद्य इस प्रकार है,

"राम कइो रहमान कइो कीक, कान कइो महारु री।

पारसनाम कइो कोई ब्रह्मा सकक ब्रह्म स्वभमेव रा ॥

भाजव मेह कहावत नामा एक श्रुतिक्य क्य री।

तैछ उचइ कथना रोपित भाप अन्वइ सकप रो ॥ राम ॥

मिथुनइ री राम सो कहिनु, रहिम कर रहिमाल री।

कहँ करम कान सो कहिनु, महारुच मिर्बाल री ॥ राम ॥

वरसे कव पारस सो कहिनु, ब्रह्म बिहो लो ब्रह्म री।

इहचिचि माथी भाप आत्मवचन चेतवमव निष्कम री ॥ राम ॥"

आत्मनाम बभूषण एक वृत्तकी तरहसे है, जिसमें-ते बात तो उठती है किन्तु हमे नाम बह्य नहीं कर पाते। नाम वचन है और वर मुगन्धिन रिम्य तथा

बकौकिक है। अतः उसे सूर्यमन्त्रको सामर्थ्य नाकमें नहीं है। और यदि कोई मुक्त-
धोनी उसका वजन करे तो उसपर काग विरवास नहीं करते।

“आत्म अमुमम फूक की कंड नबेछो रीति।

नाक न पकरै वासना काग यहै न प्रतीति ॥

भक्त नहीं जो भगवान्का होकर रहे। यहाँ आत्मन्यवन भी अपने आराध्यदेव
ब्रह्मात्मके द्वारा बिक नय है। उनको ब्रह्मात्मके अतिरिक्त और कोई ऐसा देव
दृष्टिगोचर नहीं हुआ जिसकी शरणमें वे जा सकें

“ब्रह्मात्म से मुनाथविज्य हाथी हाथ बिकायो।

बिचकी कोठ बन कुपतक सरन नहर न आयो ॥ अर्थ ॥१॥

भक्त प्रसिद्ध बनकर भगवान्की शरणमें आया है। उसे इस प्रकार आत्म
क्रिष्टीका कोई भय नहीं है। वह भगवान्से प्रार्थना करता है कि हे भगवन् ! यह
निराधम आनो कि यद्यपि मैंने करोडा अपराध किये हैं किन्तु यह जन आपका ही
है, अतः उसपर क्षमा करो

‘मैं आधी प्रभु सरन दुम्हारी कागत भाहि पयो।

मुअन उअन कहुँ भीरन सु, करहुँअ कर ही सक्ये ॥

अपराधि बिच मन अगत जन कोरिक मोति चकी।

आवन्धप्रवप्रभु निहथै मालो इह जन रावरीय की ॥

५८ अगजावन (वि० स १० १)

अजजीवनके पिताका नाम सम्बन्धी अभयराज था। वे आनरेके प्रसिद्ध पनी
व्यक्ति थे। अहंकार नाम-जात्रको भी न था। दानादि होता ही रहता था।
कोई भी शत्रु-उत्पासी किसी भी सम्प्रदायका हो उनके शरसे छाकी हाव नहीं
कौटा। उनके पास वैभव वा और शरारता भी। उनकी अनेक स्त्रियामें ‘मोहन
हे संवदन’ अथिफ प्रसिद्ध थी उसको बैसा रूप मिछा था वैसे ही पुत्र भी।
भगवान् त्रिनेत्रके मार्गमें उसकी अष्टा बहुत अथिफ थी। उसीके पत्रसि अजजीवन

१ नगर आनरे में आरनाथ आनरो

गरमशौठ आनरे में नावर नबक्या।

उपहो प्रसिद्ध अर्थराज राजमाल नीके

पंच बाका गतिनि में भयो है नबल सा ॥

का जन्म हुआ। वह सोमनाथ मठकी ओर आश्रय प्राप्त हुआ। चारों ओर सुख-आनन्द विद्यमान था। जनजीवनका सुख अत्यन्त ही अधिक था। सोमनाथ मठकी ओर जाने प्रयाणमें जनजीवन दिन-दर-दिन सुख ही सुख ही रहता था। चारों ओर जनजीवन मधु-मग्न विद्यमान होना लगी। जनजीवन स्वयं लिखा है, 'समय जोन पाह जनजीवन विख्यात नदी जलिनकी मण्डलीमें जिनकी विद्यता है।' उस समय जायरेकी आश्रयमें जनजीवन प्रमुख व्यक्ति थे। सुमरी और न राजनीतिमें भी रत थे। जाकरना नामके किसी प्रसिद्ध जमाने में जनजीवन मन्त्री नियुक्त किया था।

वे जनजीवनके परममन्त्री थे। जनजीवनके रचनाओंको जनजीवनके विद्यालयमें संरक्षित करनेका महत्त्वपूर्ण कार्य उन्होंने ही किया था। इसके अतिरिक्त उन्होंने जनजीवनके 'नाटक समस्यार की टीका भी लिखी थी। इस प्रति जनजीवनके 'साहित्य' को जनजीवन और लोक-प्रिय बनानेमें जनजीवनका बहुत बड़ा हाथ रहा है। जनजीवनके रचनाओंमें जनजीवनके पर लिखे जा सकते हैं जो सरस हैं तथा भाव प्रवण भी। जनजीवन 'एकीभाव स्तोत्र' की भी रचना की थी।

पद

इसके रचने हुए पर जनजीवनके मन्त्रिमन्त्रीके विद्यालय पुस्तक नं० २९में संरक्षित है। इस पुस्तकका केवलनाम ही १८४१ है। इस पुस्तककी प्रतिकृति जनजीवनके संस्मरणका जनजीवन की थी।

एकीभाव स्तोत्र

इसकी एक प्रति जनजीवनके ठोसिकके विद्यालयके पुस्तक नं० १११में संरक्षित है। जनजीवनके संस्मरण एकीभाव स्तोत्रका जनजीवन मानकर इसका निर्माण हुआ है। रचनामें सरसता है।

ताके बरतित्त कहु मोहनके संवदनि

जाके जिन मार्ग विराजत बरत-सा।

ताकी को सुपुन जनजीवन सुदिह वैन

जनजीवन वैन जाके जिन में संवद सा ॥

जनजीवन विद्यालय संस्मरणके परिष्कृत, १ १४१ मन्त्रिमन्त्री, ११२४ है।

१ ताकी पुन मन्त्री जनजीवन जिनमन्त्रिमन्त्री।

जाकरना के नाम संभारि मन्त्री विद्यालय उमानर सारे ॥५॥

२ ईश्वरके, जनजीवनके वैन।

३. जनजीवनके वैन उमानर मन्त्रिमन्त्री मन्त्री, भाग १ पृष्ठ १९।

उनका रचनाकाळ अठारहवीं शताब्दीका प्रथम पाद मानना चाहिए । उन्होंने संवत् १७०१ में बनारसी विकास' का संग्रह किया था । जनजीवनका व्यक्तित्व समाचारण था । उनकी प्रेरणासे ही अनेकानेक कवियाने अनुपम साहित्य का सूत्रन किया । उनकी प्रेरणामें एक बाध-सा होता था । पण्डित हीरागणेशजी केवल हो माहमें पंचास्तिकायका अनुवाद कर सके वह केवल इन्हींकी प्रेरणाका फल था । उस समय भी जनजीवन जाननेकी साहित्यिक गतिविधियोंके क्षेत्रसे हो रहे थे । वे रूपवान्, पवित्र और जन-आश्रय मुक्त थे । समय पाकर उनके हृदयमें यथावत समाका माध उदित हुआ । फिर तो उन्हें रात और दिन ज्ञान-अध्वजीमें ही जीवन मिलने लगा । इस मण्डलीका प्रकाश उन्हेंको कहना चाहिए ।

एकीभाव स्थाप'में भववान्की मन्तिका स्वर ही प्रबल है । कविता एक पद्यम सिद्धा है कि जिनके लक्ष्य सफल लोकके भववान् है और बिना प्रयोजनके वस्तु है । उनमें सब पद्यार्थ आभासित होने रहते हैं और बिनाम अवगम्य कनसे वास करते हैं

सकल लोक का तुं समाधान बिना प्रयोजन वस्तु समाप्त ।

सकल पदार्थ समाप्त मास तो मैं जैसे अवगम्य विकास ४

कविता कथन है कि जिनके हृदयमें भववान् जिनके वेद विद्यमान है उनका लिए जब किसी अवसरकी आवश्यकता नहीं है । उनसे आत्माकपी निधि प्राप्त कर भी है जिसकी तुलनामें अन्य कोई निधि या ही नहीं पश्यती । वह अनुपम और अतुल्य है

'जाके दिव्य कमल जिनके चत्वारोप विराजित पद ।

उर्ध्व कीर्ति रह्यो उपगार निज आत्म निधि पाई सार ॥

पद

जनजीवनके पर अनेक शास्त्र-मण्डारोकी इस्तिकबित प्रतियोंमें बिखरे पड़े हैं । अपनुरके तिरहुताम्बी मन्दिरेमें सबसे अधिक है । मीन महाबारीजी (कतिपय धर्म) अत्रमेर और बड़ीतके शास्त्र-मण्डारामें भी उनके पद देखे हैं । उनके पद्यमें मति और आध्यात्मिकताका समन्वय हुआ है । भक्तके मैत्रीमें बने भववान् क कनकी एक सलक देखिए,

१ सुन्दर मुद्रम का अमिराम परम पुनीत परम धन धाम ॥

कान्ठकवि कारण रम पाइ अप्नी कचारण अनुमी बाद ।

प्यान मण्डको कहिए कीर्ति नामे म्याने जन परमौत ॥

एकीभाव स्थाप, पद २१-२२ ।

'मूर्ति भी त्रिनक्षत्र की मूर्ति मैनन मोग्न बसी बा ।

धरमुत्त रूप अनापम है छवि राग शेष न तनक सा ॥१॥

कोटि महान बाहुं का छवि वर निरखि निरखि आनन्द सर बरसी ।

अगजोवन प्रसुकी मुनि बाधी सुरति मुक्ति मगधरसी ॥२॥^१

मयवाङ्गी समतारस भीती छवि' देखकर मन्त्रको परम आनन्द मित्र ।
उसके भव भवने पाप कट पड़े और ज्ञान प्राप्ति प्रकृत प्राप्त हो गया । यह पर
इस भीति है,

'प्रसु जो आदि में मुनि पायो ॥

अननासन छवि समतारस भीतीसा कलि में इरपाया ॥प्रसुजी०॥१॥

भव-मन्त्रके मुक्ति पाए कटे हैं ज्ञान मान इरपाया ॥प्रसुजी ॥२॥

अगजोवन के नाम जगे हैं तुम पद् सीस बचायो ॥प्रसुजी ॥३॥^२

मयवाङ्गी विरह है बीनबन्धु' और बीनबन्धु भी बिना प्रयोजनके । मन्त्र
विषय है कि उस विरहका निर्वहण करो

आमय मरण मित्रार्थी थी महामात्र म्हातो आनन्द मरण ॥४॥

अमर विरपा चूर्णगति हुक पाया सा हा पाक कुड़ाया जी ॥आमय०॥१॥

विमदा प्रचारण बीनबन्धु तुम सी ही विरह निवाहा जी ॥आमय ॥२॥

अगजोवन प्रसु तुम मुनिदासक मोहूँ सिधमुख धापी थी ॥आमय ॥३॥

मन्त्र ऐसे तनुवशी बकिहारी बाजा है, जो ध्यानस्थ होकर बजवाते की
कनारें रहता है ।

'पैसा मन्त्रगुण की बकिहारी ॥४॥

बड़ अबाहु में कैडक जिनकी पकक न बूक बिहारी ।

मोह महा अरि जीत एक में जागी अकल सू ठारी ॥पैसा ॥१॥

५९ पाण्ड हेमराज (वि सं १ २ १०२)

पाण्डे हेमराज अक्षय राज्यान्वर्जन साधारण पलाय हुए थे किन्तु किसी
कारणवश सामान्य आकर रहने लगे थे । वही नीतिनिधि नामका राजा राज्य

१ संस्कृत मन्दिर, अक्षय परममर १४९ पन् ११ ।

२ मन्दिर देवदेवकी, अक्षय परममर १४९ पन् ११-१४ ।

३ वही पन् १ ।

४ वही पन् ११ ।

करता था। उसके चरित्रकी पैनी धारसे दुर्जनोके सिर कूट-कूटकर मिर जाते थे। पाण्डे हेमराज पण्डित रूपचन्द्रजीके सिष्य थे वैसे कि उनको 'पंचास्तिकाय भाषा बचनिका'के अन्तिम अंशसे स्पष्ट है।^१ उन्होंने अपने मुफ्के पास रखकर जैन सिद्धान्त-शास्त्राका सूक्ष्म अध्ययन किया और योड़े ही समयमें अगाध विद्वत्ता प्राप्त कर ली।

संस्कृत और प्राकृतके विद्वान् होते हुए भी उन्होंने जो कुछ लिखा द्वितीयमें ही किया। हिन्दी पद्य-लेखक और कवि होना ही एतोंमें उनकी प्रतिष्ठा थी। उन्होंने प्रबचनसार की भाषा टीका वि सं १७९५ में 'परमात्म प्रकाश'की वि सं १७१६ में 'गोम्मन्सार कर्मकाण्ड'की वि सं १७१७ में 'पंचास्तिकाय की १७२१ में और 'नयचक्र'की भाषा टीका वि सं १७२६ में लिखी। इन सभीमें हेमराजके स्वस्थ मसके दर्शन होते हैं।

पाण्डे हेमराज कवि भी उत्तम कोटिके थे। उन्होंने 'प्रबचनसार'का पद्यानुवाद भी किया है।^२ इसके अतिरिक्त उन्होंने सितपट चौरासी बोल की रचना कुंवरवासजीकी प्रेरणासे की थी। इसीके अन्तमें यद्योविजयजीने 'विजयट चौरासी बोल' लिखा था।^३ मातंगके 'मन्नामर स्तोत्र'का सुन्दर पद्यानुवाद इन्हींका किया हुआ है। अनुवाद होते हुए भी उसमें मौखिक काव्य की छरसत्रा है। 'हितोपदेश बाचनों' उपदेश दोहा सतक और गुरु-गूजा भी उनकी कृतिर्वा हैं। इससे प्रमाणित है कि वे अपने समयमें विद्वान् और कवि होना ही कर्णोंमें प्रसिद्ध थे। सनसे कविताभाषण स्पष्ट रूपसे बाणारसिवा सम्प्रदाय का प्रभाव था।

- १ उपजी भाषानेरि की अथ कामायह वास ।
बड़ा हिम रोहा रणे स्व-पर बुद्धि परकाम ॥
कामायह मुखस बड़ा कीरतिधिह नरेस ।
अपनी चरित्र बल बलि जिये दुर्जन जिनके जैन ॥
जयैरा होरा उल्हा, होरा ६८-६६ हीमान कपीचन्द्रजीका मन्दिर, गुच्छा न २७ वेहन न २२६ ।
- २ 'बह की रूपचन्द्र मुफ्के प्रसाद की पाण्ड की हेमराजने अपनी बुद्धि माण्डिक कियत करिवा ।
पंचास्तिकाय भाषा टीका अन्तिम प्रसंग ।
- ३ इसमें एक संख्या ४६८ है। इसकी हस्तलिखित प्रति कस्तुरके कपीचन्द्रजीके मन्दिर में वेहन न ७१ में लिख्य है।
- ४ हेमराज पाण्डे किये बीच चौरासी पेर ।
या बिच हम भाषा बचन ठाकी अत बिच जेर ॥
कटोविजयजी, विजयट चौरासी बोल ६२६वाँ पं ।

कवि मुन्नाकीरायके पाण्डव पुराण वि सं १७५४ से स्पष्ट है कि मुन्नाकीरायकी भाषा 'कैनुच्छे' अथवा 'कैनी' पाण्डे हेमराजकी पुत्री थी। पाण्डेके अनुधार पाण्डे हेमराजका पौत्र वर्ग और जाति अथवाक थी।^१

सितपट औरासी बोझ

महू अतीतक अग्रकावित है। इसकी एक सम्पत्तिकविता प्रति अमपुरके पं सूचकरजीके मन्दिरम चिदाजमान गुटका नं १५ में निबद्ध है। इस पुराणके केतनकाल वि० सं १७८४ है। इसकी एक अन्य प्रति इसी मन्दिरके बेहन नं ४४१ में पृथक्में बँधी रखी है। इस प्रतिका केतन काव्य पीप सुदी ५ वि सं १७२३ दिया है।

'सितपट औरासी बोझ' से विरहित है कि इसकी कविता अरुह कोटिणी थी। एक पद्य देखिए

"सुवचपोष इतरीच मीचमुख सिवचरदावक
गुणमविकीष सुबोच पौपहर तावविवाचक ।
एक अजन्त सकय सन्तवन्दिठ अमिचन्दिठ
मिच सुभाष पर माच जावि मासेइ अमदिन
अविदितचरिच विकसित अमित अर्बे मिचित अविदिसिठ तव
अविचकित वकित मिजरास ककित अच मिन वकित सु वकित वच ॥"

अपदेश बोझा अतक

अपदेश बोझा अतककी रचना वि सं १७२५ में कालिक सुदी पंचमीकी हुई थी।^२ इस काव्यकी हस्तलिखित प्रति बीकान अमीचन्तजीके मन्दिर अमपुरके गुटका नं १७ और बेहन नं ६३६में निबद्ध है। इसकी भाषाया अन्तविकीषे मिसली-मुच्छती है।

बाह्य संसारमें ईश्वरको बुझनैवाले जीवकी अन्तरात्मे हुए वकिले एक स्वानवर भिया है कि अरे ओ बीव ! तू अन्धेकी अग्नि अन्धरो स्वान-स्वानवर वना खोजता-फिरता है। वह मिटजन देव तो ठीरे पटमें ही वना है। वहाँ क्यों नहीं खोजना

१ हेमराज पन्दिन वने निनी आपरे ठाँव ।

गण्य भोग नुन आगरी तव पूजे जिन वीह ॥

मुन्नाकीराय वाचस्पत्युराज भाषा अन्विज्य मरसि ।

२ अर्धवचनक ६ १०० ।

‘श्रीर श्रीर सोचत फिरत काह मंथ बायेव ।

तेरे ही बट में बसो सदा निरंजन एव ॥ १

कविने सत्य कवियोंकी याँति ही कहा कि - पुत्रात्मके अनुभवके बिना तीर्थ लोभोमें स्नान करना भूँड़ मुँडाना और तप तपना सभी कुछ व्यर्थ है ।

निच साचव कीं जानियै अनुभवी बड़ो इकाव ।

मूढ सखिक मंजन करत सरत व एकौ काम ॥ ५ ॥

कोटि बत्स कीं भोज्य अटसठ तीरथ नीर ।

सदा जपावन ही रहै मविरा कुम्भ सरीर ॥ ३ ॥

तन्मौ व परिगाह सी ममत मिच्छी न बिदै चिछाम ।

धरे भूँड सिर भूँडि केँ कपों न जाक्यो बरवास ॥ ९ ॥

कोटि जवम कीं तप तपै मव जव कव सभत ।

सुखात्म अनुभवी बिना कर्षो पावै सिचयेत ॥ १८ ॥

द्वितीयपदस्य भाष्यनी

इसे बसर बाघनी भी कहते हैं । इसमें द्वितीय पद्यमात्रके ५२ बसरोमें-से प्रत्येकपर एक-एक पद्यके रचना की गयी है । इसकी एक इस्तिक्रिहत प्रति जयपुरके बड़े मन्दिरके बेहल नं २२२२ में मिल गई है । इसपर बेहलकाक सं १७५७ पत्रा है । यह प्रति बिनवनाहर गणिके शिष्य वं बिनोदसापरने मध्यम शैलीके पहलेके किर कल्पवतरमें लिखी थी । बाघनीका मन्त्रि-भावते जरा एक सवैया देखिए

‘मन मेरो कमन्धौ विज गुण गावयो टाकत है गमवास सिचपुर हीवै

वास कीं वि केँ विर्यदपुत्र और कहा प्याचयो । तन मन कागो लोच कजु न सुहावै

मोय सब भुँड हुरि करि लोसुं चित जापयो । सकक साहिब मेरो

प्रगाट प्रताप तेरी होम को इबाक पायो सब सुख पावयो । हैमराज ममई

सुनि सुरागों सजन जन मव मरो कमन्धी है विज गुण गावयो ॥ ३ ॥

द्विन्वी-मच्छामर

बाबदे २५ वप पूर्व यह स्टोन वं पदाकाखरी बाककीदाक-डाप सम्पादित ‘बृजशिवनवाणी संघ’ में छपा था । अभी ‘ज्ञानपीठपुस्तकालय’ में भी प्रकाशित हुआ

१ कवी २५वों दोषा ।

२ तन्त्र १७१७ मिला बेरावत हुरी ११ दिने गुम्नासरे लेखनेल्लः ॥ श्री विजयनाथ पवि शिष्य व विनेवतामरेव लेखनेल्लः कल्पनात्मने बहुरी कल्पवरेवी बाचनार्थ - लेखयि ॥ प्रकलि ५ १२ ।

है। इस भक्त्यामरकी प्रशंसा करते हुए पं. माधुसूदनी प्रेमीने लिखा है अनुसार सुन्दर है और इनका लुभ ही प्रचार है। इससे मान्य होता है कि हेमराजकी कवि भी अच्छे थे।”

मूल संस्कृतका भक्त्यामर सार्वभौमिकीयिण छन्दम लिखा गया है किन्तु पाण्डे हेमराजने चौगई छन्दम गायत्र और दोहाका प्रयोग किया है। चौगईमें कुछ क्लिष्टता तो है, किन्तु उससे सुन्दरताम कोई बिबाध नहीं आ पाया है।

एक स्थानपर कविने लिखा है कि भक्त्यामरके नामम असीम बरक है। जिन धनुर्बोके प्रपञ्च बरको बेलकर धर्म विस्तृत हो जाता है, वे भक्त्यामरका नाम धेने माससे ही ऐसे नाम धाते है जैसे दिनकरन उदयसे अम्बरार विस्तृत हो जाता है

“राजन को बरबंघ देल बरक धीरज छीये ॥

नाम तिहारे नाम तें सी छिनमाहिं पकान्य ॥

क्या दिनकर परकान्य तें अंबबर विवसान्य ॥

आराध्यके सम्मुख अपनी अनुयायक प्रशंसा कल्पिका मुख्य अर्थ है। एक स्थानपर भवन श्राव जाणकर कहता है कि हे भक्त्यामर ! यकिन-हीन होते हुए भी यकिन-भावके कारण भावनी स्तुति कर रहा हूँ ठीक जैसे ही जैसे कोई मृगी इन्-हीन होते हुए भी अपने पुनकी रक्षाके लिए मृगपतिके सम्मुख बळी जाती है

‘सा ई शक्ति हीन क्षुति कर्के मक्ति माव बस कहु नहिं कर्के।

क्यो मृगिमित्र-मुल पाऊव हत मृगपति समुख जाव अचेत ॥”

मकलकी यह पूरा विश्वास है कि भक्त्यामरकी धारणम आनेसे अन्त-अन्तके वाप अक्ष मासमें गह हो जात है

“तुम जय अपर जय छिनमाहिं जयम जयम के वाप बछाहिं।

ज्यो रवि रगी करै ततकाल अकि बत नीक मिद्या-तम-जाळ ॥

शुद्ध-पूजा

पाण्डे हेमराजकी शिरी हुई ‘शुद्ध पूजा जैन-नारम्यराके अनुसार ही रची गयी है। अर्थात् पहले अष्ट इन्द्रपूजा है और फिर अयमाता। यह पं. वसन्तदास बालकीबाल द्वारा सम्पादित ‘बृहच्चिन्मवाभी संघह म संकल्पित है।

धीरजस पूजा करते हुए पूजक कहता है कि मैं अयमवाते धीरजने मुमुक्षुके चरबोकी सर्वैष पूजा करता हूँ। इसमें अज्ञानकयी अर्थकार गह हो जायेना और

१ हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास पृ. ५२।

२ पाण्डे हेमराज मन्त्रावर भाषा अन्वयि कृत, इतिहासकाली समय अन्वयि कृतिकात्त लिखकर १९४६ ई. १२।

ज्ञानरूपी जवाका पैस जायेवा । इस भाँति मुझे कभी भी मोह मोहित न कर सकेगा । हमारे गुण संभारके भांगोले बिरुप होकर मोझके छिए उपस्था कर रहे हैं । वे भी भयवान् जिनप्रक गुणःना निरप प्रति आप करते हैं

‘दीरक उद्योग सजात जगमग सुगुणपद पूजो सदा ।

समनास शान जबास स्वामी मोहि माह न हा कदा ॥

मज भग वन वैशम्भवार निहार सिध पद उपत ह ।

तिहुँ जगननाथ भधार साधु सु पूज मिल गुन उपन है ॥’

‘पंचपरमेष्ठी का छात्र ही गुण है । मुनि भी ज्योधा नाम है । वे राम-श्रेयका दूर कर बपाना पाछम करत है । तीना लोक उनके धामन प्रकट रहत है । वे चारों आराधनाओंके समूह हैं । वे दुर्दप पंच महाभारतका चारम करत है और ज्यों इर्म्योको चांगते हैं । जनका मन सात भयोके पाछमम जया रहता है और उन्हें बाठा कृतिप्रां प्राप्त हो जाती है

दूक दवा पाके मुनिराजा राग श्रेय वै हरनपर ।

तीनों लोक प्रगट सच द्ये चारों आराधन निकर ॥

पंच महाभारत दुन्दर चारै ज्यों द्रव धामे सुदित ।

सात भंगवानी मन चारै पावे भाद काःदु बधित ॥’

नमि राजमसि जसकी

इसकी एक हस्तलिखित प्रति जयपुरके बजोचन्दकोके मन्दिरम गुटका नं १२४ म रक्षित है । इसका अन्तिम भाग इस प्रकार है

‘तीस दिन अरु बिराधार भी ।

इम मये भीव जानिक । से पारि भव पार भी ॥

रोहिणी प्रत कथा

इसकी हस्तलिखित प्रति मसबिब लजूर रोहनीके बैग मन्दिरम मौजूब है ।

६० पं० मनोहरदास (वि सं १० ५ १०१८)

इसका दूसरा नाम मनोहरकाक भी है । इन्दोल कवितामे प्राय ‘मनोहर’ का प्रयोग किया है । वे कच्छकेकाक आतिक सोनी बोजमें उत्पन्न हुए थे । कभी इनके पूर्वजोने बैग-संघ निकाला होना इस कारण उनको मूक-संघी भी कहा जाता है ।

१. गुण-पूजा कव २ ।

२. गुण-पूजाकी बध्यासा कव ३ ।

ये सामान्यरूपके रहनेवाले थे किन्तु कर्मके उदय से चामपुरमें जाकर रहने लगे थे।^१ चामपुर एक रमणीक स्थान था जिसके चारों ओर बान-बनी-बाकी प्राकृतिक दृश्य बिकारी हुई थी। उनमें कोमल पंचमरायसे कृकती ही रहती थी। कृप बाबकी और पोखरी निर्मल बरसे भरी हुई थी। नमस्मिनी निकसित थी जिनपर प्रभर पुंजार करते थे।^२ वही मनोहरबास सेठ 'आसु' न आश्रममें रहते थे। वह नगर-सेठ कहलाता था। अठनीकी वसपर अपार कृपा थी बैठा ही उसे बान बेनेका उधार हृदय भी मिका था।^३ एक बार बनारसना प्रसिद्ध सेठ प्रतिषापर पापके उदकसे बरिष्ठ हो गया। वह अयोध्या जाया किन्तु अयोध्याके सेठने उसे 'आसु' के पास भेज दिया। उसने विपुल धान लेकर प्रतिषापरको अपनी बराबरी-का करके पुन बनारस वापस भेज दिया।^४ ऐसे शली और उधार सेठको पावर मनोहरबास भी कुतकृत्य थे। किन्तु उनकी रचनाओपर सेठनीकी इच्छाकी कोई छाप नहीं है। वे सब स्वान्तःमुखाव ही लिखी गयी है। मनोहरबासमें जिन प्रताका मांभ मुख्य था उन्होंने अपनी विद्या बुद्धि और कवि-प्रतिभाका कबी अङ्कार नहीं किया। उनकी कृतियोसे प्रकट है कि वे उच्च कोटिके शिल्प और अच्छे कवि थे। किन्तु उन्होंने उदैव यह ही कहा से आकरन उच्च और अलंकार आदि कुछ भी नहीं जानता। मेरी बुद्धि तुच्छ है और मुझे मछे-बुरैका भी ज्ञान नहीं है। जिनकी बुद्धई देवर कहता है कि मुझे तो केवल भयवान्

१ कविना मनोहर अच्छेकबाक छोली बाति
मूक छेनी मूक बाकी सामानेर बास है।
कर्म के उदय से चामपुर में बसत भयी
सबसों मिलान पुनि सञ्जल की बास है ॥
हिन्दी के नव-ग्रन्थ शिवास, पृष्ठ २७।

२. बर्मरौका प्रकृत प्रकृत नाम अन्तुर पृष्ठ २१२।

३. श्री ५ २१२।

४. बाराबकी सेठ प्रतिषापर पुष्पी प्रसिद्ध
कोटिक को बनी ठाई पाप छई आयो थी।
उदय ली निधि अयोध्या से बसल कीनी
अयोध्या के सेठ वह उदय करारें थी ॥
आनी बराबरि को करि नाता मति सेठी
देकर बडाई निज बाल की पठायी थी।
बैठे हम आसु साह टाली निज बाह देक
रई मनोहर हम पुनि भोग्य पायी थी ॥
श्री ५ २१२-२२।

जिनकी ही भास है।^१ 'जिनकी दुहाई जाके जिन ही की भास है में कवित्व है और शक्ति थी।

धम-परीक्षा

इसकी रचना सं १७ ५में धामपुरमें हुई थी।^२ कविने आगराके राजत साहित्याह्वय हिसारके बनबत मिय और धामपुरके ही पण्डित वेगुटाजसे प्रेरणा पाकर इसकी रचना की।^३ यह भाषाज्य जमिनगतिकी धमपरीक्षा का भाषानुवाद है। इस ग्रन्थमें ३ पद्य हैं। उनमें शक्ति का माप ही मुख्य है। भाषाज्य जमिनगतिके मूक ग्रन्थमें भी शक्ति ही प्रधान है। इसकी जमक प्रतिमा विविध मन्थाराम सुरक्षित है।

उन्हाल 'धम-परीक्षा'में दोहा सोरठा सबैमा और छप्पमका विशेष रूपसे प्रयोग किया है। आरम्भिक मंगलाचरण देखिए,

‘ममजु अरिहृत्प्रेष गुह निरग्रंथ रूपा धरम।

मवद्वि चारन ध्व अवर सञ्जक सिध्दात मजि ॥”

‘धम-परीक्षा की एक हस्तलिखित प्रति हि जैन मन्दिर बडीनक बेहल नं २७२ गूटका नं ५७ में संरक्षित है। यह प्रतिशक्ति प्रेमचन्दने जि सं १८१२ में की थी। कविने एक पद्यमें लिखा है कि परम ब्रह्मका छोड़कर अन्य माप अपमानास्पद है। यह पद्य इस प्रकार है।

“सबै देव विष नबै सबै मिहक गुह मारिं।

सबै सासठरि पई धर्म ते धर्म न धारिं।

सबै तीरप फिर जावै परम ब्रह्म को अदि ध्यान मारण की रवारिं।

इह मन्मर जो बर रहै इमी माँति सोना कहै।

अचरित गुन बेहवा लगी कही बाप कसौ कहै ॥३॥

१ व्याकरण छंर अलंकार जसु पदपी नाहि,
माया मै निपुन गुणक बुद्धि को प्रकास है।

बाई बाहिनो बलु समी संतोप लीये

जिनकी दुहाई जाके जिन ही की भास है ॥

हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास पृष्ठ ६७।

२ कवी, पृष्ठ ६७।

३ मद्रप्रैल्लमसह जसपुर पृ २१६।

४ सुसूक्ति जमिनगति ज्ञान सद्मकरीति पूर्व कही।

या मै बुधि प्रमान बापा कोनी जोरि कै ॥

कवी पृष्ठ २१२।

इसी भाँति कविन एक दूखरे पद्यमें लिखा है कि—यदि कोई कुर्जन इन मन्त्र-समुहसे पार उतरना चाहता है, तो जगद किन् तिसा त्रिनेत्रना मुझसे कि जग कोई आम्बरन नहीं है।

‘वाशिष्ठि के त्रिषु की बाहिर त्रिषान किया
सरता उतरने की नीम बनावे है।
तम क नसावे की क्षायस्व भार घरा
शेग के नसावे का उपर बनावे है ॥
घाटावर धूमने का मंत्र भराती गीम
अमुम मो राधन की किमि मुम पाई ह।
ऐमि विधि दुरजवक उत बिहरव वा
उद्वयत मचा त्रिषकी दुवाई है ॥३॥

ज्ञान चिन्तामणि

इस कव्यकी रचना संवत् १७२८ माह सुदी ७ भृगुवारको बुद्धानपुरमें हुई थी। इनकी एक प्रति सं १८२४ बापाड बरो १ की लिपी हुई अम्ब की प्रत्यापन बीकानेरमें मौजूद है। इसकी प्रति गुटकावा ८ है और इनमें कुछ शीत पल है। उपर १२९ पद्य लिखित है।^१ दूसरी प्रति पचासवी मन्दिर के शीतले घाटनमण्डारमें रखी हुई है। इसमें कुछ ८ पल है। उपर रचना संवत् १७२८ पद्य हुआ है।^२ इसकी एक हस्तलिखित प्रति बीकान बनीचन्दके मन्दिर, बबपुरके बेशम नं १ १७ गुटका सं ५१ में निबड है। जम १८ रोड्य ५२ पाचाई और ५८ बीनाई है।

इसका विषय अम्बालम से सम्बन्धित है, किन्तु मानवकी मुक्तवृत्तिके साहचर्यके कसकी मुक्तनाका परिहार हुआ है। ज्ञानकी प्रमानता होते हुए भी यह स्पष्ट कहा गया है कि ज्ञान मन्त्रसे ही आम्बर हो सकता है। यह शेष इस प्रकार है

- १ ऐसी ज्ञान ज्ञान मल बरो विरलक मल परम्परेव करी।
संवत् १७२८ माही सुदी मध्यमी भृगुवार बनावे ॥१२३॥
नपर बुद्धानपुर जाल बेश माही सुमारक गुग बसे बुनवाह।
जमें य बड बने बिबवान सदा बरम करे दिन रात ॥१३॥
बीकानेरवासी प्रसिद्ध जल, राजस्थानमें दिल्लीके इलाकिये मन्त्रकी मन्त्र,
कृतने नाम १३ १३१।
- २ अनेकाल नरे विरल १ पद्य १२२।

‘ओ आदि जिन समरतां हिरदै आपो जान ।

महा सुपात्रिक में कह्यौ लिखा घरम बह प्पान ॥१२६७

बीबकी मूर्खताका बचन करते हुए कविन लिखा है कि यह शीव गुप्ते
बचनारी तो मुनता नहीं दिन और रात पाप करता है विषय विषमें मंजना है ।
बमका मर्म भी नहीं आगता ।

‘गुरु का बचन सुनै नहिं काब विमि दिन पाप करै भजान ।

विषया विष सू रवि पवि रह्यौ प्पान धर्म को भरम न कह्यौ ॥१२७॥

पीपनके आनेपर यह शीव महमत हाथीको भाणि शूम छटा है ममबान्का
मशन नहीं करता । मस्तोमें ही उसका शीवन बीतता रहता है

सरि आवन हुआ मैमंत मजो नहीं केबक मगधंत ।

केतावक दिन इ विधि गया तीस बरम का जिन नर मया ॥१२८॥

चिन्तामणिमान बाबनी

इसकी एक स्तुतिविन प्रति शोबाम बबीचन्द्रबीका मन्दिर बयपुरके गुटवा न
८में निबड्ड है । यह गुटका दि नं १७२७ आश्वी सुषी १४ का लिखा हुआ है ।
इस प्रतिम कुल २ पद्य है । इसकी एक दूसरी प्रति इसी मन्दिरके गुटवा न
२७ में संकल्पित है । इसमें ५३ पद्य है और यह एक पूर्ण प्रति है ।

चिन्तामणिमान बाबनी एक महत्त्वपूर्ण रचना है । इसके कतिपय पद्योंमें
खटमबारी बपवाका निर्माण किया गया है । चकिनवा स्वर निर्गुणबारी शन्तोसि
निबड्डता बुरता है । उनके मध्यमें खनेबामे अलप निरंजनके प्यानकी बात बड्डोल
भी बड्डो है

‘बम्मु धम्मु सब पुग कई मर्म न कोह कहत

भकपु निरंजमु ज्ञानमब इदि तनु मध्य रहंत ।

धम्मु धम्मु जग कई मर्म नर धीका कुमर,

महा बमै तनु मध्य मोहपटक हलनि पुप मब ।

महु गुरु करा बचन पदु कजड करि संजन

दिरब बमस ब नय मुमति बंमुकि किन बंजन ।

जिम मोह परक कहइ सबक इदि प्रकाम कुरंत अति

धीमानु कई मनि अगधी हो बर्म रिछान न पदु गति ॥१५॥

सुगुर्मीप

इसकी एक प्रति उगी मन्दिरके गुटवा नं १२१में निबड्ड है । इस प्रति
लिखिके नाह हरीशचन निजा या । इसकी एक दूसरी प्रति दि नं १८३२

की लिखी हुई कि देव मन्दिर बड़ीगके मुठना नं ५४ बट्टन नं २७२ में
संरक्षित है। इसमें केवल ११ पद्य हैं। इसमें बीचकी संसारसे बिरह्य करनेकी
प्रेरणा ही मयी है। कतिपय पद्य देखिए

“दिन दिन ध्याव बटे ही रे काक
स्वीं ब्रह्मर्षी की बीर मन माहिं का रे ।
कीचो जाच डोकर लै रे काक
बिरठा वहीं समार मन माहिं का रे ॥
सोच सुगुद की मानि लै रे काक ॥१॥
बाक पनी बीचो प्याक मै रे काक
ज्वाल पनी बनमाल मन माहिं का रे ।
बुध पनी सकति मयी रे काक
करि करि बाधा रंगि मन माहिं का रे ॥भीष ३२॥
समकिय स्वीं परण्वी करो रे काक
मिष्ठा धंसि बिचारि मन माहिं का रे ।
स्वीं सुष पावै अति बध्नी रे काक
मनीहर कईच बिचारि मन माहिं का रे ॥भीष ३३॥

गुण ठापा गीत

यह गीत बीबान बनीबन्धनीके मन्दिर बयपुरके मुठना नं २० में पृ २१४
पर लिख्य है। इसमें १७ पद्य हैं जो परम विद्यामन्त्री मन्त्रिये लिखे गये हैं।
पद्यमें-से एक इस प्रकार है,

वस विद्यामन्त्र सत्यद् वद वरा
अनन्त गुणाकर संकर विचकरा ।
विचकराप श्री सिद्ध सुन्दर पाई गुण गण अल्प,
विम मोक्ष मीकने सुखि साधु कैवल्य ज्ञान प्रमाण प ।
धूमकम्त्र धूरि वद कमक गुणकई, मञ्जुपत्रत मनीहर भरप,
अनन्त श्री बर्चमान मद्य पद बाधि मनीबल सुखकर व ॥

सासबन्ध लक्ष्योदय (वि धं १ •)

इन्हीके अपनी रचनाओंमें प्राय 'सखीदय'का प्रयोग किया है। यह शक्य
कथनाम प्रणीत होता है। बीसे कालकन्द नामके कई क्षेत्र कवि हो गये हैं त्रिवर्ग-से

आत्मचन्द्र बिलोरी और आत्मचन्द्र सामन्तर्षण ठी बहुत ही प्रसिद्ध हैं। इनमें-से प्रथमका सम्बन्ध ही बुना है दूसरे अरतरमन्त्रीय शैव मठि से जिनकी गणना उग्रप्रतिष्ठ विद्वानोंमें की जाती है। उनको आठ प्रसिद्ध रचनाओंका विवेचन श्री अमरचन्द्रजी पाण्ड्यास किया है।^१ इनका रचनाकाल स १७२३ से १७७० तक माना जाता है। आत्मचन्द्र लखनोदय मंत्राटक राजा अमर्तसिंहके आश्रयमें रहते थे। अगस्तसिंहका राज्यकाल स १६८५ से स १७ ९ तक स्वीकार किया गया है।^२ आत्मचन्द्रकी प्रसिद्ध रचना 'पश्चिमी चरित का निर्माण स १७ ७ में हुआ था। यह भी अरतरमन्त्रीय थे। इनकी मुकुन्द-परम्परा जिनमाधिरवसुरि विनयसमुद्र हर्षविकास ज्ञानसमुद्र और ज्ञानराजमणिके रूपमें स्वीकार की गयी है।^३ इन्होंने अपने मुकुन्दराजमणिका अत्यधिक अष्टापूर्वक स्मरण किया है। उनको लार्जुमिरोमणि और सकल विद्या मयित कहा है।^४ लखनोदयकी विद्वत्ताके विषयमें ठी कुछ नहीं कहा जा सकता किन्तु इतना स्पष्ट है कि प्रबन्धकार्योंकी रचनामें वे निपुण थे। यद्यपि मन्त्रसमुद्रकी चौपई के अन्तमें इनको 'स्वाकरण-तक साहित्य अत्यन्तविद्वत् अस्मंकार रम जान भी' कहा गया है, किन्तु एतद् सम्बन्धी इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं होती।

'पश्चिमी चरित' 'मन्त्रसमुद्रकी चौपई' और 'गुणावली चौपई' नामसे इनकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं। इनमें-से 'पश्चिमी चरित प्रबन्ध-काम्य 'मन्त्रसमुद्रकी चौपई पण्ड-काम्य और गुणावली चौपई' एक छोट्या-ना कथा-काम्य कथा या छन्द है। तीनोंमें छन्दसता है। अस्मंकार और लखनोदय भी समुचित प्रयोग हुआ है।

पश्चिमी चरित

अरतरमन्त्रीके सूरिस्वर जितरंजके प्रसिद्ध भाषक ईशराजकी प्रेरणासे इन रचनाका निर्माण वि स १७ ७ बीच हुआ। १५ अगस्तके दिन हुआ था।^५ इनकी चार प्रतिबाना सम्बन्ध 'शैव गुर्जर कविओं में हुआ है।^६ वे क्रमस स

१ रामकाव्यमें दिल्लीके इस्लामिकीट मन्त्राधी अग्र विनीत भाग, १ १३१।

२ का ना प्र इतिहासक पत्रावली प्रकाशिक विस्तार लखना १३१।

३ शैव गुर्जर कविओं का ना १ १७ १३४।

४ सायु शोभोमणी सकल विद्यासुख नामगारे पावन श्रीज्ञानराज ठाम प्रभावई सोकलपा गुण संयुष्यारे श्री लखनोदय जिनकाव्य। वरी १७ १३० १३१वीं क्य।

५ वरी १ १३४।

६ वरी १ १३।

१७६१ १७७१ १७७३ और १८१७ की तिथि हुई है। एक बह प्रति है जिसका संक्षिप्त परिचय काशी नायटी प्रचारिणी पत्रिकाके पत्रार्थमें वैवाहिक विवरणमें संख्या १११ पर अंकित है। यह प्रति बोकुस बिडा मधुपके पण्डित मयासंकर अम्बिकाटीके पास है। इसका लिपिकाक सं १७५७ दिया हुआ है। इनमें राजा रतनसेन और पद्मावतीकी कथा है। कुछ बटनाक्रमके अतिरिक्त यह समुची कथा आदमीके पद्मावतीसे निष्ठी-मुक्ती है। इसकी भी 'नास्तिक' और ऐतिहासिक दोनों दो भागम बाँटा जा सकता है। 'काल्पनिक' कथानकमें हीरामन तोतेका प्रयोग नहीं हुआ है। रतनसेनके अग्य उपार्योति पधिवीके हीरामनको मुना है। रतनसेनकी राणीका नाम भी नायमती न होकर प्रमावती है। उसे अपने रत्नाके समान कहा गया है।^१ एक बार राजाने अन्धम भोजन न बननेकी चिन्ता मन की त्रिस्तपर प्रमावतीने क्रोधित होकर पधिवी नारीके साथ विवाह करनेकी बात कही जो स्वादिष्ट भोजन बनानेमें निपुण हुआ करती है।^२ राजाने भी ऐसी नारीको प्राप्त कर प्रमावतीके गुमानको नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा की।^३ वह बीरङ्गाव सिद्धकी कृपासे अमानक समुद्रको पार करता हुआ सिद्धकमें पहुँचा और वहाँ राजाको अपनी बीरङ्गासे प्रसन्न कर उसकी पुत्री पद्मावतीके साथ विवाह कर, कई माह बाद बिछोड़नमें बाधन जा गया। इस कथानकमें बहनाएँ तो हैं, किन्तु इनमें वही अस्मन्मन्मन्मन्मन् नहीं जा पायी है वही कि 'पद्मावती' में कही जाती है। यह कथानक मानव जीवनके अद्विक विवट है।

ऐतिहासिक नाम वीसा ही है, किन्तु यहाँ राजन और जेठल नामों से पण्डित हैं जो रतनसेनसे अग्रतम होकर अकाङ्क्षितके दरबारमें रहने लगे। उन्होंने स्वयं पद्मावतीके कपन नर्चन बाध्याहृत नहीं किया अतितु एक तोतेके मुँहसे बरबाध

१ पटराकी पद्मावती कपी रत्न समान ।

केसव गुरी न विद्यती मसो बारि न बाल ॥

का ना न व पत्रार्थों मैथिलिक निरख संख्या १११ ।

२ तब लडकी बोली निछे बी राणी मनहरि रास ।

नारी आवी काल धीजी कपी मठ झूठो बीस ॥

इने केसवी बाधा नहीं की किन्तु कपीजी बार ।

पद्माकी का परजरे नबीजी बिम भोजन है स्वाह ॥

३ रामे तो हूँ रतनती परबु पहमनि नारि

मो साठो बोके मुन्हीं जे मी रामो भाव

परबु तुरभी बहमिनी बाहुं तुझ गुमान ।

है। कंकण विद्याकर कंकणवादीकी जगह रूप-रायिका अनुमान करवानेमें कविने स्वाभाविकता नहीं है। अन्तमें अनाउहीनका आक्रमण युद्ध और रतनसेनका बन्दी होना भावि सब कुछ वैसा ही वर्णन है।

इस कथाके प्रारम्भमें ही दिया हुआ मंगलाचरण है जिसमें मगधान् विजयकी भक्ति प्रबल है।

‘श्री आहीसर प्रथम जिन अगपति क्योनि सरुण ।
निरमय पद्मवासी मसूं अकक अमन्त अपूप ॥
चरण कमरु चित्तुं नसूं बीबीस मो जिन कन्द ।
मुचदाइक सबक मणी सोबी सुरतरु कन्द ॥
मुप्रसन्न सारय सामिभी होम्पो मात हजूरि ।
हुधि बीमा मु अन बहोत प्रगट बचन पहर ॥

कविने इस कथाको नौ रसोंमें लिखा है किन्तु उसमें बार और शृंगार ही प्रधान हैं। इसीकी घोषणा करते हुए कविने कहा

‘सरस कथा नवरस सञ्चित बीर शृंगार चित्तौप ।

कहिस्तु कवित कम्बोडसु पूरब कथा सकार ॥

उन रसोंमेंसे बीर-रसका एक दृष्टान्त देखिए,

सूर कहावै सुमर सहु अपनै अपनै मल्ल

बाई पदे हुब उदर तेह कहिई बज धज ।

सामिबरम बाइक समी, हुब्द न कीई होइ,

हुधि बीता दिक्की यणी कुक उत्रियास्वा बाब ।

राणोडी छोडाबिधा राणो पद्मिमि राणी

बीइय बड़ो बाबो बसु सुमरी राधि साधि ।

बहन राज बिओइको कीयो बाइक बीर

नबटंठे बस बिस्वर्षो स्वामी बरमी रणधीर ॥

गुरु-भक्तिका एक बोधा निम्न प्रकारसे है,

‘बाठा बाठा ज्ञानबन जावराम गुरु राम

वास मसाद बकी कहु सती चरित सिरवाज ।”

मलयमुन्दरी चौपई^१

इसका लक्ष्य श्री देगाईजीने शैल गुरुवरकविओ^२में किया है। इसका निर्माण स १७४३ बनतेरसके दिन हुआ था।

१ शैल गुरुकविओ पृष्ठ २ पान ३ पृष्ठ ११८२-८३ ।

स्वप्न में ही दिया गया था। इसमें काल-द्रव्यको छोड़कर बससिद्धी थी -- जीव पुद्गल धर्म ब्रह्म और ज्ञानाद्यका निरवयव मयसे ब्रह्मन हुआ है। जहाँ तक हिन्दी कविताका सम्बन्ध है वह मध्यम कोटिकी है। श्री कामूरामजी प्रेमोत्तम लिखा है कि कविता बनारसी मदनमोहन बाबिके समान ठा मही है पर कुरी भी नहीं है। उम्हौल अपने इस कथनके समर्थनमें दो पद्य प्रस्तुत किये हैं जो निम्न प्रकार हैं

सुख सुख दीसै भागवा सुख सुख रूप न जोर ।

सुख सुख जाननहार है ज्ञान सुधारन पीर ॥ ३२१ ॥

संसार संसार में करनी करे अमार ।

सार रूप बार्ध नहीं सिध्दायन का रार ॥ ३२४ ॥

इससे ज्ञाना तो स्पष्ट ही है कि कवितामें सादसी है सरलता है और प्रवाह है।

द्रव्य सम्बन्ध भाषा

यह प्राचीन भाषाके 'द्रव्य' संघर्ष का हिन्दी पद्यानुवाद है। मूल पद्यका निर्माण श्री मैमिबन्धुशार्यसे किया था जो शैलीके प्रसिद्ध ग्रन्थ ओषकाण्ड और कर्मकाण्डके रचयिता है। 'द्रव्य संघर्ष'में छत्र इत्याका वर्णन है। यह अनुवाद अप्रकाशित है। इनकी हस्तलिखित प्रति जयपुरके बड़ मन्दिरके मुठका नं ३२ में निबद्ध है। इस मुठकेका लिखनकाल सं १७१८ मध्य वर्षी ९ है। इनसे स्पष्ट है कि यह कृति इससे पूर्व ही रची गयी होगी।

समस्यारण स्तोत्र

इसकी रचना वि सं १७११ सावन सुदी ७ बुधवारके दिन हुई थी।^१ उसकी बनमोहनसे संस्कृतका व्याख्यान प हीरायणम्हो पदके लिए किया था उसकी सहायतासे कर्णसे हिन्दीके समस्यारण-स्तोत्र की रचना की। इस शक्ति यह श्लोक 'निबलक' और पुराण-सम्बन्ध है।^२

१ हिन्दी में साहित्यका इतिहास १ ९ ।

२ एक शक्ति सनद ही सम सावन मुदि सातमि नुब रम ।

ना निन लब संपूरन भया समस्यारण बरबन परिकवा ॥

३ हीरायण समस्यारण स्तोत्र १ वां पद्य पुराणम्हो वाक्यका अतिरिक्त जयपुरकी हस्तलिखित प्रति मुठका नं ३२४ १ ३२१ ।

४ इसकी मुद्रि अगस्त्यन शर्मा साहित्यज्ञान मन्साया लये ।

इस हेतु मूल नहीं निर्मल इस जानै ही है निरसं ॥२० ॥

इसमें ३ १ पद्य हैं। इसकी प्रतिकृति कामपुर नामके नगरमें श्री विजय मूर्तिने वि सं १७ ४ में करवायी थी। यह प्रति बधपुरके बड़े मन्दिरमें सेप्टन नं १८९९ में निबटा है। एक दूसरी प्रति मूमकरनजी पाण्डपाके मन्दिर, बधपुरके गुटका नं १४४ में वर्ष २९३ से ३११ तक संरक्षित है। इसमें सम्भवतः अपनी योमाका बचन करत हुए लिखा है।

‘सत सितर नम मी छवि हन देव इति उपजावत हेत ।
 रंगमूमि तिमि साका माहिं एमी सोम और कहु माहिं ॥१०॥
 तिममें बसत अमरांगना हाव भाव विधि नारक बना ।
 अंकक चवक सोम बाहुका अबु सामा बन विधि कऊका ॥१८॥
 किंनर मुरकर बीना किच गावन मधुर मधुर हक दिसे ।
 मुनि मुनि मोहि कौदरकी सावा त्रिच सुमर मूदकी ॥ १०”

एकीमाव-स्तोत्र

यह बाहिराजमूर्तिने संस्कृत ‘एकीमाव स्तोत्र वा ब्राह्मणन केकर लिखा गया है। इसकी प्रतिया बधपुरके बड़े मन्दिरके गुटका नं ९५, २१५ और ३२ में निबटा है। नं ९५ वाक गुटकी प्रतिकृति सं १८१ की की हुई है। इससे स्पष्ट है कि इसकी रचना सं १८१ से पूर्व ही हुई होयी। भूवरवासन की एक ‘एकीमाव स्तोत्र’ बनाया वा लिखु हीराजमन्त्रका यह स्तोत्र उससे बचिब सरक सरस और प्रगाढ़पूष है।

६३ रायचन्द्र (वि सं १ १३)

रायचन्द्र नामके बनेका कवि हुए हैं। मिमकनुमाने एक रायचन्द्र नामरका बनेका दिया है, जिन्होंने ‘वीरवीरिगदासर्ष’ और कीकान्ती की रचना की थी। इनका रचनाकाल १७ के अन्तर्गत था। गुजरातीमें तीन रायचन्द्र हुए हैं जिनमें-से ‘रायचन्द्र प्येना मुचठावरक धिय्य वे। इन्होंने ‘विजय ठेक विजयराजती राव’ नामका ग्रन्थ सं १९८२ में लिखा था।^१ हमारे रायचन्द्र १९वीं शताब्दीके

इनका कारण कहि करि होर ममम पहिय बरी बडीर ।

समोमरत हन रचना मेइ अथा पुछन समन निबद ॥२९१॥

वही ३ ३११ ।

१ मिमकनु विमोह, भाग २, पृ ४२३ ।

२ गुर्जरविभा प्रथम भाग, पृ २१४ ।

पूर्वार्धमें हुए थे। उन्होंने 'समाधिपथबीसो 'गौतमस्वामी राठ' 'कछाबती चौपई' मृगसेखरी चौपई' 'मृगम चरित' आदि अनेक सुन्दर गुजरगोती काव्यों-की रचना की। तीसरे रायचन्द्र ने वे पागुबीजी जिन्हें अपने मुस्क समाग पूज्य सम्माने थे। उन्होंने 'अध्यात्मसिद्धि की रचना की थी।' इनमें-से दूसरे रायचन्द्रका उसकेक अथरचन्द्रकी नाहटान 'राजस्वानमें हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज द्वितीय भागमें भी किया है। उनकी दृष्टिमें इन्हीं रायचन्द्रमें कल्पसूत्रका हिन्दी पद्यानुवाद किया था। प्रकृत रायचन्द्र इन समीप सिद्ध है। वे हिन्दीके एक सम्प्रदायके कवि थे। उन्होंने 'तीनाचरित'की रचना वि सं १७१३ में की थी।^१ यद्यपि इस ग्रन्थका आचार आचार्य रविचोपाध्याय या किन्तु फिर भी उसमें अनेकों त्रुटि ऐसे हैं जो मौलिक हैं। भाषामें जीवन है। शीतलके चरितकी प्रमुखता भी कमी है, और उसमें नाट्ययत्न भाषाका चित्रण उत्तम रीतिसे अंकित हुआ है। जैसे भी कवियोंने कृत्योंको उपरिष्कृत करनेकी सामर्थ्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि कविको बाह्य और अन्त दोनों ही प्रकृतियोंका सुखम ज्ञान था। उसने एक ओर तो मानवके मर्मको पहचाना है और दूसरी ओर प्रकृतिकी रमणीयताको अंकित किया है। यद्यपि इसमें तुलसी-बीबी सादरता तो नहीं थी किन्तु यन्त्रीयता बीबी ही थी।

इस महाकाव्यमें ३६ ० पद्य हैं। इसकी एक प्रति श्री गंगा मन्दिरकी अर्धपुरा विश्वीके शास्त्रसङ्ग्रहमें अ ३२ न पर मौजूब है। एक दूसरी प्रति अमपुरके बड़ मन्दिरकीके मेटन नं २ १५ में लिखत है। यह प्रति सं १७०८ की सिद्धी हुई है। उपर्युक्त प्रतिमामें सबसे अधिक प्राचीन है। इसमें १९५ पद्य हैं। इसकी बर्या पूर्ण एवं सुख है। एक तीसरी प्रति इसी मन्दिरके मुद्रका नं २१९ में अंकित है। इसका रचनाकाल संवत् १७११ दिया हुआ है। इसमें कुल २५४९ पद्य हैं। एक चौथी प्रति यह है अंकित उसकेक 'मिथकानु विमोह' नाम २ की संख्या ३८९।२ पर हुआ।^२ इसमें भी रचनाकाल यह ही दिया हुआ है। इस

१. पूर्वार्धकवि, भाग १ पृ १७२।
 यह दृष्टि 'मीमांसाचन्द्र' नामके ग्रन्थमें अथ सुनी है।
 ३. अथ अथ अथ अथ अथ, अथ अथ अथ अथ अथ।
 गंगा मन्दिर, देवलीवाली प्रति।
 ४. बीबी अथ अथ अथ अथ अथ अथ अथ अथ अथ अथ।
 यह अथ अथ अथ अथ अथ अथ अथ अथ अथ अथ।
 ५. मिथकानु विमोह नाम १ पृ ४९१।

प्रतिष्ठे यह स्पष्ट है कि कविता उपमान 'बन्धु' वा । इनमें विवरणोंमें कविता रचनाकार बठारहवों शताब्दीका प्रथम पार प्रमाणित होता है । इनमें एक-दो स्वच्छ शैलियाँ

राम और आनन्दोंमें आरिभित्त गुण हैं मन्ना इनकी सामर्थ्य किछ कविमें है, जो अपनी बाकीसे इनका वर्णन कर सके । किन्तु कवि 'बन्धु' ने अपन देव गुण और वर्णनों मिर भुषाकर शक्तिचित् बहनेका प्रयत्न किया है

“राम आनन्दों गुण विस्तार कई कान कवि बचन विचार ।

देव चरम गुण कुं मिर नाव कई चंद्र उचित जग मान ॥

राजको भीतर राम हीताको भिन्न अयोध्या पुरीम जा गये हैं । रामा रामके हासनमें सभी सुधी हैं तिहाक है । स्वर्गसे समान मन्माने सुबोका उपभोग करते हैं किन्तु कोई उच्छृंखल और पापी नहीं हैं । रामरा राम् न्याय-पर आधारित है । आनन्दजन सर्वत्र रामके सुबोरो पाते हैं ।

“राजन कीं जगत राम सीया विभोता जाये

बाते सुनीत राज पक्षक सुहावनी ।

सुप में विनीत काक सुब की विभोग हाक

सब हो निहाक पाप पंथ में न आवती ॥

बाही बचमान हमी सब ही सुसुब कोक

सुरम समान सुब भोग मनभायनी ।

कोक सुपदाई मीहि सज्जन निहक्यो मीहि

सब ही सुबमी कोक राम गुण दावनी ॥”

एक महत्त्वपूर्ण प्रतिक्रिया उत्प्रेक्ष्य काशी नायके प्रचारिणी-मन्त्रिकाके बाएट्टे कोक विवरणमें हुआ है । यह प्रति बाएवरीके बौद्ध मन्त्रिकसे उपकल्प हुई थी । इनका विनि-काक सं १८१२ किया हुआ है । इसपर भी रचना संस्कृत १०११ ही पडा है । इस प्रतिमें कृक ३ पृष्ठ है । इस प्रतिमें रिमे हुए कुछ प्राणिक बोहे और बोवाइवाँ शैलियाँ,

बोहरा

“प्रमती परम पुनीत नर बरचमान विनदेव ।

कोककोक प्रक्याय तम कीं ममकिली सेव ॥ १ ॥

तस व चर गीतम प्रमुग्य बर्मबन्धु बमपात ।

त्रिवमचन भवि जन मदा विहै भोहेतम राति ॥ २ ॥

चौपाई

‘कवि वासक वह कीन्हे क्याक । हसी माठी बुचिर्बच बिलाक ॥
 राम जानकी गुन बिसार । कहै कीन कवि बचन बिचार ॥३॥
 देव चर्म गुह नू सिरवाह । कहै चन्द उलम बाग माह ॥
 पर उपकारी परम पबिच । मज्जव भाव भगत के बित ॥४॥
 पंचपरमगुह प्रथान । ए सुमिरौ उर कसल जान ॥
 जिनि कै मव धरि हो तुच्छ रहै गुह के सैन दिव जिन प्रहै ॥’

दोहा

‘पंच परमगुह की बनी मंगलीक सिबकीक ।
 भाव समान भगत कीं करै तुल्य तहकीक ॥

अन्वितम दोहा

‘जो बापी निज जानतों कहै जात परचाय ।
 जान पजस्वीं जापिये जाज पची परचाय ॥

६४ जिनहर्षे (वि स १०१३-१०१८)

बोहराबोबोय जिनहर्षसुरि और भाष्यकीय जिनहर्षसुरिसे कविबर जिनहर्षे पुक्त हैं । वे छरठरगण्डके प्रसिद्ध आचार्य जिनचन्द्रसुरिकी परम्परामें हुए थे । इनके मुक्ता नाम बाचक घान्तिहृय वा जो एक भजे हुए विद्वान् थे ।^१ जिनहर्षने जन्हीसि दिक्षा प्राप्त की थी । जिनहर्षने जन्मसे ही कविप्रय हृदय पाया था । उन्होंने पचासो स्तुति-स्तवन रास और छन्दोंकी रचना की है । इनकी कृतिबोमें रास है । सामय इसी कारण इनको अपने सम्मम ही कविबर कहा जाने लगा था । इनकी ‘जिनराज’ भी कहते हैं । उन्होंने इस नामके आचारपर ही ‘जिनराज-बावनी’ की रचना की थी । इनका पुत्रराठी और हिन्दी दोनों भाषाबोपर समानाधिकार था । आज इनकी बनेको हिन्दी रचनाएँ भी उपलब्ध हैं । वे रामु से और मुम्ते

१ जो गण्ड छरठर बीपनो गण्डराज की जिनचन्द्र
 सुरिस सुरि सिरोमची बई रास गरिद ।
 बाचनाचारिज बरन बारिज भाय बचन बिकास
 भी घान्तिहृय बाचक ठेच जिनहर्षे बीयो रास ॥
 रत्नोत्तर रागनी रास प्रदलि सैन पुत्ररुचिपो, कवर २ भाग ३
 ६ २१०० ।

रहना ही उनका काम था किन्तु ठहर भी वे पाठ्यक्रम अधिक रहे। उनका अन्तिम वाक्य तो विद्येय रूपमें बर्दाश्त ही होता।

कविधरका स्वनिस्तम्भ मोहक और आकर्षक था। उनमें अनेकों ऐसे तद्बुद्ध के जिनके कारण उनकी लोक-प्रियता बहुत अधिक बढ़ गयी थी। बौद्धधर्म-सम्बन्धी घुसट्टिमाणा और नियम-उपनिषयोंका वे कठोरतासे पाठन करते थे। श्लेष तो उन्होंने अपने जीवनमें कभी लिखीपर नहीं किया। सरकटा ही उनका जीवन था। उनके हृदयमें किसीके प्रति उप-श्लेषका भाव नहीं था। धैर्य और समझके साथ उन्होंने पंच महावर्तोंका पाठन किया था। सामु बही है जिसके हृदयमें समता-रस उत्पन्न हो गया हो। जिसके समता-भावकी कल्याणिकता सब युवमें ही बहने लगी थी। उनका सबसे बड़ा काम यज्ञ मन्त्रका रचना था जिसके आधार रूपमें उन्होंने 'सत्यविजयमन्त्रात् पठ' की रचना की थी वह प्रकाशित हो चुका है। उनके इस तद्बुद्धसे उपामन्त्रीय बुद्धिविजयकी बहुत अधिक प्रशंसा है। अन्तिम समयमें जब कि कविधरकी म्याधि उत्पन्न हुई तो बुद्धिविजयमें ही उनकी अधिकसे अधिक सेवा की थी। अन्तिम आराधना भी उन्होंने करवायी। कविधरके मन्त्रोंमें भी उनकी अन्तिम विद्या (माण्डवी रच नादि) मन्त्र-पूर्वक ही सम्पन्न की। कविधर की अन्तिम वधास पंचपरमेष्ठीका म्याल करते हुए ही निवृत्ती।

जिनहर्षकी रचनाओंका संक्षिप्त परिचय 'बौद्ध पुर्वरकविधर' में प्रकाशित हो चुका है।^१ इसके अनिश्चित और भी कई कृतियों की गणनाकीने प्राप्त हुई है।^२ राजस्थानके बौद्ध धारणधर्मशास्त्री प्रो. सुधिरसिंह की इनकी अन्तिम हिन्दी रचनाओंका पद्य रूप है। 'राजस्थानमें हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज भाग ४ में भी इनकी कुछ कृतिवादा विवरण दिया है। कविधर जिनहर्षकी स्वर्णकी हस्त-लिपिका एक किन 'ऐतिहासिक बौद्ध काव्य संग्रह' में प्रकाशित हुआ है।^३

असुरास बाधनी

इसकी रचना सं १७३८ अगस्त की ७ सुन्दारके दिन हुई थी।^४ इसकी

१ कविधरके इन कृतियोंका विवरण 'कवीन्द्र' के 'अन्तिम जिनहर्षकी' में दिया है। इनके दो बौद्ध ऐतिहासिक बौद्ध काव्य संग्रहों में हैं २२१-२२२ पर मिलते हैं।

२ बौद्ध पुर्वरकविधर पद्य २ भाग २ पृष्ठ ११४४-११४५ और भाग २, पृष्ठ १-११६।

३ ऐतिहासिक बौद्ध काव्य संग्रह पृ २२।

४ वही पृ २२ और २२ के बीचों।

५ असास बाधनी काव्य २७वाँ पद्य, राजस्थानमें हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज भाग ४ पृ ४२।

एक प्रति संवत् १८५९ की लिखी हुई समय जैतपुरवाक्य बीकानेरमें मौजूद है। यह प्रति भी प्रठानसामरके पढ़नेके लिए कोटड़ीमें लिखी गयी थी। इसमें १६ पन्ने हैं किन्तु बावनी केवल अन्तिम तीन पन्नोंपर ही अंकित है। इसमें कुल ५७ सवैया है। एक दूसरी प्रतिका उल्लेख शैल मुर्जरकविजोमें हुआ है। यह प्रति पण्डित जीवविजयके शिष्य अरविजयजी लिखी हुई है।^१ प्रारम्भमें ही 'अंश' का आहात्म्य बतलते हुए कवि कहता है

“अंश अवार जात आचार सबै नर नारी संसार अप है।

बाचन अक्षर मन्त्रि पुस्तक ज्योति प्रचोतन कोटि लये है।

सिद्ध निर्वचन भक्त अकेल सकन न क्य बीगंत्तु पये है।

ऐसा महात्म है अंशर की पाप जसा जाके नाम लप है ॥ १ ॥

कविकी बनने धर्ममें अटक मझा है। वह धर्मको छोड़कर अधर्मको स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं है। धर्मको त्याग कर अधर्मको सेना देने ही है। जैसे बिलामणिकी छोड़कर पत्थर ग्रहण करना और वामनेतुकी छोड़कर बकरी स्वीकार करना।

“नग किन्तामणि कारिक बरबर जाड ग्रहें नर मूरख सार्हें।

सुहर पात्र पदंबर अंबर छोरिकें ज्योडन फल है कीर्हें ॥

कामरूपा घरयें अ विहार के छेरि गईं मतिमद बि कोर्हें।

धर्म के छोर अधर्म की असराज बनें निज बुद्धि बिगोर्हें ॥ २ ॥”

सन्ध-परम्पराकी मौलि कवि भी आझाबम्बरोव विरोधमें है। उसकी दृष्टिमें शिर मुझना बड़ा भारव करना हाथसे सेवताव करना दिग्भ्रमर रहता घटीर पर अहम रमाता और पंचांगि लप लपना सब कुछ अर्थ है। ऐसा करने-मात्रसे मोक्ष प्राप्य नहीं हो सकता। मोक्षके लिए ज्ञान अनिवार्य है

‘कोर सुनीम सुँहावठ हैं केहू अंन बडा मिर केई रहारें।

लूचन हाप लू केई करे रहै मूख दिग्भ्रमर केहू क्यारें ॥

राखसूँ कई करेह रहैं केहू अग पंचांगि माहैं तपारें।

कच करे असराज बहुन पे खान बिना शिख बंध न पारें ॥ ५६ ॥”

उपदेश-छप्तीसी

इसकी रचना अक्टू १७१६ में हुई थी। इसकी एक प्रति अमर जैत पुरवाक्य लय बीकानेरमें मौजूद है।^२ एक दूसरी प्रति यह है जिनका उल्लेख जैत मुजर

१ जैत मुजरकविता, भाग २ पृष्ठ ११६।

२ राजस्थानमें दिल्लीके इन्सपेक्टिज अन्वेषी राज भाग ४ पृष्ठ ११।

कविजो'म हुआ है। इनमें केवल १५ पद्य हैं। इसका प्रारम्भ ही मन्वान् विद्वत्
की स्तुतिसे किया गया है। संसारके नाया-भोदसे मनको हटाकर धनवान् विद्वत्
के चरणोंमें समर्पण कर देनेका उपदेश इस काव्यमें दिया गया है। ऐसा अनेक
वक्त कविवरने किया है। स्पष्ट रूपसे ही यह उपदेश दत्त और सिद्धान्तके
उपरोपसे पुनः मला जायेगा। इसका आरम्भिक पद्य देखिए

‘सकल सस्य नामें प्रमुखा भव्य भूप
रूप छाया माया है न केन जगद्गाम ॥
पुण्य है न पाप है न शीक है न तार है
जाय क प्रजा प्रगटै करम अनीस ॥
ज्ञान के अंगज पुंज सुख दुख का मिहुंज
अनिनाय श्रीराम अह बखन ऐंठीस ॥
ऐसी विनराज विनहरम प्रजमि
उपरस की छनीसी कहुं सबहुन छनीस ॥

बाबासी

इसमें बीबीस टीककराणी स्तुति हैं। कुल २५ पद्य हैं। पद्य चारोंमें जिनमें
बड़े हैं। अर्थात् इनका स्वर लंबीघारमत्त है। इसकी एक प्रति सं १७९९ माघ
बही १ की किली हुई अमल जैन ग्रन्थालयम मीरूर है। इस प्रतिमें पण्डित
भुवनविद्याल भुनिने मारोटमें लिखा था। प्रारम्भमें ही मन्वान् आदिमाकरी
मन्निन किया गया एक यह देखिए जो कि ‘राय कवित’में लिखत हुआ है

“इन्का अक्षम विन्दु तब तेरे पाणिक दूरे पयो,
प्रथम विन्दु चंद्र ककि मूर-तट कंद। सेवे मूर बर इंद्र आर्षद भयी ॥१३६॥
आके महिमा कीरति सार बसिह बर्षी संसार कोऊ न कहत पार अयत्र भयी।
पंचम अरिमें धाम बारी श्रौति विनराज भन सिंधुकी विद्या अमि है उची ॥२३६॥
बन्ना अनुत्त कम मोहिनी कवि अय्य चरम की छापी भूप प्रभु जो अची।
कई विन इरचित बखन मार विरमिन सुख भन बरमत इति उच्यो ॥३३६॥

कविता यह कुछ विरथाप है कि जो भक्ति-आकृष्टिक बीबीसी टीककराणीकी
श्रीनिवा पाग करता है। उसे ही प्रकारकी निचियां उपलब्ध हो जाती हैं। मन्वान्
वस्तुतः समान है। एक छात्रने भी यही प्रत्यक्ष मानना कभीसूत होती है।
बीबीसी मन्वान् मुक्त प्रदान करलेवाके है

१ कैम गुर्जरविभो कवच २, भाग १ पृ ११७७।

२ राजस्थानमें दिल्लीके इन्वैरिडिग प्रबोधी कोम मय ४ पृ १२१।

जिनपर चतुर्षीस सुखदाई

भाष मयति धरि निज मनि बिरहरि कीरति मन सुख गाई ॥१॥मि ॥

जाक नाम कल्पवृक्ष समबर प्रणमति नव निधि पाई ।

चौषीस पद चतुर गाईसो राग बंध चतुराई ॥२॥मि ॥

धी सोमगनि सुपसाठ पाइके, निरमक मति डर आई,

धाम्नि हरप जिन हरप नाम तैं होवत मसुबर दाई ॥३॥मि ॥”

नेमि-राजीमठा बारहमास सचैया

इसके सभी पद्योंमें ‘बिनहृषी’के स्थानपर ‘बनराज’का प्रयोग किया गया है । इसमें भगवान् ललिताब और राजोमठीवर प्रसिद्ध कपातक है ।

यह एक छोटा-सा बिरह काव्य है । इसमें धीरिक रामके सहारे बकौफिक रामका विवेचन हुआ है । इसे हम रामानुजा मल्लिका ही ब्रूट्यान्त कह सकते हैं । इसमें कुल १३ पद्य हैं । इनकी एक प्रति बम्बे जैन ग्रन्थालय भीकानेरमें मौजूब है ।^१ दूसरी प्रति यह है जिसका सम्बन्ध बैसाईजीने किया है । उस किन्हीं परिचित बिनबचम्बने सं १७९३ आयाङ्क पुरी १ की अंतकमेरमें लिखा था ।^२ इसका भादि और अन्त देखिए,

“सावन मास बना बन बास आबास में कैकि कर नर नारी ।

चादुर मार पयोहा रहे कहा कैस करे निद्रि और नमारी ॥

बोज सिक्कामक होई रही किम जात सही समसेर समारी ।

भाइ मिक्की असराज कह नेम रातक ई रति कागें बुझारो ॥१॥

अन्त

“रातक राजकुमारी निवारि के संयम नाथ के हाव गझी है ।

बंध समिति तीन गुणति घरा निज बित्त में कम समूह द्यो है ॥

राग द्वेष मोह मावा नई उरम्बक केवक छान कळी है ।

बम्बति जाइ बसें शिव गौह में मेह सरा असराज कयो है ॥३३॥”

नेमि-बारहमासा

यह एक दूधरा बारहमासा है जिसका विषय भी बही है । इसकी एक प्रति जिनवत्त सरस्वतीप्रधानर बम्बईमें मौजूब है । इसको किन्हीं मुनि बचयसूरिने

१ पृ ४ १६१ ।

२ जैन गुर्जरविद्या, पृष्ठ २, भाग १ पृ ११ ।

लिखा था।^१ दूसरी प्रति अजय बीनप्रवाह्यमें है। दोनों ही १२ पदों की हैं।^२ पद्योंमें श्लोक है और आत्मपथ। इसके दो पद्योंमें देखिए

‘बन की बनबोर बटा उबहीं बिठुरी बमरंति सखाइकि-सी।
बिधि पात्र अपात्र अपात्र करत सु कागत मो बिषयेकि तिसी ॥
पपीया पीठ पीठ रतत रचन सु, राहुर मोर बरै ऊकिसी।
देसे आचन में बनु बेमि भिकै सुख होत कइ कसराज रिसी ॥१४”

अन्त

‘प्रगटे मम बाहर आहर होत बना बन आचन आकी लखी है।
काम की बेचन मोहि सखाई आबाह में बेमि बिचोय दखी है।
राहुक संवम के के सुमति गई निज कल्प मनाच कपो है।
बौरि के हाथ कई अमराज बेमीसर साहिब सिद्ध अपी है ॥१५”

सिद्धचक्र स्तवन

इसकी एक हस्तलिखित प्रति जयपुरके बनीचन्द्रजीके मन्दिरमें विराजमान पृष्ठा नं ११९ वेष्टम नं ११५५ में लिखी है। कृति सिद्धचक्रकी मन्दिरे सम्बन्धित है। कतिपय पद्य देखिए

सूर्यप्रहरण तम तिमर देव देवासुर खेपर बिद्विष सेव।
सेवामयन मय राव पाव पावसिद पनामहकच पलाच ॥१६॥
सावर धम समवा मय निवास वासव गुण घोषर गुण विवाध।
कानुजक अंजक सीक कोक कीकाच बिद्विष मोहाचहीक ॥१७॥

बार्धनाथ नीसाणी

यह स्तुति महाबोरकी बलिष्ठत सेवके घास्यगण्डारमें एक प्राचीन मुद्रके में पृ १३४ पर लिखी हुई है। इसमें २९ पद्य हैं। पद्यमें सरसता और परिष्कृता है। प्रारम्भके दो पद्य इस प्रकार हैं,

‘सुख क्षपति हाचक सुरवरनाचक वरतण्य पाव निबंदा है।
आकी कवि अंति अनोपम अपम दीपत आनि विबंदा है ॥
सुख कोति क्षिणागत क्षिणागत क्षिमि पूरन चंदा है।
अप कन सक्य बचान्ने पूव सो दू ही तिसुवन महा है ॥१४॥

१ गरी दू ११०१।

२. रामलालमें लिखीके हस्तलिखित सम्बोधन श्लोक, नाम ४ दू १५२।

कहना हम सागर जागर काक सबै मिकि कल्प पुष्पदा है
 योरी पित्रमति करै हकबित्त सुसेवक ती भरजिदा है ।
 है बकटी भागि निकल्पना भाग किया बम्माग सुरदा है
 तो बरबां भाग रखा कपटी हकका भवि केकि करदा है ॥२३॥

शैलिक चरित्र

महापद्म शैलिक भगवान् महावीरके परम भक्त थे । जीर्णके अनेकों ग्रन्थ शैलिकके प्रशंसने आरम्भ हुए हैं । कर्णोका चरित्र इस काव्यमें अंकित है । इसकी मुखना हिन्दी जीवन साहित्यके इतिहासमें अंकित है । इसकी रचना सं० १७२४ में हुई थी ।

अपिदा चौपई

यह चौपई बाबू जामठाप्रतापजी जीवके संग्रहमें मौजूद है ।^१ इसमें कुल ३२ पद्य हैं । इसका आवि और अन्त देखिए

“अहापद् श्री आवि जिनद् रंवा बाहुपुत्र जिनकर ।
 पावा सुपति गवा महावीर अवर नैमि पिरवार सपीर ॥३३॥

अन्त

‘अन्तम बमला कहीच पार गुल गूहला कहीच विस्तार ।
 आहने दूर कर्मबी कीद करै जिनहर्ष बसूं कर और ॥३२॥

मगल गीत

इसकी एक प्रति बयपुरके लूणकरजीके घरमें बिराजमान गुटका नं ८१ में संरक्षित है । यह गुटका सं १८ का लिखा हुआ है ।

६५ अचलकीर्ति (वि० सं १ १५)

अचलकीर्तिके पारिवारिक जीवन और मुक्त-परम्परा आदिके विषयमें कुछ भी विदित नहीं है । इनकी अठारहनाते नामक पुस्तकमें देवक इत्यादि ही नामों से उल्लेख है कि वे छिरोबाबाके रखनेवाके थे । वे महारक से और महारकीक

१ हिन्दी जीवन साहित्यका संक्षिप्त इतिहास, पृ १९ ।

२ लहर छिरोबाबा में ही नाम की चौपाई ।

बार बार सबकी बहो ही लीची धर्म विचार ॥

परम्परामें ही उनकी धिमा-सीसा हुई थी। उनका 'विपापहार स्तोत्र' बौद्ध समाज-में बहुत ही प्रसिद्ध है। अभी उनकी एक और रचना 'कर्मबत्तीसी' भी प्राप्त हुई है। इसके अनिश्चित उनकी रची हुई 'रविचन्द्रका' 'विन्धीके पंचायती' मन्दिरके मण्डारमें सुरक्षित है। यह सुनिश्चित है कि 'अक्षयकीर्ति' अक्षररूपी अक्षरोंके कवि थे। उनकी एक-दो रचनाओंके काव्य-संबन्धसे ऐसा स्पष्ट भी है। वे एक अच्छे कवि थे। उनकी कविता उनके अल्पहृदयका निरर्घन है। भाषामें सरलता और प्रवाह है। 'विपापहार स्तोत्र' को भक्ति-रसका प्रधान काव्य माना जाता है। 'कर्मघण्टी' भी उनकी कृति है।

विपापहार स्तोत्र

इस स्तोत्रकी रचना नारसीधरमें दि सं १७१५ में हुई थी। वैकुण्ठ विष्णु मैनपुरीकी एक प्रतिमें इनका निर्मात्र-संबन्ध 'पन्नासी मन्ना सुम बाग। बरौ प्यनुन सुरी शौचत बाग। दिया हुआ है' को कि अणु है। काशी नागरी प्रचारिणी परिषदके सं १९ के विवरणमें इनके रचना संबंधी अनेक 'तमहरे पन्ना सुमबाग। नारसीधर तिथि शौचनि बाग' कर्ममें हुआ है। मैनपुरीके बौद्ध बनीचन्द्रकीके दिनम्बर बौद्ध मन्दिरमें स्थित इसकी एक प्रतिपर भी रचना-संबन्ध १७१५ ही दिया हुआ है। दि बौद्ध मन्दिर बनीचन्द्रके वैष्णव में १७२ मुद्रक में ५७ में भी पृ ३२ पर एक हस्तलिखित प्रति निबद्ध है। इसमें रचना सं १७१५ दिया हुआ है।

संस्कृतमें महाकवि वर्तमानमें 'विपापहार स्तोत्र' की रचना की थी। यह एक प्रौढ रचना थी और आज भी इसकी स्मृति है। हिन्दीमें इसके अनुकरणपर अनेकानेक विपापहारकी रचना हुई किन्तु किसी सरलता कोई न ला सका। कवि शान्तिदान और बनीचन्द्रके 'विपापहार स्तोत्र' को बूझ-जाठन-से प्रशंसित होते हैं। इनमें कविता हृदय नहीं रम पाया है। यदि हृदय रमे तो मुठना घाव भी बसन्तकी बाँधि नये रूपमें अहंका पठना है। परम्परा-शास्त्रके लिए दिया गया कोई भी काम स्वाभाविक नहीं ही बनना।

अक्षयकीर्तिका 'विपापहार स्तोत्र' भी वर्तमानमें अनुप्रासित है किन्तु इन अक्षरों 'मन्ना-मर' नहीं बन सकते। मन्नाकी भाव-सम्पत्ता और अक्षयकीर्ति

काम मन्नाकी भी मुन विप चनुर मुमान ॥५८॥

दिनम्बर बौद्ध बनीचन्द्रकी मन्दिर विन्धीकी हस्तलिखित प्रति।

१. सेठ बनीचन्द्रकी दि नेर मन्दिर, मैनपुरीके मुद्रक में १ और वैष्णव में

१. २। यह मुद्रक विष्णुचन्द्र सं १७१५ दिया हुआ है।

गवीनगाने जमे सरस और मौकिक बना दिया है। आराध्यकी महिमासे सम्बन्धित कविपद्य पद्य देखिए^१

‘ममुञ्जी पतित बचारन जाड भाई गहई की ध्याव विवाहु ।

बहां रेपो तहां तुमही धाय बट बट जोति रहो बहराय ॥१९॥

मसम ब्याय ममन्तयत्र की भाई, संमो स्तुत जिन अस्तुति कई ।

गई ब्याधि विमक मति भाई तहां मान्यत तुम सुय लई ॥२०॥’

कर्म-बत्तीसी^२

इसकी रचना पावानगरमें संवत् १७७७ म हुई थी। इसमें पावानगर और बीरसंबका भी बयान है। इनमें बड़े ही सरस रूपसे कर्मोंके प्रभावकी बात कही गयी है। कुल ३५ पद्य हैं। भाषामें प्रवाह और सरलता है।

अठारह नाठे

इसका निर्माण किरोवाबायमें किया गया था। हो सकता है कि महारकीय पत्रपर प्रतिष्ठित होनेके पूर्व ही अक्षरकीर्तिले इसको बनाया हो। इसमें बहु प्रीढ़ता नहीं है जो जनकी अल्प रचनाओंमें पायी जाती है। इसकी एक प्रति श्री वीन पंचायती मन्दिर दिल्लीमें सुरक्षित है। वीन-गरम्परमें अठारह नाठोकी कथाका प्रचलन बहुत पुराना है। अक्षरकीर्तिले भी किसी संस्कृत कथासे ही इसका कथानक किया था।

रवि-व्रत कथा

इसकी बनावी हुई ‘रवि-व्रतकथा श्री उपर्युक्त मन्दिरके सारनभण्डारमें ही सुरक्षित है। उसपर रचना-संघत् १७१७ दिया हुआ है।

धर्म रासो

इसकी रचना वि सं १७२३ में हुई थी। वि सं १७२९ की किन्ही हुई एक प्रति महाबीरजी अदित्य खेनके सारनभण्डारमें मौजूब है।

पद्य

अक्षरकीर्तिले अनेक भक्ति-परक पदाका निर्माण किया था। एक सरस पद्य लूनकरवजी पाण्डया मन्दिर जयपुरके गुटका न ११४ पन् १७२-७३ पर अंकित है। कविपद्य पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

१ वि वीन मन्दिर, वजीरवादी इलाकिलिखित प्रति।

२ गुटका नं १ गेटन नं ३२७ लकीनप्रदीक्षा मन्दिर, जयपुर।

काहा बड़ कैय तिरहं भवसागर भारी ॥ डेक ॥

माया मोह मगन भयो महा बिकक बिकारी ॥ काहा ॥१॥

मत्र हस्ती मद् घाट सुमन-सा मंजारी ।

बिन बीठा मित्र सोव ज्यु अनिबक बड़कसी ॥ काहा ॥२॥

बाधा लन पकन यना, सुबि सुबि न बिचारी ।

बेतन बिनि नहिं बेतना सुबि बहीं सु बिचारी ॥३॥

भव कवा गति या बीच बी तीन्हीं पन हापी ।

अचककीरति आचार है प्रभु सलन तुम्हारी ॥४॥

अचककीरति का एक 'पायु' दि केन मन्दिर बड़ेठने एक परनप्रहमें बी
बेहन न ४ ५ में लिखत है पृ ३२ पर अंकित है ।

'उक्त वाक्य कागै हो हो होरी सब मिनि अग मुहावनी

हो बेकत ई नर नारि ॥५॥

छोडि गयो महा सोचरी प्यारी आप बखो निर नारि ॥६॥

हौं बिन बाहिर बीनरि बडी हो बिच सम ई गूढ वास ।

पिच दुख कने न बीसक हो अच मत्र भयो ई उदास ॥७॥

हौं तुमक सुगक मिनि पक ही हो अनीर गुकाक उदाह ।

बेमिर्बर दरसन करि प्यारै बाभोगे अचम वास ॥८॥

हौं सर्षी सदित राजमती बाकी छोडि मकक सिंगार ।

नमि कंवर बिन काचके हो निचो ई संजम मार ॥९॥

अनम मरन भय बीति कै हो बेकत सुकति मंजारी ।

अचककारि बी पी कई ही मैरी आवायमन निवारि ॥१०॥

६६ रामचन्द्र (वि सं १७२०-१७५)

ये कच्छराण्डके प्रधान श्री त्रिनित्तहमुरिदासकी छिप्य-परम्परामें से । श्री
त्रिनित्तहमुरिके छिप्य पदकीति थीरहु विद्याबोमें पारफन और बायें बेरोमें
लिखात से । इनके श्री छिप्य परम्परकी विद्वत्ता और मुद्रणशास्त्रा बायें और सब
रचना हुआ था । लोग उनकी महिमाके पीठ नापी फिरते से । इनकी छिप्य श्री
रामचन्द्र से ।

१ श्री त्रिनित्तहमुरि मुद्रणकी काम अर्थ नम नुर नर नारी ।

बाकी छिप्य सिरोमय बहिनै पदकीति मुद्रण अनु कहीये ॥२२॥

'मिथवन्धुविनोद' में इनका संकेत 'रामचन्द्र साकी बनारसवाकै' कहकर हुआ है किन्तु न तो ये बनारसके रहनेवाले थे और न इनका उपनाम ही 'साकी' था। ये साधु थे जो भूमते ही रहते थे। जो सकता है कि कभी बनारस भी गये हों। 'साकी' संकी का विपदा हुआ रूप है। इन्होंने रामविनोद की अन्तिम प्रसक्तिमें लिखा है, 'उत्तर दिशि सुरसाग री बासु देस प्रथम। सखक भूमि रै सखदा सक्की सहर सुम बाज।' इनका अर्थ है कि उत्तर विद्याम कुण्डसाग देसके अन्तर्गत बासु नामका प्रदेश या जिसका संकी^१ प्रसिद्ध नगर था। वहाँ पानीको कोई कमी नहीं थी भूमि हरी भरी थी। स्थान सुम माना जाता था। कविने लिखा है कि उस समय वही बीरमनेवका राज्य था। उसन धासनकी प्रशंसा की है। वहाँ सुख और शान्ति थी। रामचन्द्रने उही नगरमें 'रामविनोद' का निर्माण किया था। वहाँ भी ये भूमते-भूमते ही पहुँचे होंगे। इनके मूक निवास स्थानके विषयमें निम्नवर्णक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। रामकहाबुर बासु हीरासाठ थी ए कटनीने इसकी मायापर राजस्वानीके विशेष प्रभावकी देवकर इनकी राजपूतानवा रहनेवासा बोधित किया है।^२ श्री अक्षरचन्द्रकी नाहटाने की इनके अन्तर्पर राजस्वानीके प्रभावकी बात स्वीकार की है।^३

ये जिस वाक्याके साधु थे वह विद्वत्ता साधुता और कविता दोनों ही ने किए प्रतिष्ठ रही है। जिनमिहूरिका ठी अक्षर और सखीम शोभा ही न सम्मान किया

विद्या अपार इस कंठ बखारों बंद अपार को अरब विद्याने
 पदरंग मुनिवर सुखवाई महिमा जानी कही न आई ॥९३॥
 रामचन्द्र मुनि इन परिधाक्यौ सामुद्रिक माया करि शक्यौ।
 वा लयि रहिज्यो सुरि थी बंधा पडहु पंडित महु बागंदा ॥९४॥
 सामुद्रिक माया, प्रशंसि, राजस्थानमें दिग्दीने हल्लितियि प्रभाकी योग मान
 २, पृ ११४-११५।

१ मिथवन्धु विनोद भाग २ पृ ४१२, लक्ष्मी ४१२।

२ सैन पुर्वरकविता पत्र २ भाग १ लक्ष्मी १०४ पर रामविनोदकी प्रशंसि पृ ११२०।

३ मरदानो अक्ष महाकवी अक्षरंग साहि नरद
 ताप राजमे हर्षमुं रक्यो दास्य जानंद ॥ १० ॥
 वरी।

४ का मा प्र पत्रिका लोकोपलक्षण, भाग ५, पृ ४१०।

५ राजस्थानमें दिग्दीने हल्लितियि प्रभाकी योग भाग २, पृ ११२।

रचनाएँ

सन्धान शैल्युपर 'रामविनोद' और 'शैलविनोद' तथा श्योतिषपर सामुद्रिक-भाषा का निर्माण किया था। 'रामविनोद'की रचना वि सं १७२ मय-सिर सुदी १३ बुधवारको सक्रीतनरमें हुई थी। यह ग्रन्थ अक्षरान्ते लघु पुस्तक है। 'शैलविनोद'का निर्माण वि सं १७२९ वैशाख शुक्ला १५ को मारोत्थ हुआ था। यह सारनवरका भाषानुवाद है। इस ग्रन्थके अन्तमें कविकुल वर्धन चौपाई की हुई है।^१ किन्तु उससे पारिवारिक जीवनका कुछ भी पता नहीं चलता उसका सम्बन्ध पुन पुनकोकी प्रशस्तिस है। 'सामुद्रिक-भाषा की रचना वि सं १७२२ माघ कृष्ण पक्ष ९ को मेहरामें हुई थी। मेहरा पंचावस विद्यस्या गरीके दिनार बसा हुआ सुन्दर स्थान था। उसमें नारा वर्ध सुखपूर्वक रहने थे। वहाँ उस औरंगजेबका राज्य था जिसकी बड़े-बड़े बारछाह सेवा किया करते थे।^२ इसकी प्रति जिनहर्षसुरिमण्डारमें मौजूद है, जिसका अस्त्रेण पी अपरचन्द्रजी नाहृतान किया है।^३

रामचन्द्रने काम्यसम्बन्धी चार ग्रन्थोंकी रचना की थी जिनमें तीन स्तवन और एक अरिभगम्बन्धी चौपाई है। कतिपय पर भी प्राप्त होते हैं। सम्मेशधिसर स्तवन सं १७५ में बना था। इसमें शैवोंके प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र सम्मेशधिसरकी स्तुति की गयी है। सम्मेशधिसरसे शैवोंके २ तीर्थक्षेत्रका निर्माण हुआ है। उसकी पवित्रताको समीग मुक्त-अच्छे स्वोकार किया है।

'शैवान्तर आदिनाथ स्तवन की रचना वि सं १७३ अठ सुदी १३ को हुई थी। इसमें शैवान्तरस्थ आदिनाथ प्रभुकी मूर्तिको अटय बनाकर हृदयव कतिपय पदगाराना स्पष्टीकरण हुआ है। आदिनाथ शैवोंके प्रथम तीर्थक्षेत्र शृणुपदेवको कहते हैं।

वसुधवन्ध्याव ना निर्माण वि सं १७२१ पीप सुदी १ को हुआ था।

१ रामस्वाम्ये शिरीके हलादिदिन प्रथोपी श्येव भाग २ पृ ३१ ३२।

२ बनबापी बहु बाप प्रदान बड़े विद्यस्था गरी सुवान।

अथार वर्ध तिरा अगुर मुजान अपर मेहरा थी मुग प्रवान ॥

बड़े बड़े पानिमाह गरिवा जारी सब करे जन बन्दा।

पानिमाह थी नारंग नाजी वय गनीब बसी विस भास थी ॥८९॥

साहस्रिकभाषा प्रसन्नि, वेदिर वी ६० १९४।

३ बरी, पृ १९३।

इसके एक प्रतिभा लक्ष्मण 'शैव पुनरुत्थितो' में भी हुआ है।^१ यह प्रति भाविक मन्त्राके पङ्क्तिके लिए भी गयी थी। इसमें कुल ३३ पद्य हैं।

'मूलदेव चौपद' को रचना सं १७११ प्लान्गुलमे नष्टहटमें हुई थी। यह एक ऐतिहासिक काव्य है। इसमें किन्हीं मूलदेवका बचन है। इसकी एक प्रतिभा लक्ष्मण दो रेसाईनीन बिना है।^२ 'मिमबन्धु-विनोद'न इनके द्वारा रचित मन्त्र-चरित्र भी भी बात कही गयी है।^३

रामचन्द्रके कतिपय पद्य वि शैव मन्त्रि बङ्गोके पदार्थग्रह ५८ में निबद्ध हैं। उनमें मन्त्र ह्रस्वका प्रस्तुतन ता है ही। लाभिय और कल्पना भी है। बहि नोई मन्त्र आराध्यके चरन-बमलोक प्रतापसे स्वयंकी भाव सके अपूर्व बल तथा परम मुक्त प्राप्त कर ले तो बलपुत्रि बना है। अबतक पठना इच्छेव सिद्धा नहीं था वह मन्त्र भवमें सटपटा फिरा अब भटारनैनी बना भावव्यवस्था है,

'अथ शिवरात्रि मिकिया गुणगणधर सुन्दर अनूप ।
अथकी मन्त्र कथो नदि प्रभु की गति गति में अति रुचिवा ।
विद्या मोह गई अथ ही मन्त्र एवाव अपूरव पुकिवा ॥
हरसन करि नित्र हरसन पावो सुख सत्तादिक मिदिवा ।
चरन कमल पूजव विरावा कदि एक कई सुनि सिद्धवा ।
रामचन्द्र गुण बलवत ही सकल पाप इकि चकिवा।"^४

आदि प्रभु शिवमदेव बचन कहे होकर उन साध रहे हैं। इनका एकत्र बन प्राप्त दृष्टि बलौकिक मुक्तकान अपूर्व लया विधेर रही है। यह मन्त्र ही बना जो ऐसे कपके वर्णन और वर्णनमें रूप न सके

"कदि शिव आदि देरै, सुर गण अग बंदित्र समूव ।
अकल संग लवि अजबत् बन में अगन किदातम पेरै ।
नासा अवाल लड़े कर कदि अवासन देन विसरै ॥
अन्त अकाम मास बड मोहन और अकल भू केरै ।
बसं तीर्थेकर न्य कर करारि दामी की कर परै ।
रामचन्द्र अति दामी कई सुररतन वृदि करि देरै।"^५

१ शैव पुनरुत्थितो नाम इ इ ७-८ ।

२ कही, कबड २, नाम इ इ १२१६ ।

३ मिमबन्धु विनोद नाम २, इ ४९६ ।

४ पलनाग्र ५ प २२, वि शैव मन्त्रि, बङ्गो ।

५ कही ।

रामचन्द्रने सतमुखी मन्दिमें भी अनेक पदोंका निर्माण किया । वे सभी सरस हैं । उनमें प्रसाद युग है । उपयुक्त 'पर लघुहर्म' उनका भी सङ्केत है ।

६७ जोधराज गोधीका (वि० सं० १०२१)

गोधीका दुर्गाहड देराके मुख्य नगर सापानेरके निवासी थे । उन्होंने लिखा है कि मैंने सहासों नवनोंको देखा है । किन्तु उसके समान और कोई नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि सागानर वास्तवमें एक प्रसिद्ध स्थान था वहाँपर ही अनेकों जीवन-कवि उत्पन्न हुए थे । यह एक साहित्यिक केन्द्र था । जोधराजके पिताका नाम जमरराज अथवा जमरतिहू था । वे वातिसे बनिमा थे । जीवन-कर्ममें उनकी बहुत सहा थी । पिताका प्रभाव पुत्रपर भी पडा और जोधराज भयवान् बिनैन्द्रके मन्त्र बने । उनकी सब साहित्यिक रचनाएँ बिनैन्द्रकी भक्तिसे ही सम्बन्धित हैं ।

जोधराजकी शिक्षा एक प्रसिद्ध ब्राह्मण विद्यालये द्वारा सम्पन्न हुई । उनका नाम हरिनाम मिश्र था । मिश्रजी सगरी विद्याओंमें पारंगत थे । जोधराजने उन्होंने छन्द व्याकरण और ज्योतिष आदि छात्रावा पाठयथ किया । संस्कृतमें व्युत्पन्न हो जानेपर उन्होंने द्वितीया काव्याका निर्माण किया । जोधराजके कथनसे ऐसा प्रतीत होता है कि मिश्रजीने उनकी जीवन-राज्य भी मूल भाषामें पढ़ाया था ।

उस समय सागानेरमें राजा जमरतिहूका राज्य था । उनकी प्रशंसा करते

- १ सापानेर मुबान में हैत दुर्गाहडि सार ।
 ठानम गडि की और पुर बेके सहर हजार ॥
 जमरपूत दिनकर मगत जोधराज कविनाम ।
 बासी सागानर की करी कथा मुबनाम ॥
 सम्बन्धकीमुरी, आदर भवहारकी मनि जनिम प्ररालि ।
- २ मिय एक हरिनाम मुनी पढ़पी छन्द व्याकरण प्रमार्ति ।
 ज्योतिष ग्रन्थ पढ़पी बहु भाष मिश्र जोध बहू मुबनाथ ॥
 दिनदि पढापी जोध को मूल ग्रन्थ बरवान ।
 ठापर भाषा मुन बीयो जोधराज मुबनाम ॥
 पंडित बनुर मुनाम है इह जोध हरनाम है ।
 ठाकी मंथनि जोध को मयी मातनर नाम ॥
 बरी, जनिम प्ररालि ।

हुए कविने लिखा है वह मूपोमें सिरमौर है, और प्रजापति सुष्ठु प्रकारसे बल्लभ पोषण करता है। उसके समान और कोई राजा नहीं है। सब अपहृ बल्लभ हुआ है।^१ शांति और सुखवस्थाके होनेके कारण ही जोधराज अनेक इच्छाया निर्माण कर सके।

बाबु ज्ञानचन्द्रजीने अपनी 'दियम्बर केन भाषा ग्रन्थनाम मूची'के पृष्ठ ४-५ पर जोधराजकी शांत रचनाबोका उल्लेख किया है। उनमें केवल 'ज्ञान-बीजिका' हिन्दी पद्यना ग्रन्थ है, बसपिछ सब इणियाँ पद्यमें लिखी गयी है। इनके अतिरिक्त कुछ पद्य भी मिले हैं। उनमें मयवान् विनेश्वरी भक्ति प्रधान है। बाबू उद्यम है और भाषा प्रौढ। 'विश्वरूप बोधा' और 'पद्मनन्दिनंनविद्यतिना-भाषा भी अहाँकी इणियाँ हैं। ये अशीकी शोभामें अत्यन्त हुई हैं। उनकी रचनाबोला संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकारसे है :

सम्यक्त्व कौमुदी

इसकी रचना वि सं १७२४ अगस्तुन बरी १३ सुक्रवारको पूर्ण हुई थी।^२ संवत् १७८४ की लिखी हुई एक प्रति गया मन्दिर दिल्लीके शास्त्रमण्डारमें मौजूद है। इसमें ६८ पृष्ठ हैं। दूसरी प्रति संवत् १७९३ की लिखी हुई आमेरके शास्त्रमण्डारमें रखी हुई है। इसमें कुल ६१ पृष्ठ हैं। तीसरी प्रति बम्बुरके डी बनीचम्बरीके मन्दिरके शास्त्रमण्डारके वैद्वल न ५८२ में निरख है। यह प्रति सं १८३ वास्तिक बरी १३ की लिखी हुई है। इसमें कुल ५९ पन्ने हैं। रचनाकाल सं १७२४ अगस्तुन बरी १३ दिया हुआ है। यह प्रति कविने हरीतिह टोम्बाने चन्द्राचनोके रामपुरामें की थी।

कविने यह रचना करने माया बम्बुरके लिए की थी। बम्बुर लुहाड़ी

१ परम प्रजा बालै सदा नव मूर्ति सिरमौर ।
उमगिर राजा प्रबट ता सन नाहीं और ॥
ताई राज मुषैव स्वो विमो प्राण यह बाण ।
बरी ।

२ संवत् मयवानी बीईन अगस्तुन बरि तेरस सुक्रवार ।
सुक्रवार नवगुन बरि बई कवा उमगिर मुन डरि ॥
सम्यक्त्व कौमुदी, हिन्दी केन शांतिना इतिहास कर्मा १९३७, पृ ३७।

३ कवा मन्दिर, दिल्लीके शास्त्रमण्डारकी अ ३९ (ग) पंक्ति ।

जातिके धर्मशासक का छोटा पुत्र था। कुहाड़ी बनिमोकी एक जन्माति है, जो राजस्थानकी तरफ अब भी पायी जाती है।

यह रचना मौलिक कृति नहीं है। कविने उसको मूल संस्कृतमें पढा था। उसका यह भाषानुवाद है। इसमें जैन धक्तोकी कहानियाँ हैं जो ११७८ बोई बीपाइयामे निबन्ध को गयो है।^१ अनुवाद होने हुए भी भाषा और टीकाकी दृष्टिसे नवीन कृति है। आदि और अन्त देखिए,^२

‘परम पुत्र्य धार्मिकमथ चेतन रूप मुजान ।
ममू छुद परमात्मा अण परकमसक मान ॥
परम जोति धार्मिकमथ सुमति होइ धार्मिक ।
नाभिराज सुण आदि जिन वही पूरन चंद ॥

अन्त

वही सिध जगगाहना अर बंही सिध पंच ।
असह देव बंही विमल बंही गुण निरगण ॥
जिनबानी पूजी सही ताते सब सुख होय ।
कविता सुखन नहीं कपी सुख स पूरण होय ॥
चंद सूर पानी अचकि पवन अह आकास ।
मेरादिक अण अण अटक तब कग जैन प्रज्ञान ॥

धम सरोवर

इसकी रचना कि सं १७२४ आषाढ तुयी पूजिमाको हुई थी।^३ अर्थात् सम्भवतः कीमूरी से आठ माह पूर्व। इसकी एक प्रति ‘जैन मन्दिर सेठका कूँबा

१ धर्मशासक का पुत्र कपु, आदि कुहाड़पो ज्योय ।

नाम बस्याय मुजानिये कवि की मामी सोय ॥

नवा धन्दिर दिल्लीकी इल्मिजियन प्रति प्रकलि ।

२ ग्यारासि अठहत्तरि इहूँ छंड औरई आन ।

कह्यी कीकुरी पन्थ को आय मुमनि अनुमान ॥

थी ।

३ वही ५ २६२ २६२ ।

४ संकल मसद से अचिक है औरईग मुजानि ।

मुदि पूयौ आषाढ की जियो पंच मुपधनि ॥

बीबराम गार्गीय धर्मसरोवर पृ १-२, सेठ कूँबा दिल्लीकी प्रति पृ ३६३ पर लिखत ।

बिस्ती' में मीजुब है। इसमें कुल २३ पत्र हैं। इसपर रचना संवत् १७२४
दिया हुआ है। यह प्रति लकीन है और सं १९८४ की छिन्नी हुई है।

यह एक मौखिक कृति है। इसमें विविध सुभाषित और स्तुतियोंके साथ
जैन धर्मका निरूपण किया गया है। एक स्तुति देखिए,

सीतलकाच भगो परमेस्वर अमृत मूर्ति कोटि बरी।

भोग संशोभ सुखाग सबै सुवशाचक संजम काम करी ॥

श्लेष नहीं कहा कोम नहीं कङ्क मान नहीं नहि है कुट्टिकाई।

हरि ध्यान समहारि भगो सुम केवळ बोध करै यह बात पारी ॥

प्रीतकर चरित्र

इसकी रचना संवत् १७२१ में हुई थी। इसकी एक प्रति बनपुरके बड़े
मन्दिरके गुटका न ११२ में निबद्ध है। यह गुटका सं १७२४ फाखुल सुबी १
का लिखा हुआ है। इसका सम्बन्ध ज्ञानचम्पवीकी सूचीमें भी किया गया है।
इसमें म्हााराजा प्रीतकरका चरित्र है, जो मन्वान् विनेन्द्रके परम भक्त थे।

कथा-कोश

इसकी रचना सं १७२२ में की गयी थी। इसका सम्बन्ध पश्चिम गाबूराम-
जी प्रेमी और श्री बाम्नाप्रसादजी ^१बीगने किया है। उनका आधार श्री ज्ञानचम्प
बीचाली सूची है।

ज्ञान समुद्र

इसका निर्माण सं १७२२ ईश सुबी १ को हुआ था। इसकी एक प्रति
इसो संवत्सूची छिन्नी हुई बनपुरके बड़े मन्दिरमें बेहल न ५३३ में निबद्ध है।
इस प्रतिको स्वयं जोषराज जोषीकाने छापानेमें लिखा था। इसमें ३३ पृष्ठ हैं।
इसकी एक प्रतिना सम्बन्ध बाबू ज्ञानचम्पवीचाली सूचीमें भी हुआ है।

प्रवचन सार

इसकी रचना संवत् १७२६ में हुई थी। इसको एक प्रति बनपुरके बड़े
मन्दिरके बेहल न ११९४ में बँधी रखी है। इसपर रचनाका सं १७२६
पडा हुआ है। यह प्रति सं १७२९ काटिक बरी १ मधुवारकी छिन्नी हुई है।
इसमें ९४ पन्ने हैं। यह व्याख्येय कुन्दकुन्दके प्रवचनसारका भाषानुवाच है।

१ दिल्ली जैन साहित्यका इतिहास पन्ने १११७, पृ ३ ।

२ दिल्ली जैन साहित्यका इतिहास पृ १५९ ।

चित्रपत्र-बोहा

इसका रचनाकाल तो मालूम नहीं है, किन्तु इसकी प्रति जिस कुटकेमें संकलित है वह स १७२६ का किछा हुआ है जग यह स्पष्ट है कि इसकी रचना उससे पूर्व ही हुई होगी। यह एक नयी रचना है। इसकी प्रति जयपुरके लक्ष्मणजीके मन्दिरमें स्थित गुटका नं १७६ में निबद्ध है। शैलोमें चित्रवन्ध काव्यकी परम्परा बहुत पुरानी है।

पद्मनन्दि पञ्चविंशतिका भाषा

इसका निर्माण स १७२४ म हुआ था। यह भी एक नयी खोज है। इसकी प्रति जयपुरके बड़े मन्दिरके बेहल नं ९७१ म बंधी रखी है। यह प्रति स १७२४ की ही किन्धी हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह जोधराजक हाथकी हो किन्धी हुई है। इसमें १५७ पम्ने हैं। अन्तिम २९ पम्न गहो है। यह भी पद्मनन्दि पञ्चविंशतिकाका भाषानुबाध है।

जोधराजके पद्

जोधराजके रचे हुए यह नयी खोजम उपलब्ध हुए हैं। जयपुरके बंधीचन्द जीके मन्दिरमें स्थित गुटका नं ८ और १२८ में इनके कल्पित पर संकलित हैं। बंधीचके रि शैल मन्दिरके गुटका नं ५५ बेहल नं १७२ में जोधराजकी एक बिनती पृ ९९ १ ५ पर संकित है। इसमें २४ पद्य हैं। बिनतीमें पर्याप्त सरसता है,^१

शैल शैल येक घनेक सक्य जै जै धर्म प्रकासक कर ।

अरु रहित रत रहित सुसाध शैल शैल सुख भानम दरसाध ॥१९॥

शैल शैल शैल जगत गुह राज शैल शैल शैल सकल संभारन काज ।

शैल शैल केवल ग्वाल करुण मोह तिमिर पंडन रवा कर ॥२०॥

अथ जग जीय जमी संसार पाय सक्य कथा अधिहार ।

अथ जग मन अथ काय करेव जिवहर भगति हीय व धरेय ॥२५॥

६८ जगतराम (वि स १७९१-१७९२)

इनके वितामहारा नाम मारहाल या जो भाषकारों उसम और पानिक नामों

१ राजस्थानके शैल शाल मन्दिरकी मन्थ पृथी जयपुर ना ५ १२१।

२ ग न न ३ पृष्ठ क्रमांक ११७, १२३।

के निष्पन्न करने कीर करवायेमें प्रसिद्ध थे। वही ही सगरी पत्नी थी। वह कमलाकी माँति सुन्दरी और सुवर्णी थी। उसके गर्भसे ही पुत्र उत्पन्न हुए, एव का नाम था रामचन्द्र और बृहदेका लम्बाका। दोनों ही माँ-बापके अनुग्रह स्वस्व रूपवान् और सुख-सम्पन्न थे। अगणतम् इन राम-स विही एवके पुत्र थे। कवि काशीदासने अपनी सम्मन्त्र-कौमुदीमें इनको रामचन्द्रका पुत्र कहा है। पद्यमय पंचविशतिका की प्रशंसामें इनको स्पष्ट रूपसे लम्बाकाका पुत्र स्वीकार किया गया है।^१ श्री अमरचन्द्रकी ग्राह्याने इनको रामचन्द्रका पुत्र माना है।

इनके पितामह सहर मुहानाके रहनेवाले थे जिन्हु सतर्क बातों सुन पानीपतम् आकर रहने लगे थे। अमरचन्द्रकी रचनाका और इनके आश्रित कवियोंके कथनसे

१. माईदास महा म आश्रित ता त्रिष कमत्र सम माश्रित ।
या सुन कति सुन्दर करबीर उपमे बोळ गुण सागर भीर ॥
बागा भुवठा बोलवयाक या त्रिनवम उदा प्रतिपाठ ।
रामचर लम्बाका प्रवीण मत्र गुण म्यायक समकित कीन ॥
कवि काशीदास सम्मन्त्र कौमुदी, टी. अश्रितप्रसाद, हिन्दी अन्तःसालिके बुध
अप्राप्त कवि, अनेकाल्प बर्ष १ विरच १ ।

तथा

माईदास धावक परसिद्ध अक्षम करवी कर बग निष्ठ ।
लम्बन रोह मय तनु कीर रामचर लम्बाका सुवार ॥
शास्त्रिभद्र कविमुन ये एव मायचर सम गुण को पीठ ।
पुस्तकरी अमरचन्द्र पंचविशतिका प्रसिद्ध संस्कृत अक्षर अन्त ११३
५ १११ ।

२. रामचंद्र सुत अक्षय अनुर अमरचन्द्र गुण म्यायक भूप ।
अमरचन्द्र सम्मन्त्रकौमुदी, अश्रित अनेकाल्प बर्ष १ विरच १ ।
३. सुभासिच लम्बाका सुलभ अमरचन्द्र सुन है टेकचर ।
बो की मानर सति दिनवार ता की अविचल ए बरिचार ॥
पुस्तकरी अमरचन्द्र पंचविशतिका प्रसिद्ध, अश्रित अन्त ५ ११४ ।
४. अमरचन्द्र बाहय अमरचन्द्र माश्रित प्रेमी अमरचन्द्र और अमरचन्द्र अन्त अमरचन्द्र
अन्त माश्रित साश्रित बर्ष २, अन्त २, अन्त ११३, मायका विरचिवालय,
हिन्दी विचारमै, अन्त ५ १ १ ।
५. सहर मुहानावासी बोह पाणीपत माई है मोह ।
रामचर सुन अक्षय अनुर अमरचन्द्र गुण म्यायकभूप ॥
सम्मन्त्र-कौमुदी अश्रित अनेकाल्प बर्ष १ विरच १ ।

ऐसा प्रतीत होता है कि जगताराम स्वयं जगत परिवारसहित जानरेमें भाकर बस गये थे ।^१ वे औरंगजेबके दरबारमें किमी उच्च पदपर प्रतिष्ठित थे । उन्हें राजाकी पदवी मिली हुई थी । सामय इसी कारण लोग उन्हें जगतारामके स्वातपर जगताराम कहन लगे थे । काशीवासने उन्हें 'मुग और 'महाराज' जैसे विशेषणसे युक्त किया है ।^२ उनकी जाति जयवास और भोज सिंघल था ।

वे स्वयं राजा थे किन्तु महंकार नाम-मात्रका भी नहीं था । उन्होंने अनेक कवियोंको उधारतापुत्रक भाष्य दिया जलमें एक काशीवास भी थे । डॉ० ज्योति-प्रसाद अंतक कथनानुसार यह सम्भव है कि वे जगताराम पुत्र टेकचन्द्रके शिक्षक भी हूँ । श्री जयचन्द्र गार्हपत्य लिखा है, जगताराम एक प्रभावशाली धर्म-प्रेमी और कवि भाष्यदाता तथा बातचीर सिद्ध होत हैं ।^३

रचनाएँ

जगतारामकी रचनाबाह्य विषयमें विवाद है । पं नाथूरामजी प्रभाग 'दियम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ' में जगतारामकी तीन छपाबद्ध रचनाजाना उल्लेख किया है : 'भागवत विसास' सम्पत्त-श्रीमूर्ति' और 'जगतारामकी पञ्चविधितिया' । अनेकाल जय ४ अंक ६ ७ ८ में प्रकाशित दिल्लीके लगे मन्दिर और सेठके कूँबेके मन्दिरकी ग्रन्थ सूचीके अनुसार जगताराम 'छन्द रत्नावली और छानानन्द धारकाचार'के भी रचयिता थे । इनमें धारकाचार गणना सम्भ है ।

दिल्लीकी ग्रन्थ सूचीके अनुसार 'भागवतविसास' एक सप्तह-नाम्य है । यह सप्तह वि सं १७८४ माघ सुदी १४ को मैनपुरीमें किया गया था । उसकी प्रचलितमें लिखा है कि जगतारामके सं १७१३ में स्वर्णवास हो जानेपर उनके

- १ छहर जायरी है मुग जान परतपि होसै स्वर्ण विमान ।
चारो बरन रहै मुग पाइ तराँ बहु दास्य रणी मुलदाइ ।
दण्डनिदय चरितारिका प्रसति सप्त ५ २३४ ।
- २ अनेकाल जय १ किरण १ ५ ३७२ ।
- ३ काशीवास नामक-श्रीमुरी प्रसति और पुत्रिया अनेकाल जय १ किरण १ ।
- ४ जयवास है जगतारामि सिधल गीर जमुषा विरय १ ।
पुनबहय दण्डनिदय चरितारिका प्रसति सप्त ५ २३३ ।
- ५ भाष्यविध छान वि जय २, ३, ४, ५ माघ ५ १ १ ।
- ६ प नाथूराम प्रया [१८-२८] २४ दण्डनिदय चरितारिका और उनके ग्रन्थ जैन-विनी,
१९११ १ ५२ ।

पुत्र लक्ष्मीने आत्ममर्त्यके हाँसूको बहू सपने दे दिया। अथवायने उघटे करार टंकनकम नाम आयम विद्यमस' रखा दिया।

सम्यक्त्व-कीमुसीकी ५ नाभूराम प्रेमीने अगतरायकी कृति कहा है। उन्हीं उघटा रचनाकारक वि सं १७२१ माला है।^१ श्री अथरचम्बो गाइटाका कवय है "प्रेमीकी और कामताप्रसादकीने तो इस प्रश्नको अगतरायका ही ज्ञानता है क्योंकि उन्हींने प्रति व प्रचलित गयी देखी।^२ प्रचलितम स्पष्ट है कि इसकी रचना वि सं १७२२ वैशाख सुयो १९ को हुई थी।^३ इसमें ४३३९ पद्य हैं। इसके रचयिता कवि काशीबास थे। किन्तु इस प्रचलितक अन्तमें लिखा है इति श्रीमन् महाशय श्री अथरचम्बो विरचिताया सम्मन्वय कीमुसी-कथाया अष्टम् कथागणम् सम्पूर्णम्। इसका अर्थ है कि अथरचम्बोके द्वारा विरचित अष्टक-कीमुसीम आठवीं कथागण पुरा हुआ। श्री ज्योतिप्रसारने विरचित अष्टमे सूत्रके द्वारा रचयानेके अर्थमें किया है,^४ किन्तु विरचित अष्ट स्वयं रचने अर्थमें ही आता है। इसके अतिरिक्त प्रचलितम मह भी लिखा हुआ है,

'रामचन्द्र सुत अथर अष्ट अगतराय गुण आधिक मूप।

तिन बहु कथा अष्ट क काव्य करनी आये समकित साव ॥

ऐसा प्रतीत होता है कि अगतरायने वि सं १७२१ में इसकी रचना की और काशीबासने वि सं १७२२ में उसकी प्रतिकृति उनके पुत्र टंकनकके पढ़ानेके किये की। इस कथामें अनेकानेक बिगन्न पकटाकी कथारें हैं।

'पद्यमन्त्री पञ्चविंशतिका' ज्ञानचन्द बीनीकी 'दिवम्बर कैव माया अष्ट नागा-कसी के अनुसार अथरचम्बोकी कृति है।^५ किन्तु उसकी प्रकृतिये स्पष्ट है कि

१ श्री, इ ४२।

२ माटील साहित्य, वर्ष २ अंक आगत इ १।

३ विक्रम संवत् १९ आदि अथर १९ काईस अन्त।

माधवमास अठिबाये छठी तिथि वैरस भुमुत ही छठी ॥

ता दिन पूर्व सम्पूर्ण भरी समकित ज्ञान सज्ज कर बने।

कार्तिकास अष्टकम कीमुसी प्रतीत माटील साहित्य इ १।

४ बुद्धिकामि श्री अथरचम्बो अगते 'दिवम्बरा' परच अनेक करवा इत यानो विरचित रचि करवा है कि अथरचम्बोके इस अष्टकके रचना करी वा रचवाया वा। डॉ ज्योतिप्रसार, हिन्दी कैव साहित्यके कुछ अज्ञात कवि अनेकान् वर्ष १ विरच इ इ १७५।

५ वर्ष अथरचम्बो, अष्टककीमुसी, माटील साहित्य साहित्य, इ १।

६ नाग अथरचम्बो कैव दिवम्बर कैव माया अष्ट नागाकसी, माटील अथ १८ १ इ इ अन्त।

पुण्यहृय और उनके विषय अथयकृतकम इसकी रचना वि सं १७९२ खल्लुन मुषी १ मंगलवारको आठरमें अणनरायके लिए की थी। प्रस्ताविके 'कीनी माया एउ अणनराय त्रिहि विधि भायो' सं विद्य है कि अणनरायन जैसे कहा जैसे हो इसका निर्माण हुआ।

आठरक मन्त्राव हिमनग्यानक कइतसे अणनरायने छन्द रत्नावली की रचना वि० सं १७१ नागिक मुषोमें आठरमें की थी। यह द्वितीय साहित्यका एक अत्यन्तपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें विविध प्रकारके छन्दोका विवेचन हुआ है। इसमें भाव अध्याय है। छठे अध्यायमें छन्दसीके छन्दोना आठ सातवेंमें तुकाक भेदोंका विचार किया है। अणनरायन उस समयके अत्यन्त सभी छन्द-शास्त्राज्ञा अध्यायन करके और अतवा सार केकर इन ग्रन्थकी रचना की थी।^१ इस ग्रन्थको एक हस्त लिखित प्रति तथा मन्दिर अमपुराके दिगम्बर जैन मरत्सरी मण्डारमें मौजूब है इस प्रतिम पत्रसंख्या १ बळोक्तसंख्या २८ और निर्माणकाळ १७३७ दिया हुआ है। उसके प्रारम्भिक दो पद्यामें हिमनग्यानका यद्योस्तेज्य है।^२ वहीं वहीं जैन पारिभाषिक शब्द भी आये हैं।

मदीन ग्जोत्रोंमें अणनरायन का बनावे हुए कुछ पद भी प्राप्त हुए हैं। अणनराय को जैन परावली का उन्मेष काशी भागरी प्रचारिणी पत्रिकाके एक खोज-विद्य रचमें हुआ है। इनके अनिश्चित जतकी रचो हुई विनयिया भी परालम्ब हुई हैं।

जैन-पदावली

इसकी शुरुवा काशी भागरी प्रचारिणी पत्रिकाके पत्रद्वयमें वैचारिक विवरणमें मन्वा ४ पर अधिष्ठ है। मन्वादर्शने इसको प्रति विरचनी विद्या आठरके

१ कल्पन्दिर अविशतिका प्रस्ताव, भारतीय साहित्य, १ २ १।

२ अणनराय मः यो बळो हिमनग्यान बुलाई।

विगत प्राहुत कटिन है भाया ताहि बनाई ॥३॥

उंगी अथ त्रिनक है करि एक डीरे जाति।

अनुज्ञ मन्त्रो मार के रत्नावली बगानि ॥४॥

अथ रत्नावली, तथा मन्दिर, अमपुरा दिगम्बरकी मी, अन्वर ११।

३ अणनराय अथ अथर वरयो इन दिन हिमनग्यान।

मुरगा तत्रि मूण मुन्दरिन अथन विषो वान।

हिमनग्यां गा अरि वनत आअन ये लै जीव।

अरि रि हथ है येव ये अक्षय निगडी मोह ॥

वनी १ २ ३।

केन मन्त्रिये उपनयनी वी । इममें वी कवयितामके रहे हुए २३३ पर है ।
उपर आभोजनात्मक टिप्पणी मिलत हुए मय्यादर्शन कहा है । इन्होंने बटकर
कवियोंकी शैलीपर पशानी रचनाएँ की । भिन्ना एक संघट प्रथम जोरमें प्रथ
वार उपनयन हुआ है । इसमें तीर्थकरोंकी स्तुतिवा सुन्दर पद्यमें वर्णन की गयी
है ।^१ कवयितामके पर छोटी छोटी रसकी विचकारिमासे माझूम होते हैं । उनके
पद्यमें कविका उद्गम आशय जैसे कृष्ण ही पर रहा है ।

एक स्थानपर कवि कावो मूलको स्वीकार करते हुए कहता है 'हे प्रभु ।
इमने विपन्नतायोंका छूट सेवन किया और तुम्हारी सुख विसय की । इन्होंने
मुझे विपन्नता मापकी भाँति देस दिया । जब मैं मोहकपी बहुरही कहने
आद्यान्त हो छट्य हूँ । जब उसके उपममनना एकमात्र उपाय मन्त्रिणी नाश
जड़ी है । अठ हे मयवन् । इम जापके चरवाकी सरबमें नामे है । हमें पूर्ण
विश्वास है कि आपकी उशरतापूर्ण कृपा उपकल्प होयी । आपके बिना इबाय
कोई सहायक नहीं । और सब बेचना स्वार्थके साथी है

'प्रभु तिम कर्मन हमारी सहाई ।
जैत सबै स्वार्थ के साथी, तुम परमारन भाई ॥
भूक हमारी हो इमसे इह मयी महा दुखचरई ।
विपन्न कथाय सख संग सयो तुम्हरी सुख विमररई ॥
उन कर्मियो विप जोर मयो तब मोह कहरि यदि जाई ।
मन्त्रि जाड़ी ताके हरिने नृ, पुन गाकड़ बररई ॥
बातें भरन सरब जाय ई मन परतीति बररई ।
अब अगाराम सहाय की बेही साहिब संभगतरई ॥

कवयितामके पद्यमें आध्यात्मिक प्रयुजाकी बबोबी छटा विद्यमान है । वे
प्रभु छोटे छोटे स्वरकारों विबद्ध है । एक प्रभु इस प्रकार है^२

'सुख कृपि मारी संग खेय कर
सुखि गुकाक कगा र तेरे ।
समठा अब विचकार
कदम सर गुन किरकार है तेरे ॥
अनुमन पावि सुपारी चरवावि
सरय रंय कगाय है तेरे ।

१ शारी नामर। पशारिणी प्रविनाका कर्त्तवी देवामिक निबन्ध, संख्या २४ ।

२ मन्त्रिणी कर्मिणाजका एक मन्त्रिणी सुखा उतर ४६ इ १४ ।

राम कह छे इह विधि परै
मोस महक में जाय रे ॥ सु ७

पद-समूह

सैन पदावलीके अतिरिक्त और भी अनेक पदोंका निर्माण जयतरामने किया था। बड़ीतके दि सैन मन्दिरके धास्त्र भण्डारके एक पद संग्रहमें जयतरामके पद्य पर अंकित हैं। उनके पद जयपुरके बबीचन्दजीके धास्त्र भण्डारके मुद्रका नं ११४ में भी निबद्ध हैं। जयतरामने जयन नामके स्थानपर वही 'राम और वही जयराम भो किन्ना है। उनके पद भण्डारममुखा भक्तिके प्रतीक हैं। एक पदमें कविके 'आत्मन्वचन बरसन' की चाहना और 'सेवा पद परसन की आकांक्षा देखिए'

'मोहि अगनि आगो हो जिन की तुम वरसन की ॥ टेक ॥

सुमति आतकी की ल्यारी जो पावस जलु सन आर्जइव बरसन की ॥

बार बार तुमकी कहा कहिये तुम सब कापक हो मैठी बिधा वरसन की ।

त्रिसुवनपति जगराम प्रभु अब सेवक की थी सेवा पद परसन की ॥

भक्त कविको प्रभुकी छवि अनुपम जयती है। उसे पूर्ण विश्वास है कि वरि ऐसे प्रभुका सुमरन किया जाये तो अक्षय ही मोक्ष प्राप्त होता।

अनुपम रूप अनुपम महिमा तीन लोक में जाये।

जाकी छवि बरत इन्द्रादिक अन्त्र सब गल जाये ॥

वरि अनुपम विभेकत जाकी अष्टम करम तजि जाये ।

जो जगराम बने सुमरन ती अनहद बाजा बाजे ॥'

अधुमंगल

इसमें केवल ११ पद हैं। इनकी हस्तलिखित प्रति दि सैन मन्दिर बड़ीतके मुद्रका नं ५४ पत्र ९९ १ २ पर अंकित हैं। तीर्थकरकी माँके बर्षवटी होनेपर इन्होंने बुबेरकी नजरकी नयी रचना करनेके लिए प्रेरणा। अपने उसे भी योजनमें विस्तृत बनाया। उसे स्वयं और रत्नसे बड़ दिया। देवकुमारिका माताकी सेवाके लिए रक्त ही बपी। अतः माइ तक रत्नोष्ठी बपी होती रही

"सुरपति यदित्त्र पद्महो जगर रण्यी विसतारी जी ।

बी बारा जोजन तपी कमल रतन मई सारी की ॥

१ मन्दिर बबीचन्दजी जयपुर, पद-समूह नं ४२२, पत्र अक्षर १।

२ बड़ीतके दि सैन मन्दिरका परामस ४ १ ।

ब्रह्ममारी मात से मया काय रचाई थी।
ताली गई पर मांम की रचनादृष्टि बरपाई थी।।”

६९ विश्वभूषण (वि सं १०१९)

विश्वभूषण एक प्रसिद्ध मठारक है। उसका सम्बन्ध बन्धुवाराधना की मठारका से है। उसकी बुद्ध-परम्परा इस प्रकार की थी—भूषण ज्ञानभूषण और जयभूषण।^१ विश्वभूषणने वि सं १७२२ काय कृष्ण ५ को एक सम्मार्पण मन्त्र स्थापित किया था।^२ अन्धाने श्रीरूपुरम वि सं १७२४ वैशाख कृष्ण १९ को एक मन्त्र-रचना भी निर्माण करवाया था।^३ 'ज्योति प्रकाश' नामके ग्रन्थमें इसकी और इसके कार्योंकी प्रशंसा की गयी है।^४ इसके उपरान्त ही वं हेनराजने यह कहैकीम सुमन्त्राद्यमीशका कियी थी।^५ इस मठारको विश्वभूषणका सम्बन्ध माननेका कोई आधार नहीं है।^६

इसकी मठारकीय यही इतिहासमें थी। उस समय यह विद्या कायरेता प्रसिद्ध मठार था। यहाँ मठे-मठे जासिक भाषक रहत है।^७ उनमें विश्वभूषण

- १ मठारक सम्मन्त्राद्य, विशाखर जोहरापुरकर मन्त्रादिग सौम्यापुर, ५ (११२)।
- २ 'सं १७२२ काय कायकरि सोमे श्रीमन्त्रने म जयभूषण ठान्ठे मठारी विश्वभूषण वराम्नामे ब्रह्मणे सर्वभूषण वचोत्तमे गोत्रे ता वासुदेवीराजपि ।
- केनसिद्धान्तनाम्न प्रसिद्धमेव मन्त्र ५ १ मठारक सम्मन्त्राद्य, ५ (१२५)।
- ३ श्रीमन्त्रने बन्धुवाराधने मरुतकीपण्ठे बुद्धुंवावाजिन्धरी श्रीरूपभूषण थी म विश्वभूषणकेका स्वरीपुरने जिनमदिर प्रसिद्ध सं १७२४ वैशाख-वदि १९ को कायकिया ।
- केनसिद्धान्तनाम्न कक १६ ५ २४ मठारक सम्मन्त्राद्य, ५ (१२५)।
- ४ 'ज्ञानभूषण जयभूषण विश्वभूषण बन्धुवारी मठारी विष्णुकी स्वस्तिगी विद्याधयी स्नाद् यनो भवति मे विचिर्जयी ।
की ५ (१३) की ५ (१२५)।
- ५ सुमन्त्राद्यमीशका विरली, सं १६९२ पत्र ३०-३६ ।
- ६ का का म सौम्यादे २४ सैर्वादिद निरुक्तमे रणे उपर मठेकीका सिद्धी सिद्ध है ।
- ७ "मठार मठारी इतिवचन मठारी इतिवचन प्रसिद्ध सर्वभाव भाषण ता है ।
किन्तुमन्त्रिका, हिन्दी के साहित्यका लक्षण वसिष्ठान ५ (२६६)।

बहुत सम्मान था। वे बिठानू से और कामिक भी। उनके बनेका सिष्य से जिनमें महारक कठिणकीतिका विरोध नाम है। विश्वभूपयके बलौकिक व्यक्तित्व और बसाधारण मुजोसे बेमक बनसाधारण ही नहीं अपितु बिठानू भी बाते थे। वे हिन्दीके मज्जे कवि थे। उन्होंने पूजाओं कथाओं और बनेकानेक परोको रचना की। 'जिनदत्तचरित्त जिनमठखिचरी' और निर्वाण मंगल' इन्हींकी कृतियाँ हैं। इन्होंने एक 'डाईड्रीप भी रचा था जिसकी कई बममाकार्ये हिन्दीमें है। विश्वभूपयका रचना संघत् भठारही शताब्दीका पूर्वाई ठहरता है। ऐसा इनकी कई कृतियाँके रचनाकाजसे स्पष्ट है।

निर्वाण मंगल

इसका सम्बन्ध निर्वाण-मण्डिसे है। यह हिन्दी-यत्नमें लिखा गया है। इसको एक प्रति बयपुरके कुपकरबीके मन्दिरमें स्थित गुटका नं० १९१में निबद्ध है। इसकी रचना वि सं १७२९में हुई थी। यह एक छोटा-सा गीति-काम्य है, जिसमें निर्वाण-सम्बन्धी भावाको व्यक्त किया गया है।

अष्टाङ्गिका-कथा

इस कथाका निर्वाण वि सं १७१८में हुआ। इसका सम्बन्ध भी कामता-प्रसादकी बीमने अपने हिन्दी शैल साहित्यके संसिण्ट इतिहास' पृ १९९ पर किया है। इसमें लक्ष्मीस्वरकी कल्पितो प्रकट करनेवाकी कथा है। जायाद कार्तिक और फरगुनके मन्दिम बाठ दिनोंमें अष्टाङ्गिका-वर्ष मनाया जाता है। इन दिनों लक्ष्मीस्वर हीपकी पूजा मन्दि की जाती है। एतद्सम्बन्धी भाव ही इस कथामें प्रकट हुए हैं।

भारती

इसकी हस्तलिखित प्रति मन्दिर ठोडियान बयपुरके गुटका नं १९१में निबद्ध है। यह गुटका वि सं १७०९ मण्डिर बरी ९का लिखा हुआ है। इस कृतिमें ९ पद्य हैं। कतिपय पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

“पहली भारति मसुजी की पूजा ।

द्वैबनिरंजन और च पूजा ॥

दुसरी भारति सिद्धदेवी मन्त्र ।

मन्दि उधारण करमनि अर्चन ॥

धार्म्यं भारति विज सुप वार्ध ।
नेमजी के गुण विस्वमूषण वार्ध ॥”

नेमिजाका मंगल

इसकी हस्तलिखित प्रति दि वैत मन्दिर पाटोली बजपुरके मुठका नं १९ में पद्या १६-१७ पर निबद्ध है। कविने इसकी रचना सितम्बरमासके ‘पुर्ण’ त्रिज बेहुर में की थी। इसका रचनाकाल दि सं १९९८ धावन मुषण ८ दिया हुआ है। अक्षय्य ही उस समय विस्वमूषण केवन मुनि द्वारा मट्टारक गयीं। पद्य समयके सितम्बरमासमें भागिन आवक रहत थे। उनकी वागम प्रवृत्ति थी। प्राचीनिक पंक्तियाँ हैं

“मधम अपी परमेष्ठि ती हीनो घरी
सारवता कारुं मगाम कविच त्रिज उचारी ।
सौरभि इम प्रमिद्ध इतिहास भति बनी
रथा इन्द्र नि आइ सुरभि मवि बहुकपी ॥”

पादार्चनायका अरिच

इसकी हस्तलिखित प्रति भी उपमुक्त मुठकेने ही संरक्षित है। इसका रचना-काल गयीं दिया है। कविने अन्तिम पद्यमें स्वीकार किया है कि इसकी रचना आचार्य गुणमन्त्रके उत्तरगुणपत्रो आचार मानकर की गयी है। रचनामें प्रयत्न है। प्राचीनिक पद्य देखिए,

‘मन्त्र सारवा माई भत्री गणधर विभु कार् ।
पारस कथा सम्पन्न कही भया सुपन्दार् ।
अम्बू इतिम भरव में बगर पौरवा मांस ।
राजा भी आबिन्दू सुमते सुप अवांस ॥
विप्र पहाँ पङ्क बसी पुत्र ही राज सुधरा ।
कमहु कही चिपरीत विसम सेवे छु अपारा ॥
कहु गैवा अक्षमूनि सी बसुधरि दर्हे ता वाम ।
रति श्रीदा सेन्वा रथी हो कमठ पाव के धाम ॥”

पंचमेक-पूजा

इस वृत्ताकी प्रति बहीचन्द्रजीके मन्दिर बजपुरमें स्थित मुठका नं १९५में निबद्ध है। तीर्थकरोंके अभिषेक-अथवा पंचमेक तीर्थक्षेत्र कही जाते हैं। सुरार्चन विजय अथवा मन्दिर की विष्णुप्याकी पंचमेकको नाम है। इनपर अस्सी त्रिज-

शैत्यात्म बने हुए हैं। सुर-गण भी इनकी प्रशंसा किया करते हैं।

विनमृत-चरित

इसका निर्माण वि सं १७१८में हुआ था। सबसे पहले इसका उल्लेख पण्डित नाबूरामजी प्रेमीने किया।^१ 'मिश्रबन्धु-विनोद' में भी इसकी सूचना मिलती है।^२ बाबू कमलाप्रसादजीने भी प्रेमीजीके आधारपर ही इसका उल्लेख किया है।^३ विनवत्तकी मन्त्रिमं इस चरितकी रचना हुई थी।

विनमस-स्त्रिचरी^४

यह एक छोट-सा मुक्तक काव्य है। इसमें १४ पद्य हैं। जीवार्त्ताको परमात्माके दर्शनकी प्यास छम रही है। क्यो न क्यो परमात्मा उसका पति है। पति जमीठक नहीं आया। अबस्स ही वह मोहमहामय पीकर फिरी भ्रम-बाहमें फँस गया है।

‘लगु रहा मो हिय हा दरसन की रिधा दरसन का आस

दरसन कहि न हीजिने ०१०

काह ही भूके भ्रम पीया भूके भ्रम जाक मोह महामय

पीजिय ०१०

शक्तमं कविने किया है कि इसके पहलेसे संभव होता है। संभव इसीलिए होता है कि इसमें जगत्तन् विनेन्द्रकी धरतमे जानेका भाव ही प्रधान है। यह पद्य है—

‘सुनिचो हो मरि मनु दे अहो भवि मनु दे पाहि

संभव होहि सरणा तबै।

जीनी हीं परमारथ अहो परमारथ हेत

विश्वभूयन सुमिरावरी ०१००

पद

इसके द्वारा रचा हुआ एक पद जयपुरके बबीशन्दजीके मन्दिरमें विराजमान गुटका नं ५१में संकलित है। यह गुटका स १८२३ कार्तिक बरी ७का लिखा हुआ है। इस पद्यको आरम्भिक पंक्ति 'विज अपि शिग अपि जीयका' है। उत्तम

१ दिल्ली शैल साहित्यका इतिहास पृष्ठ ७।

२ मिश्रबन्धु विनोद भाग २, पृष्ठ २३।

३ दिल्ली शैल साहित्यका मन्त्रिमं इतिहास पृष्ठ १६६।

४ बरी पृष्ठ १६६।

भगवान् जिन्हेन्द्रको अपनेका हो भाव प्रदान है । एक दूगरे परमें अपनी मित्रा कर वह बनाया गया है कि मैं स्वयं अपनेका कर्मों बांधा है फिर मैं उनको तोड़ नीचे उतगा हूँ । मैंने देव-मास्त्र गुप्तकी मित्रा कर मित्र्यात्मको स्वीकार किया है । रात-दिन विषय-वर्षा करक संयमको दूबा दिया है । उन तो ईश-हूँके कर्मोंसे बाँध किया अब उनका भुक्तान हुए उगा भागा है । अब तो उन्मत्तको र्थ करनेसे ही कर्म दूर हो उतते हैं । देखिए,

“कैम हेतु कर्मणि योति ।

आप हो मैं कर्म बाँधी कर्षी करि जाती योति ॥११॥

देव गुह भुक्त करी मित्र्या गही मित्र्या योति ।

का मित्रु दिन विष परथा र्छी संजमु योति ॥१२॥

हंसी करि करि कर्म बाँधे उतहि जाती योति ।

अतहि भुगतत रुद्रु बाँध जैसे बन्ध बन्ध सीति ॥१३॥

अनुर र्थि सम्बन्ध सी करि, उतत सी र्थि आरि ।

विश्वभूषण १ जंति आ जावत सकळ कर्महु अरि ॥१४॥”

विश्वभूषणके अनेक ‘पर वि जीवन मन्दिर बहीतक पर-उंघरु ५६वें संश्लिष्ट है । ये उतम काष्मिक निवर्तन है । विश्वभूषण मन्त्र के और कवि भी यह उनके पद्योपे स्पष्ट ही है । उनको कष्टिमें इस ‘बीरे’ बीरको सर्वत्र जिनेन्द्रका नाम केना बाहिए । कवि यह परम उत्तम प्राप्त करना चाहता है तो उनकी ओरसे उपासीय ही बाये । यदि ऐसा नहीं करेता तो मन्त्र-समुहमें फिर बायेया और कर्तुवर्तिर्षि भूषणा हीना । विश्वभूषण मन्त्रानुके ‘पर-उंघरु में इस मन्त्रि र्थि क्य है बीरे कर्मकोमें मीरु”

“जिन नाम बीरे बीरा तू जिन नाम बीरे बीरा ।

जे तू परम उतत सी आई तो तन करि करी न बीरा ॥

नागरके मन्त्रणि में परिई बाँधी अङ्गुलि बीरा ।

विश्वभूषण कर्तुवर्कत्र राष्ठा कर्षी कर्मकत्र विधि मीरा ॥

अनेकान्तटीय कर्तुवर्क बाष्ठा होते ही मन्त्रा प्राय जाती है । कविने उते नायिक कहा है । यह वह नायिक है जिनके रूप नहीं देखा नहीं कर्म नहीं छोमा नहीं । यह अमृत-रसमें पयी रहनी है । इसके उतनेते अमरपर मिळता है । इनके उनाटायमें ऐसी बनाता उतत होती है, जो मोय-रसात्मका नाम

१ काष्मिकान्तरु कैम मित्र्या सादित्वा उचित उज्जित, ३ १२२ ।

२ परसपर ५ २० वि कैम मन्दिर, कर्षी, कर्षा ५५ ।

करती है । जो इसकी समझ देता है, उसे धनदय ही मोघ-मुग्ध उपलम्भ होता है^१

‘साधो बागनि जानी ।

आके जागत समता मार्गि, साधो बागनि जाना ॥

स्याद् सुखान सामिकावासी बसै तहाँ अजुरागी ।

रूप न रंग बरन नहिँ सौमा बसूत रस सौँ पागी ॥

आके इसै कहै अनापद् मई अबस्था नांगी ।

अनादोपमें ज्वाका जागी जोग रमापय छागी ॥

बाद बिबाद् शीप सब छडेँ कोक बिभाषा हागी ।

बिभभूपन जो बाकीँ समझे हाय मुकति मुल भागी ।

कवि ब्रह्म योगीमें चित्त समाता चाहता है जिसने सम्बन्धकी डोरी बसके पीलका कछोटा पहना है । मानकी गूदही गलेमें छपेट रखी है । योगकी आसनपर बैठ है । यह आदिपुरुषा चेला है । उसने मोहकी पाप फड़वाये हैं जन्में सुकल्पानकी बनी मुद्रा पहनी है, उसकी धोमा कहते नहीं बनती । सामककी सिमी उसके पास है जिसमें-से करणानुयोगका नाव निकलता है । यह तरण मुद्रामें बैठकर शीपक बसाता है और चेतनकी रत्नको प्राप्त कर देता है । यह अष्टकर्मके बन्धोकी पूनी रमाता है, ज्ञानकी अग्नि प्रकाशता है । उपलम्भके छन्देसे छनकर सम्बन्धकी बकसे मक-मसकर मझाता है । इस प्रकार यह योगकी सिद्धासनपर बैठकर मोसपुरी खाता है । उसने ऐसे मुकती देवा की हैं, जिससे उसे फिर कल्पियुवमें नहीं जाना होना^२

‘ता जोगी चित्त काई ।

सम्बक डोरी लीक कजोय भुकि भुकि गाँठि कगाई ।

प्याव गूद्री गक में मैकीँ जोग आसन द्यराई ॥

आदि गूद का चेला होके मोह का काव कराई ।

सुकल्पान मुद्रा शीप सोई पाकीँ सीमा कहत न पाई ॥

प्यावक सीमी गकमें मैकीँ करजा नाव सुगाई ।

उभगुका में शीपक जोई चेतन रत्नहिँ पाई ॥

अह करम काण्डे की पूनी रमाता अगनि बाराई ।

उपलम्भ छन नाम सम जानिकै मकि मकि अंग कगाई ॥

इह बिचि जोग सिद्धासन कैये मुकतिपुरी काँ काई ।

बिसभूषण ऐये गूद सवै बहुरि न ककि में जाई ।

१ बही पन्ना ४४ ।

२ बही, पन्ना ४६ ।

डाईद्वीप-पाठ

कैसे तो इनकी रचना सस्तरमें की गयी है किन्तु इनकी कई कथाकार्य हिन्दीमें हैं। उनमें अग्रतम है और अन्तिम भी।

७० जिनरगमूरि (वि सं १०३१)

भारता नाम श्रीमान् जिनके 'जिनूह' बंधन हुआ था। उनके विद्यालय नाम श्रीकरविहारी और माता नाम 'जिनूरदे' का।^१ उन्होंने अनुपम रूप बनाया था। प्रथिया भी असाधारण थी। बँसलमेरमें छ १९७८ फाल्गुन शुक्ला ७ को उन्होंने श्री जिनरगमूरिसे शीखा ली थी।^२ श्री मूरिजी अष्टरगण्ड पाठके पदुत्तर मूरि से। इनमें पूर्वाचार्य जिनचन्द्र और जिनविहारी मूरि से जिनकी सभाद् अक्षर और बहूंगीरने अनेकों बार सम्मानित किया था।^३ श्री जिनरगमूरि भी एक प्रसिद्ध आचार्य से। उनकी विशेष क्वालि थी। उन्होंने अष्टरगण्डके कथाकारको बुद्धिमें रखकर ही जिनरगको जगाम्पाय करते विबुधित किया।^४ उनमें जगाम्पायके योग्य योग्यता थी और अक्षरित्व भी।

१ अग्रतमस्तव कैल, हिन्दी कैल साहित्यसभ संविद्य इतिहास, १ १६९।

२ जिनूह कथ विनेनव शीकरग्याह मन्त्रार न रे।

'जिनूरदे' उर हंसकर अष्टरगण्ड विद्यापार न ॥

मनमोहन महिमा विद्वज श्रीरवित्रय उबज्जान न रे।

जिन मूरुह मम बहइ सबहि नइ अलि भाव न रे ॥६॥

राजसठन, जिनरगमूरि की ऐतिहासिक कैल काव्य समय १ २११।

३ मन् न् माच अठदुतरइ श्रीमकमेव मन्हारि तरे।

फाल्गुन बहि सप्तमि दिनइ नंबमन्पाय धुम बार न रे ॥ मनमोहन ॥२०

की, १ २११।

४ मानुचन्द्र अवि परिणती भूमिकाओं की मोहनभाज दुनीचन्द्र देवारीजन Jain Preests t the court of Akaba और Jain Teachers at the court of Jahangir इह अग्रतः १ ९।

५ जिन कथ उलनि बारनइ श्री जिनराज मूरिन्द न रे।

पाठक पर बोधव दिवइ अक्षमइ मुनि ना बुन्द न रे ॥

मनमोहन ॥२०

राजसठन जिनरगमूरि की ऐतिहासिक कैल काव्य समय, १ २११।

उनकी सरस और सुशोभन बेमता से ममूषा संसार विमोहित हो जाता था । उनका हृदय भी छत्र-काष्ठम रहित था ।^१ वे चौदह विद्याओंमें पारंगत थे ।^२ शीघ्रा-सममन्त्रा उनका नाम रंभविजय था । ज्ञानकुण्डलके त्रिनरंगसूरि गीत^३ में और सुमतिविजयके त्रिनराम सूरिगीत नं ६ में उनको मुषरात्र परस मन्त्रो विज किया गया है । यह उनकी महत्ताका ही सूचक है ।

रंभविजयकी रपावित्तो सम्राट् छाह्जडांनि भी सुता । आत्मनय देकर बुलाया और इतना अधिक प्रभावित हुआ कि सात सूत्रोंमें उनके बचन-प्रमाण करनेका आदेश छत्रमानके द्वारा दिया । छाह्जडांकी पुत्र बाराण उनको 'मुषप्रधान के परमे विभूयित किया था । सं १७१ म मासपुरेम उनको मुषप्रधान का पर दिया गया । इस अवसरपर मेमिरास सिम्बुडने एक घानदार महोरसब मनाया जिसमें अन्य भायोत्रनोंके साथ-साथ महाजन संवको नाकेरणी प्रभावना भी ही ययी । नाम भी 'रंभविजय' से त्रिनरंगसूरि' हो गया ।^४ और बड़ अण्ड तक इमी नामसे प्रतिष्ठित रहे । त्रिनरंगसूरिकी मशिमारा बखान करनेबाके ठीन कीउरीका संकसन 'ऐतिहासिक जैन-शास्त्र संग्रह'में हुआ है । ठीनाके निर्माता कसय राजहंस ज्ञानकुण्डल और कमलरत्न है ।

- १ सरस सुशोभन बेमता मोहह ममूष संसार न रे ।
कून् करट हीयह नही महु को नह हितकार न रे ॥३॥
भविमय बाहउ मावस्युं त्रिम पायउ सुम सार न रे ।
कण कला मुल आत्मकउ तिमक मुशम मकार न रे ॥२॥
ज्ञानकुण्डल त्रिनरंगसूरि गीत ऐतिहासिक जैनशास्त्र संग्रह पृ २३ ।
- २ त्रिनरामसूरि पाटोत्रक बस ज्यार विद्या बाण ।
बचन मुषारस बरमठी मारी उहु को बाण ॥१॥
कमलरत्नकृत सुषप्रधान परगीत, पृ १३२ ।
- ३ छत्ररत्नकृत मुषरात्रिजय वाप्यउ धी त्रिनराम न रे ।
पाठक रंभविजय जयउ सब बचउपनि चितठाव न रे ॥१॥
ज्ञानकुण्डलका गीत पृ १३२ ।
- ४ ठीन प्रतिशय तुं बेह करीरे, धी धी रे तुं लामे पाय रे ।
बलि मुषरात्रा 'रंभविजय मशीरे, इतरउ कण्ठिे बीर यमाय रे ॥२॥

भा ॥

सुमतिविजयकृत त्रिनरामसूरि गीत पृ १७७ ।

- ५ कमलरत्नकृत सुषप्रधान परगीत, पृ १-२ ऐतिहासिक जैन शास्त्र संग्रह पृ २३२-२३३ ।

जिनके मूर्ति चित्रात् तो वे ही काम्यरचनामें भी निपुण थे। उन्होंने अनेक स्तवनाका निर्माण किया जिनमें-वे कुछा प्रकाशन शिन्धीके पति रामनाम्नीने किया है। उसकी रचनाओंमें 'सौभाग्यपञ्चमी चौपई प्रबोध बाबनी' 'ब बडतरी' 'बसुनिशतिजिनस्तोत्र' 'बिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तवन प्रास्ताविक बोझा और तबतत्त्वबालास्तवन मुख्य है। उनका परिचय निम्न प्रकारसे है

सौभाग्यपञ्चमी चौपई

इसकी रचना सं १७४१ में हुई थी। इसकी सूचना मित्रबन्धुविजो^१ हिन्दी जैन साहित्यका 'इतिहास' और 'ऐतिहासिक जैनकाम्य संवत् की सूचिका' में की गयी है।^२ इसके अतिरिक्त उसका और कुछ परिचय आदि वहाँ अंकित नहीं है। जैन पुस्तकालयों में भी इसकी सूचना-भर ही थी है।^३ जब यह चौपई शिन्धीके प्रकाशित हो चुकी है।

प्रबोध-बाबनी

इसकी अष्टात्म बाबनी भी कहने हैं। इसमें आरनाको सम्बोधन कर-करके प्रमातुक्ति संसारसे उन्मुक्त होनेकी बात कही गयी है। इसकी रचना संवत् १७११ मघसिर सुदी २ बुधवारको हुई थी। इसकी एक प्रति संवत् १८ आषाढ़ सुदी २ की किन्धी हुई जसम जैन ब्रह्मात्म्य बीकानेरमें मौजूद है।^४ दूसरी प्रति जयपुरके बसोबन्धुजीके मन्दिरमें बिठबमान मुठका नं ९९ में लिख है। इस रचनाके आगे निर्माण संवत् १७११ दिया हुआ है। इसमें ५४ पद हैं।

प्रबोध बाबनी उत्तम काम्यका निदर्शन है। उसका प्रत्येक पद एक मुख्यस्तेकी भाँति है। एक पदम ऊकार मन्त्रकी महिमाका बखाल है

१ मित्रबन्धु विजोत्र माघ २ इ ५११।

२ हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास पृ ७१।

३ ऐतिहासिक जैन काम्य संग्रह, पृ १९ प्रारम्भमें ही लिख काम्योका ऐतिहासिक सार।

४ जैन पुस्तकालय, पृष्ठ २, माघ ३ इ १९७७।

५ सति नून मुनि^५ पति संवत् मुसक पदा मगसर बीज बुधवार बबठारी है। पद बुधुति की जगम भाँति भाँति करि सखन सुबुद्धि की सुखय सुप काटी है ॥५४॥

प्रबोधबाबनी राजस्थानमें शिन्धीके इल्लिखिन मन्त्राकी खेज माघ ४ इ १९७७।

६ वही पृ १७-१८।

७. राजस्थानमें जैन साखमणारोंकी मन्त्राकी, माघ ३ इ १४१।

“अकार तमामि साईं जगम अगार
 प्रति यहै तलमार मंत्रन का सुप्य माण्यो है ।
 इवही तैं जाग सिद्धि साधये की सिद्धि जाग
 साजु मय सिद्ध तिन तुर उर भाण्यो है ।
 पूरत परम परविड करमिदु तप
 सुद्धि अनुमान पाव्यो त्रिपुष बखाम्यो है ।
 अर्थ त्रिहरंग पमा अरर अतादि जादि
 ज का इव सुद्धि तिन पाका भव जाण्यो है ॥३॥”

रग-महत्तरी

इसको प्रास्ताविक शीर्षा और इलाहाबाद महत्तरी के नामों से पुकारा जाता है । इसमें ७२ श्लोक हैं । उनका विषय नाति मध्यारम और भविष्ये सम्बन्धित है । बहुत पहले इसका प्रकाशन दिल्लीसे हुआ था । अब उगका पुनः प्रकाशन बीरवाणी से हुआ है । अमरकन्द नाटकाका सम्पादन है । भक्तवैजयन्त प्रकाशक बीरवाणीरवाणी प्रति अन्धा मूलाधार है । इस प्रतिमें ७२ श्लोक हैं । बाह्य और अन्त दोनों ही दृष्ट्याम वाक्य अराम कोणिका है । एक श्लोकम समस्त महत्तरीकी छटाक नाय मन्त्रिका रग है

अरम अन्त अन्तर्गत नहीं रहे तु भारत माहि ।

त्रिहरंग के कैम मर, त्रिहरंग रत्ता माहि ॥२५॥

यह अनुपम अवन जीवनका बीज नहीं बडा पाता इतर भी अन्य बाज स्वीकार करता जाता है फिर मला वह अवन अरर नर कैसे बर्णन मरगा ? एक कथाय है । जगदीशको जो प्यास बरे पुत्रा करे

“अचना आर न उठ सकै और केत पुनि सीम ।

सा पेटे क्या बर्णन है अपि त्रिहरंग जगदीश ॥१॥”

एक पत्नी ऐसे त्रिहरंगे बन्ने है त्रिहरंगे इन दरवाज है । उन दरवाजोंके छोले हुए भी यदि पत्नी अरगा नहीं ता अन्तर्गत है यदि उठ जाता है तो धारण्य क्या है । उने उठ ही जाता काटिण् । यही त्रिहरंगे विजडा बनाया है और उठ ही अरगाका रग दरवाजे । अरवाणी न । उगम ही है । योके समय वह अन्तर्गत निराम आता है । कविनी बुद्धिम मर अरवाणिक है । कविन इन अरवाणिकताका उत्तम उगके निराम विरा है । अरवाणी पाम निरामो है

रगुं हार का विजडा अन्तर्गत रता माहि ।

त्रिहरंग अन्तर्गत रहनु है मय अरवाणा माहि ॥३६॥”

विनरंग एक उधार कवि थे। उन्होंने चर्मके नामवर कौमिल्लकी प्रशंसा की थी। उनका अभिप्राय था कि चर्म कविरीषी होता है। कवि ठसमें हुसरे चर्मके विरोध है तो कही-न-कही कमी अवश्य है। हीच धर्म और मुसल्लिम चर्मके विरोध नहीं है। हीनोके मिसलसे ही यह जोध मरममुहके पार उतर सकता है,

“सैवगति जैगी द्वा सुमकमान इकठार।

विनरंग का हीनी मिकै तो बीड उतरै पार ॥३०॥

अनुविंशति विनस्तात्र

श्रीरक्ष हीर्षकराजी मन्दिमें इका निर्माण हुआ है। इसकी प्रति बनपुरके श्री बशीबन्दजीके मन्दिरमें विंशत मुक्का नं ९२ में संरक्षित है। उसपर रचना और कैवलनाथ आदि कुछ भी दिया हुआ नहीं है।

चिन्तामणि पादर्शनाथ स्तम्भ

इसमें यह बताया गया है कि भगवान् पादनाथकी मन्दिसे सब मनोमान मार्ये पूरी हो जाती है। उनका स्तम्भ 'चिन्तामणि के समान कल्पवृक्षी होता है। इसकी भी एक प्रति बनपुरके श्री बशीबन्दजीके मन्दिरमें रखे हुए मुक्का नं ९२ में संरक्षित है। इसमें कुछ १५ पद हैं।

नवतत्त्व बाळा स्तम्भ

यह व्याख्या नवतत्त्वोंके लिए रचा गया था। इसमें नवतत्त्वोंका विवरण है। इसका प्रकाशन दिल्लीमें हो चुका है।

७१ भैया भगवतीदास — (वि सं १ २१-१७५५)

धर्म साहित्यमें भगवतीदास नामके चार ग्रन्थ हुए हैं^१ जिनमें पहले ग्रन्थ काही भगवतीदास थे। उनका उल्लेख पाण्डे विनयासन 'अभ्युत्थानीपरिषद्' में किया है। ये पाण्डे विनयासनके पुत्र थे। हुसरे 'भगवतीदास बनारसीदासकी पत्नी महापुर्णामेसे एक थे जिनकी प्रेरणासे 'आटक समप्रसार' की रचना हुई। तीसरे भगवतीदास मद्रासके महेश्वरके शिष्य थे जिन्हु ने मद्रासके न होकर पश्चिम विदेशके विद्वान् थे। उनका नाम अम्बाला जिकेके बुनिया यादव हुआ था। उनका कुछ अर्थनाम और भी बतल सकता है। ये दिल्लीमें आकर रहने लगे

१. अनेकाल, १४७ विंशत १-२ पृष्ठ २४-२२।

य । उनके लिखे हुए लगभग २५ वाक्य-ग्रन्थोका पता चला है, उनमें 'रघु सीता अनु' अनेकार्थ नाममाळा' और 'मृगाकसेखा-परित'से अधिकोप विद्याम् परिचित है । 'मृगाकसेखापरित अपभ्रंशकी रचना है । चौथे भगवतीदास से है, जिसका उल्लेख पं० हीरानन्दजीने अपने 'पंचास्तिकाय'के हिन्दी अनुबाधमें किया है । श्री नाबूरावजी प्रेमोका अनुमान है कि य ही ब्रह्म-विद्यासके कर्ता भैया भगवतीदास है । उनका साहित्यिक काल संवत् १७३७ से १७५५ माना जाता है ।^१

भैया भगवतीदास आगराके रहनबासे थे । उस समय औरबड़ेबड़ा राज्य था जिसको बाबा भर्मन कसे बटती थी । मृतिकी उपहार बृहिके कारण ईति-मीति कहीपर भी स्वाप्त नहीं थी ।^२ भगवतीदासका जन्म ओछवाळ मुकम हुआ था । उनका मोन 'कट्यारिया कहा जाता है । उनके पितामहका नाम बबरक छाहू था जो आगरेके शैव-सम्प्रदाय पुर्याम-से एक थे ।^३ य धर्माल्या और पुण्यवस्त भी थे । उनके पुत्रका नाम लालजी था । ये ही भैया भगवतीदासके पिता थे ।^४ भैयाको धार्मिकता भवित और कदमो बलमसे ही मिली थी । सगहन भी हम परन्परगत देनको धर्मीमति निमाया । उनका समय आध्यात्मिक ग्रन्थोके पढ़न-पाठन और गृहस्वोचित पद्वमोक पाकनमें व्यतीत होता था । भैया उनका उपनाम था । प्राबा उषोका प्रयोग है । कड़ी-कहीं 'मधिक' और वासकिशोर का भी प्रयोग हुआ है ।

भैया एक विद्वान् व्यक्ति थे । प्राकृत और संस्कृतपर तो उनका बहुत अधिकार था । हिन्दी गुजराती और बँगलान भी विशेष यनि थी । इससे छाब-छाब उन्हें उद्गु और फारसीका ज्ञान था । उनकी कविताएँ इस सम्प्रदाय निरर्धन हैं । मारवाडी संज्ञाका प्रयोग भी अधिक हुआ है । ओछवाळ जालि मारवाड वैराग उत्पन्न हुई बात : उसका प्रभाव स्वाभाविक ही है । सबसे बड़ी विशेषता है कि उनकी भाषा

१ ई नाबूराव प्रसा, हिन्दी जल साहित्यका इतिहास कर्म १४३ पृष्ठ २६ ।

२ अक्षिकासमे नि स १७३१ से १७५५ तककी ही रचनाएँ उपर्युक्त हैं ।

३ बम्बुडीप मु भारतवर्ष : ठामे धार्मिक जन उत्कल्प ।

उद्गु उप्रसेनपुर जाल नगर आगरा नाम प्रवाल ॥

मृतिकी ठरौ राई औरंग । जाली माहा बई समय ।

ईति-मीति व्यापै तद्वि क्रोय यह उपहार मृतिकी को ज्ञाय ॥

भया भगवतीदास अक्षिकाम जैन प्रथम रत्नाकर कार्णिक कर्म द्वितीय संस्करण संवत् १९२६ प्रकाशितरिक्त पृष्ठ ३५, पत्र १ ।

४ कवी १५५, ४३, पृष्ठ ३३ ।

५ कवी, पत्र ३ पृष्ठ ३३ ।

प्रतिष्ठ तथा अर्चवापक है । वटिका एक भी भाषात प्रयोग होता है ।

भैरव आध्यात्मिकता और भक्तिवा समन्वय वा । व भाष्यात्मिकताके विचार पर कई से । उक्ताने भक्ति-नरोत्तम स्तान भी लिखा वा । अष्टासप्तशतिका भक्ति के बुझाने भवारी रचनाक्रम उपलब्ध होने है अन्य किमीमें नहीं । वरि बनारसीवासी भक्ति भी ऐसी ही थी । नाटक मन्मथार और विद्यादेवी का एक रचनाएँ इनका निष्पन्न है । विलु बनारसी-भाष्य कबसे इति उप प्रचार मुखी ही केवर बना है अब कि भैरवमें जोड़ अर्पित है । कनका 'अष्टासप्तशतिका' जोड़स मय विष्णु-वट है । बनारसीवा 'मालारत माण्डिकी वीरय कनका पर कि भैयाका मारताक प्रमथनमें जनका पना और बुद्ध हुमा । अष्टासप्त और भक्ति केवमें औररसका प्रवीर भैयाकी बनो विद्येयता थी ।

ब्रह्म-विद्यास

'ब्रह्म-विद्यास की रचनादि सं १७-१९ वैशाख सुक्का तुनीया रविवारके दिन समाप्त हुई थी । इसका नाम 'ब्रह्म विद्यास स्वर्भ भैया मगनीश्वरका ही दिया हुआ है । इसका प्रकाशन बहुत पहले मन् १९ १ में श्रीन अम्बरनाथ चार्पाध्य बम्बरम हुआ था । इनका द्वितीय संस्करण भी बहसि ही मन् १९२६ में निष्पन्न हुआ है ।

इसमें 'भैया की रची हुई ६७ रचनाओंका संकलन है । 'इस तरह' नामकी रचना भैयाके निच भागतिहका रची हुई है । 'भैरवमन्मथरिष' 'बापीर पटीपह' 'मुद्राहक 'वैष्णवकीश्वरिका 'पंथीश्वर सचार मनवतीसी' 'स्वय वतीसी और 'वरमात्मसन्त तथा पुत्रकल वसिष्ठामें आध्यात्मिक विचारका उत्पन्न वपठे म बोधेय हुआ है । 'त्रिनभूताहक अनुविद्यति विन लुधि' 'वरमात्मकी अनाथ' तीर्थकर मयमाता मुनिपत्रमयमात्म' 'अग्निनि पार्ष्णीय लुधि', 'त्रिनभूतमाता' 'विद्याय और परदेष्टी ममस्तार 'निर्वाणनाथ बापा' लक्ष्मी-धरकी वरमाता मुकुटि वीचीनी 'अहमि वैष्णवकी वरमाता' 'वरमम कतीसी अनुविद्यति मयमाता' और पुत्रकल विषय मन्त्ररससे सम्बन्धित है ।

१ मन्मथ मन्मथ पत्र पचास । अनु वर्षग वैष्णव सुमान ।

नुवनाप तु म्हा रविवार । मय अनुविद्य का म्पवार ॥

वर्ष बुध १ २ ।

निर्वाण म म्मि मगवान । वरन कप बारि बुव पात ।

भैया नाम मयवत्पातम । प्रगट भाहु लुमु ब्रह्म विद्यास ॥१ ॥

वर्षा बुध १ २ ।

भैयाक पयामे कुछ ऐसा भावपय है ।
 त्रिष्टमे पाठक बन नहीं पाता ।

एक भवन भगवान् त्रिनेत्रकी पुण्यामे पूजा करता हुआ बहता है कि हे भयवन् । इस नामदेवन समुचे विररघो ओउ विद्या है इती वारन इत्यतो पमण्ड भी बहुत अधिक हो गया है । मुते पूरा विद्याय है कि ज्ञानके वरवाकी वारनमें ज्ञानेय प्रवक्त जानरव ही निर्दयताका मैं विचार न हो पाउँगा । हेमिए,

‘अगत के आह किन्हें जीन के गुमानी भया

येमा कामद्व पठ जाया का कदापो है ।

ताके पर आनियत पञ्चनि के पुन्द बहु

केतकी कमळ कुंद करवा सुदापो है ॥

साकनो मुर्गप बार बकि का धनक ज्ञानि

अपक गुहाव जिन वरण बड़ापो है ।

तेरी हा धरण जिन बार न बसाव पाका

सुमर सीं पूज ताहि साहि पैमा मावा है ॥१७॥’

यह मन मनारके विभिन्न रसामें भटवना फिर रहा है । उनको सम्बोधन करते हुए बकि बहता है कि हे मन ! तू वहीं दीरा जमा बला वा रहा है । इस देह-कपी देवालयमें त्रयवान् बैवनी रहता है तू उनको सेवा क्या नहीं करता ?

‘‘जीन तूमे कर जहाँ दीइ तू ही जागे तहाँ

सुन जहाँ कान तहाँ तू ही सुन बात है ।

जीम रग रवाइ धरि ताको तू विचार करे

बाक मूर्धे नाम तहाँ तू हा विरमात है ॥

अर्थ को तू छान जाति तहाँ बहो कीन मानि

जहाँ तहाँ तेरी भाँव ःकर विद्याय है ।

आहा देह देवक में केवकि वरान्य देव

ताका कर सब मन जहाँ दाइ जाय है ॥१८॥

अब अवनक ज्ञाने आगण्यको मर्षीकृष्ट न सम्प्रेत उतमें पवजानता नहीं आ सकती । भगवान् त्रिनेत्र तमे है त्रिनेत्र पयवा सोना लोह पाने है । वे मनु बापक और विरवापक है । उनके वयन कथने ही वगव जाँव करने है और आचन वरवाव मुय तथा अद्रिवा प्रवट हो जाँव है

‘अथ एक त्रिनेत्र नाम त्रिभुवन जग अर्थे ।

देव एक त्रिनेत्र वरा त्रि वगक अर्थे ॥

एक एक दिनचर्या सब प्राणव सुखदायक ।
 सब एक दिनचर्या प्रकृत कहिये साधनायक ॥
 देव एक त्रिमुक्त सुख, काम काम दिन बंदिय ।
 गुण धर्म प्रगटि गुण रिद्धि बुद्धि चित्तदिग् ॥१॥

यह सब-समुद्र बरग विरट है उमे पार करना कोई आसान काम नहीं है
 किन्तु मनुष्य-वर्गियों यह पूरा विधान है कि परमात्मा के मुख के नाम से यह पार हो
 सक्ता है

विष्णु मूर्ध्नि ताहि तरिब की तारु कीम
 ताकी तुम तीर जाने हलो रहि चरिषे ।
 अथके संभारे नै बार मठ पहुँचत हो
 अथके समार दिन बृहत् ही तरिषे ॥
 बहुरो फिर मिकवो ताहि केनो है संबोग बंध
 देव गुण प्रत्य करि ज्ञान दिव चरिषे ॥
 ताहि तु विचारि निज ज्ञानम मिहारि 'मैरा'
 चारि बरमानमाहि मुख प्याज करिषे ॥ ॥

पारव विनायके मनुष्ये ज्ञान प्रयत्नके प्रति अनाथ निष्ठ है । यह कहता
 है कि हे जीव ! तु माझे जो दूर उपर भटकता फिरता है वहाँ तु मध्य वेदी-
 देवताके ही धर भुजागा है । तेही तो विन-शुद्धी विष्णु प्रयत्न पारव अनुशी
 सहासे ही गह हो जायेगी

“काह को देखादिछाँवर जावत काहे रिहावत इन्ध बरिह ।
 काह को देखि यो देव भनावन काहे को छोस बनावत बंध ॥
 काहे को सुरज सी कर जोरत काह निहोरत मध सुमिह ।
 काहे को सोच कर दिन रैन तु सेवत क्यों बहिं वारुं किमल ॥११॥”

अथवात्त नामकी हृदयमें धारण करनेसे हृदय प्रयत्नके पुत्रासे जोड़ती
 हो जाता है । अथवात्त के सद्गुणों का ज्ञान ही जाता है । अथवात्त के नामकी अथवात्त
 मिला है

१ वरग सुखदायक कविता १ २ ।

२ वरी राम धर्मशास्त्री कविता, १ ३ ।

३ वरग सुखदायक कविता १ ३ ।

तेरो नाम कर्मर हूस हूँछा को न राख डर
 तेरी नाम कामयेनु कामना हरत है ।
 तेरो नाम चिन्तामय चिन्ता को न राखे पास
 तेरा नाम पारस सो दारिद्र्य डरत है ॥
 तेरी नाम अमृत विषेतेँ जरा रोग जाय
 तेरो नाम सुखमूक दुःख को दरत है ।
 तेरी नाम बीतराय धरै डर बीतरागी
 भय्य ठाहि पाय भवनागर तरत है ॥३॥

भगवान् मन्त्रके अपनेसे एक ओर तो पाप और भूत-प्रेतादि माय जाते हैं
 तो दूसरी ओर विविध प्रकारके वैभव उपलब्ध होते हैं । अतः भगवान् मन्त्रका
 प्रतिदिन ध्यान करना चाहिए,

“जहाँ अपहि नबकार तहाँ भय कैमे जायें ।
 जहाँ अपहि नबकार तहाँ अंतर भय जायें ॥
 जहाँ अपहि नबकार तहाँ सुख संपति जाई ।
 जहाँ अपहि नबकार तहाँ दुख रई न कोई ॥
 नबकार अपत भय तिथि मिळी सुख समूह जायै सरय ।
 सो महामन्त्र सुख ध्यावसो 'मैया नित अपनो करव ॥१०॥”^२

सम्पत्त्वही जैन शास्त्रोंमें बहुत अधिक महिमा है । सम्पत्त्व चारण करने
 वाले सत्य सदैव पूजे जाते रहे हैं । जहाँ भी एक कवित्तमें उनकी स्तुति की
 गयी है,

‘रक्षक्य रिश्वारे से सुगुण मत्तवारे से
 सुपा के सुवारे से सुमान द्वाबंत हैं ।
 सुदुहि के अबाह स सुखिपाउद्याह से
 सुमन के सबाह से महाबड महंत हैं ॥
 सुप्यान के घरवा से सुशान के करपा से
 सुमान जानैवा से शकती अर्नंत हैं ।
 सबै संवनावक स सबै बोडकावक से
 सबै सुखरापक स सबक के संत हैं ॥१०॥”^३

१ श्री सुप्य कुप्य वरु, सिद्धा ५ / ।

२ श्री सुप्यर निरव ५४ १०० ।

३ श्री सुप्य वरु, सिद्धा ५४ ५ ।

अहिंसके पादप्रमुखी स्तुति करते-करते तो भक्त श्री जैठे भारतके
आविषयमें यह ही कहा है

भारत को बंद किन्हीं पूज्य का बंद किन्हीं
 ऐतिष्ठ दिनेद एमी नंद अक्षयमेव को ।
 काम को हरे बंद भ्रम का बंद निरंद
 श्री दुख हृष्ट सुख परी महा जैन को ॥
 सेवत गरिद एव गायत गरिद मैया
 एवावत सुमिद तद्द पावे सुख जैन को ।
 ऐमी जिनबंद करे जिन में सुखद सुखी
 ऐसित का ईद भारत पूर्वी प्रभु जैन को ॥९॥

‘मैया’ भगवतीदास और एक किंवदन्ती

यह कहा है कि मैया भगवतीदास बान्द्रस्थी बाबा गुणरदास और रसिक
 चितोर्मणि श्री केदारदासने एक ही मुससे पिछा पायी थी । तीनों मुसवाई ने ।
 केदारदासने अपनी रसिकप्रियाकी एक-एक प्रति दोनों छावियोंके पास लेयी और
 दोनों ही ने उसकी कड़ी आलोचना की । गुणरदासजी-द्वारा ही यही कड़ी
 लिखा ‘गुणर विलास’ में निरूद्ध है । मैयाने भी एक छन्द बजाया और उसके
 मुखपुष्पर लिखकर भारत कर दिया । यह छन्द इस प्रकार है

‘बड़ी नीति बजुनीति करत है चाप सरत बद्धोच भरी ।
 छोड़ा आवि पुनगुणी मंथित सकळ देह मनु रोग बरी ॥
 घोषित हाइ मसमज मूरत चापर रसित बरी बरी ।
 ऐमी नार विरल कर केवल रसिक प्रिया तुम कहा करी ॥१०॥’

इन मन्त्रि ‘मैया’ केदारदासके समकालीन थे । किन्तु केदारदासका स्वर्ग-
 नाथ दि सं १९७ में हो गया था । आचार्य रामचन्द्र शुक्लके अनुसार,
 इनका जन्म सं १९१२ और मृत्यु सं १९७४ के आस-पास हुई । रसिकप्रिया-
 की रचना दि सं १९४८ में हुई थी । इससे प्रभावित है कि मैयाका जन्म
 दि सं १९४८ से जम्म कम २५ वर्ष पूर्व हो हुआ ही होगा । तभी तो

१ श्री, अहिंसित पादप्रमुखी स्तुति पृष्ठ १९२ ।

२ अक्षयिपाल शुक्ल शुक्ल वर्षादिना पृष्ठ १८४ ।

३ अक्षय रामचन्द्र शुक्लद्वारा लिखी साहित्यशास्त्रिदास संतोषित और चितोर्मणि
 मन्तराज १९२७ मि सं पृष्ठ २२ ।

४ श्री पृष्ठ २४७ ।

बोनों साक-साक यह सबके हारो किन्तु मीयाका साहित्यिक काम्य १७३१ १७५५ निरिचल है तो फिर यह तो हो सकता है कि १७ से बस-बारह बप पूर्व समका बन्म हुआ हो किन्तु १७वीं शताब्दीका प्रथम पाक तो किसी भी वसा-मे प्रमाणित नहीं होता। सम्भावना तो यह है कि मीयान अपने साहित्यिक काममें 'रसिकप्रिया' कहीसे भी केन्द्र पड़ी होनी और उसपर यह कवित रच डाला होना।

यह भी सच है कि मीयाने देशके अत्यन्त शृंगारको मने ही बुरबुराया हो किन्तु उसकी अर्थकारप्रियतासे ये अवश्य ही प्रमाणित हुए थे। उनके काम्यम कपक ममक, अनुप्रास और चितार्थकारोकी भरमार है। कपकके लिए उनके 'वैतन कर्म करिण 'सत बहोसरी' और मधुकिन्तुक बीवाई'को किया जा सकता है। ममकका एक बृहन्त इस प्रकार है

'उजरे भाष अज्ञान उजरे जिई तें बंधे न ।

उजरे मिरखे भाल उजरे बारहु गतिन तें ७१३

ब्रह्मविनाश' अनुप्रासकी कटासे तो म्याप्त ही है। कई मापाबोके जाता होनेसे मीया'का अक्षरज्ञान परिपुष्ट था। उसीके बलपर परे-परे अनुप्रासका चीन्च्य बिलर सफा। सबसे बड़ी बात है उसकी स्वामाधिक्यता। नभबकी धाति प्रयत्न पूर्वक खींचता नही है। इसी कारण कृत्रिमता नहीं है। सहज गति है। ऐसे ही अनुप्रासोके निर्गतसे बर बीररस कलफलाकर बहु उठता है, तो बिच-सा बिच बाता है,

'अरिण क इइ इइ बइ कर डारे बिच करम सुमहून क पहन उजारे है ।

गर्क विरजंभ अइ पइ देकेँ पैड रहे विपिबीर सइ सइ पकर पकारे है ॥

मौ बग कटाव डारे अइ सर हुइ मार सरण के देख डारे अयेप हू सहारे है ।

अवृत्त सम्बन्ध सूर बद्ध प्रथम पर सुख के समूह मूर सिद्ध के निहारे है ॥^१

बिचबड कविता ब्रह्मविनाशके पृ २९२ से ३ ४ तक संकक्षित है। उसमें

१ कम्बोके लिए परमात्मरत्नके ३-१५ २ १५, २६ ४ और ४१में दोबोबोके हेरिअ मद्यविनाश पृष्ठ १७३ १७५ ।

२ 'हे बारमन् ! अज्ञान भाव । (उजरे) उजरे अर्थात् विनाशको प्राप्त हुए जिनसे जा मा (उजरे) सबसे अर्थात् प्रकट अपसे बन्म हो रहा था । और बप ज्ञानसुय (उजरे) उजमक देख गये तब चारों गतिबीध उजर अर्थात् भूटे जिनका अर्थ है सिद्धात्मन्का प्राप्त हुए ।

मद्यविनाश परमात्मरत्नक, पृष्ठ ३ दिदी अनुवाद, टिप्पणी पृ १७६ ।

३ मद्यविनाश उजमक कवित पृ १७३ ।

अन्तर्जापिका और बहिर्जापिका भा निवृत्त है। निवृत्त कविप्रयोगों की परम्परा भी यहाँ बहुत पुरानी है। सरहटके शैल रीति-रग्यके कर्ताजाने भी निवृत्त कविताकी रचना पर्याप्त माधान की है।

७२ शिरोमणिदास (वि सं १०३१)

शिरोमणिदास नामके तीन कवि हुए हैं। उनमें प्रथम शिरोमणि मिश्र थे। उन्होंने स १६७४में 'अमरकविदास'की रचना की थी। दूसरे शिरोमणिदास भी ब्राह्मण थे। वे साहज्यहकि दरबारमें रहते थे। वही उसकी प्रसिद्धि थी। उनका समय १७० के आस-पास माना जाता है।^१ अस्तु शिरोमणिदास कविप्रयोगवादासके शिष्य थे। उनकी शैल कर्ममें निपट थी। उन्होंने तत्कालीन शब्दकोश ही निर्माण किया।

ऐसा प्रतीत होता है कि ये बट्टारक सफलशोचिष्ठ प्रभावित थे। उनके कर्म-देशमें प्रेरित होकर ही उन्होंने नगर शिरोमणिमें रहकर एक बहुत बम्बका निर्माण किया था। उस समय शिरोमणिमें राजा देवीसिंह राज्य करते थे। इस बम्बका नाम 'बर्महार' था। काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिकाके शील-विवरणमें शिब 'बर्महार का पर्यवेष्ट है, उसकी समाप्ति कावरेमें मानी गयी है। और बट्टारक लक्षणशोचिष्ठ प्रभावित होनेकी कोई बात नहीं है।'^२ इसका अर्थवत् इनके रूप हुए एक दूसरे ब्राह्मण शिरोमणि शिरोमणि भी होता है, जिसमें उन्होंने स्वामीपर पठितों और विपन्न बट्टारको शोभा ही की खरी-खरी मुताबी है। इसकी रचनाओंमें सम्यक्त्व प्रमाण है। उन्हें बनारसीवासके अध्यापिका सम्प्रदायकी परम्परामें गिना जाना चाहिए। वे आगराके ही रहनेवाके थे।

बर्महारकी शोभामें उनकी दो रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं—'बर्महार' और 'शिरोमणि शिरोमणि'। दोनों ही में यत्न-जाककी मुक्त-मुक्त प्रवृत्तियाँ प्रमाण हैं। 'शिरोमणि शिरोमणि'में धर्मके नामपर आठम्बरके शिरोधर्म विरोध है, जैसा कि लल कविधर्मों था। 'बर्महार'में निर्गुण और अनुच शक्तिका लक्षण है। इसमें मन्की सम्बोधन कर-करके ललके माना-ओह और अपने मुक्त कपको प्रस्त करनेकी प्रेरणा है तथा तीर्थकर, विनयाओ और पंचपरमेष्ठीकी बम्बना भी है।

१ मिश्रलाल किलोह, मास २, ६ ४२४।

२ वही, ६ १।

३ का ना म बलिबन्ध कर्मरत्नी देवामिन्द किलोह सरवा २ कलिभ प्रसिद्धि।

सिद्धान्त सिरोमणि

यह एक छोटी-सी रचना है। इसमें धम्मस्वरणी सही परिभाषा का विस्मयन है। धम्मकाव्यमें धर्मके नामपर बहुत विविधाचारका प्रभाव शैलोपर भी पड़ा था। स्वैशाम्बर मठि और दिवम्बर भट्टारक उसके प्रतीक थे। धिरोमणिसिद्धान्तने उसकी खरी आलोचना की। उन्हें जग-विरोध सद्गता पड़ा। उन्हांन परबाह महो की। जो आत्माकी सही जाबाब न भुग सके वह क्या कामकाया नइलायेया ! उसकी निर्भीकता कबीर-वैसी की किन्तु कबीर-वैसा मस्तानापन नहीं था। कबीरने तो पर्याया मानी ही नहीं। वे उसके बेरेमें कभी न बिरे धिरोमणिसिद्धान्त बिरे किन्तु उसकी उल्लंघन बन्दिशको कभी स्वीकार नहीं किया। धिरोमणिसिद्धान्तके दो पद्य हैं

‘नहीं दिवम्बर नहीं भुग धार न जाता नहीं भय भरीं भयार ।

यह भुग के कपु कीजे सार उतर जाहौं भय के पार ॥५७॥

सिद्धान्त सिरोमणि सास्त्र को नाम कीनी समकिय शायि के काम ।

जा कौंड पई सुभै नर नारि समकिय कई सुख अपार ॥५८॥

धमसार

इसकी रचनाके विषयमें दो संस्कृत उपलब्ध होन हैं। प्रामाणिक पाँच प्रतिबोधमें इसका रचना-संस्कृत १७३२ वैशाख सुदी ३ पड़ा हुआ है।^१ इसकी एक हस्तलिखित प्रति जयपुरके कबीरचन्द्रजीके मन्दिरमें बेहल नं ८६९ में बँधी रखी है।

जिह प्रतिपर रचना-संस्कृत १७५१ पड़ा हुआ है, इसका कन्धेख ‘कासी नाबरी प्रचारिणी परिषद्’के पत्रद्वारा वैज्ञानिक विवरणकी संख्या २२ पर हुआ है। सम्पादकीको यह प्रति शैल मठि कठवारी का अनुकृता विद्या भाष्यसे प्राप्त हुई है। इस संस्कृतका समर्थन करनेवाला रोहा देखिए

‘संस्कृत सत्रै सी इकाववा नगर ध्यागरे माहिं ।

माहीं सुदि सुख सुख को वाक वाक प्रगटाव ॥

५ नाबूचन्द्रजी प्रेमीने^२ वि सं १७३२ को ही रचनाकाक माना है।

१ दिल्ली शैल साहित्यका मण्डल प्रतिज्ञान ५ २९ ।

२ संस्कृत १७३२ वैशाख नाम कण्ठरत्न पुनि कीस ।

पुनीमा ज्ञान सनीसमेत मण्डलन को योग्य सुखदेत इ

देखिए श्री मन्दिरकी दूबा छेड दिल्लीकी इन्डिस्ट्रियल मठि ।

३ दिल्ली शैल साहित्यका मण्डल प्रतिज्ञान कन्धै, १९२० ई छ ६० ।

हो सकता है १७५१ के अन्तर्गत हो। 'बर्मसार' में ७५१ रोहा-बोयाई है। एक अक्षि-वरा पद्य है,

'बीर जिनेमुर पुनची दव । हम्न बरेम्न करै तुम सेव ।
 और बन्दी हूँ गुद जिन पाव । तुमिरल ठिबके बाव बसाव ॥
 बलमान जो जिन पर ईस । कर जोक जिन माई सोस ।
 जे जिनेम्न मवि सुनि कई । पूजहुतै ई सरमव गई ॥'

७३ आनतराय (जन्म वि सं १७३३ साहित्यिक काल १७८)

आनतराय आनरेके पुत्रेवाके थे। इनका जन्म अजमेर बंदा और पोषक पोषमें हुआ था। इनके पिताका नाम बरामदास और पितामहका नाम बीरदास था। इनके पूर्वज आम्बुरके निवासी थे और बहीसे ही आपरेमें आपर पुत्रे जमे थे।

आनतरायका जन्म वि सं १७३३ में आनरेमें हुआ। पिता भी जोक ईपसे हुई। एक और तो उन्हें अर्जुनारसीका ज्ञान करवाया गया और बूठे और संस्कृतक माध्यमसे आम्बिक इन्वोरा पठन-पाठन हुआ। अतः उन्हें संस्कृत और आरसी दोनों ही का ज्ञान था। इनको भाषापर भी रोमीकी ज्ञान है। अत्यन्तक भाव-वाचका सम्बन्ध है अर्जुने आरसी साहित्यसे कुछ नहीं किया तब कुछ संस्कृत साहित्यसे ही अनुयायित है। साहित्यिक-वस्तुपर विद्वान् अर्जुने अनुकरण जिना विमुक्त मारतीव है।

जब जब केवल १५ वर्षके थे अर्जु वि सं १७४८ में अल्प विवाह हो गया। अर्जुने बहुस्वामयका बड़ा ही कल्या मरा विद्व अक्षि जिना है। हो सकता है कि इनका बहुस्व अविन बुन्दोसे जोत-प्रोत्त रहा हो। एक स्वाम-पर अर्जुने जिना है 'त तो रोम्मार ही बनना है और न बरमें ही बन है। आनेकी बहुत फिर है और पत्नी पहना चाकठी है। नहीं अवार नहीं लिपटा। साक्षीघर जोर स्वभाव है, बरमें बन नहीं जा पाता। एक पुत्र ज्वाटी ही गया और एक मर गया। पुत्री जब व्याहक बोम्ब हुई तो अन्तका विवाह कर रिना किन्तु विवाहोपरांत बहु मी विर्वदन हो गयी। इन कुछ-कुलको भी जानता है, अन्तका मका क्या कहना ?

१ अन्तका बनी नाहि अत ही न बर माहि

आन की फिर बहु नाहि बाही बहना ।

इस समय बागरेमें मानसिंह और बिहारीदास बैन वर्मके बुरखार विद्वान् कहे जाते थे । वे आध्यात्मिक चर्चाओंके केन्द्र थे । 'मानसिंहकी सैली' तो अत्यधिक प्रसिद्ध थी । ज्ञानतराय उनसे बहुत प्रभावित हुए, और दोनों ही को अपना गुरु बनाया । इस भाँति कि सं १७४६ में उन्होंने बैनवर्मसम्बन्धी सुदृढ़ लिप्य प्राप्त की । यह लिप्या कही नहीं जाये बल्कि बैन मन्त्रिके रूपमें विकसित हुई । ज्ञानतरायके बनेकालेक बैन पूजाओंका निर्माण किया । उन्होंने आध्यात्मिक पथोंकी त्री रचना की जो 'बमबिछास में संकल्पित है । जैसे तो बैन मन्त्रिकी परम्परा निरन्तर बची जा रही थी किन्तु हिन्दी पूजाओंके रूपमें ऐसा सरल योगदान सिवा ज्ञानतरायके कोई दूसरा न दे सका था । उन्होंने कि सं १७७७ में बिहारकी भाषा भी की थी । कि सं १७८८ में वे दिल्लीमें आकर रहने लगे । वहाँ पश्चिम सुल्तान्वादी बम-बर्जाओंके अधीनस्थ केन्द्र थे । उनके संघर्षसे कबिक्रम अहित-मरण हुदब अन्तरीक्षर विकसित होता गया और आज वे अपनी रचनाओंमें अमर हैं ।

बमबिछास^१

यह ज्ञानतरायकी समुची रचनाओंका संकलन है । इसकी समाप्ति कि सं १७८८ में हुई थी । इस समय कवि महीषय बागरेसे दिल्लीमें आकर रहने लगे थे । इसमें केवल पथोंकी ही संख्या ३३३ है, कुछ पृष्ठाएँ हैं और अन्य ४५ विषयों-पर भी लिखा गया है । ग्रन्थके साध बिस्तृत प्रवृत्ति भी दिखते हैं । बिछसे उत्कल-भोग बागरेकी सामाजिक परिस्थितिका अच्छा परिचय मिलता है ।

बेने बाके छिरि जाहि मिरी तो उबार नाहि

छाओ मिलै और बन भावै नाहि कहना ॥

कीऊ पृथ ज्वारी भयो घर नाहि सुत बयो

एक पृथ मरि कबी छाकी दुस सहना ।

पुनी बर जोष भई म्बाही गुना बम लई

एसे दु क सुख जानै तिसे कहा कहना ॥

बमबिछास कलकत्ता अधिन प्रकृत ।

१ इस अध्यायके अन्तर्गत केवल प्रकृतन लिखवाली प्रकाशक कार्यालय अन्तर्गत ही हो चुका है ।

२ इसे नोट उभे बाग भयता बई है बीच

पश्चिम ही पृथ ही अगोत्र प्रवाह ही ।

में जा बैठे । हम मन बचन कायमे तुम्हारा नाम करते हैं लेकिन तुम हमें कुछ नहीं देते। हम मन्त्रे-बुरे जो कुछ भी हैं तुम्हारे भक्त हैं। हम भयराधी हैं किन्तु माप तो बन्धाके समुद्र हो। हे भगवन्! बस एक बार हमको इस भक्तमं निदाह लो

तुम प्रभु कहिबत दीनदयालु ।

आपन हाथ मुकवि में कैये हम तु रकत बग बाक ॥

तुमरो नाम जपे हम भीके मम पच तीनों काक ।

तुम ता हमको कछु दत बहिं हमरो जैन इबाक ॥

मझे धुरे हम भगत जिहार जानत हो हम बाक ।

और कछु नहिं कह बाहत हैं राग दोष की राक ॥

हम सौ बूक परा सो बक्यो तुम तो कृपा-बिसाक ।

घानत एक बार प्रभु लगनें हमको छोडु निदाह भक्तुम ॥”

मनको एकाग्र किय बिना कुछ नहीं हो सक्ता। योग समाधि बप तप और पूजादि सभीमें बगकी एकाग्रता ही असोह है ही। परमेश्वरके प्रति सत्य रहनेसे और कौणिक वैश्वोन्वी चाह छाड देनसे मनमें स्थिरता आती है। स्थिर मनसे ही वह तप तपा जा सकता है जिससे ठिठ न करना पड़े स्थिर मनसे ही वह जप जपा जा सकता है जो फिर न करना पड़े। स्थिर मनसे ही वह ज्ञान जिया जा सकता है जो फिर न करना पड़े और स्थिर मनसे ही ऐसी मीन मरा जा सकता है जो फिर न मरना पड़े। पंचपरमण्डिवाकी शरभर्म जानेसे मनमें एकाग्रता तो आती ही है पंचेन्द्रियां भी बचन हा जाती हैं

“ऐसी सुनिदान कर मर माई, पंचम बंधे मन किठहुं न जाई ।

ब्रह्मेश्वर नीं भवि रह्यै कौण्डर्यना को तज दीसै ॥

अन भद नेम हाड त्रिधि धरि आसन प्राणाशाम समरि ।

प्रपाहार धारना कीसै ध्यान समाधि महारस पीसै ॥

सो तप लपो बहुरि नहिं लबना सो जप जपा बहुरि नहिं अरना ।

सो ज्ञान बढे बहुरि नहिं बरना केया मरो बहुरि नहिं मरना ॥

पंच परावतन कलि कीसै पांचो इन्द्रो को न बगोसै ।

घानत पांचो कण्ठि कहीसै पंच परम गुरु शरभ राहीसै ॥

पूजा-साहित्य

घाननरायने भक्तवनेक पूजावाजा निर्णय किया। कुछ ही प्रतिदिन मन्त्रिर्म पढी जाती है और कुछ बेचन पढने विनायै ही। ये मूल्य है। देवदासबुद्ध पूजा

१ सभी वं ब्रह्मनाम्नी ब्राह्मण-ब्राह्मण सम्पारित इतिजिनवाली नमस्में प्रकामिल हो चुका है और कुछ भाग्यार घानतीक पूजावधि में भी बनी है।

बीज तीर्थंकर पूजा विदेहधेय पूजा पंचमेव पूजा दशमदश वर्षपूजा मोक्ष
 वाग्म्य पूजा रत्नत्रय पूजा निर्वास धेय पूजा मन्वीरवर हीन पूजा अष्टाश्रिता
 कथा त्रिषुचक्र पूजा गरुडवती पूजा ।

इनमें-से देवदास्यगुरु पञ्चमी अष्टक कथानि है । देवदे तात्पर्य साक्षात्
 मयदात् अतिराम्ये है भाषागत देवोमि नहीं । पादपूजाया अप जन सास्रोमि है
 जिनमें मयदात् अर्हन्तके मुँहमें निकले हुए दिव्य कथन निबद्ध है । भाषार्थ उगा
 ध्याय और गाथु गुरु माने कहे हैं । वे ही अन्तार-मनुजने वार वरदेके लिए प्रशास-
 के समान हैं । तीनों ही की अनुकम्पय काने अष्ट द्रव्योंमें पूजा की गयी है । तीनों
 ही 'रत्न' के समान हैं, जिनकी भक्तिसे 'परकार' प्राप्त होता है

'अथम देव आर्हंत सुभुज विद्वान्म नू ।
 गुरु विरमन्थ महंत सुकणितुः रंथ नू ॥
 तान् रत्न आम्माहि मी के मधि प्पाह्वे ।
 जिनकी भक्ति प्रसाद वरम वद् पाह्व ॥१॥
 पूजो पद् आर्हंत के पूजो गुरु वद् सार ।
 पूजो देवी मारवता जितप्रति घट मकार ॥२॥''

मोक्षद वारम्य पूजामें मन्वीर मुन्यकाने जिनकेके वरचोतर कंचन-साठीमें
 निर्मल-नीर बहते हुए मयन भाव विभोर होकर अय-व्यवहार करते हुए एक कथमें
 यह उठता है

'अक्षय-शारी विरमक नीर पूजो जिनवर गुन-नीमीर ।
 वरमगुद हो अथ अथ नाथ वरम्य गुरु हो ॥
 दुराधिपुत्रि माथवा माथ मीकह तीर्थंकर-वद्-दाव ।
 वरमगुद हो अथ अथ नाथ वरम्य गुरु हो ॥

पंचमेवकीरी पूजामें रंगीनकी कथ है । पंचमेवकीरि अम्पी जिन अशिर और
 सब प्रतिमाओंको समस्कार करत हुए मयन बहता है है नाथ । जिनकी देववर
 मुखे एमा मुख होना जिनमें 'परम गुन' के अतिरिक्त और कुछ नहीं बड़ा वा
 कथना ।

"मीनक-मिह-मुवाक मिळाव अक सी पूजो श्री जिनराव ।
 महागुन्य होय देवे नाथ परम मुख होय ॥
 पौंथी मेर अम्पी जिन नाम सब प्रतिमा को करो वराम ।
 महागुन्य हाथ देव नाथ वरम्य गुन्य होय ॥"

मन्दीररक्षके ५२ शैलपुत्रकर्म और जलम विराजमान प्रतिमाओंमें-से कुछ ऐसा लेन पूजता है जिसके समझ करोगे बम्ब और सूर्योकी बुधि भी षीकी है । ने बचनसे नहीं बोलने किन्तु उनको तो देखने-भाषणे ही सम्मत्त्व पैदा हो जाता है

'ओटि-सधि-मान-बुधि-तैव छिप जात है ।

महा-वैराग-परिधाम झरारात है ॥

बचन नहीं कइ कलि होत सम्पत्कर ।

धीन बावड प्रतिमा नमीं सुखकर ॥९॥

'निर्वाण-क्षेत्र-पुत्रा की बचनानामें सम्मेरसिद्धर की महिमाका वर्णन करते हुए कविने कहा कि एक बार जो कोई बसकी बन्धना कर केता है उस फिर गरक-यष्टु-गति नहीं होती है । गर-पति रैव-पति बन जाता है । यह दृष्टीकिक भोजोको भोजकर भी शिव-सुखको पा सेता है । सम्मेरसिद्धर विष्णोका विनाश करके कस्याव करतबाला है । उसमें ससारसे पार समानकी साम्य है

'वीरों सिद्ध भूमि का ऊपर ।

सिलर सम्मद-महागिरि मू पर ॥

एक बार बंदे जो कोई ।

वाहि गरक-यष्टु-गति बहि होई ॥६॥

गरपति मू मुर दाऊ बन्धतै ।

तिहुँ अय-भोग मोनि सिद्ध पाई ।

विष्ण-विनाशक अंगककारी ।

गुण-विकास बंही मयवारी ॥९॥

स्तोत्र-साहित्य

छातनरूपने स्वयम्भू स्तोत्र 'पार्वतीमाय स्तोत्र' और 'एकीभाष स्तोत्र'की रचना की थी जिनमें प्रथम दो शैलिक और अन्तिम की बाहिराज सूरिके बंस्तुव 'एकीभाष स्तोत्र' का भावानुवाद है ।

स्वयम्भू स्तोत्रमें चौबीस पद्य हैं । चौबीस तीर्थंकरोंमें-से प्रत्येककी महिमानें एक-एकका निर्माण हुआ है । यह स्तोत्र प्राय पूजाधीकी सभासिपर पढा जाता है । बचनानु पाठनाय और बर्द्धमानकी महिमामें बने हुए दो पद्य देखिए ।

इस्य किबो उपमग अथार रवान देखि धापो कविधार ।

गथा कसठ छठ मुल कर इवान नमीं मेरु सम पारस स्वाम ॥९॥

मय सागर तें वीच अथार धरम पीत में परे बिहार ।

बचन कइ दया विचार बर्द्धमान बंई बहुवार ॥९॥

'पार्श्वबाध स्तोत्र' प्रसिद्ध है। इसमें संगीतही लय है और धार्मिक प्रवृत्ति। यह भक्तान् दुःखियोंके दुःखको हटानेवाला सुख देनेवाला और सेवकोंके हृदयमें महान् आनन्दकी वर्षा करनेवाला है। उसके सेवकोंके पास भय तो कटकटा ही नहीं। यह भक्तान् बरिष्ठोंको बल अपुत्रोंको पुत्र भी देता है। देखिए,

हुली हुल्लहत्ता सुली मुकन्दवर्ता ।
सदा संवर्षों को महानन्द मर्ता ॥
हरे पद्म रासस भूत विसाखः ।
विपं चाकिचो विषय के मय भषाख ॥३॥
बरिष्ठान की वृद्ध के दाम पीने ।
अपुत्रोंको हूँ लखे पुत्र कीने ॥
महानन्दको छे विकारै विधाता ।
सबे संवदा सर्व को देहि दाता ॥४॥”

भारती साहित्य

छानछानकी पाँच भारतीयों जिनका नाम 'संग्रह'में प्रकाशित हो चुका है। वे पाँचों क्रमशः इस विधि मयत्र भारत की हैं। भारत की जिनका नाम 'भारत की' और 'भक्त भारतीय साहित्य' से प्रारम्भ होती है।

प्रथम भारतीय पद्यपरमेष्ठीकी भक्तिमें रही गयी है। वे पद्य-समुहोंके ठारने-वाले पद्य-श्रेणीकी सिद्धांतके अन्त-भरणके दुःखोंको हट कर देनेवाले पाठकोंके हटानेवाले और सुमतिका विनाश करनेवाले हैं।

द्वितीय भारतीय भी जिनका नाम 'भारती' है, जो कर्मोंका रक्षण करनेवाले और शक्तोंके हितकारी है। यह भक्तान् ही सब देनाका देव है और गुरु-भर-अनुरक्तोंके सेवा करते हैं। जो कोई शक्तोंके अन्तर्गत गया यह पद्य-समुहोंके विरक्तता। भक्तान्के कुछ इतने अधिक है कि पद्य-भर भी पार नहीं पा पाठे। यह भक्तान् कथनका पाठ है और अपने पद्यको सदैव सुख देता है

'सुख भर अन्तर करत तुम सेवा ।
तुमहीं सब देवक क देवा ॥
भारति भी जिनका नाम 'भारती' ।
कर्म रक्षण संतान हितकारी ॥
मय मय मीठ करत से पाठ ।
वे दरभारक पद्य कगाले ॥

जो तुम नाम नहीं मन माहीं ।
 जन्म मरण भय लखो नाहीं ॥
 तुम गुण हम कैय करि गावैं ।
 गणधर कहत पार बहि पावैं ॥
 कल्यासागर कल्या कीजे ।
 ध्यानत सेवक को मुक्त दीजे ॥

तृतीय वारती भी मुनिराजकी है, जो अथर्षोका उद्धार करनेवाक है । उनके चरित्रका मुनगान करते हुए कवि कहता है, वे धनु-मित्र और मुख-नु खकी समान मानते हैं तथा काम और अनाभकी भी बराबर समझते हैं ।^१

चतुर्थ भारतीय भगवान् महावीरकी भक्तिमें रची गयी है । वे भगवान् मनुष्याकी तारणम भो वैद्य ही पद हैं जैस कि अपने बर्षोंके विहीन करनेमें । वे दीमशाताम सर्षोक्कह है और शिव-निम का भोग करनेवासे है । वे मन-बचन और कामसे योगी हैं^२

राग-बिना सच जग जन तारै; ह्येप बिना सच करम बिहारे ॥
 करी भारती बद्धमाव का पायापुर निरवान या / की ॥१॥
 श्रीक सुरंधर लिखतिन भोगी मन्ववचक्यपनि कहिप भोगी ॥
 करी भारती बद्धमाव की । पायापुर निरवान धान की ॥२॥

पंचम भारतीय ज्ञानराजकी है । इनमें एक उत्कृष्ट काक है । आत्मा ही भगवान् राम है । यह नमवान् तनकी मन्थिरमें विराजमान है । भक्त अष्ट इभ्योसि उसको पूजा करता है । समरसरा ज्ञानभ ही जल-बन्धन है तत्त्वस्वप्न तन्मुन अनुभव-सुख नैवेद्यका मद्य हुआ पाठ ज्ञान शीपक ध्यान पूर और निर्मल-भाव महाफल है । सबको मिठाकर अप्य बन जाता है । इस भाँति भक्ति बन जो नरवा भक्तिमें प्रवीण है सपुत्रकी भाँति ही आत्माकी राममें एकनिष्ठ हो तस्मीन हो रहे हैं ।^३ देखिए

'भंगक धारानो भावमराम । तव मन्त्रि मन उच्चम जग ॥
 समरम अक र्दहन धारैह । तंहुक तत्व स्वक्य जर्मह ॥
 समवसार कृत्य की माठ । अपुमव मुख मैरज भरि बाक ॥
 दीवक ज्ञान स्थान की पूर । निर्मक भाव महाफल क्य ॥
 सुगुन भक्ति जम ह्करम कीन । निहये नरवा जनि प्रथम ॥

१ इतिहासवादी मन्त्र १४ २११ ।

२. धानरीठ पूजावलि पन्थ ७, १४ २१४ ।

३ इतिहासवादी समा १ २ २ ।

जब कोई व्यक्ति व्यवहिक उत्साहके साथ अन्तर्हृदयमें विराजमान परमेश्वर का ध्यान करतायेगा तो वह तबिध बात है कि ध्यानकी बलवृद्धि अवस्थानै वह परमात्मासम हो जायेगा जबकि वह और कसका साहस एक हो जायेगा। और जोन ऐसे ध्यानको सुलभ ध्यान कहत है। ध्यानतरावने भी ऐसा ही कुछ कहा है,

‘सुनि शतसाह सु अबहव गान ।
परम समाधि विरत परबाल ॥
बाहिर आतम माण महानै ।
आम्तर है परमात्मन भावै ॥
साहस सेवक भेद विद्याय ।
दास्य एकमेक ही बाप ॥

समाधिभरण

ध्यानतरावका रचा हुआ समाधिभरण छोटा समाधिभरण कहलता है। इसमें कुछ रस पक है। यह ‘बृहन्विजयनामी संग्रह’ में प्रकाशित हो चुका है।

धर्म पञ्चीसी

इसमें कुछ २७ पद्य है। यह भी अत्युत्तम ‘विजयनामी संग्रह’ में लिख है। इसमें बीन धर्मके प्रति असाध अज्ञा प्रवृत्ति को नहीं है। एक स्वानवर कविन कहा है कि बीन धर्मके बिना अनुपम बीने ही है जैसे जगके बिना पथि शीतके बिना हाथी और अन्तके बिना उरुव नारी

‘बेनु बिना बिद्य पात्र विन इत । जैसे तरब बारि विन कत ॥
धर्म बिना शौ मानुष देह । ताँतै करिब धर्म अवेह ॥

नीरके बिना सरोवर खोजा नहीं पाता धर्मके बिना पण्यका कुछ सुख नहीं और धर्मके बिना धर्म कोई लीन्यर्न नहीं या पाता ठीक जैसे ही धर्मके बिना मनुष्य भी सुखीनित नहीं होता

“बैस गीब बिना है सुख । नीर निर्हीन सरोवर सुख ॥

एवो धन बिब धामित नहीं मौन । धर्म बिना धर शौ फितीव ॥१३॥

धर्मका अर्थक है और नीचन धर्मके अर्थक जाता है। सुख मित्र और नारीका सखीन भी वधिक है। उधाररा नीच स्वल्पके समान है। यह देखकर सुख स्वभावके बीन धर्ममें अज्ञा रकनी बाहिर। बीना धर्म होना बेठी ही नथि मिलेगी धर्मका अर्थक रहे विर भाव । नीरक कर्मि धरा कपटाव ॥
सुख मित्र नारी बाप संशोय । यह विसार सुख अ भीय ॥

बह कलि बिन बर सुख सुभाह । कात्र भी त्रिनभम उपाह ॥
यमाभाह जैमा गति गह । जैमी गति सैया सुख कई ॥११॥

अध्यात्म पञ्चामिका

इसमें टीक पचास पद्य हैं जैसा कि इसके नामसे भी स्पष्ट है। इसकी 'सम्बोध पञ्चामिका' भी कहते हैं। इसमें कहा गया है कि विमल आत्माके नाम होने हुए भी यह जीव इधर उधर भटकता छिगटा है। अमाभूमिग अन्धकी क्या विविध कृपान्तोषि व्यक्त की गयी है।^१

जैसे काहु पुण्य के रूप गह्या बर भाहि ।

बहर भर कर मोल ही खीत जामे बाहि ॥१३॥

वा नर मो कि नही कही तु खी मणि मोल ।

तरे बर मे निधि गदी खीत उचम सीख ॥१४॥

अन्य रचनाएँ

दानउपपहृत कुछ रचनाओंकी सूचना 'दानपञ्चक जीन धास्त्र भण्डारकी' ग्रन्थ-सूची भाग ३^४ में प्राप्त हुई है। इसमें १८ नामोंकी सुपमाका 'रघु पञ्चक चौबीसी' और 'छद्म बाका' प्रसिद्ध हैं। रघुपञ्चक चौबीसीमें चौबीस टीककरके नाम कात्रा-वित्राक नाम ऊँचाई और आयु बादि १ कात्रोका वर्नन है। इसकी प्रतिक्रिपि मीटकाउत गाह पाषट्यकारेने अद्यतुमें म १९४४ में की थी।

७४ विद्यासागर (वि सं १०३७)

इसकी रचनाओंका पत्रा अभी अभी हुनी^२ अर्थात् श्रावणुटीके धास्त्रभण्डारकी लोभन समक जगा है। बीच ही रघु भण्डारक इन्प्रसिद्धिपत्र प्रश्नोंकी संख्या १४ ही है किन्तु अकमें कुछ महत्त्वपूर्ण संकलन भी है। वा मुद्रकामे त्रिगुणी ऐसी रचनाओंका संकलन है जो अभी तक अज्ञात थीं। उनमें-से पहला ही सं १८०१ का जिका हुआ है और दूसरा भी इसीउ नाम-पापका प्रतीय होता है क्योंकि

१ वी, १ ४३४।

२ इसी अद्यतुम १ जीन और टोकने ३ मंगलर अमिका है। वर खैली जाने वाली लखन्य लखन्य २ नाम हुए हैं। इसका प्रथम नाम होपुटी है। अन्तमें लखनी है। रघु उकार वर पुपन्य विपणन जैन अन्तर है। २२ जीन का है।

उद्योग प्राम अठारहवीं शताब्दी की रचनाएँ हैं। उसीमें विद्यासागरकी छह कृतियाँ निम्न हैं।

विद्यासागर नामके दो कवि मुजरातीमें हो गये हैं किन्तु बोना ही अठारहवीं शताब्दीय उत्पन्न हुए थे। एक तो तपायच्छीम विजयशान मुरिके द्विप्य थे जिनमें से १९२ में सुखीयक गोन'का निर्माण किया। दूसरे अठारहवीं शताब्दीय मुजरातीय के द्विप्य थे। उन्होंने से १९७९ मासोय सुरी १ को कलावती 'वीर्य' की रचना की थी। प्रस्तुत विद्यासागर उद्योग बोना ही पृथक हैं। उन्होंने जो कुछ किन्ना हिन्दीमें ही लिखा। उनका समय भी अठारहवीं शताब्दीया पूर्वार्ध माना जाना चाहिए, और कि उनकी रचनाबोधे स्पष्ट है। उन्होंने संवत् १७३४ में ध्याक स्तोत्र 'अप्य'का निर्माण किया था।

विद्यासागर कारंकाके रहनेवाले थे। उनके पिताका नाम राजू साहू था। वे बरेल्लाक जातिमें उत्पन्न हुए थे। बरेल्लाक वैदिककी एक उपजाति है जो अब भी कारंकाकी तरफ अधिक रहती है। पिताके नामसे ऐसा स्पष्ट ही है कि वे एक छात्रपर थे और कर्मीकी उनपर हुआ थी। वे कर्मविष्ठ भी थे तथापि किन्तुकी भक्तिमें ही उनका अधिकतर समय व्यतीत होता था। विद्यासागर भी ऐसे ही थे। वे मुजराती तरस्वतीयक बलात्कारययके धुनकनके मुजराता थे। उनके बुद्धका नाम अजयचन्द्रमुरि था। विद्यासागर छह विद्यासागर कहलाते थे। इसमें स्पष्ट है कि वे बहूभाषी थे। उनकी रचनाएँ कवि मन्त हुरवकी थीय हैं। प्रायः सभी मुक्तक हैं। उनमें लंबी और छप्पंवाली अधिकतर प्रयोग किया गया है।

रचनाएँ

'सोडहस्वण काव्य' नामकी कृतिमें तीर्थकरकी मंत्रि सोडह स्वर्गीया मलि-मय विवेचन है। इसमें केवल ९ पद्य हैं और यह अठारहवीं शताब्दीय प्रथम वाद्यम लिखी गयी थी।

'शिव काम मङ्गलम पदपद मे भयवान् विवेकके कामभलीय मङ्गलकी लक्षी है। इन अक्षरपर इन्द्र इन्द्राची तथा अन्य देवान्द्विज भावर विधिप उत्पत्तीकी रचना करता है। उनका एक एकत्र विष इस जाटे में काव्यमें प्रस्तुत किया गया है। इसका रचनात्वाक भी अठारहवीं शताब्दीया प्रथम वाद्य ही है। इसमें कुल १२ पद्य हैं। एक पद्य वैदिक,

“चास्यो सुरग तदा विद्यति मारग विभागे ।
 हाव माय सखिसाय ऊरो कर मृत्यु सु ताव ॥
 पुमि पुमि पुनिप मार उदार ज महक बज्र ।
 वमि वमि शब्द रंग चार हो एक बहु गज्र ॥
 शिक्ति शिक्ति मुम्बरे करि पुग्गरी यम क बहु तदा ।
 विद्यामागर कहे सुभा सुर विद्याणक कर यदा ॥५॥

‘उप उपमन सवेपा म मात अपसुतापो उोहनकी बात बही मयी है । इसमें कुछ साठ पद्य हैं । इसका रचनाकाल यह ही है । सर्वयोग प्रयोग किया गया है ।

‘इयमाष्टक’ मयवान् जितन्दे इयाने संश्लेषित है । इसमें बताया गया है कि मयवान्के दर्शन करन-यावसे ही यह बीच भव-समुद्रमें पार हो जाता है । इसमें ११ पद्य हैं । रचना शक यह ही है ।

‘विद्यापहार उपम सवेपे बडा काव्य है । इसमें ४ पद्य हैं । यह उपमोंमें लिखा गया है । इसका रचनाकाल भी अज्ञातहो चताम्बीका प्रथम पद्य ही है । इसमें मयवान् जितन्देकी मन्त्रिणे इत्यौक्तिक और पारलौकिक दुर्लभेष्ट जानेका विवेचन है । एक पद्यमें जितन्देका रूप इन प्रकार मन्त्रिणिया है —

“शब्द शरीरार्थीत स्वामि तु है वृषभधर
 कर रंग रम रहिन प्रसु तु श्री जगदीश्वर ।
 ईह मंथ गक्य शब्द ना ज्ञान न ज्योति,
 काक यि पश्यांग मीग जित गीके बखोले ।
 सम्य लीक जमिमान् धी ममरे बही सुर न कदा
 पर विद्यामागर कहे सुर गुण ममद तु यदा ॥६॥

‘सुपात्र रत्न उपम म कृष्ण २७ उपम है । इसमें चौबीस तीव्रकर्षी स्तुति का बर्णन है । इसको रचना म १०१ आदिबनमाम मुदी नातमी मुक्तारके दिन काज्यामें हुई थी । एक पद्यन मयवान्के दानका जानन्द देवत्त,

।नरन्दा मयन भात्र रमाचन मरिह सुरकर
 मय विद्यान तु रवान कात्र मिति रन्दा सुरकर ।
 मरु सुरम तु मरुन भात्र म मयने निरन्धी
 विद्यामलि सुर भात्र निरन्तु मुष्ट ई बहु हरन्धी ।
 जितगुट निरन् ६ महु भात्र म निरन्दा निरन्का
 विद्यामागर कहे जित वि रंन वाणिग मन्दा ॥७५॥

७५ बुलाबीरास (वि सं १०१०-१०१४)

बुलाबीरासकी रीच-परम्परा इस प्रकार की साहू धमरठी प्रेमचन्द धमरधाम मन्दि-काव्य और बुलाबीरास । वे मूलतः बयानाके रहनेवाले थे । किन्तु काव्य धमरधाम बयाना छाहकर बादमें एसे गये थे । उनका पुत्र मन्दि-काव्य शीव स्वस्व और स्वस्वमय या शिवपर मोड़ित होकर प्रविष्ट पण्डित हुनराजने अपनी पुत्र मात्र पुत्री 'शैवी श्याहू बी बी । शैवी रूप और सीकमें अनुपम तथा सम्पत्तीकी तो छासाम् बचतार हो थी । पत्नीने मर्मसे बुलाबीरासका सम्पत्तु हूआ । विदुषी मीठी देव-देवमें बुलाबीरासका पाकम-दीपक हूआ । वे विदुषी मो बल मक और म्हाकवि थी । उनका कुल बरबाक और गोत्र शीवक था ।

'नामपी प्रचारिका पवित्रा'के सम्पादकोंमें उनके द्वारा रचित श्रीमन्महा-छोताभारतभूषित' नामक इन्के आचारपर लिखा है 'वे मूलरूपसे बयानाके रहनेवाले थे किन्तु जन्म-पानके संबोधसे बहानाकारमें आकर एसे गये वहाँ और एसेके छासाम् सब प्रया मुखी थी उनके पुत्रका नाम एतल वा शो पद शोपाचकके रहनेवाले थे ।' किन्तु 'श्रीमन्महाछोताभारतभूषित' उनकी किसी रचनाका नाम नहीं है अपितु अपनी माताकी स्मृति रखके किये उन्होंने पाण्डवपुराणके प्रत्येक सर्गके अन्तमें 'श्रीमन्महाछोताभारतभूषिताया शैवीनामलि-ताया चारतनायामा' लिखा है । अन्तमें पाण्डवपुराणकी रचना अपनी मीठी आभासे ही की थी । अतीतक बहानाकारका सम्बन्ध है ही सचता है कि उनके पूर्वज वहाँ की कुछ दिनों रहे हों ।

बुलाबीरासने 'बचतमोघ' प्रसोत्तरभाषाकार 'पाण्डवपुराण और 'शैव शैवीसी' की रचना की थी । इनमें पूज्यता प्रकृतसे सम्बन्धित 'शैव शैवीसी' ही है किन्तु अदभित ही प्रथममें भी अन्तिमें अनेकों स्थल हैं । वहीं जिनके की स्मृतिमें वहाँ जिन मन्दि-काव्य साविद्य मर्मन और वहाँ मन्दि-काव्य मन्दि-काव्य मन्दि-काव्य हैं । वहाँ सभी प्रन्दि-काव्य संकेतमें परिचय दिया था रहा है

१ १ मी हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास, पन्ना २११० ई. पृष्ठ १५ ।

२ 'बचत बुलाबीरास की मूल कबीता काव्य । और एतल गुर्वेव की मन्दि गोपाचक काव्य । अन्त पान सजोय तें मन्दि बहानाकार—मन्दि बहाना-कारका साहित्य और मन्दि विविधा शिव कतार वही रहे प्रथम मन्दि ।' इति का वा मन्दि-काव्ये इतिहास हिन्दी प्रन्दि-काव्य १२वीं वेवर्षिक विवरण ।

वचनकोश

इसको एक प्रति 'सिठका कूबा बिस्की'के जैन मन्दिरके छात्र मण्डारमें मौजूद है। इसकी रचना वि सं १७१७में हुई थी। यह प्रति वि सं १८८९ को लिखी हुई है। इसमें १३ पृष्ठ हैं। इसकी दूसरी प्रति जयपुरके बड़े मन्दिरके बेलन नं० १९४१ में लिख्य है। यह प्रति बिम्बुलक छूट एवं पूरा है। इसमें १५७ पृष्ठ हैं। इसपर लेखनकाल स १८५३ पता हुआ है। यह धर्म जैन-सिद्धांतका विषय है किन्तु हिन्दू-पद्योंमें लिखा गया है। पद्योंमें सर बना है।

प्रश्नोत्तर-भावकाचार

इसकी प्रति दिल्लीके पचायती मन्दिरके धर्ममण्डारम मौजूद है। इसका रचनाकाल सं १७४७ और लेखनकाल सं १९१७ में दिया हुआ है। इसमें कुल १०३ पृष्ठ हैं। इसको दूसरी प्रति जयपुरमें सूपकरजीक मन्दिरके बेलन नं० १८ में लिख्य है। इसपर भी रचनाकाल स १७४७ पता है किन्तु लेखनकाल सं १९४१ है। यह प्रतिलिपि मासरोबा घामके बीजाग बनशुंभरजी ठौरपन्थीने लिखवायी थी। इसमें पृष्ठसंख्या १४५ है। इस धर्मका विषय जैन धर्मानुसार भावकोक भाषारसे सम्बन्धित है। किन्तु हिन्दू-पद्योंमें लिखा गया है और जहाँमें बनेक स्वर्णोत्तर साहित्यिक भाग्य सन्निहित है।

पाण्डवपुराण

यह बुलाकीशासना प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसमें जैन-वरम्परानुमोदित पाण्डवाकी कथा है। इसकी रचना वि सं १७१४ में दिल्लीमें रजकर की गयी थी। वहाँ जगदी धी जैनसदे या जैनीग धुमचण्ड मठारकका संस्तुन पाण्डवपुराण ब्रह्म और जयन पुत्रको हिन्दीमें रचनकी आज्ञा थी। जहाँग सठ ब्रह्मको पूरा किया। इस काव्यमें ५५ पद्य हैं। जगदी काव्य-सक्तिपर भवता मन कवि व्यक्त करते हुए प्रसिद्ध पण्डित नापूरामजी प्रेमीने लिखा है, रचना मध्यम शैलीकी है पर कहीं-कहीं बहुत अच्छे हैं। कविग प्रतिभा है पर वह मूलधर्म-

१ तापी शब्द विचारके भास्य ज्ञाया नाम ।

कथा वाद मुन वच की कीर्ति बहु अचिराम ॥

मुनव शब्द भास्य सई जन जनार्ण भाइ ।

ऐसा शब्द प्रथम हो योगि मुनाकी ताइ ॥

वाचस्पत्यय प्रसिद्ध दिल्लीवासी मनि ।

की ईदके कारण विरचित नहीं हो पायी। मूल पद्यही ही रचना बहिष्ता नहीं है। काव्य-सहित मंत्री हुई और पुत्र है किन्तु कथागतसम्बन्धी घटनाओंके सुनाय-किरणमे कुछ होय है जो मूल कथामे सम्मिलित है। सम्बन्ध-निर्वाह भी किर्तुवक है। ना ना प्र के सम्पादनात् विचार है प्रस्तुत कथामे अत्यन्त रोचक है। कविता श्रेणी है।^१ कविकाके सम्पादकोंके बल्लभ (आमठ)के जैन मन्दिरके घासमण्डारमे एक प्रति प्राप्त की थी। उसपर रचना-संख्या १८९३ पढ़ा हुआ है। कविता पद्यमे स्वयं सम्पादनमे ही किया है।

इसकी एक प्रति तथा मन्दिर दिल्लीके इन्सपिक्ट्रिड कम्पामें मौजूद है। कवि सं १८९२ की हुई है। इत्य २ १ पृष्ठ है। दूसरी प्रति जयपुरके कपी कान्धोजके जैन-मन्दिरमें बंटेन न ६४४में निबद्ध है। इसमें पद्यसंख्या २ २ है और रचनाका नं १७५४ दिया हुआ है। अन्तेपवाली प्रतिके आचारपर प्रारम्भमे एक छन्द छ-व है।

‘सबत मत्त सुरराज स्वर्णं मिहिधिब विद्द मय ।
सिद्धारय सरबस बब प्रमाय सा सिद्धि जय ॥
करम कद्व करतार करत इतम करत करत ।
अमरत मरत अम्बार मद्दत बहव साधन सद्दन ॥
ब्रह्मविधि अमक गुणगण सहित जग भूपय रूपय रहित ।
विहि मन्डकाक मन्डव नमत विहि इत सरज्ज भित ॥

जैन-श्रीश्रीसी

इसका सम्बन्ध काफी गहरी प्रचारियों कविकाके हस्तलिखित हिन्दी कम्पोजे पत्रमें वैचारिक विवरणमें हुआ है। कविकाके सम्पादकोंके हस्तकी प्रति मावरीक गुहरके रहनेवाले भी दुर्गासिद्ध पत्रपुठके पाम प्राप्त हुई थी। मावरीकना बाबुलाला बनरठा लखीक निरपवाली और बिना आयत है। इसमें १९९ अनुपुम् छन्द है। कवी २४ तीर्थकरोली मन्दिठ सम्मिलित है। कविकान् कारिनायकी कम्पामें एक छन्द इस प्रकार है

बन्दा प्रथम विवस को होय अकारह पुरी
वेद नक्षत्र मह जीव गुण अवन्त मरी पुरी ।

^१ हिन्दी जैन साहित्यस्य इतिहास, कर्ण १९१० ई. पृ. २७।

का ना म कविकाके हस्तलिखित हिन्दी कम्पोजे पत्रमें वैचारिक विवरणमें है।

नमो करि करि सिद्धि को मइ करम कोइ छार
सइल घाठ गुन सा मई, करै मगत उधार ।
व्याचारत क पइ करि पमो हूँ अन्तर गति माइ
पंच अक्षरजा सिद्धि से मार अगत क राइ ॥

७६ विनयविजय (वि सं १०३९ तक से)

ये एक श्वेताम्बर सामु से। इनके गुहका नाम कीर्तिविजय उपाध्याय था। कोर्तिविजयजी बोरममामके रहनेवाले थे। कोर्तिविजयजी पलना दण्डे विद्वानोंमें थे। विनयविजय इन्हींके शिष्य थे। उन्होंने अपनी गुरु-परम्पराका सम्बन्ध इस प्रकार किया है—

विनयविजयजी यशोविजयके समराज्योत थे। शोभाम सामु रहकर ही वाणी में विद्याध्यायन किया था।^१ विनयविजयजी स्वयं बोर साहित्यम समान गति थी। इनका नमकबिका नामका ग्रन्थ अंगरेजी टीकासहित छप चुका है। पुष्पप्रकाशस्तवमम् और पंचममशास्तवमम् अतिउच्च सम्बन्धित हैं। पुत्रराती साहित्यको उनकी विद्याक देन है। उसमें 'निमित्तान् अमर शीतास्तवन 'निमित्तान् वाचमास स्तवन' आदिनाम विनयी' बीबीसी बीसी और 'शास्त्रत विनयाय' ध्वनिप्रिय प्रशिद्ध हैं।^२ काशीमें रहनेके कारण उन्होंने हिन्दीमें भी समुचित योग्यता प्राप्त कर ली थी। उनका हिन्दोका एक ग्रन्थ विनय-विचारत के नामसे छप चुका है। इसमें कुछ ३७ पर है।

विनय विज्ञान

यह सरोर मूला है किसीक साम नहीं आना यहाँ ही पया रह जाता है। और सबको प्रेम करता है, करता नहीं चाहिए। आरमा ही शेष है जो कमी ध्य नहीं होगा जो कमी मरता नहीं। हमीको कविने एक मुन्दर रूपके द्वारा उपस्थित किया है। आरमा वा शीव सवार है और सरोर घाटा। यह धानेमें तो हाथियार है, किन्तु जब इसपर शीव कठा तब यह सोना चाहता है। इसपर

१ विदितान् अमर शीता स्तवन पुत्रराती २२वीं पं।

२ वैज पुत्रर कविने घान २ अर्ध २२३२ ई. पू. ७।

३ वैज लोच सरोर प्रथम भाग, सुनि अक्षरविजय द्वारा सम्पादित प्रकाशना, पार सिध्दी, पू. २३।

४ समीप्य लक्षित विनय 'वैज पुत्ररकविने' घान २ पू. २२० में प्रकिय है।

किताब ही क्या खय करो किताब ही ब्रह्म चारा हो सवारीके समय यह
 बचस्य ही इधर-उधर बढ़ेगा । यह ठीकाएँ तो बहुत प्रकारकी करवाता है
 किन्तु सवारको कही दूर जगहमें जा पटकता है । अतः इस विषयके बोधको
 ठीक रास्तेपर जानेके लिए, बाबुको नाम देना होगा । बिना देना किसे यह
 संसारकी मार्ग कैसे पार कर सकेगा ? यह कर्मक देखिए

‘धोरा ह्य है रे रे मठ भूके भसवारा ।
 तोहि मुखा के कागत प्यारा अंत होवया न्यारा ॥
 रीर चीर और रीर कैर सी कर्म क्यो ब्यारा ।
 भीत कसे तब सोपा चाहे लाने की होखिवारा ॥
 ह्य खजाना खरब खिकाम्यो दो सब न्यासगत चारा ।
 भसवारी का बचसर बानी गळिया होव गंवारा ॥
 किन्तु चला किन्तु प्यासा होवे गिरममठ बहुत कराचम द्वारा ।
 और दूर बंगल में जाई, खरी बनी विचारा ॥
 करहु रीकड़ा चातुर चौकस धी चालुक हो चारा ।
 इस घेरे को ‘विषय भिलावो क्यों पानो भवपारा ॥

यह मनुष्य सामाजिक सुखोंको प्राप्त करनेके लिए बहुत लज्जता है । एक-
 के बाद दूसरेको प्राप्त करनेकी चसकी तृप्ता कभी बुझती नहीं । यह मूल
 तृप्ताकी भाँति उनके पीछे अविराम बहिये रीकटा है किन्तु कुछ मिळता नहीं ।
 जीवन व्यर्थ चला जाता है । अतः यह पता नहीं कि अचके पीछर ही सुखाका
 सरोवर कहाँ रहा है । अज्ञान स्नान करनेसे सब कुछ दूर हो जाती है और
 परमानन्दकी प्राप्ति होती है । प्राप्त नुब अचके पास ही है । यह व्यर्थमें ही
 इधर-उधर भटकता फिरता है,

‘किवा और क्यु और जार स सुगत्यय विव काव ।
 प्यास तुझाचन बूँद न चाई, यो ही बचम पयाच ॥
 प्यारे काहे हूँ तू ककचाच ॥
 मुखा सरोवर है वा बढ में किससेँ सब दुल काच ।
 ‘विषय काहे गुणव सिरावे को काई कि क्य ॥
 प्यारे काहे हूँ तू ककचाच ॥”

सामाजिक प्यासके लिए अकचाचाना मूळता है । जिनके लिए यह जीव व्यस्त
 होकर मेरी देण करता है वे अचके मूलबुद्धके समान अचिक है । अचिक
 बराबमें विरहण नुब बुझना मूर्खता ही है । माया-अज्ञ विरहणमें जीवनके मूल

स्वभावको बाष्पाहित कर रखा है। यह अस्पृष्टिके कटापर सेटकर दुःख पा रखा है। ज्ञान-कुसुमोंकी अस्यापर सेटनका उसे कभी सीमाम्य ही प्राप्त नहीं हुआ। देखिए,

‘मरी मरी करत बाजरे फिर बीज मज्जकाप ।
 एकक एक में बहुदि न दूख जक-सुंद की न्याय ॥
 प्यारे काहूँ नूँ ककचाव ॥
 कीरे विकल्प न्यायि की बेहन कही छुअ कपराय ।
 ज्ञान-कुसुम की मेज न पारै, रहै अचाव अघाम ॥
 प्यारे काहूँ नूँ ककचाव ॥

यहाँ बाजरे अन्न ऐसे उपयुक्त स्थानपर बैठा है। जिससे मनुष्ये पक्षमें जीवन का गया है। उपयुक्त स्थानपर बाजोंको बिठाना अपने कलाकारका ही काम है। निरवधिजपकी भाषा ऐसी और भाव सभी कुछ मनोहारी है।

७७ देवाग्रह (१८वीं शताब्दीका पूर्वार्ध)

अभीकी ओरामें देवाग्रहारी कुछ रचनाकाका पद्य बसा है। जिनके आधारपर यह निश्चित होकर कहा जा सकता है कि वे हिन्दीके उत्कृष्ट कवि थे। सैकड़ों दिग्गरे पद्यों और कविताओंमें जैसे अतका हृदय ही फूट पडा है। भाषा भी परि माजिन है। अतपर कुछ राजस्थानीका प्रभाव है। देवाग्रहके अविशेष पद्य गणनाम् किनेअके अर्थमें समर्पित हुए हैं।

देवाग्रह म अग्रह अन्त उपाधिसूचक है जो अतके अग्रहारी होनेको बात बोधित करता है। अतका नाम ‘देवजी’ था। यह स्वीकार करते हुए भी कि ‘देव’ का प्रयोग प्रायः नामके अन्तमें ही होता है, निश्चय रूपसे यह भी तो नहीं कहा जा सकता कि ‘देवजी’ नाम नहीं हो सकता। नामोकी विविधता सभीको निश्चित है।

बाबु रामनामप्रसादजीन अपने इतिहासमें देव अग्रहारी और कछरीतिहको केकर एक संज्ञा अतिवृत्त की है। उतका अर्थ है कि देव अग्रहारी (कछरी तिह) हुए ‘अग्नेरसिद्धर बिलास नामक रचना हमारे अग्रिम है। अर्थात् यथा

१. आराधना अथाअर्थिके अर्थां अतिरुपने और माहान अन्त अन्तके अर्थिका देवअन्तने अर्थाधिके अर्थमें अत अन्तका अर्थ अति है।

२. हिन्दी अन्त साहित्यका अर्थ अति अति अति १ २१२।

देव ब्रह्मचारी केसरीसिंह से ? और यह रचना क्या केसरीसिंहक है ? किन्तु हमने अन्तिम पद्यांशे स्पष्ट है कि न तो देव ब्रह्मचारी केसरीसिंह से और न यह कृति केसरीसिंहकी ही है । सोशाचार्यके मिस बलाबल पुनीत सुप्रभ-क आचारपर देवाब्रह्म इन रचनाका निर्माण किया उत्तका अब पश्चिम केसरीसिंहने सम्झाया था । पश्चिमी बम्पूर नगरमें अस्करके मन्दिरेमें रहते थे । देव ब्रह्मचारी भी बम्पूरके ही रहनेवाले थे ।^१

ब्रह्मचारी शानके कारण देवाब्रह्मकी स्वाम-स्वामपर बूमत से और बड़ीकी जगताको उपदेश देने से । एक बार जम्हूल बम्पावनी नगरीमें शौभाग्य किया और बड़ीकी प्रबानो ज्ञानका मार्ग दिखाया । जम्हूने एक पद्य बम्पावतीका विषय वर्णन किया है ;^२ बम्पावतीके बड देतरमें एक पाठेमार्ग रहते थे । इनके

१ श्री सोशाचार्य मुनि वर्म विनीत है ।

तिन हून बत। बंध सुप्रभ पुनीत है ॥

ठा अनुभार कियो सम्पेव बिलास है ।

देव ब्रह्मचारी जिनवर की रास है ॥

केसरी सिंह जान रही कसकरी देह ।

पश्चिम रास सुप्रभ नाम मानी अब बटाइकी ॥

हेकिन्, वही ।

२ देवाब्रह्म शौभासो कियो नवरी में सुप्रभ ।

सब पंचा की माल सुभायो सम्पति इन अधिकार ॥

हेकिन्, बरलीरकी अन्तिम तीर्थ क्षेत्रके एक स्थानीय ग्रन्थमें एकदिल देवाब्रह्मकी पर प्ये किनिर्वा ।

३ बंधुशोप मरतपेन मैं देव ब्रह्महृद सार ।

नवरी बनी ब्राह्मणी श्री देवपुरी सुप्रभार की ॥

उज्जोनि बाळ मरी श्री प्रभा सुपी बर बारि ।

उत्तम पुर्ण्य सदा बरै को पूजा धर्मि करारि श्री ॥

जिन मधिर तो बडो बडयो की कौटि बीधि विमठारि ।

बड के बाहिर बम्पटी विधि पुनि जिन मधिर सार की ॥

दोय को विठनी सदा श्री श्रौति नाथ सुप्रकार ।

बरस प्यास साँ सँ की भरि भरि मडलाधार की ॥

देमी नमरो दोप से श्री लपती बाँ सदा ।

सब पंचा की म्याच तुमाई मुरव मुक्ति करार की ॥

वही, पद्य १-२ ।

मैं अराधन धनक दिया जा
 भाक करत गुणराज ॥
 और देवता सब ही रूप
 सब महा विम कावि ॥
 आका जम वा मुर नर गाथे
 पारं पद भिज काव ॥
 इनामदा चरना बिज क्वाथे
 मथन करि दित काव ।

देवाइस्यारी एह ग्रन्थ रचनाका नाम 'सामवहृषा मथना है जो पद्यरि रूप में ही लिखा गया है। इसकी एक प्रति जयपुरके टोन्किशेरे जैन मन्दिरमें बेहान न ४१८ में लिखत है। इसमें एक १७ पद्य हैं। राजस्थानीका प्रभाव है।

७८ सुरेन्द्रकीर्ति मुनीन्द्र (वि सं १०४)

श्री कृष्णच बलाभार कचरी नापोर पागाके अटारक देवेन्द्रकीर्तितो लिख्य है। सुरेन्द्रकीर्ति में १७३८ की अर्धशत मुक्ता ११ को अटारक बहार कवि लिखत हुए थे जो ७ पद्य तक रहे। श्री बिरसरा घामके विहाली थे। सोनाचन गढ़ कविच आया गया थे। इनका योग वाटयो था। इन्होंने दिल्लीमें 'आरिण्यवार कथा' और अनेक मरम परांभी रचना की थी। इसी अनिश्चिन अष्टोत्तिसि 'पंचमाल कनुरमी बनापारन और आम परबीनी बनापारन नामकी कृतियां लिखी सब नामांकीके अर्थके लिखी। वे अलग-अविदर्शी प्रतीक हैं।

एक दूसरे सुरेन्द्रकीर्ति और हुए हैं। इनका सम्बन्ध वाट्यनन्द मणीचट पण्डित था। वे इन्द्रभूषणक गिण्य थे और इनके उपरान्त अटारक बने। उन्होंने अनक बान और मनिवाही रचाना की। उन्होंने कम्पासमन्दिर एबीबाब विनासदार और अनाक शोभाका शिरी एनवीमें बनापारन भी लिखा था। दिल्लीमें कोई अर्धशत रचना उन १४ मणी लिखी। इनका समय न १७४४ के १७७३ माना जाता है।

तीसरे नु १६ वि क के श्री बलाभार दन अष्टत पागाके कचरीकीर्तिके उपागत न १७५६ में अटारक बहार कवि लिखत हुए। इनने कियो शिरी कचरीका सम्बन्ध ही लिखा। जोके अटारक बनापारन लिखी कनुर पागाके १ मठक निर लिख्य थे। वे न १८३३ के अटारक बने थे। इनने

बयपुरकी मट्टारकीय महीका आरम्भ हुआ था। यहाँ पहले सुरेन्द्रकीर्ति
मठका है। वे सुरेन्द्रकीर्ति मुनीन्द्र कहलाते थे।

साहित्यकार कथा

सुरेन्द्रकीर्ति मुनीन्द्रने इस कथाका निर्माण बि. स. १७४ बेट सुदी १
को सोपाचक्रमठम रखकर किया था। इस कथाको बीरसिंह बैम इटावाके सन् १९०९
में प्रकाशित कर चुके हैं। कथाकी रचना सोपाचक्रमठके बैमबाल साह बसवन्तक
साईं भावन्तकी धर्मपरनीको प्राप्तापर की गयी थी। कथाका सम्बन्ध भित्तनी
मन्दिसे है। कविपय पंक्तियाँ हैं

'कामी दश बनारस ग्राम। सक बड़ी मतिसागर आम ॥
तासु भरति गुण सुन्दर सती। सात पुत्र ताक सुभ्रमता ॥
सहस्रह्रद बैन्पाकयो एक। आय मुनिहर सहित बिबेक ॥
आगम मुनि सब हरपित मय। सर्व लोक बदन को गप ॥'

पद

इसके सिधे हुए विविध पर महावीरकी कतिधरपरायक एक प्राचीन मुठकाय
संकल्पित है। त्रिनेस्वर पार्वतायकी अन्तितम लिखा हुआ एक पर है,

'जि लोको पाप त्रिनेस्वर की ॥
जुगल नाग त्रिहि करवा राब्या
बदधी ही फणीश्वर की ॥
बाक पल्ले त्रिहि दीप्या लीना
कामी छदि गरदनर को ॥
केवलज्ञान कपान भरी है
जा ही सिद्ध सुबीरवर की ॥
कीर्ति सुरेन्द्र बर्म तमु पद है
नित प्रति पूजि गणेश्वर की ॥

सुरेन्द्रकीर्तिके पदाम आध्यात्मिक इतिहासी छटा मोहित करवेबाधी है।
गारी भूमति अपने पनि बेगमके साथ होली लौक रही है

'आतम इवान लयी विचकारी
करवा केवरी धारो री।
बेगम त्रि है भुमनि त्रिबा तुम
समरम जक भर जारी री ॥

मैं अघराय अनेक किया था
 माफ़ करो गुणराज मैं
 और देवता सब ही देखा
 कद सहो विष कामि मैं
 बाधो बस तो मुर नर गाथे
 पार्थे नर सिव काज मैं
 देवाय्य परमां दिन क्वाथे
 सेवय करि हित काज ।”

देवाय्यकी एक अन्य रचनाका नाम सासबहुका मयाश' है जो परोके रूप-
 में ही लिखी गयी है। इसकी एक प्रति बनपुरके टोल्किमाने बीन मन्दिरमें वैद्य
 नं ४१८ में निबद्ध है। इसमें केवल १७ पद्य हैं। राजस्थानीका प्रभाव है।

७८. सुरेन्द्रकीर्ति मुनीन्द्र (वि सं १७४)

ये मुकुन्दब बालाकार कनकी गानौर छात्राके मन्दारक देवेन्द्रकीर्तिके शिष्य
 थे। सुरेन्द्रकीर्ति सं १७३८ की अष्टम सुकका ११ को मन्दारक पक्षपर कवि
 स्थित हुए थे और ७ वर्ष तक रहे। वे विरवार छात्रके निवासी थे। बोधकल
 वह अधिक बोधा करते थे। इनका मोन पाठको था। उन्होंने हिन्दीमें 'बाधित्वचार
 कथा' और अनेक सरस पद्यकी रचना की थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'पंचमास
 चतुर्विंशो प्रनोबापन' और 'ज्ञान पञ्चवीसो इतोबापन' नामकी इतियां हिन्दी का
 माहात्मके रूपमें लिखी। वे ब्रह्मन्-मण्डली प्रतीक हैं।

एक दूसरे सुरेन्द्रकीर्ति और हुए हैं। इनका सम्बन्ध कान्ठप्रबंध गभीरुट
 गच्छते था। वे इन्द्रभुवनेके शिष्य थे और इनके उपरान्त मन्दारक बने। उन्होंने
 अनेक मन्त्र और मूर्तिपोकरी रचना की। उन्होंने कम्बाजमन्दिर एकीमात्र
 विद्यापहार और मूलाक स्तोत्रोका हिन्दी अन्वयोमें कपालतरण की किया था।
 हिन्दीमें कोई मौखिक रचना उन्होंने नहीं लिखी। इनका समय सं १७४४ से
 १७७३ माना जाता है।

तीसरे सुरेन्द्रकीर्ति वे थे जो कालाकार कन जेष्ठ छात्राके सचन्द्रकीर्तिके
 उपरान्त सं १७५६ में मन्दारक पक्षपर प्रतिस्थित हुए। उन्होंने किसी हिन्दी
 रचनाका निर्माण नहीं किया। जैसे मन्दारक बालाकारक विन्दी बनपुर
 छात्राके सोमैन्द्रकीर्तिके शिष्य थे। वे सं १८२२ में मन्दारक बने थे। इनके

बम्बुरकी भट्टारकीय गरीका भारम्भ हुआ था। यहाँ पहले गुरेन्द्रकीर्तिपत्र पठकर है। व 'गुरेन्द्रकीर्ति मुनीश्वर' कहलाते थे।

साहित्यकार कथा

गुरेन्द्रकीर्ति मुनीश्वरने इस कथाका निर्माण बि स १७४ जेठ मुरी १ को गोपाचक्रवदम रचकर किया था। इस कथाको बीरसिंहशैल इटावासे सन् १९०६ म प्रकाशित कर चुके हैं। कथाकी रचना गोपाचक्रवदके बीसवाक धाह बसवन्तक भाई भववन्तकी बर्मपत्नीकी प्राचनापर की गया थी। कथाका सम्बन्ध जिनश्रुती बन्तसे है। कतिपय पंक्तिमें है,

“कामी दश बनारस ग्राम। सठ बड़ो मठिसागर नाम ॥
 पासु बरनि गुण सुन्दर सती। सात पुत्र ताक सुभमती प
 सहस्ररूप कैलाकथा एक। आप मुनिवर सहित विवेक ॥
 भागम सुनि सब हरपित मय। सर्व लोक बदन को गय ॥

पद

इनक किसे हुए विदित पर महावीरजी मनिषयक्षेत्रक एक प्राचीन गुटकासे सकलित है। जिनेश्वर पार्ष्णाथकी भक्तिमें लिखा हुआ एक पद है

“जि कोको पास जिनेश्वर की ॥
 छुगक नाग जिहि करवा राग्या
 बद्धी ही कर्माश्वर की ॥
 बाक पजे जिहि बाप्या कीर्ती
 कस्मी छेदि नरेश्वर की ॥
 केवकज्ञान उपाय मथा है
 को हो सिद्ध मुनीश्वर की ॥
 कीर्ति गुरेन्द्र नर्म ससु पद हूँ,
 नित प्रति पूजि गजेश्वर की ॥

गुरेन्द्रकीर्तिके पदाम आप्यारिभक शोकियकी छटा मोहित करनवाकी है। बीरौ मुपति अनन पति जेननके ताब डोकी पैर रही है

“घातम खान तर्फी निचकारी
 चरवा केमरी छोरो री।
 चलन तिव री मुमति तिया तुम
 ममरस जक भर छोरो री ॥

रिया हुआ है।^१ 'बिन्तीय बजल' इसके पहले ही बसो भी।

जैनक जती पैगा नहै जाठ बे। उन्हीने एक स्वामपर कतीके मुखांको विनाया है। बे एक सवार छाबु बे। उन्हीने भगवान् जिनैग्रके साब-साब भय्य देवी-देव ताबोको भी नमस्कार किया है। उनको गजबे वर्णनात्मक होते हुए भी रस-बुल्ल है। जैनकको बाबनी जिनैग्र तकिनसे सम्बन्धित है। देव कती बुय बजल' भी उन्हीकी कृति है।

बिन्तीयकी रासक

इस बजलको मुनि कान्तिसागरजीने फरबस बुजरातो माहित्य तथा बम्बईके वैसाखिक पत्रमे छापवाया है। इसकी एक दूसरी प्रति ममय जैन प्रन्थात्म्य बीकानेरमें मौजूद है। उसका सश्लिष्ट परिचय भी बदरबम्बई बाहटा-डाटा सम्पादित 'राजस्थानमें हिन्दीके इतिहासिक प्रन्थाली खोज द्वितीय भाग में प्रकाशित हो चुका है।^२ इसके पद्यममें पद्यके अनुसार इसका रचनाकाल स १७४८ भावक बसो १२ मानता चाहिए।^३ यह रासा अपनिहका समय वा। इसमें कुछ ५६ पद्य हैं।

पद्मपुरकी रासक

यह 'भारतीय विद्या के वर्ष १ अंक ४ में मुनि जिनबिन्दवजी-डाटा सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुका है।^४ परन्तु इसमें रचना-संबन्ध नहीं है। इसकी दूसरी प्रति ममय जैन प्रन्थात्म्य बीकानेरमें मौजूद है और उसका सश्लिष्ट परिचय 'राजस्थानमें हिन्दीके इतिहासिक प्रन्थाली खोज द्वितीय भागमें छप चुका है।^५ उसमें रचना-संबन्ध पद्य हुआ है। प्रारम्भमें ही कविने एकद्विपत्री नामद्वारेके पोनाबजी राठमन पिरिदेव आवैरी समारमथ मुवाबा भोजानाथ और

१ सर्वस सतरे सनावन बबभिर बाल भुर परब बल ।

बीन्ती बजल बीनुक बाब सामक मुचननु मुख लाब ॥८ ॥

राजस्थानमें हिन्दीके इतिहासिक प्रन्थाली खोज द्वितीय भाग पृष्ठ ११ ।

२ वही पृष्ठ ११ ।

३ सरदार जनी कवि रागाव भागे मौत्र नु एनाब ।

सबन् लारेनी अङ्गनाक साबब मान जनु बरनाभ ३

बहि बरब बागी तरा कि बीन्ती पत्रक बहिवो ठीकि ॥५५॥

हिन्दी वा १११ ।

४ भारतीय विद्या वा १ अंक १ पृष्ठ २२-२३ ।

५ राजस्थानमें हिन्दीके इतिहासिक प्रन्थाली खोज भाग २, पृ १०-११ ।

रतनपुरके अनुमत्तकी ममस्कार किया है। बदयपुरके भी सभी देवी-देवताओंका स्मरण किया है। इसके बाद महाराष्ट्राके दरबार महम मन्दिर बाजार और बाघ-बयीबाका गुम्बर बगन है।

बाबनी

इसकी रचना संवत् १७४३ मयतिर सुवी १५ शुक्रवारक दिन दहरबास नाम के गाँवमें हुई थी। इसकी एक प्रति श्री माहटाजीके पास है। इसमें कुल १४ पद्य हैं। कवि शैलमने दहरबासमें 'बीमासा' किया था उसी मध्यमें इनको रच शाला होना। इसके अन्तिम कुछ परिचयार्थक पद्य देखिए,

‘संवत् मत्तर प्रयाग मास सुवी पछ मगसिर ।
 तिथि पूनम शुक्रवार, बबी बाबनी सुभिर ।
 बारखी से बन्ध कबिच शैलठ कथन गति ।
 दहरबास बीमास समय तिथि भवा सुरी अति ।
 श्री बीमराज सुरिसवर इयाबस्करन गणि तास सिति ।
 सुमसाद तास अतक मुकवि कहि बोदि पुस्तक किति ॥१७॥’

शैल मणी गुण-वर्णन

कवि शैलककी मह रचना 'ऐतिहासिक शैल काव्य संग्रह' पृ २१ पर प्रकाशित हो चुकी है। छोटी-सी रचनामें प्रवाह है। शैल मणीके प्रति अत्यधिक प्रशंसके कारण गुण विनायका नाम भी प्राप्त हो गया है।

“केह ता समस्त व्याप प्रण में दुरस्त देखे
 अरसी में रस्त गुस्त पूने छत्रपती है ।
 किस्त कौ तप की प्रशस्त अरे भोग भ्राम
 हस्त के बिछोकरने कु सामुजिक मती है ।
 पून के गृहस्त के बल क नु प्राइक है
 गुस्त है कका में हस्त करामाय कती है ।
 शैलसी कइत पट् दसन में लखरदार
 शैल में अदर्दस्त ऐसे मस्त अती है ॥”

८० भाऊ (१०वीं - १८वीं शताब्दीका पूर्वार्ध)

एक शैल कवि थे। इनका जन्म पण गोनमें हुआ था। इनके पिताका

१ मी, १४ १४४-४२।

सतिबायी तप चंद्रम छिन्नको
 कीरति अतर मुवासी री ।
 सहजावन्द मीरा इ ओ सु
 ज्ञान समक को प्यारी री ॥
 गुह क बचन बजायी बाजा
 नहिनी छुमति बजायी री
 मधि के चित्र कुराय तबि के
 अरुम हारी गाथो री ॥
 अनुमो असुत कुं पत्ता बी,
 मित्र परि इरप बजायी री ।
 कीर्ति सुरेन्द्र कई इस अम में,
 पैकन हार जयो जोरी ॥”

पञ्चमास चतुर्दशी प्रवोधापन

इसकी एक प्रति बजपुरके छेकिकेके समयमिरमे देप्टन म १२९ में लिख
 है । इस संग्रहमें १५४ पृष्ठ हैं । जिनमें ३ ५ से १११ तक यह प्रवोधापन किया
 हुआ है । इस संग्रहका संस्करणक सं १८९५ है ।

ज्ञान-पञ्चमीसी प्रवोधापन

यह भी तपमुक्त संग्रहमें ही संरक्षित है । यह पृष्ठ ५३७ से ५४५ तक
 संरक्षित है । इसका लिपिराक सं १८४ दिया हुआ है । यह कवि बजपुरके
 बन्धुप्रम पैत्याक्यमें हुई थी ।

७९ खेतल (वि स १ ७३ १ ५५)

इन्होंने कवितामें खेतल नाम खेता खेतनी खेताक और कई-कहीं खेतक
 रखा है । मन्दीसुचीके अनुसार इनका मूल नाम खेतली या किन्तु जब दीया
 भी ता बवालुम्बर ही गया । खेतली नामके कई कवि हो गये हैं । जिनमें-से एक
 तो साह पाषाके चारम कवि थे जो जोषपुरके महाराजा बजरतिहके कामय
 में रहते थे । इन्होंने सं १७८ में माया भारत' नामका द्विधन मायामें एक
 पद्य लिखा था । इसमें ब्रह्ममरुतके अठारह पञ्चम वापक ठेरह हुजार कन्धोमें

लिखा गया है।^१ ये खेतसो उज्ज्वकोटिके विद्वान् और प्रतिभावान् कवि य।
किन्तु उन्होंने कवितामें अपना नाम सर्वत्र 'सीह' लिखा है। अतः प्रस्तुत खेतसोसे
उनका पुनःकरण स्पष्ट ही है। एक दूसरे खेतसो और हुए हैं जो कि सैन हो वे।
वे मेवाड़के उज्जवाले वे और उन्होंने मेवाड़के बैराट पर्वमें 'मन्मारास'की रचना
सं १७१२ में की थी। उन्होंने अपनाको जोगायणके पुत्र रामावरषीका शिष्य
कहाया है।^२ खेतसु खरतरण्यकी ये और खरतरण्यक नामाजितराजसूरि
के शिष्य कयावल्सभके शिष्य थे।^३ उन्होंने प्रसिद्ध भाषार्थ जितचन्द्रसूरिके
पास सं १७४१ परम्युन बरी ७ रविवारको बीजा भी की।

खेतसु कहते हैं उज्जवाले वे यह प्रामाणिक रूपसे नहीं कहा जा सकता।
किन्तु उनकी मायापर मेवाड़ी राजक बेसकर स्पष्ट-सा है कि वे मेवाड़के ही
उज्जवाले जागे। इसके अतिरिक्त उन्होंने उज्जपुर पहरकी एक लिखी है जो
कि मेवाड़की राजधानी थी। राजक तो उन्होंने चित्तौड़मड़की भी लिखी है और
ऐसा अनुमान होता है कि अती होनेके बाद वे इन दोनों स्थानपर रहे थे।
उन्होंने अजयपुरके महाराजा जयसिंह और अजयपुर राजाकी रमणीयताका
उल्लेख किया है।

अजयपुरकी महोपर जयसिंह नामक दो महाराजा हुए हैं। एक तो
महाराजा प्रतापसिंहके पुत्र थे किन्तु संवत् १६५१ से १६७६ तक राज्य किया।
दूसरे महाराजा जयसिंहके पुत्र थे। उनका राज्य संवत् १७१५ से १७६७ तक
माना जाता है। खेतसु दूसरे महाराजा जयसिंहके राज्यमें मौजूद थे। क्योंकि
उन्होंने जय अजयपुर नामके राजाका वर्णन किया है, वह पहले जयसिंहके
समयमें नहीं था। उसका निर्माण महाराजा जयसिंहने करवाया था। अतः खेतसु-
का समय अजयपुरकी अठारवीं सताब्दीका मध्याह्न मानना चाहिए। भी अजयपुरकी नाहटा
वे उनकी अजयपुर राजकका निर्माण संवत् १७५७ मासि रवरी ५ कलाया है।
मुनि जितचन्द्रसूरिके शिष्य 'अजयपुर राजक'का सम्पादन किया था उसपर रचना
संवत् नहीं था किन्तु समय सैन राजाकी प्रतिपर रचनाकाक ८ वें पद्यमें

१ राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ १४२।

२ सैन गुर्जरकविभूषे, पान २ पृ २४२-४७।

३ शैलिक, उनके द्वारा रचित भाषाकीका १४वीं पद्य।

४ शैलिक अजयपुर राजक पद्य सं १२-१७ और ७२।

मासिक लिखा वरी १ अंक ४ पृ ४११ और ४२२।

रिवा तुमा है ।^१ 'चित्तौड़ एवम' इसके पहले ही बनी थी ।

खेताक बटी खेता कहे जाते थे । उन्होंने एक स्वानपर कर्णोके मुवाकी पितारा है । वे एक उबार साधु थे । उन्होंने भगवान् विनेन्द्रके साथ-साथ अन्य देवी-देव-ताओकी भी मस्तकार किया है । उनको पत्रके वर्णनात्मक होते हुए भी रस-मुक्त है । खेताककी भावना विनेन्द्र मन्त्रिमे सम्बन्धित है । मंत्र बटी मुक्त बचन भी उन्होंने कवि है ।

चित्तौड़की गद्यछ

इस एवमकी मुनि कान्तिसावरजीने अथवा मुवाकी माहित्य तथा बम्बईके त्रैमासिक पत्रमें उपनामा है । इसकी एक दूसरी प्रति 'अमय जैन ग्रन्थाकम्' बीकानेरमें मौजूद है । उसका सन्निष्ठ परिचय भी अपरचन्द्रकी माहटा-हाण्ड सम्पादित 'राजस्थानमें हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोकी खोज द्वितीय भाग' में प्रकाशित हो चुका है । इसके पत्रपत्रमें पत्रके अनुसार इसका रचनाकाळ स १७४८ यावत् बरी १२ मानता माहित्य^२ बर राधा अर्थात्इका समय था । इसमें कुछ ५६ पत्र है ।

सव्यपुरकी गद्यछ

यह 'भारतीय विद्या के वर्ष १ अंक ४ में मुनि कान्तिसावरजी-द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुकी है । परन्तु इसमें रचना-संबन्ध नहीं है । इसकी दूसरी प्रति अमय जैन ग्रन्थाकम् बीकानेरमें मौजूद है, और उसका सन्निष्ठ परिचय 'राजस्थानमें हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोकी खोज द्वितीय भाग'में उपनामा है । उसमें रचना-संबन्ध पद्य हुआ है । प्रारम्भमें ही कविने एश्विनजी नामद्वारेके पोसावकी पठमेत निरिदेश जानैरी उमारमय मुवाका खोजनाम और

१ खेताक सतरे सगद्यम अगधिर मास धुर परव बन्ध ।

बीकानेर बजक बीकानेर नाम कायक मुवाकम् मुख काव ॥८॥

राजस्थानमें हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोकी खोज द्वितीय भाग, पृष्ठ ११ ।

२ बरी पृष्ठ १३ ।

३ सतर बनी कवि खेताक जायी मौड़ मु एनाक ।

बन्ध सतरेई बजकम् सावय मास अन्तु बरनाक ॥

कवि परव बानी ठेरी कि बीकानेर बजक पत्रको ठीकि ॥५५॥

द्वितीय भाग ११३ ।

भारतीय विद्या वर्ष १ अंक ४ पृष्ठ ४१-४२ ।

४ राजस्थानमें हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोकी खोज, भाग २, पृष्ठ १-२ ।

रतनपुरके इमुमस्तका ममस्कार किया है। उरमपुरके भी समी देवी-देवताका स्मरण किया है। इसके बाद महाराजाके दरबार महक मन्धिर बाजार और बाघ-बगीचोंका सुन्दर बगान है।

बावनी

इसकी रचना सन् १७४३ मगसिर सुबो १५ बुद्धवारके दिन बहरबास नाम के यौवम हुई थी। इसकी एक प्रति भी लाहटाओके पास है।^१ इसमें कुल १४ पद्य हैं। कवि खेतन्ने बहरबासमें 'बौमामा' किया था उमी मध्वम इनको रच दाका होया। इनके अन्तिम कुछ परिचयात्मक पद्य देखिए,

'संघत् सत्तर त्रयाळ भास सुदी पक्ष मगसिर ।

तिथि पूजम शुक्रवार, यथा बावनी सुधिर ।

बारहरी रो बन्ध कविस शैमठ कपम गति ।

बहरबास बौमास समथ तिथि अपा सुली अति ।

भी शैमराज सुरिसबर इबावन्धम गति तास स्थिति ।

सुमसाद तास खेतळ शुक्रदि कदि बोदि पुस्तक किति ॥१३॥"

शैव यती गुण-वर्णन

कवि खेतन्नी यह रचना 'ऐतिहासिक शैव काव्य संग्रह' पृ २६ पर प्रकाशित हो चुकी है। छोटी-सी रचनामें प्रवाह है। शैव यतीके प्रति अत्यधिक भयानके कारण गुण दिनालेका नाम भी धरस हो गया है।

"वेहू तो समस्त म्बाव धन्ध में सुरस्त देखे

अरधी में रस्त गुस्त पूजे कत्रपती है ।

किस्त करै तप की प्रसस्त करि बोग ध्याव

इस्त के विचोकने कु सामुद्रिक मती है ।

पूज के पूजस्त के बस्त के तु प्राहक है

सुस्त है कका में इस्त कतामाय कती है ।

खेतसी कहत पद दर्शन में लखरवार

शैव में कवर्तुस्त ऐसे मस्त 'अती' है त

८० भाऊ (१७वीं-१८वीं सताब्दीका पूर्वार्ध)

एक शैव कवि थे। इनका जन्म गर्म गोजमे हुआ था। इनके पिताका

१ वही, पृ १४४-४५।

नाम 'मुक्त' या 'काशी नाम्नी प्रचारिणी पत्रिका' के खोज-विचारणमें उक्त नाम मन्त्र दिया हुआ है, जो जमीमें अविष्ट पुष्पकस्त-पूजा की अन्तिम प्रयत्नमें अत्यन्त प्रमाणित हो जाया है। 'मुक्तकी पुस्त' का स्पष्ट अर्थ है 'मुक्त का पुस्त'। मन्त्रका पुस्त होनेके लिए एक और 'क' की आवश्यकता थी। उद्धृत भागके रचना-काव्य सम्बन्ध है 'काशी नाम्नी प्रचारिणी पत्रिका' के सम्पादकोंमें अद्यत् 'अविष्ट' कहा है। इन विषयमें कोई स्पष्ट लेख अस्तीत्यक्त मन्त्र नहीं हो गया है। जैन उक्तकी 'आदित्यचारण' एक ऐसे मुक्तके मन्त्र है जिसका लेखन नाम सं १७६६ है। जब 'नेमिनाथ रास' नामकी रचना और प्राप्त हुई है, वह विष्ट मुक्तके मन्त्र संकलित है, जसका अन्तम वि सं १९९९ में समाप्त हुआ था। इससे स्पष्ट है कि भाग्य हमसे पूर्व ही हुए होयें। अतीतकाली खोजमें इनकी चार रचनाओं-का पता लगा है 'आदित्यचारण' 'पार्श्वनाथ कथा' 'पुष्पकस्त-पूजा' और 'नेमिनाथ रास'। चाये ही मन्त्रसम्बन्धित है।

आदित्यचार-कथा

इसका दूसरा नाम 'उत्थित कथा' भी है। जैन-ग्रन्थोंमें 'उत्थित कथा' सम्बन्धी विपुल साहित्य है। जैसे यह है तो जससे सम्बन्धित किन्तु इसमें जसवान् पार्श्वनाथकी अन्तिम ही प्रयात है। पुष्पकस्तके उल्लेख संभव हैवेचके जसवान् पार्श्वनाथके छातनसेव और हैवी अस्तीत्यक्त तथा पद्यास्ती ही वे। उद्धृती प्रेरणास पुष्पकस्तके सब भागमें उन्नि-जत करना प्रारम्भ किया और उन्नि-जत पूजाके लिए उन्नि-जत एक विद्यास जैन मन्त्ररत्ना निर्माण करवाया। 'उत्थित' में 'उत्थित-पूजा' ही अनुभव है।

भाग्यकी 'आदित्यचार कथा' अस्तीत्यक्त कोरप्रिय हुई। जसपुरके पुष्पकस्तकीके मन्त्ररत्ने मुक्तका सं ८७ और अस्तीत्यक्तके मुक्तका सं ९९ में उक्तकी एक-एक प्रति लिखत है। अतीतकालीके मन्त्ररत्ने ९ मुक्तोंमें और उन्नि-जतके तीस मुक्तोंमें पुष्पक-पुष्पक प्रतिमा लिखी हुई है। इनमें अतीतकालीके मन्त्ररत्ना मुक्तका सं १५ सबसे पुरातन लिखा हुआ है। यह सं १७५९ में लिखा गया था। और सब प्रतिमा इनके बादकी है। मुक्तका सं १३६ में इस कथाके सबसे अन्तिम पद्य उन्नि-जत है अर्थात् १५४।

प्रारम्भमें चौबीस तीर्थकरोंकी फिर धारवाची स्तुति की गयी है

१. काशी नाम्नी प्रचारिणी पत्रिकाका वेद्यमिक कन्वर्षा जैन मन्त्रस्य Appendix II सं ६६।

“साराद् लप्यो सबा मन घरी जा प्रसाद कबिच छचरी
 मूर्य तै वंदित पद होई, ता कारणी सेबै मन कोई,
 कह दरमण सुपी मेहन मान ॥
 बरह गळगळ मोठी हार गलै पाटो भी सौजन सरार
 कर्ता कुंडल रजक बडी सीस मोगी मोण्या अस्मल्ले ॥
 बाल मेबर दण छुण करै हंस बदी कर बीज छेह
 सुमरत बुधी महाकळ वेह साराद् लप्यो कर बहु माई ॥

पार्श्वनाथ-कथा

यह भी एक पद्य बड़ा काव्य है । इसमें भगवान् पार्श्वनाथका जीवन-चरित्र
 दिया हुआ है । यह रामपुरके बड़े मन्थिरके गुटका नं १९५ में लिख्य है ।

पुण्यवन्त-पूजा

इस पूजाका उल्लेख 'काशी नामदी प्रचारिणी पत्रिका के पत्रहमें वैवाचिक
 विवरणके 'Appendix II में पृष्ठ ८९ पर हुआ है । सम्पादकोंको इसकी
 प्रति किरावकी कामराके जैन मन्थिरसे प्राप्त हुई थी । इसमें १०२ अनुष्टुप् छन्द
 हैं । शैलाक मोई तोषेकर पुण्यवन्तकी पूजा की गयी है । इसका आदि और
 अन्त वैचित्र्य

आदि

भगर भगर पूव जन्म देवा भविजन लाप ।
 बेजे मुर पग धानि श्रीनिग वाप मेह सुदरांन ॥
 पूर्व नास्तिकेर काम तिठा एसी कळ दे भादि ।
 बड़ाए जिन बरन जागे मोपक कडठ पादि ॥”

अन्त

भजर भजर श्रीक शिव मयी तो जिनदेव समा की जयी ।
 राम दीक्यौ रच्यौ पुराण श्रीजी बुधि में क्रियो बखान ॥
 हीन अधिष्ठ आ अधिष्ठ होय ताहि लंकारी गुनिपर लापे ।
 उचम नगर निहुम पुर जानि तहाँ कया की भयो बपान ॥

नमिनाथरास

यह एक उल्लम कृति है । इसमें १५५ पद्य हैं । इसमें श्रीनाथ कव्यमें लिखे
 पद्य हैं । इन राग का नमिनाथकी वैराग्य सेनेवाकी बटनाने उल्लख है ।

समुद्रविजयण द्वारपर बाराण पर्युषी । बुझ्य वे बेमीस्वर वृष्णने छोटे बारी ।
 किन्तु द्वारपर बेबे बर्गनय जोरों । विहाय करते बैक वे हीला केकर विरवारपर
 तप करने बडे मये । ओषोको नाटवर बोम्पवबाब बनाना बा । बेमीस्वरके
 हृदयमें कइया उरकी । संसारकी जि-मारणा स्पष्ट शकक बडी । बिना विवाह
 द्विज बडे मये । किन्तु रात्रीमगी क्या करे । इसका विरहव्यापी विरह बरज
 उठा । असकी बैबैनी दुःख ही । यह रास उनीको छेकर बडा है ।

बाराण का रही है । बुझिगयी तस्मुकठाका क्या टिबाना है । बहीसे उसने
 मुना है कि नेमीस्वरको शृंगार बबिज द्विज है । राजगुनीको शृंगार-बाबनोंकी
 बनी नहीं थी । समने द्वार्याम हीरो-बडे बंपन पडल बडेमें मोटिबोकी मखा
 बाराण की बेबीको फूकोसे सजावा । कलाटपर टिकक नेत्रोंमें बाजक और मुकमें
 पान मुषोमिष हो बडा । सगी राजकुवरा बिज है,

‘अन बन्धगाक नेमिजुमार सुज राजमती कियो शृंगार ।
 कर बंधक्य बडु हीरा बडुको बहिरि द्वार गज मीठी मन्वो ॥
 बुझुम-सीम बडे बडुगाव टिककु टिकनन बनों बाब ।
 बबन्ध बन्धक मुक्ति संवील, बंयि बडाडुको बुंजुम रोक ॥
 पहिरि पर्येरे बसिब नीर बबिहुं सिंगुरह सिद्धिबो लौक ।
 बकबन्ध बबर की ससकार, सब बर्ग तो होइ पसार ॥”

अब राजगुने मुना कि नेमीस्वर बीछा ककर तप करने बडे बने है तो
 मुञ्जिल होकर फिर पडी । समने हुमरा विवाह न किया । उन एवने विरहमें
 बीचल बिना पिया मो न कडी बाबा न बानैबाबा बा । इस ब्राम्भमें विरहके
 बतिरिक्त बीररसने छुटपुट दुःख है । वे मुक प्रसवमें बरसे बये है । कथातक
 नयान है । बबान्तर बबाएँ मुट्य बबाकी सहायकके बपमें प्रस्तुत हुई है । रत्नमें
 प्रवाह है । बाराणमें मरन्वनीकी बन्धना की पडी है ।

“सरस्वती माता बुद्धिबावा कन्हु पुस्तक केई ।
 उर पहिरि हाक करि सिपाक इंस बडी बर बेई ॥
 मेवथ मुर-वर नबहिं मुनिबर कही दरसन लोहि ।
 कवि बबड माड करि पमाड बुद्धि कक मोहि ॥”

यह रचना वैशम्पिर पाटीवी बपपरके बुटवा नं ६५ में पृ ६२९ के
 ६३३ पर बबिज है ।

देशान्तरी छन्द

इसमें १९ पद्य हैं। इसमें महाशय् पार्वतीनामकी मन्त्रिका उल्लेख है। इसकी एक प्रतिशो पाण्डुराममें श्री लेश्वरिचन्द्र मन्त्रिले सं १९ ई पौष सुदी ११ को लिखा था। इसमें शिर्षकी छन्दोंका प्रयोग किया गया है। प्रारम्भमें ही देवी नरस्यनीकी वाचना है।

सुषण सुषो सारदा मया करो सुप्त माध
 यो सुप्रसन्न सुषणतणो तुमया न हाव काय ॥
 काशीनाम सरिला किये रंक यकि कबिराज
 महोर कार माता मुजे निज सुष्ठ जाणी निवाज ॥

अन्य रचनाएँ

उपर्युक्त कृतियोंके अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाएँ भी उपलब्ध हैं। अमर्य करमीरनी बीरई 'अमरकुमार राम' 'बिहमाहित्यपंचरम्भबीरई' 'रत्नहास बीरई' 'कवित्व वावनी' 'छण्य वावनी' मरत बाहुबन्दी मिहाल छन्द बीका नेर बीबीमटा-स्तवन सनकनयटवा और स्तवनादिका नाम भी अमररत्नबी माहटान लिखाया है।

अठारहवीं शताब्दीका दूसरा पाद ही उनके साहित्यका निर्माणकाल माना जा सकता है। वे इस शताब्दीके महत्त्वपूर्ण साहित्यकार थे।

८२ विनोदीलाल (वि सं १०५)

विनोदीनाथ साहिबरापुरके रहनेवाले थे। उसकी साहजहाँपुर भी कहते हैं। यादर इस नगरकी स्थापना बाबटाह साहजहाँके नामपर हुई थी। यह रंगाले दिनारेण बना हुआ एक रमणीय स्थान था। उसकी प्रसंसा करते हुए कविने लिखा है 'कीशक देउके मध्यमें साहिबरापुर नामका एक नगर है। यह रंगाले दिनारे बसा हुआ अपनी छटामें अनुपम है। उसकी तुलना अन्य कोई नगर नहीं कर सकता। जगमें बड़े-बड़े महाजन और आसक रहते हैं। सभी अपने-अपने धर्ममें सोत हैं। आसकोंका श्रेण जगमें बृह पदान है। बड़ी भयशय् शिनेरके तीन चित्र-विचित्र शैरदास्य हैं शिनेमें विविध प्रकारके घमण्डान होना ही रहता है। उम नगरमें यतियों और कृतियोंका अत्यधिक आदर-सम्मान होना

अरे पदक ध्यान के जापी क्वालि क्वाप ।
 अंतर्यामी में कल्पी आत्म बविक्रम ॥
 तू करता सुख संय की बंछित फलदाता ।
 और घर और राख न ते जे तुम संय राता ॥
 सकल घनादि अंतत तू मय मय से न्यारा ।
 मूरख माय न बाय ही संतव कुं न्यारा ॥
 परमात्म प्रतिबिंब सी जिन मूर्ति पावै ।
 ते पूबित विवराज कुं, अमुमय रस भावै ॥”

महावीर गौतम स्यामी छन्द

इसका विर्माण सं १७४१ से पहले ही हो गया था। इसमें १६ पद हैं। सभी पदवाच्य महावीर और उनके प्रमुख गणधर गौतमकी प्रकृतिये युक्त हैं। इसकी दो प्रतिबोका कल्केज की मोहनकाल दुर्गीचन्द्रको देखाईने किया है, वे क्रमशः संवत् १७४१ और १७८५ की तिथी हुई हैं।^१ जगदाय लोगोकी सूचना तादृश संवहसे प्राप्त की थी। उसका आदि और अन्त देखिए,

वर इ तुं वरदापित्री सरसवि करि सुमसात् ।
 बोलु भीर जिनदुर्गु गौतम गणधरवाद् ॥१॥
 पाठक कश्मीकीप्ति प्रगट सुमसादै घरस्थतो तपे ।
 गौतमवाद् विज जाल सम रस्तिक 'राज' इव विष यवे ॥२१॥”

बूहा भाषनी

श्री तादृशकोने इसकी दो प्रतिबोका कल्केज किया है, जो क्रमशः शैल पुस्तकालयमें मौजूद हैं। पहली प्रतिबो की हीरानन्द मुनिने संवत् १७४१ पोख तुषी १ में लिखा था। दूसरी प्रति संवत् १८२१ आरिजन क्यो ७ की तिथी हुई है जिनको मुचनविज्ञान पत्रिके सिम्प पद्धतचन्दने लिखा था।^१ अन्त आदि और अन्त इस प्रकार है,

“ऊं अक्षर अक्षर गति चहैं सदा वसु ध्यान ।
 सुर वर विज साधक सुपदि, काल्य जगत चहान ॥१॥
 बूहा भाषनी करा आत्म परहित क्यज ।
 पदत गुणत वाचत किल्लत वर होचन कविराज ॥५॥”

१ शैल पुस्तकालयको काल २, मास ३ १ १९२१ ।

२. राजभाषावे दिन्दीके इलाहियत कल्कीकी कोष भाग ४ १ २९ ।

सवैया चावनी

इसमें ५८ सवैया हैं। इसकी रचना संवत् १७३८ मगधिर सुपौ ६ को हुई थी। इसकी एक प्रति संवत् १७३८ मगधिर दुक्का ६ की श्री तिथी हुई मौजूद है, उसका उल्लेख भी मोहनलाल बुसीचम्पजी देसाईन किया है।^१

नेमि-राजुछ चारहमासा

एक ग्रीह रचना है। सवैयाम किली गयी है। कुल १४ पद्य हैं। रचना मध्वाङ्क के प्रति ब्राम्हस्पतिपयक रणिका सम्यन करती है। इसकी एक प्रति अमय शैल चम्पास्य बोकारनमें मौजूद है। इसके वा सवैये देखिए जो माया भाव और वीथी सभी दृष्टियसे उत्तम नहै वा सफ्य है

‘अमरी बिकर बनघोर घटा चिहुँ मोरनि मोरनि सोर मन्त्रमा ।
 चमके दिवि दामिनि यामिनि कुंभय मामिनि कुं विष को संग भायो ।
 किय जातक वीठ हीं वीठ कई मई राज हरी मुंझ वेद छिपायो ।
 पतिवो पै न पाई ही प्रीतम की बन्धी ब्राह्मण भयो पै नेम न जाया व
 ज्ञान के सिंसु अगाध महाकवि मेसर छाकर नीर निबासो ।
 ईं तु महाकवि या दिन राज स मरा निसाकर का सीं बजासो ।
 पाठ कई बुच सुं बह बीननि मरी कहु करिवाँ जनि हाँसो ।
 आपनी बुच सुं राज कई पद राजक नमि का चारह मासो १७३८

भावना बिछास

इसकी रचना संवत् १७२७ पीप बरी १ को हुई थी। इसमें शैलधर्म-सम्बन्धी चारहु मायनाबाका ब्राह्मणिक संवत् वर्धन हुआ है। सवैयाका यहाँपर भी प्रयोग किया गया है। यह रचना भुवरासके ‘राजा राजा कल्पति’से भी अधिक टीका है।

इसको एक प्रति बोकारनके अमय शैल चम्पास्यमें मौजूद है। इसको मुनि हर्षतमुझे नापासरमें सं १७४१ आसीक १४ को किला वा।^२ संवत् १८५४

१. शैल गुजरकनिधा प्यह ३, भाग ३ इ १५२२ ३ ।

२. हीप मुपल मुनि पापि बरति वा दिन कल्पे पाप ।

ठा दिन कीनी राज कवि बह भावना बिछास ॥५१॥

भाक्ता बिछास, राजजानमे दिग्दिके इलनिदिता मन्तोदी छेव मय ४ इ० १५२ ।

३. वही इह १३२ ।

और १८१८ में लिखी पयो प्रतिपोक्या सम्बन्ध 'धिन गुर्जरकविजो'म हुआ है।
इसका प्रारम्भिक स्वीया इस भाँति है,

'प्रणमि शरत्पुत्र पास जिनराम नृ के
विधित कै शूर्य हैं पूरण है आस के।
दिह दिहमांसि प्यान करि अत ऐवता का
संबैठै संपूरत है मगारम दास क॥
मान हम दाता गुह बड़े अबगारी मेरे
दिबकर धीन कीरे जाव परकास क।
इसक प्रसाद कवि राम मदा सुलकाज
सर्वाय बलावत है पावन-विकास क॥३॥

बेगन-बत्तीसी

इसमें ३२ पद्य हैं। इसकी रचना सं. १७३९ म हुई थी।^१ इसमें एक प्रति मुनि डीरामन्धने सं. १७४१ आश्विन वरी ८ को लिखी थी जो बाह्या संघट्टमें मौजूद है। एक दूसरी प्रति और है जो सं. १८१८ में लिखी गयी थी।^२ यहाँ प्रमादुलित बेगनकी बेतानेका प्रयास किया गया है—

'अठन अठ रे अबसर मठ शुक सीन मुने तू लाबी।
गाफिक हुई जो दाव गमाबी तौ करसि बाबी सहु काबी ॥३॥

उपद्रुत बत्तीसी

इसमें भी ३२ पद्य हैं। आत्माको सम्बाधन कर उसको विह्वल अवत निरत करनेकी बात कही गयी है। दो पद्य इस प्रकार हैं

'आठमराम मयात्मे तू अठ मरम मुगला
किमके माई किपके माई, किमके आक सुगाई जी
तू न किमी जा अ नही तेरा अयो जाव सहाई ॥३॥
इस कथा बापा का काहा सुहन कमाई कीजे जी
राज कई अवेठ बत्तीसी मनुगुह सीन सुबाजे जी ॥३॥

१ धिन गुर्जरकविजो, लख २ भाग ३ पृ. १२४२।

२ मुबब ण्ड अमीरम सरिखा पंडित परबने बीसी

अनरामें मुबबामें संवत सालें राज कपीवी ॥३२।

अन बत्तीसी अ-गुर्जरकविजो लख २, भाग ३, पृ. १२४।

३ बी इ. १२४।

वा इ. १२४।

है। उस समय बड़ा बावसाय औरपजेवका राज्य था। बचिने उसकी वापसिक प्रार्थना की है।^१ विनोदीकाय औरपजेवके दरबार कवि बनीं से बड़ मुनिदिचन है। जनः उनके द्वारा की बयो प्रार्थना नि स्वाथ ही बनीं वापसी। पाकर उन्होंने प्रेमा देखा मैना ही लिखा। न जाने क्या औरपजेवके घासन-काय म हुए शैल-शिल्पीके सभी बचिबोने मुक्त-बन्ध और एव स्वर्गके उसकी प्रार्थना की है। शी मकता है कि इतिहासके तमे विज्ञानुवाको इनके कुछ मोदिक सामग्री उपलब्ध हा मने। विनोदीकाय कुछ दिनोंके लिए दिल्लीमें भी आकर रहे से। बहापर ही उन्होंने 'मन्त्रामर मापा-बन्ध' और 'लम्बकथ नीमुरी की रचना की। सब तो यह है कि इनका मुकाम शैल बर्मेके कलि अंधरी और ही कवि का। छात्रगणोंपुरमे भी वे इसी रूपमें प्रसिद्ध से। इनका नाम अपवाद बंस और पर्य गौरमें हुआ था।^२

इनके विषयमें मिथवाबुबोने लिखा है वे हील शेकीके से करीबी नरेणके बर्त रहने से और देवीराम इनके आधिष्ठ से। विनोदीकायके बर्तक स्वामार

- १ शीवक देव मध्य पुत्र बाल। घाहियाबपुर नगर प्रबाल ॥
गंवापीर बनीं शुभ ठौर। पटनर नाहीं ठामु पर और ॥
बय महाजय बहुविधि लोच। अपने धर्म कीन लंबोच ॥
भावक लोच बनें बहू बनें। शैल बर्म एव जन आपने ॥
शैलाम्ब विनवर के लोन। विच विविध रचिन प्रवीन ॥
बर्म ध्याम सब विधि सो करते। जती जपो को बनि आदरे ॥
काली नाली मन्त्रारिणी बलिघाघ प्रेमालिक वारवर्षी विरल, परिशिष्ट १२
१२७४ मन्त्रामर करि, वाराणसीवाली प्रति।
- २ गौरय शाहिककी जो राज। वातछाह सब हित विरताज ॥
मुन विचान सब बंध करेन। शिल्पीपति तप तीव्र दिनेस ॥
अपने म्म में सम्मन बंत। शीक पिरोमनि विज तिम बंत ॥
शेष शेष है बापी बाल। रही साह बह संवा मान ॥
साहिकहा के वर परिचर। दिन-दिन तेज बही बयो बन्ध।
बयो बचता जगम जदीठ। शिद बकी बह शैल होठ ॥
बरी।
- ३ ते पुर काय विनोदी रहे। शैल बर्म की बर्चा बहू।
अवरवाक शैली शुभ बंस। पर्य पोन प्रपटपी सरहंस ॥
बरी।
- ४ विनोदु विनोच काय। लब्ध २९ ११, ६ २१५।

अपना हीन और हीन बना है किन्तु हमका जर्म यह नहीं है कि न वास्तवमें
वैसे थे। उस समय मयबानूके समक्ष अपनी लज्जाके प्रदर्शनका यह ही डंग था।
महात्मा तुलसीदासने भी ऐसा ही किया है।

बिनायीबाबू मयबानू नेमीश्वरक परम मन्त्र थे। उनका अधिकार साहित्य
मन्त्रालयक अर्थवामें ही समर्पित हुआ है। बिबाह-प्रारंभ कीटते नेमीश्वर और
बिबाह करती रामुन उन्हें बहुत ही पसन्द है। रामुनके बागहमासामें शृंगार और
भक्तिका समन्वय हुआ है।

रामुन मयबानूपरक अनुपमका सरस निदर्शन है। उसमें बेमे दीन और
नीत्यर्थको संज्ञोपा मया अप्रतिम है। केवल नेमीश्वर ही नहीं अन्य तीव्रकण्ठी
भक्तिमें भी बिनायीबाबू बहुत कुछ लिखा है। अनुबिद्यति जिन स्तवन सर्वथा
इतना दृष्टान्त है। इसमें अतिरिक्त नीका बन्ध 'प्रजाप जयमास' 'पूजमास
पञ्चमी' और 'रत्नमास' सरसभक्तिके प्रतीक हैं। मयबानू अत्यन्तैवकी भक्तिके
कारण ही उन्होंने 'माया मन्त्रालय की रचना की थी। वह संस्कृतके प्रसिद्ध स्तोत्र
'मन्त्रालय की स्थापना बना है। किन्तु उसकी माया-दीप्ती मौलिक है। मूक कविके
मायामें अज्ञान नहीं आ पाया है। यह ही उसकी विशेषता है। 'श्रीपाक बिनाय'
भी ऐसा ही एक अनुवाद है। बिनायीबाबूका अन्तमें ही मन्त्र हृदय मिला था।
उनकी कृतिवामें उममवताका भाव सर्वत्र पाया जाता है। प्रसादगुण उनकी
विशेषता है।

नेमि-रामुन बारहमासा

यह बहुत पहले ही बारहमासा-संग्रह में प्रकाशित हो चुका है। साहित्य
में बारहमासोंका प्रथमल बहुत पुराना है। अमका प्रारम्भ और-नीतमि मानना
साहित्य। भारतके प्रत्येक भागकी जन-मायामें बारहमासे प्रचलित है। भाव भी
सबके विरत युग्मे है। मानव-मन किमी भी देश और कालका हा सर्वत्र एक
रु है। मनुष्यके इस सामान्य मनका केन्द्र कल्पनेवाला साहित्य ही अमर ही
वरा अर्थात् तो कालके बदलोंको न सहकर मर गया। बारहमासे सभी अमर
साहित्यका प्रतिनिधित्व करत है।

हिन्दीक अन्य बारहमासामें विरहिणीका अपना दुःख तो दिग्गता मया है
किन्तु हृदयक पतिने दुःखका उमे प्यार ही नहीं है आपनीकी मायमनीका आवा
जब रूमे भी नहीं जाना ता यह पतिको बुलाना आती है किन्तु यह यह नहीं

१. हेमि-रामुन संग्रहक अन्त कल्पनाके अन्तर्गत बारहमासा मया है ३३।

छोबनी कि ऐसे आये प्रबानी व तथा का हाथ होना । विनोदीकायकी वादिका
को पतिका अविच्छेद व्याज है अन्ता नहीं पमुकारी करम वसाको वेनकर नमीकर
विवाह-कारसे बायम छीट बने । विन्नु रामुक्मे उन्नीको अयगा पनि माय ।
बन उनके वाम बयी और बजा कि हे पिय । नावतमें धन मन को । बर बनचोर
पटाएँ बिरेंबी मोर घोर मबायेंमे शोरिक बुद्धकी शामिनी हमकवी और पुर
बाईके छोटे बसिये ता मुम्हारा ता-नेज अय मात्रम यह हो बायपा

विवा सायन में प्रव छींछि नहीं बन और मय बुर आवेगी ।

बहुँ मोर तें मोर उ घोर करें बन अकिछ बुद्ध सुनलैगी ॥

पिय रैन अँचेरी में सुँ नहीं कनु दामन हमक डरावगी ।

पुरबाई की शोक सहोमी नहीं उम में तप तेज बुझावैगी ॥४॥”

मैमिनायको यह माकूम बा कि सायनकी प्रकृति उन्नी मबावह नहीं ही
सकती बिलगा कि प्रबल बमपत्र स्वर्ण है जो प्रत्येकके छिप ईमिचार्प कपते
बागा है । सायनकी प्रकृति मैमिनायमे लज्जत और औरताका संचार करती है,

“वा विच को कोई न रासनहार क्यो किममे सरगायत बने ।

अरु बकी सबसों जग में लिह सीं विधिबायर देख रँवे ॥

इह बरेंद्र चरेंद्र सदै जम आन परें तथ बाँच क्येवे ।

बायें कदा हर सायन का सुन राहुक विच को बाँ समुझैव ॥५॥

वीपके माहमें बना आवा पकटा है । लीठमें भी धीन नहीं जानी । उत
समन राजुनको अपनी विन्ता नहीं वह विमली बाग ही मोचती है कि अब ऊँई
धीठ लगेबा तो क्या कोरेने ? पत्तोनी ‘बुधनी’ तो परान्त न होयी । इह बानुमें
ही कामदेव अपनी सेना केकर आक्रमण करता है, उनका घटीर कोमल है बँधि
मुद्रबना करेमे । भारतीय गारीकी पतिके मुन-नु कवी चिन्तामें जो सास्त्रवता है

पिय वीप में जाहो बैगी बनी विन सीङ्ग के सीठ किम जर हो ।

बहा भ्येहोमे शीन कन अचही किर्षी पालन की बुधना जर हो ॥

मुग्धप प्रमु की तथ कोमक है बैछें काम की चौकन सो जर हा ।

अब आवेगी शीन परंय सबै तथ देखत हो तिनकीं जर हो ॥६॥

विन्नु मैमीस्वरका विचार है कि टगरी हवाके बँधे इल घटीरका बुध भी
नहीं बिगा नकते । मटीरका विवाह तो विविध कर्मोंके आक्रमसे होता है यम
डेपमे होना है, इन्दिपोंली बसनामे होता है और ‘पर’ को ‘स्व माकमडे होना
है । जिनमे स्व का विचार जर चिन्ता है, वह बनमें रहे या बरमें बूध नहीं
मचना । इन भाँति वीपनी नहीं मैमीस्वरको नहीं लना पानी और न कामदेव ही
आक्रमण जर बाता है

प्राप्त होय जहाँ पर सोमित शोच करी बह पौन झकर्कर ।
इतिथि पौन पसार जहाँ तहाँ राम राप सँ नाचो हि बार म
भाऊ महामन्द माते रहें पर प्रभु को वरु जहाँ चित रौर ।

जो पर आप बिचार न राहुक तो गुरु आपने आपही धरें ३१५॥

जठका माहू कगनेपर बहुत अधिक बरमी पडेमी सू कमेगी और बकडो रूपमें
बहु-बहु परत भी बहु बाडेमे । उस समय तो पत्नी और पतंगे तक बपन-बपन
बरमे ही रहना पद्य करेमे । भूख और व्याससे छठिर मूक जायेया । ऐसी
रुधामे पतिक्रम महाबल केमे निम पायेया । राहुक बाहरी है कि उसका पति इन
कहाको न भोमे । उसका मन प्रियके सुखम लम्बम है । उमे कनकी व्यास नहो
पतिके हितकी चिन्ता है

धर्म की बात तो सौची है बाब वे जेठ में केस धर्म रहेगा ।

सुह चले सरबाण कमान ज्यो धाम पर गिरमेक बहगो ।

पभी परतंग सबै हर है अपने घर को सब कपड़े बहैगा ।

भूख-गृहा घति रहै रहै तब पूसा महाबल क्यों बिबाईगा ३२॥

जठकी ऐसी भीष्म बोवहरीठे नमीरवरको विधि मान भी मम नही है । उनको
नात्म है कि नर-मन-मुर्खम है और उसमें भी बाबन-योनि । जगः जग रघुनाथ
और सोलह भावनामावाला जिन-धर्म वाक सेना बाहिय । उसीस हम बीषना
कल्याण हा सकता है । जेठ नेमीरवरके भयको नही अपितु भोगराको मारको
बपाठा है ।

कुर्सेम है नर का सब राहुक बुकन आउक बाबि हमारी ।

कुर्सेम धर्म ठ है दशाकपुन कुर्सेम पौडस भावना भारी ।

कुर्सेम भी जिनराज को मारग कुर्सेम है शिषसुम्बर मारी ।

मह सब कुर्सेम जान लये जब कुर्सेम है सन्नाय की सिपवारा ३२॥

बिरहने दु खम आनन्दशायक बस्तुर्पेभी कु प केनेगामी हो जाती है । जानिक-
वा महीना है सब सिखाँ बर सभा छी है । भाति भातिव बिबाती रचना कर
भयन-नीत नार्गी है । बिबकी बुलावर नये-नये गृवार करता है । और बीषाकी
के बीषक जलाये हुए तो बीषे सनका रूप ही पूटा पडता है । रिगु इन लवरो
देखकर राजुनका नी तरसकर रह जाता है । तब न पति का भा मय विन्धु
राजुनका नही भाया । फिर भी वह बिछरी मारि जोगी बरवर मुरनी नही
और न जान निरम छार देनी है । केनिय

'रिब कानिक में मन केप रहे जब मामिनि मान गजावेगी ।

रिब बिब बिबिय मुरंग सबै नर हा नर संगक गारेंगी ।

पिप नूतन बारी सिंगार किन अपनी पिप डेर सुखलेंगी ।

पिप बसहिबार बरे दिबरा बिबरा तुमरा तरसावेंगी ॥१०॥

यहाँ पिपको तरसावैकी बोधमें रामुबका तरसना ही ध्वनित हो रहा है । किन्तु नैमिशाच का निकलके इस राज-शृंगारसे बिबबिन होनेवाले बोध नहीं है । पशुने बाल्या और शरीरके भेदको समझ लिया है । यह प्रसन्नता शरीरसे सम्बन्धित है आत्मासे नहीं । ककिबारमें वह ही बूझता है जो बड और जेनक मेर को नहीं समझता । जैसे इत बूझको पी केना है और बकको छोड़ देता है जैसे ही बड पड भीब समझेगा तब कही वह परमात्मत्प आत्माको समझ सकना ।

'तो बिबरा तरस सुन रामुब जो तन को अपनी कर बावै ।

पुर्गाक मिला है मिला अपने तन अङ्गि मनोरथ भाव समझै ।

बुझेगा सोई ककिबार में बड जेवन को जो एक प्रसन्नै ।

इंस भिषे पब मिला करे बक सो परमात्म आत्म बावै ॥११॥

नैमि-क्याह

यह एक छोटा-सा काव्य-काव्य है । इसमें नैमिशाचके विवाहकी कथा है । नैमिशाचके पिताका नाम समुद्रबिन्दव और माँका नाम बिबरेबी या । इनका बाल शौराश्रान्तर्गत हाशवनीमें हुआ था । यह माधवबंशी राजकुमार थे । दुष्य और बक-पड इन्हींके बंधव बड़े भाई थे । नैमिकुमार बचपनसे ही अकिन्धमाल्य और बर्मात्मा थे । इनका विवाह गुनाबकके राजा अपसेनकी कन्या रामुबके साथ निश्चित हुआ । बाराह पहुँची । मपवानीके उपरान्त टीकाके लिए बाँटें सम्यक बनेक पशुबोको बँधे और भीत्कार करते बैठा । उस कल्प-कल्पको मुनकर इनका वैराग्य बदलन हुआ और वे तुरन्त ही शौराशनी शीसा के विरिभारपर उप करने लगे बने । मपवनीत बक पडे पहनाइयाँ बाल्य ही पयी । माँ-बापने रामुबको बहुत समझाया किन्तु उसने जन्मको पति चुननेसे स्पष्ट इत्कार कर दिया । वह भी नैमीस्वरकी ही अनुवांमिनी बनी ।

बिनेबीकाक चित्र उपस्थित करनेमें अनुपम थे । दुष्यहा शीरीश्वर विवाहके लिए जा रहे हैं । शिरपर मीर रखा है, और हाथोंम बचनही डोरी कतकर बाँध ही बनी है । जालोंमें कुम्हक झकक रहे हैं और माकपर रोकी बिराजमान है । बजारबजार पर मोठियोंके हारकी तो धीमा ही ल्यारी है । देखिए,

मीर बरो मिर कुकड के कर अंकुष बाँध गई कस बारी ।

कुँडक कावन मे लकके अति भाक में काक बिराजण रीरी ।

१ इनकी रचनास्थिति यही केन सिद्धान्त मन्त्र श्वरा में मीश्वर है ।

मूर्तिव की कड़ सोमिठ है छवि हैलि कजें बनिता सव गौरी ।

काक विमोदी के साहिब क मुल देखत के हुनिया उठ बौरी ॥

एसा प्रवीत होता है जैसे विमोदीक साहबको देखनके किए हुनिया मात्र भी उठकर बोरी बनी वा रही है । उठ बोरी में देखनेकी एसी म्याकुठता है जो देखते ही बनती है ।

पद्यकोके कठक-कन्दनका मुनकर नेमिकुमार बदास हो गये । उनके हृदयमें जोष भावक्य कस्याव करनेकी भावना बरित हुई । किन्तु इसके लिए अक्षीम आरिष्यक बलकी आवश्यकता थी । उस सम्पन्न किय बिना वृत्तरोका कस्याव कैस हो सकता है । एतथप ही वे गिरिनारपर उप करन चले गये । उस समयका दृष्य देखिए,

'शैव उदास भय जब से कर जाइ क सिद्ध का नाम छिपा है ।

अम्बर भूपथ डार द्विप सिर मौर उठार के डार द्विपो है ॥

क्य बरी मुनि का अचहीं तबहीं चदि के गिरिनारि गयो है ।

काक विमोदी के साहिब ने तहां पांच महावत भोग कयो है ॥

बरासीननाभी कहरके माते ही उम्होंने हाव बोरकर भयवान् सिद्धको बन्धकार किया । शैव मानो इनकी हृपासे ही वह उत्तम भाव उत्पन्न हुआ हो । बन्धामुपथ उठार फेंके और वह मौर भी बरासाबी हो गया जो विवाहका प्रतीक था । मुनिका क्य बारप कर पांच महावत के लिये ।

'बर डारसे ही तों बोट गया मौबरे तों नही पडन पायी अत राजुबका मय पति बुलनेकर अधिकार है । - माता पिताके ऐसा कहते ही राजुबकी भी मुचित हो उठी । उसने फन्कारती हुए कहा

'कह न बात समझाल कहीं तुम जानत हो यह बात मकी है ।

गाकिबा काबुत ही हमकी सुनी तात मकी तुम जान बकी है त

मैं सबकी तुम तुम्ह गिबी तुम जानत वा यह बात रकी है ।

वा मव मैं पति नेमप्रभू यह काक विमोदी के नाप बका है ॥

माँ-बापको फन्कारना कोई अच्छी बात नहीं है । वे जा कुछ भी कह रहे थे अपनी समझसे तो भलेकी ही कह रहे थे । किन्तु राजुब भी गया करे उते कुछ था कि उसीके माँ-बाप बडे जानकर भी न जान पाव । उन्हें अपनी पुत्रीके धाधारण मौव-अय मुखक ही ध्यान था । किन्तु राजुबन तो विवाहको पवित्र बन्धन माना था भोवक्य लहाट नहीं । मनमें एक बार बिये पति मान किया भीवम-मर वह ही रईया । पति कुछ भी करे । नाटीके इत पावन आर्यपर

आपाठ करनेवाला बार्ड था क्या न हा। रामक लघु-बोटी मुग़लोंने बिना मनीं छ मफ़ती। छमें माँ-बापका ध्यान भी मुका देना होता है। पछित रामचन्द्र मुनछने हमीकी बड़ बर्मके लिए छाने बमको म्याडावर कर देनेकी बात बही है। बड बहाँ पूर्ण लपन बटिन होनी है।

रामक-यक्षबासी

अनकालेक भग्शाराम इसकी प्रतिमा मौसूर है। बीबानरक अमन जैन पुस्त कासबम जो प्रति है वह बि छ १७८२ मखतिर बही ९ की छिनी हुई है। बयपुरके बभीबन्दरीके बिगम्बर जैन मन्दिरके मुटका नम्बर १९१ म हमनी जो प्रति निबड है, बड नि छ १७९३ की लिनी हुई है। बयपुरक ही ठोकिमोंके बिगम्बर जैन मन्दिरमें बेज्जल नम्बर १९९ में बही हुई 'रामक-यक्षबासी' बि छ १७९९ की छिनी हुई है। यी मन्दिर भी कृषा ठेठ दिल्लीके धारबमम्बरके बेरुन नं ३ ४में इसकी एक प्रति मौसूर है। इस काव्यमें मेदिनाथ और रामकका मावमय बिब बंदिठ है।

मेमसा रेयता

इसकी प्रति बीबानरके अमन जैन पुस्तकालयमें मौसूर है। इसकी माव-पर उर्दु-अरसीका बबिक प्रभाव है। फरबन्ध बिलम्बरहीन कुरमावा लुनबिब बादि यन्त्रोत्ता प्रयोग हुआ है। इसमें मेनीबवरके बिबाह्यय जामेठ कैकर रामकके स्त्रीबिबकी छेदकर रवर्ण जामे ठकी बिबिब बामे है। मुबत्रक छन्नोंमें ही ठब मुछ बडा गया है। बग इस रचनामे मुकक और बग्दनाम्य बोना ही का बालन्य सनिबिठ है। गीठाबकीही मीठि बछमें मुककता है और बबाका बग्दई मी। बादि बल देबिद,

बादि

'समुबबिबब का फरबेदु ब्याहर्म की मावब ममनाथ लूब बनरा कडाया है। बज्जल बिलबर्सम्य सहरा बिराबता है बाबोपन पंजबेदि बाव दूब काया है। बालन्यर देपिके महरबान हुआ बाव इसको ललास करी बेंही कुरमाया है। बाया है बिहाब का बरंग है बिबोशकाब गिरवार बाव न न देवी बिग काया है

१ बबिबन रामचन्द्र लुनन म्यमसेकी बमभूमि बिग्यामलि, बरना बाव, म्यम, १६३ ई ४ १२२।

२ रामन्यानी दिल्लीके इन्फिबिबिब मन्त्री काव, बाव ४ बरबपुर, इड १७२।

छान्त

गिरनरगढ़ सुहावा सुप्र विरक पसेत्र आया तहो आंग चित लाय तन कहा गया है ।
 सुम ज्ञान विर कीन्हा नवकार मंत्र कीन्हा, परहज कर्म किया है ।
 कीर्तिग छेद कीन्हा पुस्तिका पर कीन्हा ससहरह स्वग पशुंकी कछितोंग पर मया है ।
 सुम ररठे बभाय काळ विनोदी गाल अनुमाफ ह्यं बाते राजक का मया है ।

प्रभात जयमाल

इसे 'मंथक प्रभात और मेमिनाबकीका मयक भी कहत है । इसकी रचना
 वि० नं १७४४ में हुई थी । इसकी एक प्रति बमपुरके टोखियोके जीन
 मन्धिरके एक पाठसग्रहम निबन्ध है । इसको एक दूसरी प्रति पचावती विमन्वर
 जीन मन्धिर दिल्लीमें मौजूद है । इसमें भमवान् मेमिनाबकी यकिनमें कतिपय मुद्रक
 पद्योन्म निर्माण हुआ है । सभी भक्तिसे ओतप्रोत है । प्रातःकाल उठकर बगवा
 छन्दारध करमेसे सुभ-वति निबन्धी है ।

पशुर्धिशति सिन स्वचन सबैयादि

इसकी प्रति वि स १८१९ भाद्रपद कृष्णा तृतीया शुक्लवारकी तिथी
 हुई बीकानेरके समय जीन प्रयागजयन मौजूद है । यह भाद्रक बेगीप्रसादके जीवन
 के लिए लिखी गयी थी । इसमें कुल ७१ पद्य हैं और सभी सबैया हैं । इसके
 प्रारम्भके ८९ पद्य आदिनाबके फिर नवकार १२ भावना और पार्श्वनायके
 सबैये हैं । पद्यांक ४७ से आगे प्रत्येक छन्दम एक-एक तीर्थकरकी कर्मसः स्तुति
 है । प्रथम तीर्थकर आदिनाबकी बन्दना करते हुए यका बगवा है

'आके बरवारविन्द पुत्रिन सुखिह ईद देवन के हृन्द चंद्र सोमा अति मारी है ।
 आके नख वर हनि कीर्तिन किरण वारे सुख देखे कामदेव सामा उबिहारी है उ
 आकी देह उत्तम है हर्षन-सी इन्धियन अपर्षी सरुन मय माल की बिचारा है ।
 कहत बिबारीकाक मय बचन निहुक्यक केस नाभिनंदन कू बंदना हमारा है ॥

पूज्य माल पचषीसो

बैठा कि इसके नामन स्पष्ट है इसमें कुल ३५ पद्य हैं । बोधा छन्दम और
 नाराय छन्दाका प्रयोग किया गया है । इसका प्रकाशन कृष्ण महाशौर कीर्तन
 नामकी पुस्तकमें हुआ हुआ है । विषय भक्तिसे सम्बन्धित है । तीर्थहर मेमिनाबके

१ राजनाबके दिनीके हस्तलिखित मन्थोकी योग नाम ४ बरपुर, इह ११ ।

२ इह बरपुर कीर्तन की दिग्दर्शक जेय गुणधामन यासीरजो बरपुर, बरपुरी
 १९३३ ई इह ११९ १२६ ।

बरणोम इन्द्रने उल्लासपूर्वक एक कृपमाळा समर्पित की जिसे इन्द्राजीने मिल
मिल प्रफुरके पुत्र भोत्री और मधि-माधिक्योसे गूँसा था । उक्त माळाकी घोषा
देखाए,

“सुगन्ध पुष्प बेकि कुम्भ केतकी मंगार के ।
अमलि अम्र सेवती सुही गुही लु कायके ॥
गुल्लक कंठ छाहूँची सबै सुगन्ध आति के ।
सुमाकली महाप्रभोद् डै अवेक मीति के ॥५॥
सुबभंतार पीह बीष मोति काक छाहूँचा ।
सुहीर बल्ल भीक बीत परम ओति छाहूँचा ॥
अभी रही विभिन्न मीति चित्त दे क्याहूँ है ।
सु इन्द्र ने उजाह सीं त्रिवेन्द्र को बजाहूँ है ॥६॥

बहु माळा अमूम्य हो गयी थी । उसे सचीने गूँसा इन्द्रने बड़ाया और
मन्वानुजा स्वर्ग पाकर बहु स्वयं भी बलिब हो गयी थी । उसे प्राप्त करनेके लिए
विमिल वैद्युति विमिल आतिसोने घोष बाने । उनमें साधारण वे और असाधारण
भी बरीब वे और माळदार भी बंजून वे और विकटार भी तथा सामन्त वे और
राजा-महागजा भी । सभी मन्त्राको लेनेके लिए अधिकसे अधिक मूम्य देना चाहते
वे किन्तु कुछ कंठुत विस्तारित नेबोते बहु बैच रहे वे कि ये लोभ एक छोटी-ठी
माळाको लेनेके लिए असीम बल बयो कूटाये दे रहे हैं । उस अवसरपर अमनके
विभिन्न माषोका एक छोटा-ना पत्र देखिए,

“सु अग्रबाक भोकिने लु माळ मोहि शीजिने ।
दिवार देहु एक अल सु दिनाथ कीजिने ॥
अरुहकबाक भोकिपा लु शीव काल देउंयो ।
सु बादि के तमोळ में त्रिवेन्द्रमाळ केउंगो ॥११॥
कितेक कम छाहूँके लड़े ते हाथ ओरि के ।
कितेक भूष देमिउके लड़े लु बाग मीरिगे ॥
कितेक अम्र बाँ कई लु कैने कलि देग ही ।
सुदाच माळ आपनो सु कृप माळ केत ही ॥२॥

इस मन्त्रके अवसरपर अवेक आविहारें अब बनने उद्दाम बाषोरी पीनै-
में अमनके हो बयो तो मूल कर छडीं और उनही प्रवेक विरहगर्भ त्रिविधा
उडेअन बा । मूरव-तालोके साथ-साथ मुक्छ्यंति बंभव-बीग भी कूट उडे

‘कई प्रबीब आदिका त्रिवेन्द्र को बजावही ।
कई मुक्छ्य राग सीं काही सुमाळ गावही ॥

कई सुन्दर का करें नई अनेक भावहीं ।

कई मूर्ख ताक पी सु जग को फिरावहीं ॥२१॥

बीतरागकी माका खरीबनेके किए भक्तिकी भावस्मयता है । युव मगराजने शोषणा की कि मासा उसीको मिछेगी जो भक्तिके अधिक जितम्भभक्तिका परिचय देया । भक्त यह है, जो जिनेन्द्र मस्त और बिम्बप्रतिष्ठा करवाकर संव चकानका येय प्राप्त करेया

'कई गुद उदार जो सु पों न माक पाह्य ।

कराह्य जिनेन्द्र-यज्ञ बिबहु भराह्य व

बकाह्य सु संवजात संवदा कराह्ये ।

तई अनेक पुण्य सों अमोक माक पाह्य ॥२२॥

संबोधि सब गोष्टि सो गुब उतार के कई ।

सुकाय के जिनेन्द्र माक संवराय को कई ॥

अनेक हर्ष सों करें जिनेन्द्र ठिकक पाह्ये ।

सुमाक श्री जिनेन्द्र की बिनोदिकाक गाह्ये ॥२३॥

भक्तामर स्तोत्र कथा और भक्तामर अरित

'भक्तामर स्तोत्र कथा का निर्माण वि सं १७४७ सावन सुदी २ को हुआ । यह रचना पद्यमे न होकर हिन्दी-नद्यमे है । इनकी एक प्रति वि० सं १९४७ की किछी हुई जयपुरके ठोडियोके जैन मन्दिरमें बिराजमान है । वि सं १९९ को किन्ही हुई हस्तलिखित प्रतिकी सुचना 'काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका'के वि सं २ ९ के हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोजके परिशिष्टमें अंकित है । इस विवरणके सम्पादकोका विचार है कि यह एक उत्तम कृति है । किन्तु यह पद्य में न होकर पद्यमें है और इनका नाम भी 'भक्तामरअरित' दिया हुआ है । एक भक्तामरअरित'का लम्बेका काशी नागरी प्रचारिणी सभाके बारहवें वैचारिक विवरणमें हुआ है । उसकी प्रति बाराबकीके जैन मन्दिरसे प्राप्त हुई थी । इसपर भी निर्माणकाल वि सं १७४७ पडा हुआ है । इनमें बोधा अद्वैत कुण्डलिका और सोरठ्य आदि ग्रन्थोंका प्रयोग किया गया है । इसके अन्तमें कवि और उसके समसक्य भी संक्षिप्त परिचय दिया है ।

१ काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिकाका बारहवां वैचारिक हिन्दी ग्रन्थोंकी खोजका विवरण परिशिष्ट २ पृष्ठ १२७४ ।

२ बोधा अद्वैत कुण्डलिका नामो ।

बहु कुण्डलिका सोरठ्य नामो ॥

अन्य रचनाएँ

‘यह कल्याण कथा वा प्रति हिम्मीत लंकायां वि जैन भक्ति’ मीशूर है। ‘मोक्ष कथ’ नामकी रचना उपपुर के वं लघुकाव्यीके अन्तर्गत मुद्रा सं १ ३ में लिखी है। ‘सुवर्णभूषणिकी जयती उपपुर के बड़े हिन्दूके संग्रह सं २१३४ में कही गयी है। इनपर जेयलका सं १७८ पृष्ठा है। विनीती काव्यने ‘सम्पत्त कौमुदा वा रचना वि सं १७८ में की थी। ‘विष्णुसुमा मुनिवधा और श्रीगाल विनाय कथा’ नामकी त्रिपरीकायकी कृतियाँ हैं। ये कथा सं १२ हिम्मीके पाठ्यभण्डारमें मौजूद हैं। ‘श्रीगाल विनाय की रचना वि सं १७९ में हुई थी ‘पद्मसौन्दर्य रत्नमाला’की रचना वि सं १८१८ में हुई। इसकी प्रति बडनेरा (बायग) में मौजूद है। यह अनुष्ण् लक्ष्मीके लिख गयी है।

८३ बिहारीदास (वि सं १७५८)

पण्डित बिहारीदास आपरेके रहनेवाले थे। इनकी मरणा वलम कोटिके विद्यालये की जाती थी। जैन हिन्दी भक्ति-साहित्यके प्रसिद्ध कवि सातलगाय काव्यीके विषय थे। उन्होंने अनेक रचनाएँ अपने मुख्या मासिकके विद्या है। उन समय आपरेमें कोशी विद्या के वं मानविद जैदरके जिनकी ‘श्री लक्ष्मी की और पण्डित बिहारीदास।

बिहारीदास कवि भी थे और उन्होंने सर्वत्र ‘बिहारी का प्रयोग किया है। वही वही अनेक बिहारीकाव्य भी लिखा है किन्तु ये ‘गणेशायार’के लख रीतका पुष्प है। वैसे भी बिहारी कथा बिहारीकाव्य नामके कई कवि हुए हैं। इनमें-१ एन ठा वादस्य के जो औरकाके रहनेवाले थे। इनका रचनाका सं १८१ नामा जाता है। दूसरे वे थे जिनका जलक वादी आपरे प्रचारिकी पत्रिकाके द्वितीय वार्षिक रिपोर्टमें हुआ है। इनके सं १८२ में ‘सकलिक

मदन् लक्ष्मी ही लंका।

मायन सुदी बुनिया रविदार ॥

देखि बरी।

आरती नामकी प्रचारिकी वसिष्ठारा द्वितीके इन्किलिफ मन्नेला कल्याण वेदालिक विवरण

विष्णुसुमा, भाग ९, पृ ७७७।

रामचन्द्रजी की रचना की थी। तीसरे व हैं जिन्होंने १८१५ में हरद्वीक परित्त लिखा था।^१ चौथे प्रसिद्ध मोती हरिरामदासके मुख्य शिष्य थे। हरिरामदासके स्वर्धारीहृदयके उपरान्त व उनकी गद्दीके अधिकारी भी हुए। उन्होने नीसानी नामकी एक प्रौढ रचनाका निर्माण किया था, जो संवत् १८१५ के बारकी कृति है।^२ अर्थात् ये सब सन्नीसवी सताब्दीके कवि थे।

पण्डित बिहारीदासका रचनाकाल अठारहवीं सताब्दीका पूर्वार्ध माना जा सकता है। श्री धामतरावका बैनचमकी और भुकाव सं १७४६ में पण्डित बिहारीदासकी प्रेरणास ही हुआ था।^३ अर्थात् इस समय तक व विद्वत्ता-जन्य क्पाति प्राप्त कर चुक थे। अतः यह निश्चित है कि उगना काल अठारहवीं सताब्दीके प्रारम्भमें हुआ होगा।

बिहारीदासने सम्बोध 'पंचासिका' बखड़ी' जिनमन्त्र स्तुति और भारती का निर्माण किया था। ऐसा प्रतीत होता है कि धामतराय सम्बोध विकसित रूप थे।

सम्बोध पंचासिका

इसका दूसरा नाम असर बावनी है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति वि सं० १८३२ की खिपी हुई वि बैन मन्दिर बड़ीतके बेष्टन नं २७२ गुटका न ५५ में पृ ३६-४ पर लिखड है। इसके अन्तम कृतिका रचनाकाल वि सं १७५८ कातिक वही १३ दिया हुआ है। इससे यह भी सिद्ध है कि बिहारी दास बावरेके रहनेवाले थे। कसपुरके बबीचन्दजीके मन्दिरम विद्यमान गुटका नं १२८ में भी इसकी एक प्रति संकक्षित है। श्री वि बैन मन्दिर कूर्वा सेठ दिल्लीके बेष्टन नं ३११ में इसकी एक हस्तलिखित प्रति मौजूद है। उसकी किन्नाकट बतल है। उसपर भी रचना सं १७५८ ही दिया हुआ है।

इस कृतिमें ५ पद्य हैं। विविध भाषामें इसकी रचना की गयी है। प्रारम्भ में कवि 'ठँकार' म बसे पंच परम पदकी बन्दना करके अपनी कथुना प्रवृत्त की है

“ठँकार मँझार पच परम पद बसत है।

तीन भजन में सार बंदीं मन बच कच के ॥१॥

१ काशी जाल्ती प्रचारिणी सन्निधकी १३ २ की प्येव रिबिड ।

२ डॉ० मनीलाल मेनारिका राजस्थानी ग्याना बैन साहित्य, पृ ३०३ ।

३ विद्वान् प्रेमोद्भूत शिन्दी बैन साहित्यका इतिहास, पृ २ ।

४ वे अरुणत बसैन्वाली हस्तलिखित ग्रन्थि भिन्ने को है ।

अधर खाल न माहि छद् भेद समस्तु नहीं ।
बुच बारी काम हाव भाषा अरु बाबनी ॥२४॥”

कविका नयन है कि नरमव प्राप्त करना अत्यधिक कठिन है । उसे व्यक्त नहीं होना चाहिए । यदि वह जो गया तो समुद्रम चरिही की भाँति फिर प्राप्त न होना । जबकि वक्ष्यता ही हाव रह बायपा

अतम कठिन उवाच पाव नरमव कर्णों तजै ।
राई कदवि समानी फिर हूड नहीं पाइये ॥२५॥
इ विधि नरमव को पाव विपै सुप सारम ।
सो सठ असूत बीच हाकाहक विच आचरै ॥२६॥
ईश्वर मायै अह नरमव मति बाये बुझा ।
फिर न मिळै अह देह पञ्जामो बहु हावग्य ॥२७॥”

जीवको अन्वधान करते हुए कविये लिखा है कि तुम विपद्योमें अपना मन लगा रखा है । आरमादा हिन नहीं करता । बौद्ध-के मुखक छिए तु नरमवमुखमें पठ पना है । पाप-अरु तुम बह बैठी है । अतः चर्मन्पी अहाह पदकर सुन पूर्वत इत नरमवमुख पार हो जाओ

‘अह ए विचर्षण सो कर्णी मन माई रे ।
अतम हित न्ही हा ही जेन मन माई रे ॥२८॥
हूक सुच की मवदवि बरी मन माई रे ।
पाव अरु बुच वैदि जेन मन माई रे ॥
पकरै धर्म जिहाअ न्ही मन माई रे ।
सुचरवा वार करै हि जेन मन माई रे ॥२९॥

बर्षे प्रेरित होकर जो त्रिभुवकी पूजा करता है त्रिभुवक चरकोमें चित लगाता है उसे नरवाचित कव मिलना है । त्रिभुवके द्वारा अन्धमे बने चिचकार्य-को जो बीडा भी जान पाता है और अन्धमें समाधिमरण करता है उसे चतुर्दिशा बुच नहीं आना पटना ।

कामि चरम त्रिभुव सौच कइवी सव कोइ ।
चित प्रभु करन अगाइवा तज मन बाँडिन कक होइ ॥३०॥
विच मारय त्रिभुव भाषिका किंचित जायी काइ ।
अनि समाहि अरुच करै अह गइ बुच वैदि हाइ ॥३१॥

बखरी

विद्यमान पुष्कर यह सिद्धा या बुद्धा है कि बौद्ध भक्ति-साहित्यमें बखरियोंकी परम्परा पुरानी है। हिन्दीके कवि भी लिखत रहे हैं। कल्पवृक्ष बीसठाराम भूषणदास रामकृष्ण और जिनदासकी बखरियाँ तो बहुत ही प्रसिद्ध हैं। 'बखरी' की हिन्दीका स्तोत्र बहू सकते हैं। बिहारीदासने भी एक बखरीका निर्माण किया था। इसमें १६ पद्य हैं। उसकी एक प्रति बयपुरके ठोसियाक दिगम्बर बौद्ध मन्दिरमें बेष्टन नं ४८ में सुरक्षित है। इसमें कुछ ४ पद्य हैं। इसको एक दूसरी प्रति बयपुरक ही बड़े मन्दिरके गुटका नं० ८ में संचलित है। इस प्रतिपर रचना-संघत् १७-१६ पद्य हुआ है। इसका अर्थ है कि 'बखरी' 'सम्बोध-संवा' सिकासि को बय पूर्व बन चुकी थी।

बखरीम तीर्थक्षेत्रों बहूविध शैल्या कल्पवृक्षा बरत-अपयपद और आचार्योंकी बन्दना की गयी है। कतिपय पद्य इन प्रकार हैं^१

'शिवरा देस के मध्य बिराजे सम्मदाचक बंदी श्री ।
 कर्म कासि निर्वाण पदुष्या बीस जिनश्वर बंदी श्री ॥
 बम्बू आकमकी बुद्ध बंदी शैल्य बुद्ध सब बंदी श्री ।
 रजत पिरि कुकाचक बंदी कंचन गिरि सब बंदी श्री ।
 अरिहत सिद्ध सुर उपाश्याव साध सकक पद बंदी श्री ।
 जो सुमरया सा भवबन्धि तिरया मया कर्म कुर्वांदा श्री ॥

बिनेन्द्र-स्तुति

यह रचना 'बुद्धमिलनवाची संग्रह' (पृ १२६) में प्रकाशित हो चुकी है। इसमें भक्तान् बिनेन्द्रके स्तुति-पदक भाषाका प्रकाशन हुआ है। भक्त कवि भक्तान्के इस रूपपर सीता है जिसमें बस्त्रामुपचका आहम्बर नहीं अपितु मुद्रासे ध्यान्ति बिकार रही है और दृष्टि नासाक अथ मानपर स्थित है। भक्तान्के चरण कमल-बैठे हैं। उनके लक्ष्मसे कटाङ्गो मुर्खोंकी प्रमा निकल रही है। उनपर देवैन्द्र नाग और नरैन्द्रोंकी मुकुट-भविषी मुक रही है

“बस्त्रामरम विन ध्यान्ति मुद्रा सकक सुर नर मन हरे ।
 नासाप्रदष्टि बिकारबन्धित निरलि छवि संकट हरे ॥
 तुम चरण पंकज लक्ष प्रमा बम कौटिसूर्धे प्रमा बरे ।
 देवैन्द्र नाग नरैन्द्र नमत सु मुकुट मलि मुति बिस्तर ॥

१ ये पद्य ज्येष्ठिके मन्दिरवासी पण्डिते आचार्यवर विवे बने हैं।

मन्त्रानुकी लोभा केवळ बाह्य नह्य है उतका मन्त्र भी मसाधारण रूपे क्य र्जा है । उतकी पाप क्मातेसे पाप-समुद्र गष्ट हो जाते है, और उतका ध्यान करमेसे धिक्-अक्ष प्राण हो जाता है । यह जीव बुद्धिहीन खंडकर संसार के बडे-बडे दुःखाको सहन करता र्जा है, उसे सुख ता सरसांक समाप्त भी नहीं मिथा । मन्त्रानुकी मन्त्रिणे ही उसे सुख मिल सक्यता है ।

‘अंतर बहिर इत्वाद्द्वि क्वमी तुम मसाधारण क्सी ।
 तुम अत्य पापककाय नासि प्थावत त्रिभक्क वसि ॥
 मैं सेव कुचग कुचोव क्कजन चिर भ्रम्यो मय वन ससे ।
 सुख सहे सर्व मन्त्र गिरि सम सुख न सर्वप सम कसे ॥

संसारक जीव विषय-वयायाव निमग्न है । वो भेठ जाता है, वह ही इस मन्त्रमुद्रको ठिर जाता है । अपनी विनय करनीपर परचात्ताप करना ही धिक्-वपकी और बढना है । यह परचात्ताप ही जीवको मन्त्रानुके चरणमें के जाता है और मन्त्रने अन्तःकरवते यह ही छद्म छट्ठी है कि हि मन्त्र ! मुसे आपकी मन्त्रिके अतिरिक्त और कुछ भी वैभव नहीं चाहिए । एतत् सम्पत्ती एक पद्य है

‘परचाह बाह ब्रह्मो मया क्वहू न सम्भवसुधा क्वयो ।
 अनुभव अपूरण स्वात्तु त्रिभ विद्य विद्य रस चारी मन्त्रो ॥
 अन् वसो मो कर मैं सदा प्रभु, तुम अत्य सेवक रहों ।
 वर मन्त्रि अति रद्द होहु मेरे अन्त्र विभय नहीं चहों ॥ ५ ॥”

भक्तको यह पृथ किन्नास है कि मन्त्रानुकी चरणमें जातेसे अन्त्र-परकके क्योसे फूटकाय मिल जायता

‘मगक सकतो इव उत्तम तुम चरण्य त्रिवेस जी ।
 तुम अद्यत तात्त अन्त्रम सम कलि मय अन्त्र क्योस जी ॥

भारती

विद्यापीठतरी विन्नी हुई एक चरण भारती जयपुरके क्कवडाके अतिर्य विद्याभ्यास मुदना न ५ के नू ४ वर अर्जित है । भारती भागवतभाषी भी वयी है ।

कय भारती आतमन्त्रा
 गुण परजाव अन्त्र अन्त्रेवा ॥
 जर्म सच जग यह जग माहीं
 वमत जगत मैं जग समा माहीं ॥

महा विष्णु महेश्वर श्यामै
 सायु सकल जिह क गुण गारि ॥
 बिन जान जिय बिर मय छोके
 जिहि दाई दिन विचपर छोके ॥
 भारी बजती बिष श्याहारा
 सो ठिहुंकाळ करम सो श्यारा ॥
 गुह शिष्य उभय बचन करि कहियै
 बचनानीत इमा तिस कहियै ॥
 सुपर मद् और खेद न छेरा
 धार धाप री धाप निवेश ॥
 सो परमात्म पद् सुख दाता
 होइ बिहारीनाम चिकन्ता ॥

८४ किशानसिंह (वि स १०६३)

इनका पितामह सिंगही कस्याव रामपुरके रहनेवासे थे । उनका बंध बख्शेक-
 बाळ और गोब पाटनी था । किसी तीस-वासाके लिए सब निकलवानेके कारण
 उन्हें 'संधी बड़ा जान मया था । 'मिदहो उमीका बिबका हुआ म्य है । माज
 यी ऐसेके बसबराको सबई जू' कहते हैं । सिंगही कस्याव जनेकामेक मुषोके
 निवाले थे अत इनका मय भी बहुत बड़ा था । भगवान् जिनेश्वरका पूजन और
 जिन-मुनवा बख्ययत उनका नित्य-नैमित्तिक कम था । खान भी बहुत देते थे ।
 उनके दो पुत्र थे - सुखदेव और जगन्मसिंह । भगवान् जिनेश्वरके पढीकी बखलासे
 मुषदेवके तीन 'सुत' उत्पन्न हुए : बाग माज और किशान । किशान ही किशान
 निह बने । 'शैल विराही कर्म'के उदयसे वे निजपुर की छोकर सागागरमें

१ अहेलीबाळ बंन विसाळ मागरबाळ बेसपियं ।

रामपुरबास बेबनिबास बमप्रकास प्रगटवियं ॥

संधीकस्याय सबगुण बाळ गोब पाटनी मुजमतिरियं ।

पूजाजिनराम अष्टपुत्राये नमै सकनि जिन बाग विरै ॥१॥

बेकभ्रिमाकोण प्रराल, प्ररालिसमर, बखुर, १६२ व २२ ।

२ तनु मुन दुष एवं मुषमुषदेव कहुरो बाळरविष्ट मुषी ।

मुषदेव मुनरग जिनारराल बाग माज चिमनेस मुषी ॥

रहने लगें थे। उस समय बड़ा राजा सवाई जयसिंहका राज्य था। सब प्रजा सुनी और जन-बान्धवसे पूर्व थी। निघण्टुलिहना जीवन जी मुकामय था। उनका अधिकार सम्य मयवान् जिनैन्द्रकी मक्ति और माहित्य-रचनामें व्यपित होता था। उन्होंने जो कुछ किया हिन्दीमें हो लिया। उनके हृदयमें जो कुछ था मयवान् जिनैन्द्रके करणोंमें ही समपित हुआ। वे एक मन्त्र कवि थे जिनकी मायामें मायुर्ज वा और मन्त्रामें स्वाभाविकता।

पश्चित्त मायुषामजी प्रेमीने उनकी केवल हीन रचनाओंका उल्लेख किया था 'कियाकोश' 'मन्त्रवाहुरिभ' और 'राशिभीजनकथा'।^१ जब राजस्वामके पाम्प मन्त्रारोंमें उनकी क्यमग २ रचनाओंका पता लगा है। उनमें-से अधिकार जैन-मन्त्रिसे सम्बन्धित है।

किया-कोश

इसका निर्माण वि सं १७८४ में हुआ था।^२ इसका प्रकाशन बहुत पहले ही जैन साहित्य प्रसारक ज्ञानात्म्य हीरादाय बम्बईसे हो चुका है। इस ग्रन्थमें २९ पद्य हैं, जिनमें बीताधी बामिक कियाओंका उल्लेख है। रचना मौखिक है किन्तु कविताकी दृष्टिसे साधारण है। कुछ शक्तिसम्बन्धी पद्य हैं

‘समसत्त्व कश्मी सहित वर्जमान जिनराज ।
नमी विमुक्त बन्धित शरम मन्त्रिजन को मुचदात्त ॥
बुधम धादि जिन आदि है वारस कीं ठईस ।
मन बच कथा पद् पञ्च, बंदी करि परि सीम ॥

किन्तु इह कीनी कथा मधीनी निरद्विष्ट बीनी नुरपव नी ।
मुचदाय किया मनि बहु मगवचननि मुठपके नुरवति पव नी ॥२॥
परी १ २९ ।

१ ज्ञान विवाकी कर्म उई जब जाईवा निजपुर तत्रि को जायामेरि बहाईवा ।
तह जिन बर्म प्रसादि पमै विम मुन कही सावमीजनमानी है लिठ नही ॥
परी ।

हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास १ २९ ।

२ तमहरी संकन बीरातिबाजु माधी म्पल
वर्पाचित्तमैज तिधि कुको रविचार है ।
मन्त्रकियाकोश, मन्त्रि मन्त्रिमापव १ २२१ ।

“बभौ सकल परमात्मना रचित भस्मरह शोप ।
 विपाकिस गुण प्रमुप वे है धर्मत गुड कोष ॥
 आचार्य उच्यते गुरु, साधु विविध विरम्य ॥
 मधि जगवासी जगति की इरसाई विध पथ ॥

भद्रबाहु चरित

इसकी एक प्रति गंगा मन्दिर बिस्फीके पास्वमण्डारमें मौजूद है । इसमें ३९ पृष्ठ हैं । यह प्रति वि सं १९२९ की छिन्नी हुई है । इसकी रचना हिन्दो-मत्तमें हुई थी ।^१ इसकी प्रति जयपुरके श्री ठोम्बियोके विष्णुवर शैव मन्दिरके बेष्टन नं ७८ में बँधी रखी है । इसमें ३५ पृष्ठ हैं । इसपर रचनाकाक सं १७८३ पदा हुआ है । इसी मन्दिरके गुटका न० २५ में श्री भद्रबाहुचरित संकलित है । यह एक नवीन प्रति है और इसपर रचनात्मत् १७८३ पदा है जिसका सम्बन्ध उसकी अन्तिम प्रपत्तिसे होता है ।^२ इसमें आचार्य भद्रबाहुका चरित अन्तित है । भद्रबाहु अन्तिम मृतकेबको वे और उनको मन्त्रिये विपुल साहित्यका निर्माण होता रहा है जन्मीमें-से एक प्रसून रचना भी है । इनका आचार आचार्य रत्न मन्दिरके द्वारा विरचित संस्कृतक ‘भद्रबाहु चरित को बताया गया है ।^३ विष्णुमिश्र के ‘भद्रबाहु चरित’में भाव और भाषा दोनों ही उत्तम कोटिके हैं । आदिका एक पर देखिए,

“केवल शोप मकास रवि उरै होत सखि साक ।
 जग जन जगत्तर तम सकल देया दान दयानक ॥
 सनमति नाम तु बाहुवी जैस सनमति श्रेष्ठ ।
 भाके सनमति होशिपु नमी विविध करि मध ॥”

१ कथा मन्दिर दिल्लीके सं २६ पर लिख ‘भद्रबाहु चरित देखिए ।

२ संवन शहरह से बसी जपरि और है तीन ।

भाव कृष्ण गुन जपटी प्रग्व सम्प्रस्त कोन ॥२ ॥

गुण्य न ३२, मन्दिर होम्बियान जयपुर ।

३ कृष्ण-प्रग्व कर्ता मये रत्न मन्त्रि मु जानि ।

तापरि जाया प्रहरि कोनो मती परमाण ॥१॥

विष्णुमिश्र विनती करे मन्त्रि कविता की रो ठ ।

यह चरित जाया किमी बाहुशोप परि प्रीति ॥१॥

वही प्रदर्शित ।

रात्रि-माञ्जन-कथा

इसको नायकी कथा' भी कहते हैं। इतनी एक प्रति पंचान्तो मन्दिर दिल्लीके इस्तिक़िबत इन्चोमें मौजूद है। इसमें २८ पृष्ठ हैं। इनपर रचनासम्बन्ध १७७३ पत्र हुआ है।^१ इनकी दूसरी प्रति नायकी कथा के नामसे जयपुरके बनीकन्दरीके मन्दिरके बेटन न ६८ में निबद्ध है। उसके बाये भी रचनासम्बन्ध १७७३ ही दिया हुआ है। पण्डित नाबूरामजी प्रेमीने भी किसी प्रतिके आधारपर यही रचनाकाल निर्धारित किया है।^२ इसकी एक प्रति जामेरेके छात्रमण्डारमें रखी है। इसमें कुल २६ पृष्ठ हैं जिनपर ४१५ पद्य संकित हैं। इस कथाका आरम्भिक पद्य इस प्रकार है

'समोसरण साजा सहित जात पूज्य विवराज ।

नमी त्रिविध भवद्विज की तरण विद्वत् विहाज ॥

विज गुण अहुत लरो स्थाहात् मय सोच ।

ता रथर सुवि की माय धरि कमी सकक मय छाव ॥'

बाबनी

इसकी एक प्रति जयपुरके बड़ मन्दिरके बेटन न १२९७ में निबद्ध है। इसमें कुल १८ पृष्ठ हैं। इनपर रचनाकाल तं १७६३ पत्र है। जयपुरकी नाहटन बाबनियोंका एक छोटा-या संकलन 'राजस्थानमें हिन्दीके इस्तिक़िबत इन्चोमें छोत्र' नाम चतुर्थ (पृष्ठ ८३) पर दिया है जिसमें निघण्टुकी बाबनी भी है। यह प्रति बीकानेरके 'अजय वैज इन्चासम्' में मौजूद है। इसपर रचनासम्बन्ध विजयवसयी १७६७ पत्रा है।^३ उसका आदि मंगलाचरण है—

'अंधार अर अघार अविहार अत्र

अजहदु दे अघार बारतु हुस्य क्य ।

कुंभर त कीर वरजंत अग अतु ताके

अतर को जामी खुनामी लामी संत को ।

१. अनेकाल कर् ४ विरह ३, ७, १ २६३ ।

हिन्दी वैज साहित्यका इतिहास, १ ६६ ।

२. विरि विवराज लोका पत्र विवराज

जात्र तिल की हुआ खु कविताई पाई पावनी ।

सबत इनर सनसटुके विजयवसयी की

पत्र की सपान्त कई है मनाबाबनी ॥

अजय वैज इन्चासम्की प्रति ।

बिना का हरनहार बिना का करनहार

पोषक भरनहार किसन जर्नल का ।

अंत कई अंत दिन राखे का अंतत विम

राके अंत अंत का मरामा भगवंत का ॥१॥

आदिनाथजीका पद

इसकी रचना वि सं १७७१ म हुई थी। यह प्रथम शीर्षकर घनवान् आदिनाथजी यस्त्रिमे निमित्त हुआ है। इसकी प्रति जयपुरके दि० बीन मन्दिर बबीकम्हजीक घास्वभण्डारम मुद्रण न ११ में संकलित है। यह विवि मन्ना-अन्ध कमवाधन रीखडोम की थी।

अनन-गीत

यह गीत अपन अंततको सिखा देनेसे सम्प्रतिष्ठ है। अंतत अमये कर्मकर घनवाँको भुक्त गया है। यह गीत जयपुरके मन्दिरके ही मुद्रण न ११ में लिखल है। यह मुद्रण स १८२३ कातिक बरी ७ का सिखा हुआ है।

कविता कथन है कि यह अंतत गुणवान् होतें हुए भी अपनेको भुक्त गया है, आपन नहीं होता। यह अन्तु होते हुए भी इन संसारमें भुक्त मान रहा है। यह मन्ध अमन्धकी भाग विस्मृण कर चुका है—

तुम मूर्ख काक अनादि के जागा जागो की अंतत गुणवान् ।

हामी भुक्त अन्ध संवार में हूँ अन्धो की तुम कीच सदाग ।

कहु मूर्खि गन् मन्ध अमन्ध को किन् सोबी का पुरवक जागा ॥

आत्मगतको म आत्मके कारण यह बीच चारों पतियामें अमन्ध करता है। यह अगिनो कुमतिके अन्धरमें अन्ध जागा है और अन्धका अनादिनाथ अन्ध ही बीच जागा है

‘हा का हूँ विधि अर्धु गति में अमन्धो

विन् आत्म तन्ध तकी पहचानि ।

हो का काक अनादि गुमाहूँ

इम कुमनि अगैरी क अन्धमाली ।

बिनती

इस बिनतीका निर्माथ शीर्षकरकी यस्त्रिमे लिखा गया है। इसकी प्रति जयपुरके मन्दिरके ही अन्धन न १ १५ में मौजूद है। अंतमें अन्ध एन् पृष्ठ है। अन्धर रचना और अन्धनकाक मुद्रण नहीं दिना है।

पद

इन्होंने कुछ बचोकी भी रचना की थी। इनके कतिपय पद बि वैन मन्दिर बड़ोतके पदसप्तहकी हस्तलिखित प्रतिमें कुछ पद कतिपय क्षेत्र महावीरजीके एक प्राचीन मुठकेमें और कतिपय बनपुरके बचोचन्द्रजीके मन्दिरके मुठका नं १५८ में संकलित हैं।

उन्होंने एक पदमें मध्यकालीन वैन सन्तोषी याति ही कहा कि हृदयकी कुछ विने बिना मन्वानके नामोच्चारण और तीर्थयात्रावर्षि भी कुछ नहीं होता

‘बिन आपरुं बोधा नहीं तन मन कूं बोल्या नहीं।

मन मैक कुं बोधा नहीं अंगुल किया तो क्या हुआ। (रेखा)

काकच करे दिक्काम को धारण करे बर काम की।

दिरई नहीं सुख राम की हरि हरि कहया तो क्या हुआ ॥

कृता हुआ बन माकदा बंधा करे अंजाकदा।

दिरदा हुआ धर्ममाकदा कधी नया तो क्या हुआ ॥

एक-दुमरे पदमें विद्युत् मन्त्रकी भीति ही कविवे कहा कि दिनकी बाँधे मन्वान विनेन्द्रके अन् गयी वे उनके बिना रह नहीं सकते। विनेन्द्रके देखनेपर ही उन्हें कुछ मिलता है। बिना देखे वे व्याकुल हो उठते हैं। एक मन्त्रम मन्वान्को बिरलर देखते रहनेकी ऐसी अवश्य व्यास होती है जो कभी बुझती ही नहीं

“कामि माई व अँखियों बिन दिन रकी हु व जाय ॥

अब देखे तन ही सुल उपरै बिन देखा उककाय ॥

मिदय हरे से पूर्ण बदन तें मिध्या तिमिर मिदय ॥

इन्द्र घरीसा लुप्य व हुआ काचन पहस बनाय ॥

बिरल अँख घन है मेरे बस लू, कहुं बवाय ॥

अनुभव एस उपर्यौ अच मेरे आवद् जर व समाय ॥

दास बिसग ऐसे मनु पावे कलि कलि प्याय कगाय ॥

पुण्यामवकथाकोस

यह एक महात्त्वपूर्ण कृति है जिसकी रचना बि ठ १७७१ में हुई थी। इसका सङ्कल बनपुरके बचोचन्द्रजीके मन्दिरके मुठका नं ३८ में किया गया है। यह गुणदा स १८२३ में लिखा गया था। इसमें वैन-सन्तोषी पद-वत्त कथार्य हैं।

चतुर्विंशति जिनस्तुति

यह स्तुति जयमुक्त मन्दिरके ही मुटका नं १०२ बंष्टन नं १९ ९ में अंकित है । भगवान् पारवनाथकी स्तुतिमें रचा गया एक छन्दम रसिए

अश्वसेन मृग पिता वैश्वि बर्मा सुमाता ।

हरित काश मध ह्रास वरवस्तु ज्ञायु विप्याता

बाप्यरसी सु बन्धु बंस इक्ष्वाकु नभारी

कञ्चन सरप सु बन्धु प्रभु उपसग निधारी

गलवर सु मम दस ग्याम वर कोस पौत्र समवादि मनि ।

श्रीपाद्वर्णनाथ बहौ भद्रा कम्भ माग भवद्भव अगनि ॥१६॥”

द्विषागनिहोने भक्तिसम्बन्धी अनेक पीठ और स्तुतिमोक्षी रचना की है ।

इनका संकलन जयमुक्त मन्दिरके ही मुटका नं ५ २ में किया हुआ मौजूद है ।

इस मुटकेमें २ २ पृष्ठ हैं, जिनमेंसे पृष्ठ ५५ तक तो क्रिष्णसिंहका ही रचा हुआ

‘महर्षाह्वरित भाषा लिखा है और अश्वसिंष्टपर इनकी भक्तिसम्बन्धी छोटी-

छोटी रचनाएँ लिखी हैं । व इस प्रकार है

‘धावक मुनि कुच वर्धन पीठ चौबीस बगइक (सं १७६४) अमोकार

‘पद’ (१७६) जिनभक्ति पीठ ‘गुवनपिण पीठ ‘बेतन कोरी ‘निर्घान

काण्ड भाषा (न १७८३ सहायपुर) इनो मुटकेमें उनके ‘एकवकी व्रत कथा’

और ‘अग्नि विधान कथा’ भी संकलित हैं । ‘अग्नि-विधान कथा’की रचना सं

१७८२ में आगेमें हुई थी ।

८५ सुधासुखन्द काला (वि सं १७७३)

सुधासुखन्दका अगम साधारणमें हुआ था । इनके पिताका नाम सुन्दर और

माताका नाम अग्निबा था । मूलसन्धो पण्डित ज्योतिषास इनके गुरु थे । उन्हें

इन्द्रक तमान क्वादि प्राप्त हुई थी । उनके पास विद्यार आन था जिसका

१ यह स्तुति वि सं १७६६ बंष्टन ज्योतिषा ज्योतिषरी सेम्भारके विन पूर्ण हुई थी, केता इस स्तुतिके ३२वें श्लोके रूप है । यह इस स्तुतिके अन्तिम श्लोक है ।

२ और सुधी आगे मन काव में सुन्दर को गुरु माना ।

सिंह निवा अग्निबा नाम माव ताहि कृषि में जयपू आन ।

वंद सुधासुख कई पत्र लोक भाषा कीनी सुखत बहोक ॥

मन क्वाकोरा मण्डित, मण्डितमण्ड ६ १३० ।

विवरण भाव नामधनुक समाप्त ही किया करते थे। वे लमावान्, शानवान् और विवेकवान् थे। ऐसे उत्तमशक्तिके विद्वान्के पास रहकर तुषारकान्तने धिता प्राप्त की थी। धिता-ग्रहणके उपरान्त ही वे अहानाबादन आकर अर्वाचिहपुरा नामके मुहम्मदमें रहने लगे थे। हिन्दीका ही नाम अर्वाचिहपुरा था। उन समय वहाँ मठ मुत्तानन्दजी साहब बहुत प्रसिद्ध थे। उनके घरमें रहनेवाके दोस्तकान्त नामके आती बुधकी प्रेरणासे जो भी सुधाकान्तन हरिवंश पुराणका पद्यानुवाक किया था। कविही अर्वाचिहपुराके अर्वाचिहपुरामें रहकर ही बनीं। कभी कभी मावानेर भी आते रहते थे। उनकी आति अत्यन्तवाह थी।

तुषारकान्तने 'हरिवंशपुराण (वि सं १७८) उत्तरपुराण (वि सं १७९) 'अनुमातरचरित्र' तथा 'अर्वाचिहपुराण' (वि सं १७८१) अम्बरिण 'तद्भाषिणादकी'—(वि सं १७७३) 'अनुकपाकोष (वि सं १७८७) 'पद्यपुराण' (वि सं १७८९) पर और बोबीषी पाठका निर्माण किया था। इनमें पुराण और चरित्र अनुवाक रचनाएँ हैं।

पर

इनके रहे हुए वह अमपुरके ठाकियोकके मन्दिरके मुठका सं १२४ और अमपुरके ही अर्वाचिहपुरीके मन्दिरके बरतंडह ४९२ में अंकित हैं। ठाकियोकके मन्दिरका एक पर अत्यधिक उत्तम है। उसमें अन्त उकाहना देने हुए अमपुराके बहूना हैं कि आपने अनेक अधमोकको तार दिया फिर मेरी वैर हीक क्यों करी है। आप मेरे पुत्र और अमपुराकेर प्यान मन हीकिए, अपने बिरदकी और मिहारिए,

“तुम प्रभु अधम अनेक उचारै। हीक कहा हम बारो थी ॥

तारन तारन तिरह मुन आनो और न तारन हाते ।

तुम धिब अजम मरण बुद्ध बापी । अमन आनी पाते थी ।

मो पुन अमपुत्र प्रसि मग आया । अमनी अर मिहाते ।

अंजम से बक मैं ही मुचारे और कहा अधिमारी थी ॥

मैं विवती करहुं त्रिभुवन बनि मेरी अर्वाचिहपुरी सारी ।

अहं सुखाक सारन अरमन की सो मन्वार उठापी जी ॥

१ देव इन्द्र कीरति अमे तु मुकनमन मंदारक वो वचन्य बाकी होहिनु है । पुराण प्रसिद्ध करवाई अविशमवार मीहनी मुमूर्ति कलेन बाहिनु है ॥ आती के मुकन्य मर्दि प्रसिद्ध वीच तु बास बापी नामधेनु त मुत्तान बोहिहनु है । विमावाण प्यानवाण बनिहण विवेकवान् चरि दोष आपम विचार होहिहनु है । १। १। १। ११६ ।

श्रीर्षासी स्तुतिपाठ

वि सैन मन्दिर बहोतके एक मुठकेमें गुणालखरजीकी श्रीर्षासी स्तुतिपाठ मंत्रलिख है। इस मुठकेका स्थापनाकाल १८३२ है। पूरा मुठका उनही स्तुतिमेंसे ही पूरा हुआ है। प्रत्येक स्तुतिके अन्तमें आज्ञा नामके लिए केबल 'अथ का प्रणाम किया गया है।

आराध्यकी सर्वोत्तम और अपनेकी कृपुणता मानना मन्त्रिकी प्रथम विशेषता है। वही तो भक्त ब्रह्मा है कि हमारे आराध्यका मुर, नर शेष मईच सेवा करते हैं भ्रमरक समान उनके चरण कमलका ओर दिन-रात लगे रहत हैं। वही कष्टना है कि भक्तवाम्नी भक्तिकरी मौजापर बढ़कर प्रत्येक शोक भक्तमानके पार हो पाता है। यह सब है कि भक्तवाम्नी ममान कोई निवनायक और मुक्तपाम नहीं है। वे ब्रह्मनाया पर प्रणाम करते हैं। यह आज्ञाकर ही भक्त उनही तरफमें आता है। उसे पूरा विश्वास है कि वे नगर दुःखमें डूब कर दें। ऐसे महिमावान् प्रभुमें उल्लास प्रम हो गया है। वह भक्त भक्ति उनही सेवाका अपिचार चाहता है।

मुर नर मय सेवा करि जा आन कमल का चार ।
 मकर समान कम्बा रहै श्री निमि धामर अट मर ॥
 अ अम गाथे धार मा करन आवथा कान्ठ ।
 मयसागर को पार है श्री अहा तुम माय जिहास ॥
 तुम सम अकार का नहीं प्रभु निवनायक मुक्तपाम ।
 अविनासी बद् देत हा प्रभु फिर नहीं जग मी काम ॥
 शाना कवि मी आबिधा या कात्र मोहि हृ पार ।
 अथ दुख मी म्बारी रहा प्रभु शाना मय आवार ॥
 अर्ध का या बिबनी जा मुक्तिगी अभिचरवार्द ।
 अम अम शार्क महा प्रभु तुम मया अपिचार ॥ ”

८६ भूपरदास (वि सं १०४१)

भूपरदासकी रचनामेंसे केवल दसना ही बना चलता है कि वे आठवाँ ११५ वाले प ओ गण्डव्यास आश्रितमें जन्म हुये। बरिष्ठ शौलतगपदीश अर्ध

१ गुरदास २० वि श्री रंजनी मन्दिर श्री गण्डव्यासके ही हैं।

२ आने में बालकवि भूपरदासके नाम

बालक के जन्म का कविता में जान है।

भूपरदास गण्डव्यास के ही हैं।

'मूबरराम के नामसे सम्बोधित किया है और लिखा है कि वे भारतेमें स्वार्थरूपमें रहने थे। स्वार्थरूपमें अन्तरमें ही पनपा प्रतिदिन धारण प्रवचन हुआ करता था। मूबरराम कवि थे और शक्ति भी। अष्टात्म-वचनमें उन्हें विद्येय एवं आश्रय था। मूबरराम आचारेणो सभी अष्टात्म-वचनारामों-के थे जो महाकवि जनार्दन-वामसे प्रारम्भ हुई थी।

मूबररामका साहित्यिक नाम निरवयवनामे अष्टात्मों यथाश्रीवा अश्विन वार था जैसा कि 'जैनतानक और 'पारशुराम' के रचना-संबन्धमें प्रकट है।

मूबररामने विपुल साहित्यिक निर्माण किया और वह नयी नरम तथा मनोरम है। इनकी रचनाका नाम बिलार है तो डोगलन भी। प्रचार इनका सबसे बड़ा गुण है। अत्यन्त और प्रसन्न जितनी भी धर्मोपदेशी लुभाय बना देने है कि मूबररामको अतिशयविशेष तो स्वाभाविकता भी है। काव्यकी दृष्टिसे उनके साहित्यका दो भागमें विभक्त किया जा सकता है, एक तो मुनक नाम और दूसरा महावाक्य। मुनकवाक्योंमें उनके द्वारा रचित 'मूबरविनास 'चरुतक' इनकी 'विनतिपा' बाहर भावनाएँ बाँस बरिषह और रतोच साहित्य है। महावाक्योंके नामों अन्तर्में पारश्वपुराण का निर्माण किया। यह उक्त कीटिकी कृति है। अष्टात्मकी हिन्दीमें उत्तरा प्रतिष्ठित स्थान है। इनमें अद्वयानु धारणवाचको भावना सब ही प्रमुख है। मुनक रचनाओंमें अति है तो अष्टात्म भी। जैन धर्म की भाँति जैन साहित्य में अविन और अष्टात्म विनाश मुनक दो बहून् नहीं है। अविनाशनाम संतो समन्वित द्वारा ही बने है। मूबररामकी रचनाओंमें भी ऐसा ही है।

जैन-शतक

इनकी रचना वि स १७८१ नव कृष्ण मसोरकी रविवारके दिन पुन हुई थी।^१ इनको रचनेको जेना चर्ममुपारी साह हरीबिहारे मिली थी। इनमें

- १ अनेकाल वर्ष १ निरख १, १४४ १, १ ।
- २ सत्वा मन्त्रात्म जैन साहित्य मन्त्रात्म अर्थमन्त्र, चर्म और 'मिलनाची मन्त्रात्म अर्थमन्त्र, अन्तर्गत से हो लुका है।
- ३ सत्वाही इत्यादिवा बीह पञ्च तम कीन ।
तिथि ठीक रविवार को अष्टक समाप्त कीन ॥
- ४ जैनराम अन्तर्गत अन्तर्गत से १२ ।
- ५ हरीबिहारे साह क मुनक चर्ममुपारी नर
मिनके बहू जो ओरि कीनी एक टाके है ।

१७ कवित्त सर्वथा दोहा और छन्द है। इस छान्दे-म काव्यके प्रारम्भमें अहम्भ
 सिद्ध जिनकाभी और साधुकाको स्तुतिपाई है मध्यमें असार संसारस विमुक्त
 शोनेकी बात और अन्तमें कुछ आध्यात्मिक उपदेश तथा अंतस्वकी महिमाका
 बचन है।

यह संसार असार है। इसमें जन्म और मरतुका बचकर बसा ही करता
 है। एक ही मममें कहीं तो जन्मकी बचाहवाँ बचतो है और वहींपर पुन
 बियोगने हाहाकार मचता है। विष्णु सब कुछ जानने हुए भी यह मूढ़ नर पेंतता
 नहीं और करीदोही एक-एक महीको व्यथ करता ही जाता है

'काहू पर पुत्र जाबो काहू के बिषाग जाबो
 काहू रागरंग काहू रोषाछाई करी है।
 जहाँ मानु उगल उछाह मीन गान देल
 मौस मर्म तादा जान हाप हाव परा ई ॥
 तेसा जग रीति की न देल्लि मचमान हाप
 हा हा नर मूढ़ तेरी मति जाबे हरी ई।
 मनुष्य जन्म पाप मानत बिहाय जाय
 सोचन करारन का कृ एक घरी ई ॥२१॥

सांसारिक प्राणी बाह्यता है कि किसी प्रकार उत्पत्ति भिन्न जाये तो हृदयकी
 मनी मनानीज अभिलाषाएँ उपघम हो जायें। फिर तो एक प्राणर बन जायसा
 पत्नीका बहुता नष्ट जायेता और मुता-मुनका ब्याह कर देना भी बाँट लूँगा किन्तु
 अचानक बन जा जाता है और अहम्भकी बाजी रतीकी रती ही रह जाती है,

“बाह्य है धन दोष किमी बिच
 नी मच अत्र सर बिचरा थी।
 गैद बिनाप कर्ज गटना बहुत
 क्याहि मुनामुन बरिदिय मीजा ॥
 बिनन भी दिन जाहि जने
 काम जानि अचानक रूँन दगा जा।
 अन्धन यह निरकारि गये
 रहि जाव रती रागरंज की बाजी ॥२२॥”

दिर दिर जेरे मेरे आत्मन का अन्ध जयी
 उनकी बदाह यह मेरी मन मने है ॥
 अन्ध अन्ध अन्ध १ १२।

मनवान् छिड़ने ध्यानरूपी अग्निमें कमरूपी धनुबाणो हांककर बल्य डाला है । बन्धुने विष्य ज्ञानकी फिरपाछे मंथारके बीबेला धोककूपी बग्नकार मष्ट कर दिया है । बहु मनवान् छिड़कोट्यम करते है । मनन बगके चरणोकी विकास बृद्धि केते हुए अपनेको वीरवान्मिष्ठ मानता है ।

ध्यान हुतासव में अरि हूँपव झोंक दिधी सिधु रोमक निचारी ।

धोक हस्तो मचिकोकर धी वर केवक ज्ञान मधुग उचारी ॥

धोक बकोक विकोक मध शिष बन्म जगामुत पक पलारी ।

छिड़न बोक बसे छिड़कक छि-है पगकोक ज्ञानक हमारा ॥११॥

यववान् नेविनामकी स्तुति करते हुए मनन कहता है कि ऐ मनवान् ! बिस ठरह आपने जपसेन कुमारीके बन्महादि दुःखोको मष्ट कर दिया डीक वैसे ही मुझे भी इस संसार जालसे मुक्त कर दो । मफठको मनवान्की इस सन्निमें विश्वास है

‘आमिठ प्रियंग धम देखै दुख होव मम

काजत बबग जैसे वीर भानु भासतै ।

बाक बहावारी उग्रसेन की कुमारी

बाहीमान तै विकारो जन्मकाही कुलराल तै ॥

धीम मनकाजव में आव न सहाव ररामा

कहो बमि नामी तकि धामी तुम तास तै ।

जैसे कृपाकान् वन जीवन की बन्धु छरि

त्यों हा दास को लकाछ कीजे मचपाम तै ॥ ४

मनका विश्वास सच्चे देवम है । बिस किन्तीमें धो लकने देवके कटाव ही मकन जसकी बचन करमेको तैवार है । ऐसी उधारता बहुत कम जगतीमें देखो गयी है । प्राय मनन ऐसे रहे हैं वा उचारको गही किन्तु देव-बधेपने जपाउक हीनेन ही अपना बहोभाष्य समस्त है । भूवरदान वन बन्म मस्तोमे नहीं हैं । बाचार्य समस्तमहकी भाँति उगपी भी एक कछोटी है बिसवर वर उतरनेवाका ही अपना वाराध्य हो सकटा है । देखिए,

‘धी अघरनु समस्त हस्त तक जेमविहार ।

जगजन को समार सिधु के वार उचरि ॥

आदि-अष्ट अविरोधि बचन समस्त मुकशानी ।

गुन अनन्त विहमाहि रोग की नाहि निचारी ॥

साधन मरैव ज्ञाना किन्ती बर्षमात्र के बुद्ध कर ।

वे किन्ह जाव जाले चरम जना जमो मुक्त देव मह ॥४२॥”

मूषर विश्वास

मूषरदासकी छोटी-बड़ी रचनाओंका संग्रह है। इसका एक प्रति बम्बपुरके टोल्मिआके मन्दिरमें सेप्टेन नं १३२ में निबद्ध है। उममें ११९ पद्य है। एक मूषर-विश्वासकी सूचना काशी मागरी प्रचारिणा पत्रिकाके हस्तलिखित हिन्दी प्रश्नोक्त शोधने वैचारिक विवरणमें अंकित है।^१ इस विवरणके सम्पादक डॉ. पीताम्बरदास बड़वाण से। यह प्रति ग्राम-मोहना डा०-इटीआ बि०-सकनरु के रहनघाटे काहा रिखबदास जीने पाठ संकलनका मिश्री थी। डॉ. बड़वाणन सम्पादकोय टिप्पणीमें लिखा है 'मूषरदासजीकी इन रचनाओंमें कुछ ठा स्वतन्त्र है और कुछ अनुवाद है। मायामें यद्यपि कविता अल्प अंशभाषाकी ओर झुका हुआ है फिर भी अनेकों कहीं-कहीं स्वतन्त्रतास खड़ीबोसीका भी प्रयोग किया है। बाह्य-सा प्रयोग सुझावोंका भी है।' 'मूषर-विश्वास जिनकाभी प्रचारक कार्यरतय कलकत्तामें प्रकाशित हो चुका है। इम ५९ पद्य है।

मूषरदासका विश्वास है कि यदि मन्त्राणरका पार करता जाइते हो तो भविष्यकी बहाज सजाओ 'मूषर जो मन्त्राणर तिरना मजिन बहाज सजी ॥ ये मन्त्राणके नाममें जमीन बस मानत है। मन्त्र किशान मजिन-मूषरसने मानी रचनाकी नहीं घोसा तो वह व्यय है।

'मजिन मूषरम सौं नहिं चाई, सो रमना क्रिय काम की ॥
अपि भाका जिनवर नाम की ॥३९॥

अन्तमें भगवान् अजितनाथसे प्रायना की कि हे भगवन् ! तुम कल्पवृक्षके समान हो मेरी मनोकामना पूरी करो। मुझे ह्यषी-बोडा नहीं चाहिए, मरे हृदय में तो आप तन्त्रक बमो कवनक मुझे मोटा न मिल जाये।

'तुम त्रिमुखन में कल्प वृक्षर पास मरो भगवान जी ॥
ना हम सौंगे हार्थी बोडा ना कछु सरति भान जी ।
मूषर के डर बसा जात गुरु, अथ कौं पक्ष निरधान जी ॥३९॥'

पद्मसमष्ट

मूषरदासका 'पद्मसंघ' बहुत पत्रक ही प्रकाशित हो चुका है। एक 'पद्मसमष्ट' बम्बपुरके पण्डित कृष्णकरजीके मन्दिरमें गुन्ना नं १२९ और सेप्टेन नं ३३३ में निबद्ध है। शैले तो भारतके विभिन्न जैन मन्त्रालयोंके विविध मुद्रणोंमें मूषरदासके पद्म

^१ काशी मागरी प्रचारिणा पत्रिका "शोधने कल्पना हस्तलिखित शिर्ष" प्रश्नोक्त शोधने वैचारिक विवरण १९९९ " प्रतिपि १।

विपरीत हुए हैं। प्रकाशिन परब्रह्म^१ म ८ पर और विपरीत आदि हैं। उनका विपरीत मित्य विनवाची और पुरुषो धर्मिण सम्बन्धित हैं। अनेक पर आध्यात्मिक भावों के चोकर भी हैं। नगरो जेतावनी हेते हुए लिखनके पीछे वैश्वोकी अपनी बरम्पट हैं। मुबारकासफी इस वैश्वोपर कबीरका प्रभाव स्वीकार नहीं किया था तथा।

यह बीच सत्कारके मुख और वैश्वोमें तराबोर होकर भववाग्वा भाव केना भी भूक बाटा है। दु सोमें ता तयो भववाग्वा घरवमें बाते हैं, किन्तु मुझमें जो भववाग्वाी अलि नर नहीं सच्चा भक्त है। बड़ी भक्त कवि सत्कारकी अगारताकी बलमता हुआ बीचकी भववाग्वाके मजबूती और प्रेरित कर रहा है,

“भगवन्त मज्ज नकों भूका रे ?

बाह संसार रज का मुपना तन घब बारि-बजूका रे ।

भगवन्त मज्ज नकों भूका रे ?

इम जोवन का जौन भरोमा वाचक में नक-लूका रे ।

काक कुझर निध मिर झड़ा कवा समझे नव बूका रे ॥

भगवन्त मज्ज नकों भूका रे ? ॥

स्वारय साजे पाँच पाँच लू परमारव की लूटा र ।

कहुँ केम मुख पव प्रार्थी काम कर भुर भूका र ॥

भगवन्त मज्ज नकों भूका रे ? ॥

माह रिझाव कल्पा मति मार निज कर कंध बसूका रे ।

मज्ज जो राजमगीवर भूवर हो भुर मति मिर भूका रे ॥

भगवन्त मज्ज नकों भूका रे ? ॥”

न जाने नव मीन का जाने इनलिए भववाग्वा अनेकके चरपोली तो कमी दिम्बरन करता नहीं चाहिए। उनके रघन-भाषके ही कुछ भाव बाते हैं और पुनः से तो बड़े-बड़े पाप भी गप्ट हो जाते हैं। भववाग्वाके चरपोलीक स्वचित हो ध्यान करनेसे मनोबामभार पूँछे हा जाती है। संकल सचरित हो जाती है और पाप टल जाने हैं। मज्जके मुकत ही बोज्जयी बूल भी लड़ जाती है। भक्त कवि भूवर कामका नवन है कि जवनक कक बचन आकर नहीं कह जाता तबक भववाग्वाकी भव के। जन्में अमिक प्रविष्ट हो जानेसे कृप औरना वागुर्न नहीं है

“जिबराज चरन मम मति विधरी ।

जो जाने किहि बार काल की बार अधवक जाति ही ॥

१ नर कलमपर 'मन्वायी अचारक वाच्यन कल्पता से मध्यतिन हुआ था।

हेलत दुख भक्ति जाहि हरी जिस पूजत पाठक-मुख गिर ।
 इस सभार-सार-सागर सौ और न कोई पार करै ॥
 इक कित प्यावत बाँधित पावत भावत मंगल विषय री ।
 भोहनि बूक परी माय बिर मिर नाचत ललक करै ॥
 लखनी मजब सँवार सपाषी बनकी कठ नहि कंड करै ।
 भगनि प्रबध मबी घर 'मूपर लोहव रूप न कज सरे ॥

परमार्थ अलखी

श्रीगोपे बखशिबी लिखनेही परम्परा बहुत पुरानी है । इसकीति सपत्न्य श्रीकृष्णाम रामकृष्ण और जिनबास जाहि समीने बखशिबी किनी है । मूबरदास-की इस बखशीमें केवल पाँच पद्य हैं । पं पन्नासाह बाकलीवाल-द्वारा सम्पादित 'जिनबासोसंघ' में इसका प्रकाशन हा हुआ है ।^१

मनको सीक बैठे हुए कवि कह्य रहा है कि जो मेरे मन ! तुझे इस संसारमें बोधे ही दिन तो बीकित रहना है इसलिये तू मगवान् जिनैत्रके चरणसे प्रेम कर । जिनैत्र भक्तिके बिना करोड बरसा तक बीकित रहना भी व्यर्थ है । जब तुझे नर पर्याप्त प्राप्त की है तो जानो मुझकी बात समझकर भयवान् 'जिन की बक्ति कर जब मन मेरे से सुन सुन सीक सवानी ।

जिनवर चरना से कर कर प्रीति सुशानी ॥

कर प्रीति मुझानी शिबसुख जानी बन बीवण है पच दिना ।

कोरि बरम बीषी किस केच जिन चरणामुत्र मकित बिना ॥

नर परब्रह्म पाव भति उत्तम गृह बसि पद काहा करे ।

समझ समझ बोसैं गुह जानी साल सवानी मन मरे ॥१॥

गुरु-स्तुति

मूबरदासने दो गुरु स्तुतियाँही रचना की थी और सोना ही जिनबासकी संघ में प्रकाशित हो चुकी हैं ।^२ श्रीगोपे देव दासक और मुवकी पूजा बहुत पुराने समयसे बनी जा रही है । मुझके बिना न ता मकितकी ही प्रथा मिलनी है और न ज्ञान ही प्राप्त होता है । इनीकिय एक ओर ता ज्ञानिगोपे मुझकी महिमा है तो दूसरी ओर मकत भी मुझके बिना नहीं चल पाता ।

यहाँ मूबरदासकी नय शृंगारजीकी काटना चाहत है किन्तु इनकी पुरा

१ इतिहासवादी समर किरणदास उवाच संस्करण पृ २४२-२५१ ।

२ इतिहासवादी समर किरणदास उवाच संस्करण सितम्बर १९२६ पृ १२-१३१ ।

किस्सात है कि मुझक अनुग्रहक बिना ब कट नहीं सकनी । मुझ एक उष राजकीकरी
 सीति है, जो भवकरी रोवही तो तुरन्त ही ठीक कर देता है । उषका मुझ केवक
 परीपरसे पाम्बित्य^१ बाका मुझ नहो है अपितु वह स्वयं भी इत उधारसे उछा
 है और दूतपको भी तारता है । वैदिय,

“बड़ी दिगम्बर गुह चरन जग तारन तरन जाम ।

वे भरम मारी रोग को हैं राजकीक अहाव ॥

जिनक अनुग्रह बिना कभी बहिं करै कम अंजार ।

ते साजु मेर डर बसाहु, मम हरहु पातक पीर ॥

वैज्य मुझ उषकी होता है । वे जेठकी उषकी होनहारिवाके जन्ते पकीकी
 उषु व मृदपर पावसकी मयावह उषोमें टप्-टप् करते बुधकि नीचे और पीठ-
 पाकमें तुपापकून नबी और सरोवरार्क उठपर ध्यान धारण कर बैठते हैं । नूबरसात
 ऐसे मुझको अपन मनमें स्थावित कर अपनकी औरवाणित मानते हैं^२

‘बड़ तपै रवि भ्रमो सुखी सरबस-भोर ।

सैक-सागर सुनि तब तर्ष हासै ममल सरोर ॥

ते गुह मेरे मन बसो ॥

पायम हन बराबकी बरमे अकबर चार ।

तकनक निजसे पाइसी बाजे अज्ञाचार ॥

ते गुह मेरे मन बसा ॥

सात बड़े कवि-मद गले हाई सब बज राव ।

ताक हरगिनि क लटे दाइ ध्याव अगाव ॥

ते गुह मेरे मन बसा ॥

बह बिधि बुद्धर तप तपै तीनों क्यक मझार ।

जागे महज सकुच में तनसी ममल बिचार ॥

ते गुह मेरे मन बसो ॥

नूबरसातका मुझ वह ही है जितमे इन्द्रियागे मधमें बिबा हो और मुझ
 तका वैज्यकी लान मार दी हो । जो पत्रके रंजइनोंकी कीकल धम्यकोर
 पीडना वा और मज उतके रिपके पहरमें बाका-जा सटीरवा उकोच कर भूमि
 बज लो केना है । बड़े वा अनुपिनी डेना समाकर हाथीपर चकना वा अर
 उकीनको डेन-देकर बनना है । ऐसे मुझकी चरन यहाँ पडते हैं वह रचन

१ बारी बरली गुह सुदि, ५ १४० ।

२ बारी, इतकी सुक्युनि १४ १२ ।

दीर्घकाल बन जाता है। उस बूकको मस्तकपर बढाते हुए भूधरदास अत्यधिक पीरवान्धित हैं^१

रंग-महक में पाहुते छोमक सेव विद्याधर ।
 ते पच्छिमनिधि भूमि में सोरें संचरि कप ॥
 ते गुह मरे मन बसो ॥
 गज बधि बछते गरब सों सेना सखि पतुरग ।
 निरखि निरखि वग बे धरें पाहें कल्या भग ॥
 ते गुह मरे मन बसो ॥
 बे गुह चरम जडां बरें जग में पीरव बेह ।
 यो रज मम मस्तक बडा 'भूधर मणि पेह ॥
 ते गुह मरे मन बसो ॥

बारह-भावना

यह बनेको बार प्रकाशित हो चुको है। अभी अभी आनपीठ पूजाभक्ति म यो हृदय प्रकाशन हुआ है।^२ इसमें धार्मिक जीवनको अनार्यताको धरसवाके साथ कहा गया है। हम संसारमें राजा और रंक सबको मरना है। मरते समय कोई रोक नहीं सकता बडीसे बडी ताकत भी नहीं। यह जीव संसारमें बन पक रहा हुआ है। चाहे समय पास बन वा या नहीं

"राजा राजा कन्नपति हासिल क असवार ।
 मरना सबको एक दिन अपनी अपनी बार ॥
 एक बक हई दुबला मात-पिता परिवार ।
 मरती बिरिबा जीव को कोई न राखन द्वार ॥
 धाम बिना निर्धन हुली गुण्यबध बनवान ।
 कई न गुण संसार में सब का देख्यो काल ॥
 आप जकेको जबतरे मरै जकेणे हीन ।
 पू कबहुँ हम आब को साथी मरग न कोप ॥

जिनम्ह-स्तुति

भूधरदासके द्वारा लिखित तीन जिनम्ह-स्तुतियोका प्रकाशन जिनवाणी सचह'म ही हुआ है। जिनमे-ठे मही जलत गुह एक'बाकी सरन स्तुति लिखित सदीय नके

१ बही दूसरी प्रकाशित, पृष्ठ १२१ ।

२ आनपीठ पूजाभक्ति भारतीय आनपीठ कार्या १९२७ ई. पृष्ठ २, ५ २१ २२१ ।

३ हरमिन्दशाही लमर ५ ११ २८ २२८ २ २३ ११ ।

साथ 'आनपीठ पूजावलि' में भी छपी है ।

संसारमें दुःख कर्मोंके ही कारण हम जीवनों विविध दुःख निश्चिंते हैं । हम एक बहुत बड़े दुःखममें समान हैं । उससे छुटकारा पानेके लिए दुःखिया मन्त्र पीनरपाक प्रभुमें प्रार्थना कर रहा है

बहो जलत शुद्ध एक मुक्ति भरण हमारी ।
 तुम प्रभु पीनरपाक में दुःखिया संसारी ॥
 हम सब-जनोंके माहि काक अनादि तमाया ।
 भ्रमोंके बहूमति माहि सुग महि दुःखबहु पाया ॥
 कर्म महामिदु और एक न क्षम करै जी ।
 मम माये दुःख देखि काहु सों न करै जी ॥”

पाप और पुण्यमें भिन्नकर परंपर बेहो हाल हो है और तनकरी नाउपुईमें बहुत अधिक दुःख दिया है । है जयवन्द ! मीने इनका कुछ नहीं बिबाद्य था ये तो अकारण ही बँटी बन गये हैं । अब मैं आपके सुवचनों सुनकर आपकी धरममें आया हूँ । है नीति-निपुण जयराज ! हमारा ग्वाभ कर दीजिए ।^१

“पाप दुःख भिन्न होय पापनि बेड़ी छारी ।
 तन कारामह माहि मोहि दिया दुःख आरो ॥
 इनको बक विचार में कतु माहि किया भी ।
 विन कर्म अयवन्द बहुविध हैर कियो भी ॥
 अब आओ तुम बास सुन विन मुझसे तिहारो ।
 नीति-निपुण अगाराप कोरै ग्वाभ हमारो ॥”

सुनरकी भविष्यमें स्वामि-शेषक भाव ही प्रभाव है । फिर भी इनका शेषक बुझानकी विनीती अयवन्द तन नहीं पहुँचा है । आप कहीवर भी पसे विविधाने नहीं देखेंगे । उसने सुना कि अयवन्द पक्षिपोरा उखार करनेवाके हैं और वह भी आपन बुझोका केवर तनके पास पहुँच गया

“बे अयवन्द परम शुद्ध नामी पणित उखारन अंतरजामी ।

दास हुआ तुम अति अगारी मुक्ति मनु ! अरदास हमारा ॥३३॥”

मम-अवमें आराम अयवन्द बने और समाधिभरअपूर्वक अन्त हो । ऐसा लोक-आदि तन होना रहे । वह मम कुछ अयवन्दकी यन्त्रिणे ही सम्भव है, और अयवन्द

१ आनपीठ पूजावलि अन्त ४, पृष्ठ २२२-२२३ ।

२ या पृष्ठ २२ ।

३ वही पृष्ठ २२३ ।

४ अरविन्दनाथी अयवन्द, पृष्ठ २३१ ।

की मन्त्रि भी भगवान्की कृपासे ही मिल सकती है । देखिए

‘भय भय अनुभव घातमकेरा; होहु समाधिमारण निग मेरा ।
जबकों जबम जगत में कापों काक कथिय बरु कहि सिब साधौ ॥
तबकों ये प्रापति मुस हूको मन्त्रि प्रताप मभारय पूर्णौ ।
मनु सब समरय हम यह कारैं भूबर अरज करत कर जारैं ॥’

पादवनाथ स्तुति

इसमें भगवान् पार्वनाथकी महिमाका बयन है । इसका प्रकाशन ‘त्रिगवाभी संग्रह’में हो चुका है ।^१ कविने लिखा है भगवान् पादवनाथना नाम सुवारसके समान शीतलता और शान्ति प्रधान करनेवाला है । उसकी पूरी महिमा नाबेमें एक भी समर्थ नहीं है फिर भी तो धरद्वारासायब ही कर्तृया । जब तो यह ही प्रार्थना है कि जबतक मैं मोक्ष प्राप्त करूँ तबतक प्रत्येक जन्ममें भाव स्वामी और मैं सेवक रहूँ,

‘पारस प्रभु को गार्हे सार सुधारस जगत में ।
मैं बाकी बकि गार्हे अजर अमर पद् मुक यह ॥ १ ॥
बो अगम महिमा सिंधु साहब एक पार ब पावहीं ।
तबि इसमभ तुम दास भूबर भगतिबध बसा गावहीं ॥
अब होव अर-अर स्वामि मेरे मैं सदा सेवक रहौ ।
कर जारि यह बरदान मागी मोक्षपद जावठ रहौ ॥ १ ॥’

पादवनाथ स्तोत्र

यह स्तोत्र भी कर्पूरुत ‘त्रिगवाभी संग्रह’में ही छप चुका है ।^२ इसमें कुल २२ पद हैं । बौद्ध-बीनार्थका प्रयोग किया गया है । स्तुतिको अपेक्षा यह स्तोत्र अधिक सरल और भीमन्त है ।

भगवान् पार्वनाथके पदका वर्णन जब पार शानके चारक मुनि भी नहीं कर पाते तो एक साधारण मन्त्रको क्या सामर्थ्य है जो उतरवा नीर्तन कर सके । किन्तु भगवान्को भक्तिसे प्रेरित होकर उससे जो मुक्त करते बतला है, वह करता ही है । इस भक्ति मन्त्रकी लक्षुताका यह चित्र जनीव सुझावना है

‘मनु इस जय अमारब ना औच । जासौं तुम यल वर्णव हाथ ॥
पार शान चारी मुनि जके । हम स र्मह कदा कर सकै ॥

१. पृ. १४ २११-२४ ।

२. पृ. १४ २१२-२० ।

३. पृ. १४ २११-२४ ।

बह उर आवत निरवचन हान । त्रिव महिमा वर्णन हम कीय ॥

पर तुम मन्त्र बडी बाबाक । तिस बख होय कई गुणमाक ॥

मिथ्या-मनवा गुन बना हुआ है । जगत् जन्म और मरणके फल बने है ।
बह बुद्ध कय फलको देखेबाका बस तिसा मणिबपो मुठारके और विहीने नहीं
कट लगना

“जन्म जरा मिथ्यामत भूक । जन्म मरण कागे तहैं फुक ॥

सो कबहैं बिन अक्षित कुग्र । कटे नहीं बुल फल बाजार ॥ १३ ॥”

पंडीमान स्तोत्र

बह वाविराय मुनिके ‘एकीबाध स्तोत्र’का भाषानुवाद है । किन्तु इतना लक्षण
अनुवाद है कि मूलका रस नहींपर भी निरुद्धक नहीं ही पाया है ।

अपब्रह्मी अक्षितकी गणामें का स्तान कर गेता है, बह फिर कभी अक्षित
नहीं हो पाता । बह पंचा स्वाहादपी बर्षतसे निकककर मोलकपी समुद्रमें
विछी है

“स्वाहात् गिरी उपमे मोक्ष सागर कौं धारै ।

तुम अरवागुह परस अक्षि गंगा सुखधारै ।

मीचिठ निर्मक बपो ग्वाण रवि च्युन तामी ।

अथ बह हो न मकीन कीव त्रिन संतपन धामि ॥ १५ ॥”

तत्पदिषा बनेके चारी गुह यनेषजी कहने हैं कि है बिन । तुम लोतिस्वल्प
हो और बुरिदकपी जन्मकार निवारण करनेबाके हो । अबतक तुम मेरे अक्षितकी
धरमें बसोगे । तत्पक बापदपी अक्षितारकी रहैना अक्षित ही नहीं निक लगता

“तुम त्रिन अक्षि स्वल्प बुरिठ अक्षितारि निगरी ।

सो गनेता गुह कई तत्प दिषा धन चारी ॥

मेरे अक्षितार भाहि बधी तत्रोमथ बाबज ।

बाप किमिर अक्षितार यहाँ सी कपों करि बाबत ॥ १६ ॥

पादपुराण

इस महावाक्यकी रचना वि. व. १७८९ आषाढ सुदी ५ को हुई थी ।

१ लोचनका फलदायक मिथ्याकी लभमें गुण है । इतने कुल २० कव है । मिथ्याकी
लभ, इ. २४९, २९ ।

२ अक्षित वगैर ही अक्षित और बवाली कीय ।

मुनि अषाढ तिथि पक्षमी अक्षित अक्षित कीय ॥

पादपुराण १२२, २०५, इ. २१ ।

इनका प्रकाशन बहुत पहले जिनबानी प्रचारक कार्यालय कलकत्ता से हुआ था । यह एक मौलिक कृति है, अर्थात् किसी संस्कृत रचनाका अनुबाद नहीं है । जैन-परम्परा में भरित ज्ञान विज्ञानके लिए कुछ ऐसी निरिचय बातें हैं जो प्रत्येक रचना में पायी जायेंगी और यह इसमें भी है । पूज्य महाकाव्य जैन मनीषी और प्राकृतिक धोत्राका अन्वेषण मरिचि सोलह स्वप्न और पञ्चकस्यायाका भक्ति प्रवाह प्रत्येक कृति में मिलेगा । लौकी-वत मित्रता ही नवीनता कहो या सफ़्टी है । भूतबोधकी दोनो प्रभावपूर्णमुक्त है और माया कामकाम्य प्रवाहकी से समन्वित ।

पार्वतपुराण एक महाकाव्य है । इसमें ९ अधिकार हैं । भद्रबान् पार्वतियाय की जन्मसे ही मही किन्तु पूज्य महाकाव्य केकर निर्वाण पर्यन्तको कहा है । प्रथम अधिकारमें अन्तिम सय तककी कथाओं एक सम्बन्धनिर्वाह है । अष्टाश्वत्थिकाएँ मुख्य कथानककी पुष्टि और अतिवृद्धि करती हो हैं । बाणक धर्मिय राजकुमार और तीर्थंकर हैं । ध्यातारकी प्रधानता है, वेसे अज्ञ रक्षाका भी सयावेस हुआ है । सभी अधिकारमें बोधा चौपाईका बहुत अधिक प्रयोग है कहीं-कहीं सीरस और छन्द भी जाये हैं । विविध प्राकृत बृषोका बचन है । प्रारम्भ और अन्तमें अन्वेषण बचन भा है । काव्यका नामकरण नावकके नामपर हुआ है । इन भीति महाकाव्यके सभी अक्षय इक्षम वर्तमान हैं ।

प्रारम्भ ही भद्रबान् पार्वतियायकी स्तुति की गयी है । कविका अट ५ दिखवाते हैं कि जैनकी बन्धना करनेसे अनादिकासे बने हुए कम पू जायेंगे

“बाण सिंह बस हींही विचम विपचर नहिं खंडे ।
 भूत प्रेत विद्राक व्याक धीरी मन खंडे ॥
 वाकिनि जाकिनि अगनि और नहिं मच उपजायें ।
 राग मोग सब जादि विपत नैर नहिं जायें ॥
 धा पार्वतदेव के पद कमक हिय धरत निज पद मन ।
 छुई अनादि बंधन बने औन कथा दिनसै दिवस ॥ १ ॥

महाकाव्य आनन्दने मुनिवर विपुल्यनीने पूजा कि प्रतिपा मानु उरवान को प्रवत अर्थात् जग । पूजक बने वा पूज्य फल क्या कर देव धर्मग ॥ गुम जन म

१. महाकाव्यके एक लक्ष्यके लिए आचार्य विरचनायका उचितपर्याय करार परिच्छेद, पृष्ठ १११-१४ देखिए ।

२. भारतपुराण, पृष्ठ १ ।

उत्पन्न निमित्त बुर करत रचि कर । यह मुक्त परम विटाइए, नरी बीगनी मूत्र त
 अर्थात् बमबान् विनेत्रकी अचेनन प्रतिमा पूजक बनको पुत्र फल जैसे प्रदान करती
 है ? मुनिग को उत्तर दिया यह इत प्रकर है

शैवे विष्णुमन्त्रि रतन मनवाजित दातार ।
 तथा अचेतन चिन्म यह बांजा पुत्र हार ॥
 उर्वा पावन मुन कश्चरत दासो बन को रच ।
 एवो अचत यह देत है पूजक को मुक्त लेव ॥
 मन्त्रि मन्त्राधिक जीवपी है प्रतच्छक अइ कर ।
 दिव रोगादिक को हरे एवो यह अचहर मूत्र ॥^१

उपरोक्त पार्ष्णीवाचपर शब्दोंके अन्वये बहुत बड़ा उपसर्ग दिया । वास्तवमें उक्त
 हंतै-हंतै लोक किया । उसीका एक बिन्न मर्ग उपस्थित किया गया है । यदि
 विष्णुमन्त्र उक्त वास्तवी कसौटी है तो यह वचन ही उक्त कल्पना ही निरर्थक
 माना जावेगा

किंककिर्कत वैराक कक ककक छवि सज्जहि ।
 मी करक विकरक वाक महमत्र विनि गज्जहि ॥
 मुंदनाक मक चरहि काव जीवमनि चरहि बन ।
 मुक्त बुक्तिग कुंकरहि करहि निर्द्वैत मुक्त इन इन ॥
 इहि विधि बनक बुद्धेच चरि कमर जीव उपसर्ग किय ।
 तिहुं लोक बन् विमचन्त्र मन्त्रि च्छुकि वाक विन्न द्वांस किय ॥

बमबान् पार्ष्णी प्रभुको कियकज्ञान उत्पन्न हुआ । इन देवप्रसंगके साथ
 बमबान्के लक्ष्यपरचर्चमें आया । बमबान्की पूजा की और तिर मुनापर श्रुति
 करत गया अतथा अन्तिम पद्य है,

“तिस्र कारण कल्पामिधि नाम प्रसु मनमुक्त जारे हम दास ।
 अकको निवृत्त हाव विरवात अगनिवात कुई बुक्त दास ॥
 लककी तुम अरनाम्बुज वात हम उर होहु बही अरदास ।
 और न कनु बांजा म्मावात यह द्वाक हीत्रे चरदास ॥

१ श्री पृष्ठ २२ ।

श्री, पृष्ठ २३ ।

२ श्री पृष्ठ २२ पृष्ठ २३ ।

४ श्री भाग्यो अविद्यार १ ७२ ।

अन्य रचनाएँ

गण भावना और पंचमेव पूजा से रचनाएँ हैं जिनका कि अभी पता चला है। वे शाना ट्रेकिन्गोके दिगम्बर शैल मन्दिरमें विद्यमान १८वीं 'पाठसंग्रह' में लिखे हैं।^१ इसी 'पाठसंग्रह'में 'वचनानि चक्रवर्तिकी वैराग्यभावना' नामकी रचना भी संकलित है। तीनों ही भूवरवासकी कृतियाँ हैं। इनमेंसे 'वैराग्यभावना' 'जिनवाणी संग्रह' में छान भी चुकी है।^२ 'वार्डन परीचर' भी भूवरवासकी कृति है। इसका पुस्तक प्रकाशन 'जिनवाणी संग्रह'में पृष्ठ ७ १ १५ तक हो चुका है।

८७ निहालचन्द्र (वि सं० १८वींका अन्तिम पद)

कविहर निहालचन्द्र पार्श्वचन्द्र मन्त्रके वाचक हरपचन्द्रके शिष्य थे। इनकी रचनाओंसे इनके पारिवारिक जीवनपर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। इनका अक्षय विरहित होता है कि इनके जीवनका अधिकांश समय बंगालमें कटा। उनकी मातृभाषा गुजराती थी अतः यह स्पष्ट है कि वे गुजरातमें ही कबो उत्पन्न हुए होंगे। इनकी पाँच रचनाओंमें से तीन गुजरातीमें और दो हिन्दीमें हैं। इनका समय संवत् १८ के आस-पास है। निहालचन्द्र एक उत्तम कोटिक कवि थे।

अमीनचकी खोबोमें उनकी केवल पाँच रचनाओंका पता चला है 'मन्त्र-दशोपस' 'शिवविचारभाषा' 'नवतत्त्वभाषा' 'बंगालकी गणक' और 'ब्रह्म-वाचनो'। इनमें अन्तिम दो हिन्दीमें लिखी गयी थीं।

प्रह्लादाचनी

कविहर निहालचन्द्रकी यह एक प्रसिद्ध रचना है। इसीके आधारपर उन्हें महाकवि कहा जा सकता है। इसकी रचना वि सं १८ १ वागिक सुदी ६ को

१ राजस्थानके शैल शास्त्रमण्डारोकी प्रत्यक्षता मान ३ इह ३११।

२ इतिहासकी प्रथम इह ३११ १२।

३ पदचन्द्र पञ्च स्वकृत वाचक हरपचन्द्र

कीरमें प्रसिद्ध जाती सामु मन भावनी।

आके चरनारविन्द पुरमत्त निहालचन्द्र

कोन्ही जिन मतिसे पुनोत्त ब्रह्मवाचनी ॥

मन्त्रवाचनी, ३१५ पृष्ठी अन्तिम पृष्ठी, राजस्थानमें दिल्लीके इन्सिपिडिण्ड मन्त्रोकी आगे भाग ४ करवपुर ११३४ इह ८८।

सुखदाबाधमें हुई थी। इसकी एक प्रति बीजानेरेके अमर जैन प्रयागमें मौजूद है। इसमें ५२ पद्य हैं। उपर उपरुण रचना-काव्य रिया हुआ है। दूसरी प्रति 'जैन सिद्धान्तप्रणाल्य आराधके हस्तलिखित ग्रन्थोंमें मौजूद है। यह प्रति भी मुद्रण एवं पुनः है।^१ एक प्रति यह है जिसका उल्लेख श्री बोधनकाठ कुम्भोजालकी हैमामिने किया है। इस प्रतिमें भी ५२ पद्य हैं। प्रति पूर्ण एवं मुद्रण है।^२

इसमें जैन-परम्पराके अनुसार भगवान् विद्वान् जो गिराकार और बहुरूप हैं की उपासना की गयी है। गिराकार आत्माका वपन होनेके कारण उनमें अस्मरण और रागपाद गूढ अविकृत है। निर्मुक्त-वृद्धकी मूर्तिमें लज्ज कविवाणी रचनाएँ जैसे मधुरता-निष्ठ हैं जैसे ही इसमें भी आदर्शक संको जाधोजी पूजा गया है। जोहार रूप भगवान् गिराकी मूर्तिमें कहा गया एक पद्य देखिए,

'आदि शौचर घाप परमपर परम शोचि

जगम अघोर अकल कर गायी है।

इत्येता में एक है अनेक भेद जाती में

जाओ असाधस मत बहुरूप में कानी है।

विशुभ विच्छन्न मेष तीनों छोड़ तीन देव

जट सिद्धि बची निशि हावक कहायी है।

अकार के रूप में स्वकव मुचकोक हुंकी

ऐसी जोहार हर्षकन्द मुनि ध्याओ है ॥^३

जोहार मन्त्री प्रदत्ता करते हुए कविने लिखा है कि इसके बराबर पुनः कल्प नहीं है। यह सिद्धांतो निद्रि, लल्लोनी श्रुति मधुरजोनी मद्रिमा शोचिकोको मोच देव और मुनिवाणी मुनि तथा भोचिवाओ मुक्ति देना है। यह चिन्त्यामि

१ संस्कृत अक्षरे से अविकृत एक जाती नात

पद्य कविपारे निधि द्वितीया गृह्यवती।

पुर में प्रतिष्ठ मन्त्रमुद्राचार र्वप देत

बहुई जैन धर्म दया पवित्र को पावनी ॥

मन्त्रवाणी, ३१में कलकी प्रारम्भिक वृत्तियाँ।

राजवाक्यमें दिग्दर्शि हस्तलिखित ग्रन्थोंमें जैन अनुब ध्यान, पृष्ठ ८८-८९।

२ जेवा अमिलमन्त्र ग्रन्थमें लिख हैम सिद्धान्तप्रणाल्य आराधके मुद्र हस्तलिखित हिन्दी-ग्रन्थ, श्रीवाणी कल्या।

३ जैन धर्मरत्नविन्दो तीसो भाग अक्षर १ पृष्ठ ५, ६।

४ वरी पृष्ठ ५५

ब्रह्मवृत्त और कामधेनुके समाग हैं । विपुल ज्ञानकी वृष्टि भी इसीसे मिलती है ।
 'मिथुन की मिथि चन्द्रि देहि सजल की महिमा महन्तन की देत दिव माहीं दे
 यागी का ज्योति है सुकति देव सुनिवह, मोगी कू सुगति गति मति उन पोही है ।
 चिन्तामग रतन कल्पवृक्ष कामधेनु सुखक समाज सब पाकी परछाही है
 कई मुनि हर्षचन्द निर्वहण लाव दहि क कार मय सम और मन्त्र गार्ही है ॥

कवि निह्नाक्षय्य सादृश्य-विधानमें निपुण थे । उन्होंने अपनी अपनी रचनासे हुए सादृश्यकी रचना की है । कविने जिन्ना है कि मेरा यह काव्य वाक्यकोशाकी भाँति है उनमें एकत्रियोंका होना स्वभाविक है । मन्त्रज अपनी सृष्टि और उपाधिसे उनको सुधार लें । मेरे हम काव्यका व पवनके स्वभावसे स्वान स्वानपर प्रमिथ कर हैं पवनके स्वभावसे एरचित होकर मुनें प्रमरके स्वभावसे बर्बरी सुपन्नि प्रम्य करें और ह्वन स्वभावसे गुनाको चुन लें

'हम से ब्याक हाँके सज्जन बिनाक चित
 मेरी एक बावली प्रमात करि सीजिबी ।
 मेरी मति हीन चारै कीन्ही बाक क्वाक हू
 अपनी सुबुद्धि से सुचार तुम जात्रिबी ॥
 पल के स्वभाव है प्रसिद्ध कीन्ही और और
 ब्रह्म स्वभाव एक चित में सुजीजिबी ।
 एक के स्वभाव लें सुगन्ध कीजिया घरन की
 हम क स्वभाव होक गुन को महीजिपी ॥''

पगाल ब्रह्मकी मन्त्र

इसपर रचना-काल नहीं दिया है किन्तु इसका बलमसे ऐसा प्रतीत होता है कि इसका निर्माण वि सं १७८२-९५ के बीचम कमी हुआ ।^१ इसमें मुख्य तथा बंबाकके मुसिदाबादका बलम दिया गया है । उस समय बड़ी तथाव मुन्ना-माह राज्य कर रहा था । बंबाकके इतिहासमें स्पष्ट है कि गुनासाहने ई स १७२६ से १७३९ तक मुसिदाबादकी तथाबी की । हमी आचार्यपर उपपुन्य संस्कृत कल्पना की गयी है ।

मुनि कान्तिधामरबीने यह मन्त्र 'भारतीय विद्या में प्रकाशित करवा दी है । मुनि जिनविजयबीने ब्रह्मण ऐतिहासिक सार भी दिया है ।

१ बौद्ध विद्यालय मन्त्र आचार्यकी प्रति ।
 बलम शैल मन्त्रालय बीकानेरवाली प्रति ।
 २ राजस्थानमें रिन्दीके इतिहासिक मन्त्रीकी छोट, भाग २, अक्षर १८, १६५७ ई
 १८११ ।
 ४ भारतीय विद्या ५५ १ अंक ४ अक्ष ४१६ २६ ।

८८ प० शौलतरामजी (वि सं १७७७-१८१९)

१ शौलतरामजीका जन्म जयपुर स्टेटके बसवा नामक गाँवमें हुआ था । आज भी यह जयपुरका एक कसबा है । यह दिल्लीसे बहुमहाबाद जानेवाली रोड़ी की ऐन्ड सी आई मार्ग का एक स्टेशन भी है ।

शौलतरामजीके पिताका नाम बालनराम था । उन्होंने अपनी प्रत्येक रचनाके आरम्भमें 'बालनराम सुठ शौलतरामेन' लिखा है । उनका वाणिज्य व्यवसाय और योग वाससीवाक था । वे जयपुरमें जाकर रहने लगे थे ।

बसवामें शौलतरामजीके चरक सामने ही बिस्ताक जैन मन्दिर था । वहाँ जिन पूजन कारनस्वाध्याय तथा तत्त्वचर्चा होती ही रहती थी । बालनरामें शौलतरामजीका मुकाबल जैनधर्मकी ओर नहीं था । इसी मध्य कालका ज्ञाना भावना हुआ । यहाँ बनारसीवासियों अथवा जैन-परम्पराके अनेक विद्वानोंका आश्रय था । जिनमें १ मूबर वाससीकी सर्वाधिक क्वालि थी । शौलतरामजीने उन्हें मूबरमठके नामसे पुकारा है । उनके अतिरिक्त हेमराज सवागन्ध अमरपाल बिहारीवास फोहवाक कर्तृमूक और जयपुरवासके नाम भी विशेषकरसे परलोकनीय हैं । इन्हींमें-से जयपुरवासियोंके उपदेशक शौलतरामको जैनधर्मपर शिक्षा हुआ और ज्ञाने चक्रकर वह विस्थापन अगाध अज्ञानका जन्म परिणत हो गया । शौलतरामने अपने गुरु जयपुरवासका जन्मक स्थानोत्तर स्मरण किया है ।

२ शौलतरामजीका व्यक्तित्व असाधारण था । वे एक और तत्काशील जयपुर और जयपुरकी राजनीतिकी नृपचार वे और दूसरी ओर साहित्य-साधक भी । उनकी रचनाओंसे उनकी विद्वत्ता भी स्पष्ट है । संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं-पर उनका समान अधिकार था । उन्होंने जैन नृपचारों और आध्यात्मिक ग्रन्थोंका सफल हिन्दी अनुवाद किया है । उनका मध्य हिन्दीकी अमूर्त विधि है । अथवा 'नारदवाणी' नामके ग्रन्थमें उनकी पौलिक नाम-प्रतिभाके वर्णन होते हैं ।

३ शौलतरामजी जयपुरके महाराज सवाई अजितसिंहके पुत्र अजितसिंहके मन्त्री थे । माधवसिंह जयपुरमें रहते थे अतः १ शौलतराम भी वि सं १८८९ से सं १८८८ तक जयपुरमें रहे । माधवसिंहके जयपुरवासी होनेपर वे जयपुरमें जाकर रहने लगे । उनकी कम्पा समय जयपुरमें बीता । जैनधर्मग्रन्थ होते हुए

१ पुस्तकालय टीकाको अतिरिक्त प्रस्तुति ।

२ बसुवा का वासी यह अनुचर जैन का वाणि ।

मनी जयपुर हो रही वाणि मनुचर वाणि ॥

पुस्तकालयवाचोत्तरी अतिरिक्त प्रस्तुति ।

भी पण्डितबोका हूय उदार और बहाल वा। उनका जो समय राज्यकार्यसे बचता वा उनका उपयोग व पूजन ध्यान अध्ययन और ध्यान-निर्माणमें करते थे। उनका रहन-सहन सादा और पवित्र था।

रचनाएँ

पं श्रीरामरामन सबप्रथम 'पुष्पाक्षर कवाकोश' की भाषा-टीका वि सं १७७७ में की। ठगुपरायन उन्हीन 'बसुन्धरीभाषकाचार को टप्पा टोकाका निर्माण वि सं १८८में किया। उनके द्वारा 'पद्मपुराण को भाषा-टीका वि सं १८२३ आदि पुस्तक'को १८२४ 'पुरवाचनिसुपुराण'की १८२७ और 'हरिबंशपुराण'को १८२९ में की। श्रीयोगीश्वरके 'परमात्मप्रकाश'की टीकाके विषयमें डॉ ए एन श्याम्भेने लिखा है इस बातका कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि इस हिन्दी अनुबादके ही कारण बोलचाल और उनके 'परमात्मप्रकाश को इतनी ख्याति मिली है। उन्होंने 'हरिबंशपुराण'के साथ ही 'श्रीपादचरित का भी हिन्दी अनुबाद किया था। इन टीकामोंमें मौलिकता मूल ही न हो ऐसी सरसता है जिसके कारण आज भी लोग उन्हें बचिपूर्वक पढ़ते हैं। जनक शैव मन्त्र-कारिगोने केवल 'पद्मपुराण' पढ़नेके लिए ही हिन्दी सीखी और बाबा भागीरथ-जीके अनेक अनेक 'पद्मपुराण'की हिन्दी टीका पढ़कर शैव-मन्त्रज्ञानी हो गये।

'परमात्मप्रकाश को टीकास पं श्रीरामरामकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति स्पष्ट ही है। उन्होंने अन्त्यात्मबोधवृद्धा नामके एक मौलिक ग्रन्थका भी सृजन किया था। उन्होंने उसका दूसरा नाम 'मन्त्रधरमाहिका नामो स्तवन भी लिखा है। यह पण्डितजीकी समस्त काव्यरचनाका प्रतीक है। इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतिमाँ विविध घास मण्डारोंमें मौजूद हैं। बदा मन्दिर जयपुर वि शैव मन्दिर बड़ीत और बदा मन्दिर दिल्लीकी प्रतिमाँ मैंने देखी हैं। समीप इसका रचनाकाल वि सं १७९८ विवा हुआ है।

इस कृतिमें शिरोश ५२ अक्षरोंसे प्रत्येकको छिद्र काव्य-रचना की गयी है। इसमें आठ परिच्छेद हैं। पं श्रीरामरामन सबसे पहले मन्वाश्रयन्ता मास्मिनी अग्ररा उपेन्द्रवत्या और माधुसूदिकीद्विज-जीके सहकृतके छत्राका हिन्दीमें प्रयोग किया। इन रचनामें पीठा और भौलीराम-जीके लक्ष्मी छन्द भी हैं। इनके अति रिक्त जगहाने बुद्धा जीपई लक्ष्मी कविस छन्दय बरवी बुद्धकिया अद्विक्त मोटक बहमी मुबंनप्रयात नाराय चिन्मयी और सीरट्यम भी कविता की।

१ परमात्मप्रकाशकी धनुरेकी प्रतापनाका हिन्दी अनुबाद।

इसका विषय मन्त्र और जप्यात्म बोलाहा से सम्बन्धित है। इसमें लयमय ५ पद हैं।

‘जप्यात्म बाह्यकबी से भक्तिरस अपनी करम सोमारर पहुँच गया है। ऐसी भाव-विभोच्छा ऐसी तन्वीगत्य बहुत कम रचनाओंमें देखी जाती है। वं दीर्घ-रामने उम राव की कल्पना की है, जो सबसे रम रहा है। ऐसा कोई स्थान नहीं कहाँ वह राम न हो

बंदी कबक राम की रमि तु रह्यो सब माहि ।

ऐसी हीर न क्विचि जहाँ देख वह माहि ॥१॥

आत्मा और जिनके करम कोई अन्तर नहीं है। अग कविने ‘आत्मदेव की सेवा करनेकी बात लिखी है।

‘तुझे आत्मदेव की करि हू आत्म सेव ।

जेवात्म जगदेव आ देव देव जिनदेव ॥२॥

घरार अथवा कविद्वारे अपने देवम ही अन्य देवाने की अथवा विषय है। मुरखे कृष्णम रामकी और तुलसीने राममें कृष्णका देखा है। नव कविद्वारे जिनके अथवा विष्णु और मधुमे तीनों ही विधा विषय है। अन्य मारात्म इन विचारोंकी तर लय वैशिष्ट्य,

‘तुही जिनके अथवा मुरखकी प्रजापती

तुही हिरण्यगर्भ की अर्धम का अर्धपती

महा स्व अस्ति पूरक्य तुही जिनो रमापता

रमा तु नाम माम माहि अस्ति रूप है अन्ता ॥५॥

नराधिप मुग्धविप और अन्धाधिप लेख मन्त्र करते हैं। अन्धविपके कर्म दूर भाग आते हैं। हे ईश्वर ! न तु बाक है न बुधा है और न मुठ ही है। तु अनेक भी है और एक भी है। तु ज्ञान रूप है और ऐश्वर्यका विधान है। इत भाँति कवि करते हुए कविने लिखा है,

अन्धाधिप मुग्धविप अन्धाधिपे तुष्ट मर्षे

अन्धाधिपके के तु कर्म ज्ञान तं परो मर्षे ।

तुही तु माहि बाक है न बुद्ध है बुधा न है

अनेक नृक ज्ञान रूप ईश्वर तु निधान है ॥५८॥

‘५८ की अनेक कविद्वारे स्तुति की है। इस रचनामें भी अन्ध कविने अन्धी अन्धात्म कथन किया है

ॐ सम को मंत्र तु नाही पच परम पद पाके मोही ।
 ॐ मन्त्र तु मगपत क्या ॐ मुक्ति समृति की मूपा ॥
 ॐअर हृदय निरंजन ॐअर मकल मुदि रजन ।
 ॐअर विघान घनूपम ॐअर प्रघान जगूपम ॥

जिनेन्द्रका वास आवागमनके चक्करसे बच जाता है । एसे जगन्त वास सब समुद्रसे बार हो जाते हैं,

इस सब धरि बह तो मैं भिक्तिह,
 तेरो दाम न जग में खिड़ी ।
 तेरे दाम धर्मत तु उचरे
 योकी पाव बहून जन उचरे ॥

नाबु 'निरयोधो' हाकर अर्चान् नवार त्वाय कर जिनेन्द्रका ही अर्जन करत है । जिनेन्द्र अनुमुक्ति कप है । उनका स्वभाव मग्न हाता है और प्रभाव अमित । अमित इन अमित-भावनाय । मोटक छत्रमें अमित्यक्त किया है

“जे मातु अनग्ना बसहिं तु कग्ना मत जिन चग्ना दिह तु धरे ।
 ते अपहिं तु तो ही है निरमाही छीहि सचाही ध्यान करे ॥
 ए है अनुमूर्ती रूप विमूर्ती नाहिं प्रमूर्ती कवापि धर ।
 अतिरिक्त विभावा शुद्ध स्वभावो अमित प्रभावो काक हर ॥

मगवान्की अक्ति करनेसे अनेक मुग्ग उत्पन्न होने हैं । यह मुग्ग बननी और निवृत्तनी दोनों ही हैं । मुग्गमाता अविन ही मुरमाता भी है

‘मुरहरो अविन तु नाच की उपभावे गुन धाक ।
 ताते गुन जननी है ही शिख अजना विनु छाक ॥
 गुनमाता मुरमात है तरी अविन द्वाक
 भीर न मुरमाता प्रमू हृद मार्य मुरमाक ॥

उक्त कविदोशो अणि ए शीकनरामन तिन्ना है कि केवल मूढ मुँहासेके मुग्ग नहीं होता है आनन्ददायको तथा करनेसे आन उत्पन्न होता है । आनन्ददायकी तथा अवन अववान्की हुगने ही प्राप्त हो सकती है

“मूढ मुँहास कहा उच नहिं पाव को ही ।
 मूढनि को उपरेम मुने मुनिन तु अहिं नाकी ॥
 अकमूहादि मत्था तु देह कबहू नहिं मुखा ।
 मुखा आनन्ददाय शान की मूढ प्रमुखा ॥

ऐसा वा बिन्दु को कहे की हवे बिज शाव की ।

सुनि सु भीमनी तारि हरि मूर्ति रहे मति कामकी ॥”

४ शीतलपत्र उरुवासा बाटिके कर्ता ५ शीतलपत्रमे पुष्क वे ।

८९ भवानीवास (वि सं १७९१)

बनारसमें रामघाटपर एक शैव मन्दिर है जिसके घाट-अण्डारमें बनेका हस्तलिखित प्रतिपोंका संक्षेप है । एक प्रतिम भवानीबासकी अठारह रत्नतारें लिखि-
बय है । सभी हिन्दूमें है । इनपर रामम्हानी लक्ष्मी मुजरातीकी कोई छत्र नहीं
है । इनका आचारपर यह प्रमाण है कि इनका जन्म हिन्दी भाषा-भाषिकोंके मन्त्र
ही हुआ था । ‘कुटुम्ब पत्रक के तीन पत्रोंमें भाषाके तीन श्लोकाम्बर मन्दिर
की इनमें प्रतिष्ठित मुख्य मूर्तियोंका समय आदि दिया है । पहले पत्रके अनुसार
आपके विष्णुमूर्तियोंके मन्दिरकी स्थापना सं १६४ माघ बरी ५ की हुई ।
दुसरे पत्रके अनुसार भीमघाटर हवाका मन्दिरमें जन्मानवतीकी प्रतिमा सं १६९८
की माघ बरी ७ की गई थी। रामम्हने बनघाटो जिनके परपर लगान्द बहालीर
आया था । तीसरे पत्रके अनुसार भगवान् शीतलमावकी प्रतिमा सं १८१८ के
माघ सुबी १४ की प्रतिष्ठित हुई । इन मूर्तियोंके आनेके बाद शीतलमावका
भी जन्मानपुष्क करके किया है । अद्यपि जन्माने विष्णुके वासुदेवकी मन्दिर
की स्थापनाकी भी बात नहीं है किन्तु मुख्यता आपके मन्दिरोंकी ही है । इन
आचारमें यह अनुमान लक्ष्मीका आगम है कि वे आपके रहनेके वे और इनका
जन्म श्लोकाम्बर बाटिके हुआ था । ऐसा प्रतीत होता है कि इनके मुख्य नाम
‘मुष्क मावानी’ था जो एक प्रतिष्ठित श्लोकाम्बर नाम है । भवानीबासमें सं १८३
म वर्षप्रथम इनका पेट की । जन्माने मुष्कके सं १८९ पीय बरी ८ मुष्कनि
आरकी रातकी स्वप्नवासी होनेकी सूचना भी अपनी कृति ‘बोध विचार भाषा’ में
लिखी है जो वर्ष १८१ नाटिक सुबी १ की रचना है । यदि भवानीबास
का रचना-काल सं १७९१ से सं १८२८ तक माना जाता जाय, तो
ऐसा ही जन्मी कृतिमें स्पष्ट है ।

अन्तरी मन्त्रिणां रचनाएँ यद्यपि जिनको मन्त्रिते सम्बन्धित है । वे
४ इनके जन्मो मुष्क कृतिमें तारिकक वर्षा मी की है किन्तु प्रमाणता मन्त्र
की है । अन्तरेय बाटिके भाषा और जन्म हिन्दीभाषा-शैवी रचनाओंसे यह प्रकट है

कि उनपर बनारसीकी अध्यात्म परम्परा का भी प्रभाव था। आरमाको लेकर बारहमासोंका वर्जन करना अद्भुतके प्रति अनुभूति-परक भावोंको प्रकट करना है। मर्यादीदासकी रचनाएँ इस प्रकार हैं श्रीबीस जिनबोड पद्य - सं १७९७ अध्यात्म बारहमास - १२ पद्य - १७८१ ज्ञाननिर्मय बावनी १२ पद्य - सं १७९१ कल्कावलीछो - ३८ पद्य - सं १७९९ श्रीबीसके कवित्त - २६ पद्य 'हितोपदेश बावनी - ५२ बोझा - सं १७९२ पम्पवना अस्याबहुत ९८ बोम भाषा - ५२ पद्य - सं १७९१ मुमति कुमति बारहमास - १२ पद्य ज्ञानछन्द बाबीसी - ४ पद्य - सं १८१० सरधा छत्तीसी - ३७ पद्य नैमिनाथ बारहमास - १२ पद्य चैतन हिनडोकना गीत - ८ पद्य 'नमिहिनडो कना - ८ पद्य राजमति हिनडोकना - ८ पद्य 'नैमिनाथ राजीमती गीत - ८ पद्य 'चैतन मुनि मन्नाय - १२ पद्य कुण्डर राजक - ९८ पद्य 'बीबविचार भाषा - १५१ पद्य।

मर्यादीदासके कतिपय पर अतिथय सेन मशरुवाजीके एक अक्षरके गुरुकर्म निबद्ध हैं। नैमीश्वरकी भक्तिमें समर्पित एक पर रेखिए

“रख अद् आहुमद्म आवत है
 चको सली मिर्छा देख्य कू ॥
 मोर मुकुट केसरिवा जामा
 कर में खंगाय राखित है ॥
 चीन छत्र माये पर मोई
 अबसठ अमर डुरावत है ॥
 इन्द्र अम्ब धारी सबा करण है
 नारद भीन अजावत है ॥
 दास मर्यादी शीठ कर आद्
 चरणों में साग नवावत है ॥”

१० अजयराज पाटणो (वि सं १७९२-१ ४)

अजयराज आनैरके रहनेवाले थे। इनकी जानि एण्डेणवाक और गोंग पाटणो था। कतिपय अपनाकेलि एण्ट है कि वे अण्डारखी राजाकोके अश्विन गारमैहणु थे। यद्योचर कोई - सं १७९२ बारहमास छालेहा - सं १७ ३ और आदिगुण - सं १७ ७ में रवे मये थे। इनके छत्रवा रचना-सम्पु एण्ट है।

को बुझ है । इसमें सब प्रकारके व्यवसाय और जीविके नाम मिलाने बड़े हैं । मोक्षमार्गका बत-विहार आदिना भी बतना है । अथवा जिनके बत बर्षाने भी धीमे हैं । सब कुछ भगवान् 'जिन ही भक्तिसे ही सम्बन्धित है । यह रतीरै आचार्य नहीं है । आचार्यको सम्बुद्ध करनेके लिए बगामी जानेके कारण हममें कुछ अलौकिक स्वर आ गया है । आरम्भ मध्य और अन्त देखिए

'यह जिन को कर्म कर्तुं रतीरै । तार्क्य सुख्य बहुव सुख होई ॥
 तुम कसा मठ मेरे अमता । लेको बहुविधि घर के अफवा ॥
 इय अनेक बहोत खिजायै । माला देनि बहुन सुख पायै ॥ १ ॥'

मध्य

किमक क्या किमा अति भका । इच्छा निरख दे वृत्त में तका ॥
 मेस्ती रोटी अतिक बकाई । आरोगी विमुक्त बति राई ॥

अन्तिम

'अक्षितक इह किषो कलाप । मूक बूक मति ईमी सुजाप ॥
 संकर साधसै मेगारे । अठ मास पूजा इरै ॥

ककका-बत्तीसी

यह कृति श्री मन्त्रिके पुस्तका में ५८ और वैदिक में १ २१ में निरख है । यह पुस्तका में १२१ पर जो अंकित है । इसको रचना वि सं० १७१७ बैशाख सुदी १३ विम सोमवारको हुई थी । इसमें ४ पद्य हैं । कविने लिखा है,

'यहाँ निरख बजोक है निरख विरख अठ माहीं ।
 क्यों अक बोधि कर्मोदनी त्यों केवल अड पाहीं ॥ २७ ॥
 ससा सो अण पाइयो सो कर्तुं बड़ी काय ।
 अति अवेपर अति गक, विम मसाइ इरै पाव ॥ ३१ ॥

पुस्तका में ५८में अथवायकी किसी हुई एक वृत्तपि ककका बत्तीसी और है । इसमें केवल ३४ पद्य हैं । अथ अथारम-बत्तीसी कहना ही अपमुक्त है । कविने अत्येक बीकनी आत्माको परमात्मा कहा है और अतीने प्रेम करनेकी बात लिखी है

'अथ अथुव अगत में विर
 तुम सम अवर न कोइ रै अक ॥

१ अथारतीबातीने टिठि बीकन बैसल ।
 सोमवार तेरठि बड़ी अवर अथाली पाव ॥
 पुस्तका में ३ १०वीं पद्य ।

सुखपयोग सुभाव करि कर्षी
 आनन्द कहुँ होइ रै काक ॥ १३ ॥
 बड़ा हुई मझ को जिय
 ता भिति करनी बाहि रै काक ।
 ता भिति चहुँगति हड़ोषी जिय
 पोषो कक भतादि रै काक ॥ १५ ॥
 द्वा भिन्न हरसज विना जिय
 का तप सभै बिरज र काक ।
 कय विन तुम ज्यो कक तें जिय
 भाई कहु न हयि रै काक ॥ १९ ॥
 मना विपद सभेह करि रै
 बिक्र प्रीतम बिक्र भाहि रै काक ।
 सदा रंगीको रस भरवी
 ताकी देखत मय हरपादि रै काक ॥ २१ ॥”

बिनती

अजयराजकी 'भी जिन रिखन महल नाई' स्तुति उपर्युक्त मन्दिरके मुठका नं १२१ में बायी बायी हो भीमुवन के राय' मन्दिर ठोकेयात अजयपुरके मुठ नं १३१ (के वि सं १७७९) में और 'मिजरी कनी तुम चरम सो बनीचन्दकीके मन्दिर अजयपुरके मुठका नं ५१ वू ६२ पर अंकित है। अन्तिम स्तुति अत्यधिक सरस है। कुछ पंक्तियाँ देखिए,

'घारख बिरद सुधो सभै सुनि जिय कामाव पाव ॥
 मिजरी कगि तुम चरण सीं सी कपडु नहिं जाव ॥
 तुम मूरति प्रभु देखता बिन पद सहज कमाव ॥
 चरण कमक हुति है इसी कोटि सुरज किय जाव ॥
 सुप करतां बुच लोपतां तुम त्रिमुवन पति राह ॥
 तुम सबा बिन सुजी प्रभु हुह करम नहिं जाह ॥
 मधि बिन बहौठ समोधिक मधि कक पार उठार ॥
 धरैराखि बिनती करि आवागमन बिचारि ॥

पद

अजयराजके पद भारतके सभी शासन मण्डारोके पदसंग्रहोमें पाये जाते हैं। अजयपुरके मन्दिरोंका ही धारण ही कीई शासन-मण्डार ही जिसमें अजयराजके पद न

परम्परागत विवाह माना जाता है। इसीको भीन लोग जोष करी दुःखदाका मोक्ष करी रमणीके साथ विवाह हुाना स्वीकार करते हैं। जब ऐसा होता है तो देव मिथकर आत्म्य मनाते हैं

‘देव सबै मिथि आह्वाना,
हरप ह्यप अधिकाप ।
रुप द्रवत मन मोहोपा ओ
कोचन सहस कराय ॥३३॥

शिवरमणीने आत्मका मन मोह लिया है। उनके आत्मका पारानार नहीं है। अत्रपरात्र ह्यप जोड़कर ऐसे आत्मनूके मुन बाते हैं

दिव रमणी मन मोहोपा ओ
कडे रहे ओ हुमाप
शाम सरोवर में छकि गय ओ
आवागवप्य निवारि ॥१५॥
आठ गुण्यं संकिन हुवा ओ
मुन को तहाँ नहीं कर
प्रसु गुण गापी तुम तर्णों ओ
अत्रैरात्रि करि जोड़ि ॥१६॥

जिन-गीत

अपमुक्त मुटनेमें ही जिन-गीत भी संकथित है। इसमें १ पद्य है। कविने एक पद्यम लिखा है कि हे भगवन् ! आपके ‘तारम विरद’को सुनकर ही मैं आपकी घरनमें आया हूँ। आपके बचनसे मुझे पुत्र मिला। एक दूसरे पद्यमें कविने शिवरमणीन कण्ठ जिनैकठे भव नमुद्रसे जय पार उठार देनेकी प्रार्थना की है,

‘याको तारम विरद सुम्बो तुम सरणीं आरूपो ओ ।
बाक्य दरभल बेचित में प्रसु पुंनि अपाईको का ॥
ऽ मुनी शिवरमणी ओ कंठ परमउद् ध्याईवा ओ ।
पार्ले अब मुहिं पार अठारि दवा चिर काईको ओ ॥ ॥

जिनसीकी रसाई

इसकी रचना वि स १७१३ में हुई थी। यह बनीपन्थकीके मन्दिरमें विद्यामान मुटवा न ५ बैङ्क न १ १४में लिखत है। इसी मुटनेमें यह दो स्थावोपर अंकित है। एकमें १६ पद्य हैं जो अपूर्ण हैं और दूसरम ५३ पद्य हैं

को पुत्र है। इनमें सब प्रकारके व्यग्रता और भावनाएँ नाम बताये गये हैं। भोजनीयताएँ बल-विहार आदिवा भी वर्णन हैं। भयवान् त्रिदशदे बाल बचनमें भी उल्लेख है। सब कुछ भयवान् विद की शक्ति ही सम्बन्धित है। वह रत्नीरि साधारण नहीं है। आरम्भका सम्बुद्ध करनक विर बनीमी जानेके कारण इनमें कुछ आभौकिक स्वरूप आ गया है। आरम्भ मध्य और अन्त देखिए,

वह विद जी की कहूँ रसाई । ताका सुपुत्र बहुत सुख हाई ॥
 तुम क्या मत मेरे समता । खेन्धी बहुतविधि घर के भंपता ॥
 देव आवेक बहान निहाये । जाला देनि बहुत सुख पाये ॥ १ ॥”

मध्य

“उमक जवा किवा जनि मका । हकद मिरच दे पूत में लका ॥
 मेसी राती जकि बलाई । आरीगा त्रिसुपन वति राई ॥

अन्तिम

“अत्रैराज हूह किचो बग्यन । भूज बूक मलि हंभी सुजाय ॥
 संवर सरासि केलाय । खंड मान्य पूरन्य हूँ ॥

ककदा-बत्तीसी

यह कृति उठी मन्दिरके मुठका नं ५८ और बेहन नं १ २६में लिख है। यह मुठका नं १२१ घर भी अंकित है। इनको रचना वि सं १७१७ बीसाक सुनी १३ दिन सामकारको हुई थी। इसमें ४ पद्य हैं। पहिल किका है

‘जना विपद बजाक है निजपर विज घर माहीं ।
 क्यों एक बाधि कमीदनी त्यों खेतन जड़ बाहीं ॥ २७ ॥
 मसा या जय बाइकी सो कबहुँ नहीं जाय ।
 जनि जयपर जनि एक निज प्रसाद हूँ पाय ॥ ३९ ॥

मुठका नं ५८म अत्रैराजकी लिखी हुई एक दुपरी कल्पा बत्तीसी और है। अन्तमें केवल ३४ पद्य हैं। इस अख्यात्म-बत्तीसी कहला ही अक्षुण्ण है। पहिले प्रत्येक बीचकी आत्माको परमेश्वरमा कहा है और उद्योगे प्रेम करनेकी बात लिखी है

‘जय बापुर जगत में विज
 तुम सम अवर न कोइ है जाक ।

- १ अत्रैराजकी बत्तीसी के विधि बीचम बीमाय ।
 लोमवार तेरकि धकी अवर अत्रैराज पाय ॥
 दुपरी न ५ १०वीं पद्य ।

सुखयोग मुमाच करि स्था
 घामम् बहुर्ति होइ रै काक ॥ १३ ॥
 दण्ड हुंही ब्रह्म की त्रिय
 वा चिदि करनी बाधि रै काक ।
 वा चिदि बहुगति हकीपी त्रिय
 पोषो काक अवादि र काक ॥ १५ ॥
 दण्ड निज दरमण विना त्रिय
 अर तन सपै निरव र काक ।
 कय विन तुम उदी कटक तै त्रिय
 बादी कटु न हदि रै काक ॥ १९ ॥
 बनी निपट मबह करि रै
 निज प्राथम निज माहि र काक ।
 मद्रा रंगीको रम मरवी
 चाबी रैपत मय हरपादि रै काक ॥ २१ ॥

बिनयी

अक्षयरात्रको भी शिव रिजब महान्त पाई स्तुति अत्युत्त मन्थिरके मुटका
 न १२१ में आनी बानी हो श्रीगुरुव के राव' मन्थिर टोकियान अयपुरके मुट न
 न १३१ (न दि सं० १७७९) में और 'निजरी बगी तुम अरम ती'
 बधोअरबीके मन्थिर अयपुरके मुटका न ५१ पृ १२ पर अंकित है । अन्तिम
 स्तुति अत्युत्त सरत है । कुछ पंक्तियाँ देखिए,

'तारय चिरद मुया सपै मुनि जिन कागत पाप ॥
 निजरी कगि तुम अरम ती ली कचहुं बदि जाप ॥
 तुम मूदति प्रमु रैवता निज पर महज कगाव ॥
 अरम कमाउ बुति है हमी कोरि नुरज दिन जाप ॥
 मुय कर्ता रूप पोषता तुम किमुबन पति राह ॥
 तुम मया विन मुनी प्रमु हुह अरम नहि जाह ॥
 मदि जिन बरीत ममाधिक मदि अह पर अतर ॥
 अत्रैरात्रि बिनती करि कावागमन निबारी ॥

पर

अक्षयरात्रके पर आरतके मनी शाम्भ-मन्थारके परनपहोमें पाये जाते हैं ।
 अत्रुरके मन्थिरोंका तो घामद ही बीर शाम्भ मन्थार ही त्रियमें अक्षयरात्रके पर न

हों। बसोचन्द्रमीके मन्दिरके गुटका नं १५८ बैसन नं १२७५ में निबद्ध एक पदकी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

‘तुम परमात्म देवि तु वद् भवतो कल्पौ
 धातम अतुमव असुन १स अपुरण चर्यौ ।
 ससै सव मिदि ज्यौ मद्वा ध्यावन्व भवौ
 ज्ञचक धर्पहित निज पद् निज वट मी कवौ ॥ ८ ॥
 नयुं नमुं प्रमु हरप महा उर ध्यावि डे
 मवव भवौ तुम देवि निजपद् आवि डै ।
 इडै भगति वर वासी मव चरि गाहूसी
 ध्यवराज कडै मुव मुकति वद् गाहूसी ॥ ९ ॥

अजयराजका पूजा और अयमाळा साहित्य

अयपुरके बसोचन्द्रमीके मन्दिरमें निरजमान गुटका नं ५ बहुत ही अठिठ है। इसमें २ २ पृष्ठ हैं। अजयराजकी अनेकलेक रचनाएँ इसी गुटकेमें संकलित हैं। अचिकठर पूजाएँ हैं। आदिनाथपूजा ‘बतुर्बिसति तीर्थकरपूजा’ ‘नन्दोरवर पूजा’ ‘पचमेव पूजा’ बीस तीर्थकरोंकी अयमाळ’ ‘सिद्ध स्तुति’ ‘बीबीत तीर्थकर स्तुति’ और ‘श्री देवात सकळ मुज वार श्री इमीमें संकलित हैं। इनके अतिरिक्त ‘वासनाथ सालहा’ भी इनीमें लिखा हुआ है। जिसकी रचना सं १७९१ ज्येष्ठ गुरी १५ को हुई थी। ‘आदिनाथ पूजा’ पूर्ण है। नन्दोरवर पूजा में वैशख ९ पक्ष है। सबसे अधिक पद्य ‘बीबीत तीर्थकर स्तुति’ में है अर्थात् २ पद्य हैं। अयमाळ जिनैन्द्रकी मन्दिमें किये गये अग्य मुनकर पद्य भी इनी गुटकेमें निबद्ध हैं।

जमोकार सिद्धि

यह भी अर्जुन मन्दिरके गुटका नं ५१ और बैसन नं १२१७में अठिठ है। यह गुटका सं १८२३ कार्तिक वरी ७ को लिखा गया था। यह छोटा-सा अग्य ‘जमोकार मन्त्रकी महत्ता से सम्बन्धित है।

नेमिनाथ चरित

यह एक महत्त्वपूर्ण इति है। इसकी रचना वि न १७९३ आषाढ़ गुरी १३ को हुई थी। इसकी प्रतिक्रिा नं १७९८ वैश्व गुरी ८ को की गयी।

१. अयम नगरासे बीचवै मात अठाइ पाई अर्चयो ।

निजै ठैरन अंबेरी वाग गुकवार मुव उठिय शाख ॥

नेमिनाथ चरित देविरीके मन्दिर अयपुरकी इन्द्रविद्या प्रति ।

यह भयपुरके लोकियोके बि जैन मन्दिरके पुटका नं १ ८में लिखत है । करिबकी पद्य-संख्या २६४ है । इन काव्यक निर्मात्रकी प्रेरणा अम्बावती नगरके जिन मन्दिरमें बिराजमान भयबाल् नेमिनाथकी भक्त मूर्तिको देखकर मिली थी । कविन इस प्रतिमाको स्वामयर्षका कहत है । वह इसकी पूजा-अर्चा भी प्रति-दिन क्रिया करते थे । प्राचीनक संवत्सावरण देखिए,

‘श्री जिनवर बन्दी सषै आदि धम्त अइवीसै ।
जान पुंजि गुण सारिका जसो प्रियुवन का ईस ॥
तामै नमि जियन्तु का बन्दा बारम्बार ।
वास करिष बलाभिस्ता तुउ वृद्धि अनुमार ॥’

कटनेके लिए बँधे बीचापर कड़वा करके ही नेमीस्वर विषाड-डारसे बापस बीट बाये । बीतरागी बीजा के नव करने मिरनारपर चके पये । बिलाप करती रामुक बहती है ‘यदि तुम्हारा बिलीप हुआ तो इमारत जगम ही निष्कल हो बायेया इसलिये संयम छोड़कर सासारिक सुखोको भोगो । अब तुमन दया करके पगुओं तककी छुटा लिया तब मीनकी भक्ति तबपरी हुई मुसपर दया क्यों न करीय ?

‘जो होइ बियोग तिहार मिरफळ है जगम इमारत ।
ताते संजम अब तजिये, ससार तण्ड मुल मजिये ॥
अक जिन मीन जिन किम मीन तीसे हूं तुम धारीन ।
तुम माव दया श्री कीन्हा सख जीव पुढ़ाई जी ॥’

राजा सवाई जयसिंहका राज्य था । अम्बावती नगरके मध्यमें एक जिन-मन्दिर था । उसमें नेमिकुमारको अनुपम मूर्ति थी । मन्दिरके चारु ओरके प्राङ्ग शिक वातावरणका दृश्य देखिए

अजबराज यह कीया बजाय राज सवाई जयसिंह जाय ।
अंवावती सहरै सुम पाव जिन मन्दिर जिन दृष विमाण ॥
बीर निबाल मोई बनराई बकि गुकाव जमेली जाई ।
अग्यो मरवा अरै सबति श्री हा जानि नागा बिधि कीटी ॥
बहु मंवा बिधि मार बरणन माहि कारी वार ।
गह मन्दिर कणु कइवी न जाइ मुखिया काग बन अधिकाइ ॥
तामै जिन मन्दिर इक मार तही बिराजे श्री नमिकुमार ।
स्वाम मूर्ति श्रीमा भनि जसो ताकी रूपमा जाइ न गयी ॥’

सुम मायसे सन भयबाणके बचन हों पाते हैं । जनक धारक बहूँ जाले हैं
 और अपन अपुन कर्मोंको काट बाकते हैं । अक्षयराज भी मन बचन कर्मते पूजन
 करते हैं । गिल-प्रति अत मूर्तिप्री बन्दना करनेसे यह भीष हस भव-उमुहसे पार
 हो सकटा है,

‘आर्ये आग उदै सुय होइ करि दरसन हरषै मेट सारै ।
 आर्ये आर्ये सरावग बन्ध करै कर्म सभे आपनां ॥
 अक्षिराज वहाँ पूजा करारै, मन बच तब जति हरष करारै ।
 बित प्रदि बन्धै ते बारम्बार तारण तरण करै सब पार ॥

विभाग दो

जीन मक्ति-काव्यका भाव-पक्ष

बहुत समय पहले तक हिन्दीके बड़े बड़े विद्वान् यह स्वीकार करते रहे हैं कि हिन्दीमें लिखी गयी जैन रचनाएँ कम प्रचारकी माध्यम मर हैं, उनमें बड़ भावी ग्लेप नहीं है जिसके आचारपर रसका उद्रेक होता है। यदि 'रसो वै स रसं कम्प्याऽऽनन्वी भवति' वाक्यो वात रस है, और हृदयसे स्वतः फूटी अन्तःस्रष्टिवा ही भाव-वारा है तो जैन काव्यमें रस और भाव दोनों ही सन्निहित हैं। 'मक्ति रमामृत सिन्धु'में मक्ति रससे सम्बन्धित पाँच भाग स्वीकार किये गये हैं। शान्त वास्य सक्य वात्सल्य और माधुर्य। इनको उत्तरोत्तर उत्तम मना है, किन्तु जैन-मक्तिमें 'शान्त ही सर्वोत्तम है। यहाँ इन्हीं भावोंके आचारपर जैन मक्तिका भाव-पक्ष उपस्थित किया गया है। वाक्योका क्रम इस प्रकार है सक्यभाव वात्सल्यभाव प्रेमभाव जितयभाव और शान्तभाव। इनमें आगे-आगे विद्युत्ता जाती गयी है।

सक्यभाव

मगधान्को सखा मानना ही सक्यभाव है। इसमें बराबरीका बर्ता प्रदान होगा है। मगधान् अपने मित्रोंपर प्रपन्नत्वका आरोपन नहीं करते मित्र भी मगधान्के ऐश्वर्य और माहात्म्यसे आश्चर्यान्वित न होकर, उनकी सुख-सुविधाका ही अधिक ध्यान रखते हैं। इनमें शिष्य-शेखर भावकी भाँति संकोच नहीं होता किन्तु वे आपसमें स्पष्ट रूपसे जुक रहते हैं। यदि कभी मित्रको मगधान्का नाम अनुचित और भ्रमपूर्ण मानूम होता है तो वह उसका निराकरण भी करता है।

जैन साधनाके आध्यात्मिकतावाके पहलमें सखा भावका निर्वाह हुआ है। कर्म-मज्जे रहित विद्युत् आत्मा ही परमात्मा है। उसे जैन-शास्त्राये 'सिद्ध संजा ही गयी है। अर्थात् आत्मायें परमात्मा बननेके सभी अंग मौजूद हैं। यह जीव सब आत्मासे प्रेम करता है और उसे चेतन नामसे पुकारता है। इसीके साथ जनना मित्र-भाव है। सब भ्रमवशात् चेतन अर्जवत पक्षपर खड़ा है तो यह भीव

उन्हे भित्तकी भाँति ही उसे सावधान करता है। यद्यपि उक्त साहित्यके 'वेतनकी को बंध'में भी सावधान करनेकी ही बात है। किन्तु वहाँ जिस मनको सावधान किया जा रहा है। समझे प्रयत्न करनेकी सामर्थ्य नहीं है। अतः हम उसे उदात्तमान नहीं कह सकते। वैत साहित्यमें तो वेतनको ही परमार्थ माना है और उसके सुखके लिए उसे सावधान करनेवाला भित्त ही है, अर्थ नहीं। वारुण कल्पवृक्षने 'वीथ परमार्थ'में लिखा है, 'हे वेतन। मुझे भारी आश्चर्य है कि जब बभ्रु-वैते द्विपकारी वचनाके द्वारा तद्बुद्ध तुम्हें समझाता है और तुम भी झायी हो फिर न जाने क्यों तुम वेतन होठे हुए भी वेतन उत्पत्ती कहानी नहीं समझते। 'परमार्थी बोधाद्युक्त'में तो उन्होंने बड़े ही प्रेमपूर्वक रूपसे वेतनको समझाया है। उन्होंने कहा "बहु बभ्रुके राज। अपने पत्नी विचार छोड़कर और धिक्पुटीकी सुख भुञ्जकर मह-वनमें क्यों छप रहे हो। तुम्हें इस संसारमें भ्रमण करते-नरते बनादि काल बीत चुका है। स्वर्ग ही कुछ क्यों लेकते हो? अपने घरको क्यों नहीं संभालते। इन्द्रिय-सुखसे बनकर तुम विषयोंमें रौद्रोत्त हो रहे हो और परम अनीन्द्रिय सुखको नहीं समझते। किन्तु विदमोंका सेवन करते हुए तुम्हारी तुला पपयम नहीं होयी। मृत्युत कारे बलके समान बढती ही चामैयी।"^१

मायाके कल्पमें जैसे वेतनको सावधान करते हुए पं बनारसीराजने लिखा है, "हे वेतनकी! तुम जाकर अर्थात् सावधान होकर देखो कि नहीं मायाके पीछे क्यों हो। माया और तुम्हारा क्या सम्बन्ध? तुम तो न जाने कहाँसे जाने ही और कहाँ चले जाओगी किन्तु माया तो कहाँकी तहाँ ही रहैगी। माया न तो तुम्हारी भाँति-वाँटिकी है न बँधकी है और न तुम्हारे बंधकी इतने कुछ अलग है। इसको राती न कलानेके यह तुम्हें काँठके पीठकी है। हे वेतन तुम देखी बनौति क्यों रहन करते हो। तुमको इस मायाकी रासना छोड़ देनी चाहिए।"^२

"वेतन की तुम कामि विकल्पद्व

कामि रहे कहाँ माया के ताँई ॥

जावे कहीं सीं कहीं तुम जाहुगे

माया रहेगी कहाँ के तहाँई ॥

माया तुम्हारी न काँठि न वाँठि न

बंध की बन्धि न बँध की काँई ॥ -

१ वारुण कल्पवृक्ष, वीथ परमार्थी।

२ वारुण कल्पवृक्ष, परमार्थी बोधाद्युक्त।

३ बनारसीराज गान्धर्व संस्कृत, साक्षात्साधकशास्त्र, पृष्ठ ७, इ १२५।

बासी बिसे बिब कावनि मारत ।

ऐसी अनीति न कीजे गुसाईं ॥

इस सप्ताहमें आकर भेदन बूढ़ बन्धनोम बंध गया है किन्तु उस बेमुमको हमका होश ही नहीं है। मरका बंध उसका उस बन्धनोसे कौन लूटाये। यह विवेकहीन है ठीक वैसे ही जैसे पञ्चराज स्नान करनेके उपरांत भी अपने शरीर पर बूछ बांध सता है और जैसे रक्षमका पीटा तन्तुओंको जगहवर स्वयं उतने बन्धनमें बंध जाता है। उसे समझाते हुए बलिने कहा है 'हे भेदन ! तुम स्वयं सम्यक् ज्ञान हो किन्तु सप्ताहकी भ्रम-बीबियोम अपनेको मुक्त समझो। मर तुम ध्यान धरके और ज्ञान-नीकापर बड़के इन बीबियोसे पार निकल जाओ।'

'भेदन'के प्रति सप्ताहमात्रके उद्धार अभिप्रेक्षण करनेमें भयवर्तीवास मेमा अप्रतिबन्धी है। उन्हींमें सुमतिको रामी और भेदनका राजा बनाया है। सुमति अपने पतिको सर्वोत्तम मानते हुए भी उसके पक्ष प्रसन्न होनेपर कभी प्रत्यक्ष-भरी पीछे और कभी मोटी फटकार लगाती है। प्रेमपूर्वक समझाने बखबा मोटी फटकार सुनानेका नाम सिखा मित्रके और नहीं कर सकता। पत्नी भी जब ऐसा बरती है तो वह मित्र ही है। सुमति भेदनको सम्बोधन करके कहती है 'हे सिखायकका ! एक बात कहती हूँ कि क्या यह स्वान तुम्हारे रङ्गमें योग्य है वहाँ तुम बटक रहे हो। मर तुममें कौन-सी विचक्षण रीति अपनायी है कि तुम बिना देखे-भांके ही इन्द्रियमें बटक बसे हो। यदि तुम आज भी मेरे बुधोंमें विष्वास करो तब एक मलाईकी बात कहूँ कि तुम अपने बटके पट क्या नहीं खोलते ? वहाँ तुम स्वयं प्रकाशमान होकर बिराज रहे हो जब अपनी सुन्दर

१ भेदन तोहि न लेक संमार

नख सिखलो दिहबन्धन बेहे कौन करै निहार भेदन ॥१॥

ज्यो बन्धराज पबार जाय तन जाय ही शरत छार ।

जापहि जगकि पाटकी कीरा तनहि लपेटत तार भेदन ॥२॥

बनारसीवास बनारसीविहास, बबपुर, १९२४ ए २३१ ।

२ जाय निकमि निमोत्र दिनु तें फिर तिहूँ पंच टले ।

वैसे परबट डीव जाग को बची पहार तले भेदन ॥३॥

भूके जब भ्रम बीबि बनारसि तुम सुरजाग भले ।

जब तुम ध्यान ज्ञान बीबा बधि बैठे ते निककि भेदन ॥४॥

बनारसीवास बनारसीविहास बबपुर, ब्रह्मचालनसर्वस्व, पृष्ठ ११४ ए २३१

मन-बुझाया पाव क्या नहीं करते ।' समझानेपर भी बेतन समझता नहीं । वह राग-विन संसारके बन्धमें बेधोष रहता है । अतः तुमनि कुछ सीखकर कहती है 'हे बेतन ! तुम्हें कुछ यह भी ध्यान है कि तुम बीन हो कहसि आये हो जिसने तुम्हें बहका रखा है और तुम किसके रत्नमें मग्न हो रहे हो । तुम इन कर्मोंके साथ एकमेक हो रहे हो जो आज तक तुम्हारे हाथमें तो आये नहीं उल्टे तुम्हीं उलक उल्टेमें कैमकर बनकर जगत फिरने हो । तुम तो बड़े बगुर हो कि तुममें यह बीन-सी बनुपाई हो जो तीन बीनके नाच होकर भी मिखागीकी तरह ठिठक हो ।'"

ओकरा उल्टे बड़ा स्वार्थ है अपनेको ही कुछ रूपमें बहकायना किन्तु वह बेतन होकर भी बबैतनमें कैमकर रह गया है । उमको समझाते हुए चाम्तरचमका कथन है 'हे बीन ! तुने यह मुझना कहसि बाब कि माघ संतार स्वाधकी बाहना है किन्तु तुझे यह बन्धा ही नहीं लगता । क्या नहीं कि तुम क्यों जपुनि अपने और कुछ रत्नमें फिरनेके रह गये हो । तुम्हने अपने परम बनीन्द्रिय मुक्तकी स्थाप कर विषय रोगोंको निगटा रखा है । तुम्हारा नाम 'बेतन' है, फिर तुम्हने यह होकर अपने नामको क्यों बैबा दिया है ? क्या तीन ओकरे चम्पकी ओकरा मीठ मीठे हुए तुझे लगता नहीं जाती ? अब तुझे इस झूठे मुझनेसे लुटकारा बिक जायेगा तभी तू उलक बहका सकता है और तभी तू मोछने

- १ एक बाल कहूँ विषयतायककी तुम नायक और, कहाँ बटके ।
 यह बीन विषयन रीति यही विनु बैचहि अलग सौ पटके ॥
 अबहुँ तुम मानो तो बीन कहूँ तुम ओकरा क्यों न परै बटके ।
 चिन्मूर्ति बापु विराजतु है निग गुरत देखे मुखा पटके ॥
 मैत्रा भक्तप्रियाम, उल ज्योति १००१ कव, मछिन्ध्यास कैल चम्पकवाकर
 काचोकर कर्म उम् १११६, ६ १ ।
- २ बीन तुम कहाँ जाये कौने बीनके तुमहि
 नाके रस रते कहूँ तुम हूँ बरतु हो ।
 बीन है ये कर्म किन्हुँ एकमेक आनि रहे,
 अबहुँ न अपने हाथ भाँचरी बरतु हो ।
 ये निग चिनारो कहाँ बीनै है अनादिनाक
 नैने नैने नैने छेहुँ विनरतु हो ।
 तुम तो मयाने ये समान यह बीन कौनो
 तीन ओकर नाच हूँ के बीन से फिरतु हो ॥
 कवी, १००१ कव, ६ १४ १२ ।

अनन्त सुखके साथ विधास कर पायेगा ।

एक सम्मिश्रकी भाँति चेतनको समझात हुए मूखदासका कथन है 'जो ब्रह्मानी ! तू पापकमी बतुरा न हो । एक ब्रह्मनके समय तू फूट-फूटकर रोयगा और प्राणोंसे भी ह्रास हो बैठेगा । कुछ बोड़े-से विपत्तिके कारण तू इस दुर्लभ देहको व्यथ न जाने दे । ऐसा जबसर तुझे फिर न मिलेगा अथ भीरमें सोना न रख । ऐसे समयमें समान जोग कष्टभूषणों छोडा करते हैं किन्तु तू विप बीने जग रहा है, मया तेरे समान यथाथा कौन होगा । संसारमें बितने बुद्धशायक और रस हीन फल हैं वे सब तेरे इस विपबीजका ही परिणाम हैं । तू यह सब कुछ मनमें जानकर भी भौंठू गया हो रहा है ।'

वात्सल्यभाव

यद्यपि भक्ति रसका स्वायो-भाव भगवद्विषयक रति है किन्तु रतिके तीन प्रधानका माने यथे हैं—भयवद्विषयक वात्सल्य और शर्म्यत्य । इनमें से अन्तिम

१. भीष तै मूढाना कित पायो ।

एक अथ स्वार्थ को चाहत है स्वार्थ तोहि न भायो ॥१॥
 बसुधि भयै न दुष्ट तन माही कदा ज्ञान बिरमायो ।
 परम अतिम्री निज मुख हरि के विषय रोम छनटायो ॥२॥
 चेतन नाम मया बड़ बाई अपनी नाम बमायो ।
 तीन लोक को राज अदि की भीष माम न सजायो ॥३॥
 मूढपता मिथ्या अब कूटै तब तू छत कहायो ।
 घानत मुख अर्गत चिब बिकयो मां उद्गुरु बतकायो ॥४॥
 अनात्मसमस्त विन्नायी प्रनाटक कर्मोत्पन्न, कर्मकथा पर १८, १९ २० ।

२. ब्रह्मानी पाप मत्पू न होय ।

एक ब्रह्मन को बार नरै दुन मछई मूरस रोय । ब्रह्मानी० ॥१॥
 किंचित विषयनि के मुख कारण दुःख भेइ न होय ।
 एसा जबसर फिर न मिलेगा इस मीदही न होय । ब्रह्मानी ॥२॥
 इस विरिया मै शर्म कल्पतह छीजन सुवाने काय ।
 तू विप बीजन अगत हो सम नीर बसाया होय । ब्रह्मानी ॥३॥
 ये जग न दुख शायक बेरस हम ही के लय होया ।
 मा मन मूबर जालि कै भाई फिर बयो मानू होय । ब्रह्मानी ॥४॥
 भूवद्विषयक अस्तकथा पर ५ ६ ७ ८ ।

को भी भगवद्गुणों होनेके कारण मयबन्धिमय हो है किन्तु निरुपम और और रचना-विभागकी दृष्टिसे ही उनका पक्ष निरुपम किया जाता है। मयबन्धिमयमें विनय वात्सल्यमें बाक-कीक और वाग्मयम मधुरभावसम्बन्धी रचनाएँ आ जाती हैं। मानव जीवनकी दो ही प्रमुख वृत्तियाँ हैं—वात्सल्य और वाग्मय। इनमें भी हिन्दी मन्दि-शैलीके कवियोंने वाग्मयपर जितना लिखा वात्सल्यपर नहीं। एतन्मात्र सूर ही इस शैलीके बरगवाते रत्न हैं। यद्यपि आचार्योंने वात्सल्यका पक्ष रम नहीं माना है किन्तु हममें कुछ ऐसी स्पष्ट सामाजिक चर्चा है, जिसमें किन्हीं हिन्दीय जने पृथक् रसके रूप में स्वीकार किया है। और वृत्तका स्वाधीनता 'स्नेह' रखा है। यदि इस दृष्टिसे देखा जाये तो हीन साहित्यमें वात्सल्य रसके वात्सल्यन पक्षपरमेष्ठी और आशय मौ-वाप तथा मन्त-अन होने। वात्सल्यनन चेष्टाएँ, कार्य और उष बचसुरपर मनाये जानेवाके उत्सवादि शरीर विभाके वात्सल्य आ जायेंगे।

सूरने मात्र वात्सल्यका सरस उद्घाटन हीन हिन्दी साहित्यमें ही हुआ है। वाग्मय बचसुरपर होनेवाले वाग्मयक उत्सवोंकी कटाकी ही सूर भी नहीं छू लके हैं। हीन साहित्यम तो वात्सल्यनके बर्षमें आनेके पहले ही कुछ ऐसा बाटावच बनाया जाता है कि बल्कि कम केनेके पूर्व ही 'वारमय' पनप पठता है। सत रक्षकी घातकोंके प्रसिद्ध कवि कवचवने पंकरपायककी रचना की है, जिसके प्रारम्भमें ही गर्व और वाग्मयकावक है। तीर्थकरके बर्षमें आनेके छह माह पूर्व ही हमने बचसुरको भेजा जिसने तीर्थकरकी लवरीको मन्दि-साहित्यको सजावर बपूर्व बना दिया। उसने बड़े-बड़े जने प्रासादोंकी रचना की और बचसुरी कनक तथा रत्नोंसे लज दिया। बहूँ स्वान-स्वानपर रम्य स्वरन सुशोभित होने लगे। उनमें दिवार करनेवाके सुन्दर बेल भुवाको वाग्मय जिसे लवरनिवासी यनको मोहित करते थे। बचसुर-गृहमें छह माह पूर्व ही रत्न-वाच बरसत लगी और बचसुरादिनी देवियाँ प्रसन्न हो-होकर सब मन्दि जननीकी सेवामें जुट गयीं। उनमें एक 'धी' नामकी देवी थी जिसने जननीकी कस्त' बूँट को बड़े सावधानी से गुड़ दिया जिसमें बिकोनेके लक्ष्यको भी ताह रक्षता था। उदुपत्तन एक रात को मन्दि साक्ष स्वप्न देख और प्रात वाच बच जननी कन बनने बनिसे वृद्ध तो ज्ञान तुम्हारा पुत्र विमुक्तवति हुआ पीपित दिया। इस मन्दि रीता ही को जानकर हुआ और भी माह तुम्हारा बोले लगी।'

१ वाग्मय कवच, वाग्मयन नरंकावाच (वृत्त), इतिहासकी लघु किताब (१२२, पृ. २१ २३)

भूवरदासने अपने पादपुस्तक में मगवान् पावननामके पंचरस्यामकाका काव्य मय भजन किया है। पाण्डे रूपचन्द्रकी मीठ इसमें भी उन्ही आठाका उल्लेख है किन्तु कल्पनावत् सोल्यय ज्ञातिका है। इन्द्रकी आज्ञासे बगवतिन महाराज अस्वसेन के घरमें साढ़े ठान करीब रत्नोकी बर्षा की। आकाशसे गिरती मधिसोकी जमक देसो भास्मू होती थी वैसे स्वर्णकाककी लक्ष्मी ही तीर्थकरकी माँकी सेवा करने लखो आयी हो। कुम्भमियासे गम्भीर ध्वनि निकल रही थी मागो महासागर ही बरज रहा हो। कुसाचलवासिनी देवियाके सोल्ययका भजन करते हुए भूवरदास न भिन्ना है काव्ययते मरा उनका काव्यिकान् शरीर एसा मास्म होता था मागो बामिनी ही आकाशसे उठरी हो। वैसे तो उन्हीने अंय धर्ममें श्रृंगार समाया था किन्तु उनका स्वामात्रिक रूप-शौ-र्य भी आश्चर्यमें डालनवाला था। उनके माधेपर श्रृंगामधि भयमया रहा था और बहास्वकपर कल्प-मूषके मुम्माकी माछा मुबासित हो रही थी। उनके मूपुरास 'भजन-मुसद' शीकार उठ रही थी।

तीर्थकर पादनामके गर्भमें आते ही चारा प्रकारके देवताओके आसन डिस उठे। इन्द्रने अपने अवधिज्ञानसे यह जान लिया कि आज भयवान् गर्भम जाय है। यह ज्ञान पुरपरिवारसहित विमानपर चडकर बर्मजस्याओत्सव मनामके लिए चक पडा। सब देवताजाल माँ-बापका बंजन बलघोसे स्तपन किया और मंयसमीत गये। उन्हीने विविध प्रकारसे बर्मबासो मगवान्की पूजा भी की। उसके बके जालपर शक्तिवासिनी देवियाँ रह गयीं जो विन्न मिल प्रकारसे माँ की सेवा करती थीं।^१ कोई स्नान कराती था कोई श्रृंगार समाती थी कोई मुस्तायु मोक्षण छिछानी थी और कोई ताम्बूल बेती थी। कोई सुम्बर गाना गाती थी कोई धम्या बिछाती थी और कोई बरज बावती थी। कोई चन्द्रनस शीखर पर मुबासित कराती थी कोई जीपनमें झुहारी बेती थी और कोई कल्पमूषके फल कुशाकी भट बजाती थी। बगरामन एक 'लक्ष्म्यबल' की रचना की थी। उसमें केवल छेठ पद्य है। उसकी हस्तलिखित प्रति बडौनक वि जैन मन्दिरके मुक्ता न ५४ पत्र ९ १ २ पर लिखी हुई है। उसमें भी शक्तिवासिनी देवियाक द्वारा तीर्थकरकी माँकी सेवाका बयन है। एक टानीके सम्मुख रूपय शिव्य खड़ी है एक उनपर बँबर कुब्ज खड़ी है एक बरभामूपय पहना खड़ी है या दूसरी

१ भूवरदास वाल्मिकुदास जैन ग्रन्थ रत्नाकर काशीपद, [दीरावात निररती कन्दे, भागाद १६७८ वि प्रिन्सिपलिटि ५५ - ६ ५१-५४।

२ वही ५१५७-२११ ५ ५२ ।

३ वही ५१११ १५४ ५ ६ ।

४ वही, ५१५७-१२ ५ ६०-६१ ।

भीषासे मन्दिर इति निम्नक रीति है । एक पहलो पूछनी है तो दूसरी इच्छा होकर उत्तर देनी है । इस नीति दिन और रात आत्मपूर्वक बातने कबे । विदु बननाचकी महिमाका बयन कदाचित् किया जाये । व केवक मन्तर रीत्य है । अदरामन उतका यद्य जाया है,

'कहि उच्छाह निज पूर गवा माठा पुण्य प्रमाथै बी ।
 कवन कुमाठी इहक मँ माला रीति रिझाई बी ॥
 इक सभमुप हरपन कीका इक झडी चौर कुमारी जा ।
 बसन आभूषण ईक मँ इक मधुरा रनि बजाई बी ॥
 पु कय एक पहकिम्भ इक उत्तर मुनि हरपाई बी ।
 निमि दिन अठि आत्मइ स्वी इस बचमान विजाई बी ॥
 महिमा विदुबननाय की कवि कदाँ कौ बरपाई बी ।
 मन्दि परवा बसि मन्त्री अगतराम अस पाई बी ॥

भी माहके उतरात्त मन्त्राङ्कन बरम तुझा । तीनों लोकाम स्वाभाविक आत्म कैव यया । कहीपर बीभी मेह और कूछना प्रयोग दिखाई गही पडा विदु घोतस मन्त्र मुगल पवन बहुम कया । कहरवाचिकोंके बराम बन्टे स्वतः पर उठे क्योनिपियोक गही देहरियोक नाच होने कया भवनात्मोमें पंख बर उठे और अन्तरबानियोंके यही मसंकर भेरिवा ध्वनि हो उठी । कहराच स्वय ही पुण्योकी बुद्धि करन कबे । इन्द्रागन भी कयायमान हो उठे । इस नीति आत्ममन्त्र प्रकृतिते पर बोपिन कर विवा कि मनवान् जिनैका बरम हुआ है । मन्त्री इन्द्र अपने अपन निहासलते कठकर पडे हो गये और बहसि ही भयवान्को प्रविपाठ किया । इन्द्र-व्यक्तिव बहनके लिए कुबैरने एक मायाम्मी देवावतरी रचना की जिसके वास्तविक सोचमें काम्यत्वका पूर्व निर्वाह हुआ है । उस हाथीके सी मुप के और प्रत्येक मुकमें आठ-आठ बात बे । प्रत्येक हाथपर एक एक मरोवर का और हरक सरोवरमें एक ही पञ्चम कमलिनी खिजी थी । प्रत्येक कमलिनीपर पञ्चम मरोवर कमल बने हुए थे और इरेक कमलमें एक-ही आठ पते थे । उन पत्तोंपर वैवागवाएँ मूर्य कर रही थी जिनकी छविनी बरकर सगार मोडिन हो जाता थ । उनसे बीठोमें मन्त्री रस बरन रहे थ ।

१ वी, १।१ ११ व १७-१२।

२ बरके कान्य कान्यमन्त्र कान्यमन्त्र, पृ ६, पानवीठ बुखरनि मारतीन पाननाम, काठी, १९२७ ई १७ १९।

जोवन काय गर्भदु वदम मा तिरमये ।

वदुन वदुन वसुर्दुत-वृष सर सदये ॥

सर सर सौ पनबीस कमकिची छात्रही ।

कममिनि कमकिनि कमक पचीम तिरात्रही ३

रात्रही कमकिना कमक अत्रतर मी दनोदर वरु वत ।

वृष-वृषहि अत्रतर नदहि नवरम ह्यन माय मुहावन ॥

मणि करक त्रिद्विषि वर विचित्र सु अमरमदप सोदुये ।

पन घंट वीवर बुजा पचाका इनि त्रिभुवन मो-ये ॥

एने हापोपर इन्द्र कका और घची भी । साथमें देवगण भी विविध उत्सवाको करते हुए बैठे ।

इन्द्र-बभ्रु प्रभुनिगृह्णे गयी जहाँ माता पुत्रमहित सेटी थी । उगने प्रदक्षिणा देकर प्रणाम किया । मृत राक्षसे रैवी माँ ऐसी प्रतीत होती थी जैसे माता बालक पानुमहिन सम्प्राप्ती ही हो । घचीने मायामयी बाधकको मरिचे पास रचकर भगवान् को धरती हाथोम घटा दिया । बालककी देखसे एनी ब्योति फूट रही थी कि उसके समस करोहो मूर्खोही छवि भी मरिच ही प्रतिभासित होती था । भगवान्की देखा स्पर्श करके इन्द्राणीको इतना मुन्न मिला कि उमपा वर्णन कवि-वाचीसे परे है । प्रभुके मुन्न-वाग्निको गुर रानी बार-बार देखनी थी विष्णु अचाठी नहीं थो । इन्द्रने ता बो तर्कोंकी अपर्याप्त समझकर सहस्र मेत्राकी रचना कर ली । शौर्योद्भूत भगवान्को दोरमे से किया ईशानक नुरसल सनके मिरपर छत्र लगा दिया और सानसुमार गया म-इन्द्र वमर बुकाने लगे । बह्मादि स्वर्गके इन्द्र जय जपहार बाल उठे । ऊपकी सान नुररत्रयिषी मृग्य करन सभों और पश्यर्क वम्य वाचाको बीजाएँ मुपय-वीर्यसे निगारित हो उठी । विविध प्रकारके बाजे बज उठे । बीर-बोई तो मृग्य-वाचन मृग्यकर बाधकको निनिनेप देवता ही रह गया ।

सह देव मित्रकर बाधक भगवान्को पाण्डुक बनमें ले गये और वहाँ पाण्डुक मितगार विराजमान किया । फिर धीरमाकरके एक सहस्र बीं घाट बचपणि उतना इतफन हुआ । उमपा प्रारम्भ बीषम स्ववके इन्द्रके किया ठिर मव इगा और देवोंने समैक मर हुए वचनो बन सध प्रभुन बाधकके मिरवर जाने । वहाँ एक नमगगा-नी ब्रवादिन होने लगी । अनुस बड और बीर्यके कारण ही

१ नृपराजान वारवपुराण, कर्पूर ११३ १८ १४ १७ ।

२ वी ११३-४१ १४ १७ ।

३ वी ११३-२४ १४ १ ।

भववान् इस प्रसन्न बल-वाराणो सङ्ग कर सके अथवा उसमें इतनी सक्ति थी कि वडे उडे विटि-सिद्धर भी लख-लख हो जाते । भववान् के स्वामन्त्र घटीर पर कच्छ-नीरवा ऐसी छटा था जैसे मानो नीलाचक्रे तिरपर पाँके के बारण बरस रहे हो । उनके स्नपनके बलकी छटा उल्लसकर बाकासको बोर बल उठी मो मानो बहू भी स्वामीके साथ पापरङ्गिन हो गयी है । अतः घटनी भी उर्ध्ववर्ति क्या न हो । उनके स्नपनके बलकी तिरछी छटा ऐसी विरहित होती थी जैसे किसी विभूषिताया कर्णपूज ही हो ।

अप्य श्रौत को विधि पूर्व होतपर घाचीने पवित्र बस्त्रसे उनके घटीरको निर्बल किया । उसपर कुङ्कुमादि बहुत प्रकारके रँगन किये । अब भववान् के घटीरकी सोबा ऐसी माकूम होने लगी जैसे नीलविरिपर सौप्त पूनी हो । घाचीने भववान् का घब शृंगार किया । उनके माकूमर निष्कल लयाया सिरपर मन्थिमर मुहुट रखा और माथेपर बुझामणि कवाया । स्वाभाविक रूपसे अङ्गित नेत्रोंमें भी अङ्गन लयाया । बीसो कानामें मन्थिमरि कुम्भक पहनाये को बल और मुरजकी मति ही प्रकाशित हो रहे थे । कच्छमें मीनियोकी माका मुत्राकीमें मुत्ररज और संवक्षियोंमें मुखिवाएँ पहनायीं । कमरमें मन्थिमर बुझमणिकाकोन युक्त लगदी पहनायी जिसमें रत्नाकी बाकर कटक रही थी । विभिन्न बाभू-पमोमि युक्त भववान् इस मति विराज रहे थे जैसे विविध लसोमि युक्त सुर तब ही सुषोमिन हो रहा हो ।

सम्प्राद अस्त्रसेनने भी अम्मोत्सव मनाया । बाटावसीके घर-घरमें संवक्ष्यार होने लगे । नामितिका बीत या उठी और स्वान-स्वानपर नृत्य तथा संवीत होने लगा । समूचे नगरमें अन्धन छिन्नका दिया गया और घर-घरमें रत्नोंके मन्थिया रखे गये । माचकीको बाल दिया गया । और मुत्रकीका सम्मान हुआ । सबकी शायार् पूरी कर दी गयी । अब कोई भी बीन-बु की लिवाई नहीं देता था । ऐसे अचमरपर इन्होंने भी देवताकोने साथ आनन्द नामके नाटकी रचना की जिसमें उनके ताच्छक-नृत्यका वृत्त अनुपम था ।

प्रथम तीर्थकर भववान् अण्डपनदेके अम्मोत्सवकी बाल कठौटे हुए आनन्दपनमें लिखा है हे माई ! आज इस नवरीमें आनन्द मनाया जा रहा है । जिसकी भी

१ वी, ४१६६ ६ १ ।

२ वी, ४१६६-७० ६ १ ।

३ वी, ६ ७२-७६ ६ १ ।

४ वी, ४१६ ६-२ ६ १ १७४ ।

५ वी, ४१६६ २१६ ६ १ ५ ।

पद्मनामिनी और सचिदवदनी तरुणियाँ हैं वे सब मंगल-वीर पा रही हैं। राजा नामिरायके घर पुत्र-अम हुआ है और इस अक्षरपर उनके यहाँ का कोई जो कुछ माँपने जाया उससे कड़ी अधिक बिया बवा जियसे उसे फिर माँगनेकी आवश्यकता ही नहीं रह गयी। सब देवीकी कृप बन्ध है जिससे ऐसा प्रतापघामी पुत्र हुआ कि देवता भी मरि करणोंकी बन्धना करनेमें अपना जहोमाप्य मानन है। कवि बनारसीदासने दूसरे तीर्थकर अक्षितनामके जग्गोत्सवका वर्णन किया है। उस अक्षरपर भी देवांगनाभोले मधुर ध्वनिमें मंगलाचारके वीर वाय वे। अक्षितनाम निर्मल चन्द्रको भाँति सुन्दर थे। उनके जग्गसे पूष्ठी लोभा-सम्पन्न हो गयी और तीनों लोकाम आनन्द छा गया। इस्नाकु बंधमें उनके उत्पन्न होनेसे कुमतिकपी बन्धवार तो बड़मुँहसे बिनह हो गया था।^१

कवि बनारसीदासने एक आध्यात्मिक क्षेत्रके जग्गको विज्ञानेका प्रयास किया है। वह आध्यात्मिक बैठा 'सूत्रोपयोग' है। दोनोमें बड़ी कुशलतासे 'सांगक्यक' रखा गया है। जिस प्रकार मूक गणधर्म उत्पन्न होनेवाला पुत्र समूचे कुटुम्बकी खा जाता है ठीक वैसे ही सूत्रोपयोगके उत्पन्न होते ही परिवार सम्पत्ती मया-ममता बिलकुल समाप्त हो गयी। उसने जग्ग जैसे ही ममता-रूपी माता मोह-कोमरूपी दोनों जाई काम-शोषरूपी दो काका और तुष्या रूपी बाबकी खा लिया। पापरूपी पड़ोसी जग्ग कर्मरूपी मामा और बमरु गवरके राजाकी समाप्त ही कर दिया तथा स्वयं समूचे बाँधमें फँस गया। उसने कुमतिकपी बानीकी खा लिया और बाबा तो उसका मुख देखते ही मर गया था। इस बाककके उत्पन्न होनेपर भी मंगलाचारके बचाने नाये गये थे। इस बाककका नाम भीरू रखा गया क्योंकि उसके कुछ भी रूप और बर्ण नहीं है। वह तो ऐसा बाकक है जिसने नाम रखनेवाके पाण्डेकी भी खा लिया है।^२

१ गणधर्मनी सचिद वदनी तरुणी मंगल मावत है मिशरी ।

माई जाज आनन्द है वा नगरी ॥

नामिराय घर पुत्र मयी है, किमे है अबाधक बाधकरी ।

माई जाज आनन्द है वा नगरी ॥

दानत बन्ध कृप नक्षत्री मुर सैवत जाके पद री ।

माई जाज आनन्द है वा नगरी ॥

आनन्दतरुण अक्षरता पद १ ६ १ ।

२ बनारसीदास बनारसी विद्याप, बचपुर १६१४ अक्षितनामकी जग्ग पद्य १७७ ।

३ बनारसीदास बनारसी विद्याप बचपुर १६१४ बमरुई विज्ञानेका पद्य १७१ ।

'मकर वेदा जाबो रे साधो मूकन वेदा जाबो रे ।
 जाँय मोर कुतुब सब त्यबो रे साधो मूकन वेदा जाबो रे ॥
 काम्यत माता त्रमदा खाई मोह कोम दोइ भाई ।
 काम अंध दोइ काम्य त्राव रगई तुवना दाई ॥
 पावो बाप परौसी लाबो अष्टम करम दोइ मामा ।
 माव नगर को राजा खापो कैरु परो सब गामा ॥
 हुरमति दासी खाई बावो मुख देखत ही मूखी ।
 मंगलाचार बचाव बाजे अब को बाळक हुबो ॥
 नाम धरुयो बाळक को भौंरु, रूप बरम कनु बाहीं ।
 नाम बरते पाँडे खाप कहत क्वारसि माई ॥

वैन साहित्यमें अनेक स्थानों पर बाळकोंके तीव्रस्वी रूपका वर्णन है। बाळ-
 वर्णनोंमें सगरी तीव्रस्विताया भी निरूपण होता रहा है। महाकवि बाळिकाने
 अपने 'आनुकम्भ' में दुष्कर्मके पुत्र धरतारा ऐसा ही एक तीव्रस्वी विष बर्णित
 है। यद्यपि माँके बळवर बीमदुःखायत की मूक्यताके बाळकके धनुःतापरक
 रूपको ही प्रशानता की किन्तु वह परतारा भी नहीं। सततखुशी सताग्रीने
 अतिष्ठ कवि अष्टराजमन्त्रके 'दुष्कर्मपरित' का निर्माण किया था जन्में बाळक
 दुष्कर्मका मोक्षपी वर्णन है। उन्होंने किया है, जब सुपनी भाँति देवीप्यमान
 बाळक दुष्कर्मका जन्म हुआ तो अन्धकारकी घनुष्कर्म स्वप्न ही पर
 पया। तब बाँहे छोटा ही हो अत्यधिक गुर होता है, वह बड़े-बड़े हाथियोंको
 बचनापूर कर आकृता है। बुरोने जन्म हुआ जब चितना ही विस्तृत स्त्री ब
 हो रती-भर जलि ही उसे बकाकर छार पर आत्ममे पूर्व सख्त है। बाँप-
 का बाळक भी ऐसा ही जलिके स्फुटिकाकी भाँति होता है। बळके स्वयमे
 धीरे होगा है उसे वह कभी छोड नहीं बचता।" ऐसे जन्म वर्णन भी हिन्दीके
 वैन परित प्रबन्धमें अतिष्ठ है। जन्में वाच्यतीष्ठ है और सरलप्र। जल
 हीबाबाके भी विविध वर्णन वैन पुराणोंमें व्याप्त है किन्तु जन्में गुर-बैठे मनो-
 वर्णनकी धमना नहीं है। बाळकोकी जन्म-प्रकृतिही वैनी बुद्धर और स्वाभाविक
 व्यंजना गुर कर लगे वैन-हिन्दीका कोई कवि नहीं।

गुरपठका चितना ध्यान बाळक दुष्कर्मपर जना बाळिका राधापर नहीं।
 बाळिकाकीका मनोवैज्ञानिक रूपन होता और अज्ञानके रूपमें वैन मणि-काम्यमें
 अत्यन्त होगा है। रामचन्द्रके 'तीठा परित' में बाळिका तीव्रभी विविध

बेष्टाबोला सरस बिज लींवा पया है । 'अजना सुम्बरी रास' में अजनाका बास-वर्षन भी हुरपमाही है । बाकिफा सीठा मभिमय सांगनमें डैठी अपने सुबापत मेवासे चारों ओर देख रही है किन्तु बह निठा जनकपर नजर पड़ती है तो उसक होंठोपर मीठी मुसकराहट इस भाँति छिटक जाती है जैसे किसी भक्तके हृदयकी विषय ज्योति ही हो । अम्मामें पड़ते उसके मुख-कमलके प्रतिबिम्बने कमलको माल्य हो रच बी है । अजनाको तो उसके माँ-बाप र्जमसी पकड़कर बचना सिखात है, किन्तु बह बार-बार गिर जाती है । बह मोली बाँसोसि पिठाकी ओर देखती है और वे उसको खूमकर बोदमें उठा लेत है ।

यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि शैव हिन्दी कवियोंके बास-रस सम्बन्धी बिबाधर मूरदासका प्रभाव है । इसके दो कारण हैं—पहला तो यह है कि मूरदासरमें मम और अम्मोत्सवादी उस शैलीका यत्किचित् भी दखन नहीं होता जो शैव काव्यमें प्रमुख रूपसे अपनायी गयी है । सुग्ने कुण्ठक अम्मनी आत्मन्द बवादिके उपरान्त ही 'यद्योवा हरि पासने झुकावै प्रारम्भ कर दिया है । यह अम्मो-त्सव श्लोकके बीच जैसे आत्मन्दकी सृष्टि न कर सका जैसा कि शैव काव्यमें हुआ है । यद्यपि शैव कवियोंके इन उत्सव-विषयमें परम्परानुवृत्तता अधिक है मौलिकता कम फिर भी एक एता आदर्शक है, जो सर्वत्र चिर-नवीन बना रहेगा । दूसरा कारण है हिन्दीके शैव मन्त्र-साहित्यपर शैव-संस्कृत और अपभ्रंश काव्याका प्रभाव । हिन्दीक अविनाश चरित्र-ग्रन्थ ऐसे हैं जो संस्कृतके अनुवाद-भाव हैं । मूरदासका 'पावर्ष-पुत्राण एक मौलिक काव्य है किन्तु उसके वर्णन भी संस्कृत-साहित्यसे अनुप्राणित है । जग शैव हिन्दीके बास-रसके पीछे उसकी अजनी परम्परा है । सम्भव है उसका मूरदासपर भी प्रभाव पडा हो । स्वयम्भुके पदम चरित और पुण्यरत्नके 'महापुत्राण में बलिष्ठ बाल-वर्षनके कतिपय पद्य मूरके बाल-वर्षनमें मिलते हैं । महाकवि पुण्यरत्न (ई सं १५९) के महापुत्राण में बालव अथमदेवता बाल-शोभर्ष मूरदास (वि सं १५४) के मूरदासरमें बलिष्ठ बालक रूपत बिलगुन निकता हुआ है ।

ममबकीकिवा काकममीलिवा । पडुला दारिवा कया वा बादिवा ॥

पूनी भूमक बबगव कडिस्तु । साह जापक बिकर्मेस्तु कडिस्तु ॥

हो इकण्ट जो आ सुहु सुजदि । पई बजवंतव भूबगजु ॥

क११ तिमह हुकिप मकन । का सुवि अकिगुम वा दारु मजु ॥

१ रावकन्द लीलाचरित, शैवविद्यालयस्य आराधो सम्प्रदितान् प्रति ११२९ पृष्ठ ११ ।

२ अजना-मूरदासस्य शैवविद्यालयस्य आराधो सम्प्रदितान् प्रति ७१४ पृष्ठ ४१ ।

भूखी भूमरा कति किंकिणी सरी ।
निदर मकीकड कीकड वाकड ॥

— महापुराण

कहाँ की बरनी सुन्दरताह,
ककड भूँसर कनक घांगल में जैन भिरति कवि छाह ।
कुकहि कसति सिर स्वाम सुमग जति बहुविधि सुरंग बग्राह ।
मापी बबबन कपर राजत मबका बबुब बग्राह ।
जति सुदेष भुवु हरत चिकुर मब मोहन मुख बगाराह ।
लंछित बबन देत पुन मुख कल्प कल्प ककपाराह ।
सुदुरब ककड रैनु तन मंछित सुरदास बनि बग्राह ॥

— पद्यकार

इसीको केसर डॉ रामसिंह तोपरने लिखा है, अथ हय संक्षेपमें यह उक्ते हैं कि हिन्दीकी सभी काव्य-प्रकृतियोंका स्पष्ट स्वरूप हमें जैन कवियों-द्वारा प्राप्त हुआ है। अर्थात्-रचना में तो यहाँ तक लिखा है कि—हिन्दीका कौन कवि है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें अर्थात्के जैन प्रत्यक्ष काव्यात्मे प्रभावित न हुआ हो। यहाँ इतनी बड़ी बात नहीं कही जा सकती। जित्नु महापुराण और पुरा सावरक बाल-बचनोका साम्य विचारणीय बबबन है। दोनोंके हृदयमें एक-ही मान का छपते हैं फिर भी ऐसा 'हू-बहू' नहीं हो सकता। यह अब होना है तो प्रथम का 'प्रितीक' पर प्रभाव सिद्ध हो ही जाता है। प्रभावित होते हुए भी पुरासा पुष्पवन्तके अनुवादक नहीं थे। हृदयके वैबल्य 'बाब और 'बंदी' कपरो कपनालीके कारण बाकककी विविध मनीष्याओंके निकपयका मिश्रण अवतर पुरा बाकको भिन्न पुष्पवन्तकी नहीं। महाकाव्यका निर्माता बाकवर्त्म'में अधिक नहीं बन सकता। उसे कबानके छान जाये वह बाला होता है।

यं पद्यकार धुनकने लिखा है, 'वाक्यरत्नके भीतरकी जिनगी यावतिक वृत्तिया और बघाओका अनुबब और प्रत्यक्षीकरण पुर कर के कतनीका और कोई नहीं। पद्यकार धुनकको 'जैन हिन्दी काव्य' देखैका समय नहीं भिन्न। मन्दाक छानमुपजने अपने 'बाधीवरक्यपु जामेरघासबग्राहकी इस्तखित

१ डॉ रामसिंह केसर, जैन साहित्यकी हिन्दी साहित्यको देख, प्रती कर्मिकरब मान्य पृष्ठ ४१ ।

२ जो भी कल्पवन्त काव्य कर्मिकरवर्त्म पृष्ठ १२ ।

३ अमरवी-भाट, विनीत उत्तररत्न कतनी वृत्तिका पृष्ठ २ ।

प्रति^१ में बाहिरात्मकी बाह्यवशाओंको विचरवत् उपस्थित किया है। बाह्यक मादी स्वर पात्नेमें पडा हुआ सो रहा है किन्तु बीच-बीचमें कमी भाँव खोकर देखता है, कमी रो बठठा है और कमी अपन बचक हावासे हार मोड़ भयवा ठोड़ रता है।

‘आहे क्षिपि ओवहू क्षिपि सोवहू रोवहू कहीअ सगार ।

धाकि कनहू कर मोवहू प्रोवहू ननसर हार ॥१ ३॥

मटारक शागभूपय एक सामव्यवान् कवि थे। बाह्य-भयवान्के पैरोमें स्वयंके भूँवरू पडे हैं। बय बहू लहलहाते उपीसे बरत है तो उनमें-से ‘ग्रन ग्रन की मधुर ध्वनि फूटनी है, जिसे सुनकर गुपति और माँ मरुदेकी बोनो ही को अपार प्रसन्नता होती है।

“आह प्रन प्रन भूँवरी बाजहू ईम लणी बिहु पाह ।

ठिम ठिम नरपति हरवहू मरुदेकी माह ॥१ ३॥

वहाँ ‘घू बरी ओर ‘ग्रन-ग्रन’ न समूचे दुस्यको ही उपस्थित कर दिया है। ‘घू बरू’ वा लघुस्वः ‘घू बरी लघु बालकके उपयुक्त ही है। उनमें-से निकलनेवाली ध्वनिके लिए ‘ग्रन ग्रन के प्रयोगसे बिन बीबन्त हो उठे है।

कविन बाह्यक घट्टीरकी शोभाक बर्णन करते हुए लिखा है कि बसक अंय प्रारंभ अनुपम है। बाह्यकके मस्तकपर टोपी बिराजमान है, कानामें कुण्डल मलक रहे हैं। देखनवाका पया-अँयी देखता है उनका हृदय अधिकारिक आह्लाहित होता बाठा है। अर्थात् बसक तूत्तिका अनुभव नहीं करना।

आहे अगोब अंगि अनोपम उपम रहित शरीर ।

दोपीय उपीय मस्तकि बाह्यक कहू बज बीर ॥१५३

आहे कनिब कुँडक मलकहू लककहू नैडर बाड ।

ठिम ठिम निरवहू द्विवहू ठिम ठिम माह ॥१६३

प्रेमभाव

भक्ति रसका स्थायी भाव भयवद्विचयक अनुराग है। इसीकी द्वाग्द्विष्यने परानुरक्ति कहा है।^१ परानुरक्ति बम्बीर अनुरागको कहते हैं। बम्बीर अनु

१ आनेर शास्त्रकव्यकारकी इन्द्रविजित शक्तिर, रचनाकाल दि ७ १२२२ रिया है।

२ शास्त्रिक अकिन्तु पीठमेसे दोरप्युर ११, १५ १।

एव ही 'प्रेम बहुधाता है। सैन्यम महामुने रति भवता अनुपपके बाई हो
 जानेको ही प्रेम' कहा है। 'भक्तिरसाभूषणम् मे भी उखा है। सम्भ्रममूनि-
 तन्त्रात्मी समत्पानिप्रमाह्वित । माणं च एव सात्प्रात्मा कुक् प्रेम निवर्षते ॥

प्रेम' का प्रचारका हीठा है—औदिक और अद्वैतिक। मनवद्विपयक अनु-
 एतन अद्वैतिक प्रेमके अन्तर्गत आता है। यद्यपि मयवात्प्रा अन्तार मानकर इसके
 प्रति औदिक प्रेमका भी आरोपण किया जाता है। विष्णु उतने पीछे अद्वैतिकत्व
 सबैव छिपा रहना है। इस प्रेममें मनुष्य आत्म-उपदर्शन होता है और प्रत्येक प्रका-
 यमनकी भावना नहीं रहती। अद्वैतिक प्रेमव्यय तत्कीनता एसी विकल्प होये
 है कि ईश्वर ही मृत हो जाता है। फिर प्रेम' के प्रतीकारका धाव नहीं रह
 सकता है।

कारियाँ प्रेमकी प्रतीक होती हैं। उनका हृदय एक ऐसा कौमल और चरत
 जाता है, जिसमें प्रेम-भावको अङ्गुष्ठात्म देर नहीं करनी। इसी कारण प्रलय को
 नाश्यायावसे मयवात्प्री आगवना करलमें अपना अहोमाय्य समझता है। प्रलय
 'प्रिय' बनता है और मयवात् 'विश्व'। यह आत्मरसभावका प्रेम और कविबोली
 रचनाबोम भी उपलब्ध होता है। और साहित्यके स्वार्थानुसंग कवि बनारसीराठके
 बनने 'अम्भारम-मीठ म आत्म्याको नायक और सुमति को प्रसन्नी पत्नी बनता है।
 पत्नी पतिके विशेषमें इन भाँति पक्य रही है जैसे बकके बिना मच्छकी। इसके
 हृदयमें पतिसे भिन्नता काव निरन्तर बह रहा है। यह अपनी अन्तः नामकी तन्वी-
 से कहती है कि पतिके दर्शन पाकर मैं तममें इन तरह मग्न हो जाऊँगी जैसे बुर
 हरियामें समा जाती है। मैं अपनी ओर विम सुँ मिरुँकी जैसे ओका बहकर
 पायी हो आता है। अन्तमें पति तो बसि बनने बटमे ही मित्र पदा और वह

१ आत्म-भक्ति हृदये ह्य रतिर अरुह ।

भक्ति वाड हृदय तार प्रेम नाम ह्य ॥

भक्ति बल कृपे प्रेम उपजय म

सैन्यम चरितानुन, क-काव्य, पत्रिका, वर्ष १९, अंक १, पृष्ठ ११३।

२ श्री अम बेल्सामी, अक्षिरनात्पानिष्णु, पोल्दमी कामाकर टात्पी उन्पारिन,
 अन्पुनम्भवाता काव्यरस, काशी सि सं १६०० प्रथम संस्करण, १९०१।

३ मैं विरहित विश्व के आधीन । त्यों तन्त्रो की बक दिन मीन ॥३॥

होतुं बनन मैं बरजत पाव । क्या हरियामें मैं बुर मनाय ॥९॥

विश्व का मित्र बनने ओह । आका पन पायी क्यों हीव ॥१॥ ॥

स्वात्पानिप्रमाह्वित अन्पुन १६१८ ई अन्पुनमीठ पृष्ठ ११३, १९ ।

उन्से मिलकर इस प्रकार एकनेक हो गयो कि द्विविधा तो रही ही नहीं। उनके एकत्वको बहिनै अनेक गुम्बर बुध्दात्मि पुष्ट किया है। बहु करतूति है और विम कर्ता बहु मुग्ध-सीव है और विम मुग्ध सागर बहु विम-सीव है और विम विह-मन्दिर बहु सरस्वती है और विम ब्रह्मा बहु कमला है और विम माधव बहु मधानी है और पति रोककर बहु जिनवासी है और पनि जिनेश्वर ।

“विम सारे घट में विम साहिं । एक तरंग ज्यों बुद्धिचा बाहिं ॥
विम मो करता में करतूति । विम ज्ञानी में ज्ञान विभूति ।
विम क्षुद्र सागर में सुख सीव । विम शिव मंदिर में शिवनीप ॥
विम ब्रह्मा में सरस्वति नाम । विम माधव मो कमला नाम ।
विम रोककर में बंधि मजानि । विम जिनकर में देवक बानि ॥

बहिनै मुमति रागोको 'राधिरा' माना है। उसका सौम्य और वातुर्य सब कुछ राधाके ही समान है। वह स्वामी रसोमी है और भ्रमरूपी ठालेको घोस्नेके लिए कीलीके समान है। ज्ञान मानुको काम देनके लिए प्राणी है और आत्म-स्वयमें रमनेवाणी सखी विभूति है। धामने धामकी प्यरदार और धमरी रमनहार है। ऐसी उन्हाकी माय्य रसके पत्र और प्रशोमें प्रतिष्ठित और घोभाही प्रतीक राधिका मुमति रागी है।^१

मुमति बनै पति 'चेनल'से प्रेम करती है। उसे अपने पतिके मनस ज्ञान बल और शोयबाळे पत्रक वा एकनिष्ठ है। किन्तु वह बसों की मुसपठिमें पड़ कर बटक गया है। धन बढ़े हो मिटास भरे प्रेमके बुलरावे हुए मुमति बहनी है 'हे साक ! तुम किसके छाप बहनी लये छिठते हो भाव तुम ज्ञानके महकम गया नहीं धाने । तुम अपन हृदय-उत्तम ज्ञानवृष्टि जोकर देयो दया रामा

- १ बनारसीविद्याल, बनपुर, मध्याह्निक इ. १९११।
- २ स्व को रनीसी भ्रम बुद्धन की कीली
पील मुवा के समुद्र शीलि सीलि मुतराई है ।
जापी ज्ञान मान की अजापी है निरान की
मुरापी निरवापी ठौर सापी ठकुराई है ।
धाम को यरदार धाम को रमनहार
राया रम बंनि में राबनि में पाई है ।
मानन की धानी निराधानी कर की निमानी
बाने मुवृष्टि रागी रादिवा बहाई है ।
बनारसीराज माधवककागर मधविद्विहार पद्य ७४।

समता और धार्मिक शैली सुन्दर रमणियों तुम्हारी सेवाये खड़ी हुई है। एतने एक अनुपम कव्याली है। ऐसे मनीरम वागधरणको मुकुर और कहीं न माए। यह मेरी सहज प्रार्थना है।”^१

‘कहीं कहीं कीम संग कागे ही फिरत काक
जायो क्यों न भाव तुम ज्ञान के महक में ।
बैजु निकोकि देखी जगद सुदृष्टि मेरी
कैसी कैसी बोकी नारि खड़ी हैं दृक में ॥
एकबसे एक बनी सुन्दर सुकन बनी
उपमा न भाव गयी वाम की महक में ।
ऐसी विधि पाव कहीं मुक्ति और काव कीजे
बनी क्यो मान कीजे भीमती सहक में ॥’

बहुत दिन बाहर बटवनेके बाद जैन राजा आज घर जा रहा है। मुनिके जानबूझकर ही ठिकाना नहीं है। बपोंकी प्रतीक्षाके बाद फिरके जानबूझकर मुकुर भला कौन प्रसन्न न होती होबी। मुनिके बाह्यादि होकर अपनी तबीयत खराबी है। ‘हे तबी। देखो आज जैन घर जा रहा है। यह अनादि काक एक धुराके बंधमें होकर जूना फिरा अब बतने तनारी मुच की है। अब ती यह भववान् जिनको आज्ञाको मानकर परमानन्दके मुचको पाया है। उनके कर्म-कर्मके पाप भी पछानन कर गये हैं। अब ती जगने ऐसी मुक्ति रच करी है जिनसे उठे संसारके फिर नहीं जाता पड़ेगा। अब यह जगने मन्त्राये परम अन्वित मुकुरा विच्छाद करेगा।’^२

पठिको देखते ही पत्नीके जगदसे परामेवका भाव दूर हो जाता है। ईश इत बाता है और जैन जगम हो जाता है। ऐसा ही एक वाक बनारसीवासे

१ मीना जगदीशदास, अन्वितकाव्य जैनमन्त्रकाव्यके अन्वित, पन्थी हिन्दीकाव्य, पृ. ११२२ ई. एन. एन्वितकी, अन्वितकाव्य, पृ. १४।

२ देखो मेरी तबीयत आज जैन घर जाये।

काक अनादि फिरपी परबध ही अब निज मुचहि चिन्ताये ॥

जगम जगम के पाप निवे से ती जिन माई बहारी ।

यी जिन आज्ञा फिर पर बरती परमानन्द मुच गारी ॥

जैन अनादि जगद फिरत नी ऐसी मुक्ति बतारी ।

निकने मुच निज परम अन्वित देखा सब मन गारी ॥

नया अन्वित परबध, १४ वीं पृ. पृ. ११४।

उपस्थित किया है। सुमति बेगमसे कहती है 'हे प्यारे बेगम ! तेरी ओर बेखत हो परायेपतली गमरो फूल गमो दुखियाका बंधन हूँ मया और समुची कर्मणा पनायत कर गयो। कुछ समय पूर्व तुम्हारी याद जाते ही मैं तुम्हें सोचनेके लिए बकैसी ही रात्र-गमनी छोड़कर मयावह काश्यारमें भुस पयो थी। वहाँ काया गमरीके भीतर तुम अगस्त बक और ज्योतिबाले होते हुए भी कमकि बाबन्धमें सिंगे पडे थे। अब तो तुम्हें मोहनी नीव छोड़कर साधवान हो जाना चाहिए।

बाकम तुहु तग बिठबन गामरि कृति

बंधरा गी कहराय सरम गै कृति बाकम ०१॥

पिक भुधि पावत बन में बैसित देखि

छाडत राज डगरिबा मयड जकेकि बाकम ॥३॥

काय गगरिबा भीतर बेतन मूय

करम छेप कियदा बक ज्योति स्वकम बाकम ॥५॥

बेतन कृति बिचार धरहु सम्तोप

राम दोष दुहु बंधन छूटत मोप बाकम० ॥१३॥

एक सखी सुमतिको लेकर नामक बेतनके पास मिळानेके लिए गयी। पहले सुनिपा एना किया करती थी। वहाँ वह सखी अपनी बाका सुमतिगी प्रथसा करते हुए बेतनसे कहती है 'हे साकन ! मैं बमोक्त बाका काबी हूँ। तुम देखो तो वह बँधी बनपम मुम्बरी है। ऐसी गारी टीना छछारमें बूसरी नहीं है। और हे बेगम ! हमकी प्रीति भी तुमसे ही सगी हुई है। तुम्हारी और इस राबेकी एक-दूसरेपर बनग्न रोति है। उनका बर्धन करनेमें मैं तुमरीया बसमर्ब हूँ।'^१

आध्यात्मिक विवाह

इसी प्रेमके प्रसंगमें आध्यात्मिक विवाहोंको किया जा सकता है। ये 'विवाह का 'विवाह विवाहकृत और 'विवाहकी आदि नामसे अभिहित हुए हैं। इनको दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—एक तो वह जब बीसा-दरबके

१ बनारसीलिपिअथ कथपुर मयावहकृति ५ ११८-१२३।

२ साई हो साकन बाक बमोक्त देखहु तो तुम कैसी बनी है।

ऐसी बहूँ निहुँ जोरु में मुँवर और न गारि जनेक बनी है ॥

याकि तै तोकि बहूँ बिन बेतन याहु भी प्रीति जु तो लो सगी है।

तेरी ओ राबे की रीति बर्धत मु जो ये बहूँ बह जान पनी है ॥

मद्रनिपास टग ज्योति ५ १५, ६ १४।

समय आचार्यका 'दीप्ता-सुमारी' ब्रजभाषा 'संयमभी' के साथ विवाह सम्पन्न होता है और सुमारी वह अब आत्माकानी नायकके साथ कनौके किनी मुचकनी सुमारी की गठि जुड़ती है। इनमें प्रथम प्रकारके विवाहोंका वर्णन करनेवाके कई उदा 'ऐतिहासिक वाच्यमंडल' में संरक्षित हैं। दूसरे प्रकारके विवाहमें सबसे प्राचीन विनयप्रसूरिका अन्तरंग विवाह प्रकामित हो चुका है। उद्यमकन मुक्ति और जेनन दुसरे प्रकारक अन्ति-रत्नी है। इसीके अन्तर्गत वह दुसरे की आता है। अब कि आत्माकानी नायक 'सिद्धरमभी' के साथ विवाह करने आता है। अन्तमकर पाठकोंके 'सिद्धरमभी-विवाह'का उल्लेख हो चुका है। वह १७ पद्योंका एक सुन्दर अन्त-नाम्य है। उन्होंने 'विनयीकी रसोई' में तो विवाहोपरकृत सुखायु जीवन और वन-विहारका भी उल्लेख किया है।

बनारसीरासमें तीर्थंकर शान्तिनाथका सिद्धरमभीसे विवाह दिखाया है। शान्तिनाथ विवाह-मण्डपमें जानेवाले हैं। होनेवाली बहूको अत्युत्तम दवाने लीं बकनी। वह कभीसे उनको अपना पति मान बठी है। वह अपनी लकीसे बहठी है, 'है सखी! आजका दिन अत्यधिक मनोहर है। किन्तु मेरा मननामा कभी तक नहीं आया। वह मेरा पति मुझ-बन्ध है और आजके सम्मान देहको धारण करनेवाका है, तभी तो मेरा मन-उत्सव आनन्दके आनन्दोक्ति हो बरता है। और इनी कारण मेरे मन-बनोर मुझका अनुभव कर रहे हैं। इसकी सुखायुणी अन्तिमकी कीर्ति नंतरमें लींकी हुई है। वह बुझकनी अन्तकारके समुद्रको बह करनेवाकी है। इनकी बाकीसे अमृत सरता है। मेरा लीपाम्य है जो मुझे ऐसे पति प्राप्त हुए हैं।'

तीर्थंकर ब्रजभाषाके 'संयमभी'के साथ विवाह होनेके वर्णन तो अत्युत्तम अक्षर है। इनमेंसे 'विनयेस्वरसूरि और 'विनोरससूरि विवाहका' एक सुन्दर नाम्य है। इसमें इन सूरिबोध संयमभीके साथ विवाह होनेका वर्णन है। इसकी

१. ऐतिहासिक वाच्यमंडल, अन्तमकर पाठको।

२. यहि एरी। किन्तु आज सुखायु मुझ काका आया लीं बरे।

यहि एरी। मन उत्सव आनन्द मुझ कन्धा बन्धा देह बरे ॥

बन्ध विवा मेरा अत्युत्तम लीं, मन-उत्सव मुझ करे।

अनन्तोक्ति सुखायुणी कीर्ति लीं, वह बुझ किन्तु विनाम हरे।

सुखायु नाक विनामी अन्तकारकी अब मुझ का लीपाम्य कक्षि।

की शान्ति विनयेस्वरसूरि का प्रभु, आज विवा मेरी यहि ॥१॥

बनारसीशान्तिनाथ, अन्तमकर, श्री शान्तिविनयसूरि अन्तमकर ५ १८६।

रचना वि सं १९३१ में हुई थी। हिन्दीके कवि मुमुक्षुभक्तका 'ऋषभविवाहका' भी ऐसी ही एक कृति है। इसमें मगवान् ऋषभनाथका वीरानु-कुमारीके साथ विवाह हुआ है। भावक ऋषभनाथका भागीश्वर बोवाहका भी बहुत ही प्रसिद्ध है। विवाहक समय मगवान् जिस चुनडीकी जोड़ा था वही चुनडी छपानेके लिए न जाने किसनी पत्निमा अपने पतिमास प्रार्थना करती रही है। छोछहवीं पताथी के निगमपत्रकी 'चुनडी' हिन्दी साहित्यको एक प्रसिद्ध रचना है। साधुकीर्तिकी 'चुनडी'में ही समोत्तरमक प्रवाह भी है।

सौर्येकर नेमीश्वर और राजुलका प्रेम

नेमीश्वर और राजुलके कथानकको केकर ३१ हिन्दीके भक्त-कवि रामाय भावको प्रकट करते रहे हैं। राजसेखर सुरिने विवाहके लिए राजुलको ऐसा सत्राया है कि इसमें बहुत काव्यत्व हो सञ्जात् हो सञ्ज है। किन्तु वह वही ही अपास्य मुद्रिण संवासित है, जैसे 'उषा सुवामिनि'में रामाना सौन्दर्य। राजुलकी छोछ-बनी सोनामें कुछ ऐसी बात है कि इससे पवित्रताको प्रेरणा मिलती है, बानबानी नहीं। विवाहमण्डपमें विराठी बधू जिसका जागकी प्रतीक्षा कर रही थी वह मूक-यष्टुर्बकि करन-कल्पसे प्रभावित होकर लोठ गया। उस समय बधूकी निकमिस्महट और पतिको या कैनेकी बेबनीका जो बिज हैमविजयसुरिने खींचा है वृत्तय नहीं खींच सवा। इपकीनिकी नेमिनाथ राजुल पीठ भी एक सुन्दर रचना है। इसमें भी नेमिनाथको या कैनेकी बेबनी है किन्तु वही सरस नहीं बनी कि हैमविजयने अंकित की है।

कवि मूररसासने नेमीश्वर और राजुलकी केकर अनेक पदोका निर्माण किया है। एक स्थानपर तो राजुलन अपनी मांसे प्रार्थना की है, हे मां! हेर न करो मुने धीम ही बहूँ भेज बी अहूँ हमारय प्वाठ वति रइया है। बर्न तो मुने कुछ भी अण्य नहीं अगता चारो ओर अँवेर-ही अँवेरा रिबाई देठा है। न याने नेमिन्वी रिबाकरना प्रजास्वभाग मुन कब रिबाई पडेवा। उनके बिना हमारय हृदयकी धरविन्द मूरसाया बवा है।^१ विमलिकनकी ऐसी विषट

१ इती एवञ्च दूतय अन्वाय, हेमविजय।

२. मां विस्म न लाव पटाव तहाँ री अहूँ अणपति पिय प्यारो।

और न मोहि मुदाय बधू अथ बीसे अणन अँचारो री। मां विजय ॥१॥

री बी नेमि विवाकर को बब देवा बरन उमारो।

बिन पिय देरी मूरसाय रइयो है। पर अरविज हमारो री। मा विजय ॥२॥

मूरसाय मूरमिनाथ कणकठा १३वीं पर ५ ८।

बाहू है जिसने करण छड़की मधि प्रार्थना करते हुए भी नहीं कहातो। कौनिक प्रेम-यमननें कज्या जाती है क्योंकि उसमें काम'की प्रधानता होती है, किन्तु यहाँ तो धर्मोक्ति और विष्णु प्रेमकी बात है। बर्धोक्तिकी तस्वीरमें ग्याव हारिक उचिन अनुचित प्यान नहीं उठता।

रामुचरु विद्योममें 'संवेचना'वाके पहलूकी ही प्रधानता है। मूबरदानमें रामुचके अन्त स्व विच्छको सहज स्वाभाविक हवसे मन्त्रियन्त किया है। रामुच अपनी सन्धीसे कहती है 'हे सखी ! मुझ यहाँ के बक यहाँ प्यारे बाणी'ति उहाँ है। मेमिस्वी चन्द्रके बिना यह आशा'रुफा चन्द्र मेरे सब तन मनको बजा रहा है। उनको किरणें नाचिकके तीरकी मति मन्त्रिके स्फुल्लोंको बरसाती है। पानिने तारे तो बंधारे हो हो रही है।"

"उहाँ के बक ही ! यहाँ बाणी'पति प्यारो।

मेमि निद्याकर विम यह चन्द्रा, तन मन बहल सनक ही उहाँ ॥१॥

किरन किभी नाचिक-धर-रति के क्यो पाचक को सखी।

तारे हैं अंगारे'सखी रजनी रनकस एक ही उहाँ ॥२॥

कही-कहीं रामुचके विच्छमें 'ऊंग के दर्शन होते है किन्तु जयमें नाचिकके 'पेदुलम ही आनेकी बात नहीं आ पानी है इसी कारण यह समाजा बचनसे बच गया है। यद्यपि रामुचका 'अर' भी ऐसा बक रहा है कि हाथ बढके समीप नहीं के जाया आ सकना किन्तु ऐसा नहीं कि बचकी बरसीते बचनकेमें सुरें बलम कमी हों। रामुच अपनी सन्धीसे कहती है, "मेमिस्वीचन्द्रके बिना मेरा विम रहना नहीं है। हे सखी ! देख मेरा हृदय बीना तन उठा है। तू अपने हाथकी निवट काकर देनती क्यों नहीं। मेरी विच्छमन्त्र बलवन्त कपूर और कमलके वरति हुर नहीं होनी उनको हुर हटा दे। मुझे तो 'कियराकजावर' भी बकर कपडा है। विष्णुम प्रमु मेमिस्वीचन्द्रके बिना मेरा 'द्विवरा' धीउक नहीं ही सकता।' विष्णु विद्योममें रामुच भी पीछी बड़ कमी है किन्तु ऐसा नहीं हुआ कि बचके धरीरम एक लोका मात भी न रहा हो। विच्छते धरी नदीमें उलका हृदय भी

१ मूबरदान सूचकियास, कन्धरु १२वीं पद, पृष्ठ २२।

२ मेमि बिना न रही मीरो विवच।

हेर ही हैनी तन धर कीनी कबल क्यों निज हाथ न निवच ॥मि ॥१॥

वरि वरि हुर कपूर कनक बज कबल ककर कबल'र विवच ॥मेमि ॥२॥

मूबर के प्रमु मेमि पिवा विम धीउक होय न रामुच द्विवरा ॥मेमि ॥३॥

वही २ वाँ पद ५ २२।

रहा है किन्तु उसकी बाँधोंसे जूनके बाँधू कमी नहीं हुआ। हठी तो वह भी बचसे घँटकर ही होनी किन्तु उनके हाथ मुँहकर सारंगी कमी नहीं बने।

वारहमासा

नेमीस्वर और राजुलको लेकर शैव हिन्दी-साहित्यमें वारहमासोकी भी रचना हुई है। इन सबमें कवि किमोहीकासका वारहमासा उत्तम है। प्रियाको प्रियके मुँहके अनिश्चयकी बाँधका सदैव रहनी है भके ही प्रिय मुँहमें रह रहा ही। तीर्थकर नेमीस्वर बोनरामी होकर, निराशुक्तापूर्वक विरगारपर तप कर रहे है किन्तु राजुलको संका है। अब साधनमें बनबोर घटाएँ जुड़ जायेंगी चारा औरसे मोर घोर करेते कोकिल कुङ्क मुनावेनी बामिनी बमकेगी और पुरवाईके साके बसेगी तो वह सुखपूर्वक तप न कर सकेंगे।^१ प्रियके लामनेपर तो राजुलकी बिना और भी बड़ ममी है। उसे बिनास है कि पतिका बाबा बिना रजाईके नहीं बनेगा। पताली बुननीसे तो काम बसेवा नही। तमपर भी कामकी फीमें इसी अस्तुमें निगलती है कोमक नातके नेमीस्वर उससे सब न सकेंगे^२ बैसाखरी गरमीको देखकर राजुल और भी अधिक व्याकुल है, क्याकि इस बरमीम नेम बरको प्यास बनेगी तो पीतक बच कहीं बिकेवा ? और तीब धूपसे तबठे बरबरोसे तनका घरीर बक बामेवा।^३

कवि बदमीबस्तमवा 'निजि राजुल वारहमासा भी एक प्रसिद्ध रचना है। इसमें कुल १४ पद्य है। प्रकृतिके रमणीय सन्निधानमें बिरहिनीके व्याकुल साधना परत सम्मिश्रण हुआ है। 'धावकाका माहू है चारा औरसे विघट घटाएँ बमड रही है। मोर घोर मचा रहे है। बासनागमें बामिनी बमक रही है। बामिनीमें

१. हेडिङ्ग, नृपतिनास १४वाँ पद्य ५ ६ और विनास्य बामिनीके नायना। विरह कर्तव्ये।

२. प्रिया साधन में इन लीजे नहीं बनबोर घटा जुर जावेनी।

बहुँ और तै मोर जु घोर करे नन कोकिल कुङ्क मुनावेनी ॥

निज रीत खेचरी में लुमी नहीं बरु बामन बमक डरावेनी।

पुरवाई की साँक सदाये नहीं छिन में तप तेज सुरावेनी ॥

कवि किमोहीकास वारहमासा केभिराहुणका वारहमासा नाम विख्याती प्रचारक काव्यक, काव्यकटा ४वाँ पद्य ५ २४।

३. बरी, १४वाँ पद्य ५ २०।

४. बरी, १२वाँ पद्य ५ २६।

कुम्भस्यन्त-मैत्रे सज्जानी बारण्य करनेवाकी भागिनियाकी विवश संघ भा रहा है। स्वाती नाराजकी बुरीसि बालककी पीड़ा की दूर हो गयी है। युष्क पुष्पीकी वेद की हरिबासीकी पाकर बिन सही है। विष्णु राजकुमारा न तो विष बाबा और न पनियाँ।” टीक इसी भाँति एक बार बायमीकी नापमनी की विनाय करते हुए यह छंदी की चातकने मुखमें स्वाती नाराजकी बुरे पत्र गयी और समुद्रकी तर सीधे भी मोठिबेसि घर गयी। इन स्मरण कर-करके अपने छात्रबाँपर भा परे छारस बोझने लगे और छात्रन भी दिखारि परन लगे। कासोके कृष्णसे इनमें प्रकाश हो गया किष्णु हमारे बल न फिरे नहीं बिदेसमें ही बूझ पन।” कवि पबली बासन भी ‘नेमिनाथबाह्यमासा कित्ता बा बिनमें कुछ १२ पत्र है। भी शिष्यन ना ‘नमिबाह्यमासा भो एक प्रसिद्ध काव्य है। उसके १२ सर्गोमें सीनरपे और भावार्थय व्याप्त है। भावय भास है, बननी बनभोर बटाएँ बनी बायी है। ललनकायी हुई विमुदी बमक रहो है उसके मध्यसे बय-सी ध्वनि फूट रही है, जो राजुनको विष बेकिने समान लबनी है। पौषा ‘विड-विड’ रट रहा है। बापुर और मोर बोक रहे है। ऐसे समयमें यदि नेवीबपर बिक भावें तो राजुन अत्यधिक मुनो हो।”^३

१. अमटी बिकट बनभोर बटा चिहुँ बीरनि मोरनि छोर मचामो ।
बमकै बिनि बागिनि यागिनि कुंमय भागिनि कुं विव को संघ घावो ।
बिब चातक पीठ ही पीड़ कई, भई राजहरी मुँह देहू बिपावो ।
पतियाँ पे न बाईं री प्रीतम की बकी भावय जायो पे नेम न बावो ॥
कवि लकांल्लक, वैशिष्ट्यनपारमसा वस्ता नम रही प्रकाश हुला प्रकाश ।
२. स्वाति मुँह चातक मुख परे । समुद्र सीप भीठी सब परे ॥
तरवर सँघरि हँस बकि भाव । छारस कुरखीह छात्रन देखाने ॥
भा परनास नाँस बन फूले । बँठ न फिरे बिदेसहि भूले ॥
बाकनी पबलन रं रामनम्र हुष्ण सन्नाहित, काटी भाकटी पबारीकी संघ
मूर्ति ललनकाय वि स १ ३ २ १० ५ १२१ ।
३. बन नी बनभोर बटा उगड़ी विमुदी बमकति छात्राहकि सी ।
बिनि नाम बकाज अबाज करत मु, कावय मो विष बेकि बिटी ॥
पौषा विड विड रटत रवय कु बापुर मोर बई ऊँकि सी ।
ऐसे भावय में बनु नमि मिठी मुख होन कई बसपय रिती ॥
बिन्हाएँ बेमि बाह्यमासा वस्ता प्रकाश हुला प्रकाश ।

आध्यात्मिक होलियाँ

बौद्ध साहित्यकार आध्यात्मिक होलियोंकी रचना करते रहे हैं। इनमें होलीक संग-उपायोंका आत्मासे रूपक मिलाया गया है। इनमें आकर्षण तो होना ही है, पावनता भी आ जाती है। ऐसी रचनाओंको 'पद्य' कहते हैं। इस विषयमें कवि बनारसीदासका 'पद्य' बहुत ही प्रसिद्ध है। उसमें आत्माकी भावक विद्यमुन्दरी से होली लेना है। जड़िने लिखा है। सद्गुरु आत्मरूपी बसन्त आ गया है और गुण भावकी पत्ते लहलहावने बने हैं। सुमतिको कोकिला पड़वही होकर गा छठी है और मनकी भीरे मशोमल होकर गुंजार कर रहे हैं। सुरतिकी अग्निज्वाला प्रकट हुई है, जिससे अहमकी बल बल गया है। अमोघर अमृतिक आत्मा बमकी पद्य लेस रहा है। इस भाँति आत्मध्यानके बलसे परमज्योति प्रकट हुई जिससे अहमकी होली बल गयी और आत्मा आत्म रममें मग्न होकर विद्य-मुन्दरीसे पद्य लेकने लगा।

विषय विरह पूरे मधो हो आये सद्गुरु बसन्त ।
 प्रगटी सुखचि सुखचिता हो मन मधुकर मधमन्त ॥
 सुमति कोकिला गहगही हो बही अपूरव पाठ ।
 मन्म कुन्दर बादर अये हो बट आही अङ्गुठाठ ॥
 गुण दक बरकव कहकह हो होहि अमूम पतझार ।
 अकिल विषय रति माकठी हो विरति बेकि विस्मार ॥
 सुरति अग्नि ज्वाला जगा हो समकिल भासु अमद ।
 इदव कमल चिकसित मधो हो प्राग सुखस मकरद ॥
 परम ज्योति प्रपर मई हो कागी होकिका पद्य ।
 बाठ काठ सब अरि बुझे हो गई पताई भाग ठ"

जबि आत्मवचने हो अर्थाके मध्य होलीकी रचना की है। एक और ली वृद्धि क्या आत्माकी गारियाँ हैं और बुनरी ओर आत्माके गुणकी पुण्य है। आन और ध्यानकी उक्त तथा ठाक बज रही हैं उनसे अमररूपकी बनबोर पद्य निकल रहा है। धर्मकी आल रणका गुनाल उठ रहा है और लमनाकी रंग होमो ही बलीन होम रला है। बीनों ही बल प्रसन्के उदारकी भाँति एक सुसरपर विषकारी भर भरकर छोड़ते हैं। इससे पुरुषधर्म वृद्धा है कि गुण बिलकी गारी हो तो उबरछे लिपनी पुण्यी है कि गुण बिलके छोटा हो। बाठ कर्मकी बाठ अनुभवकी अग्निमें बल-बुझपर आत्म हो गये। फिर तो लज्जनों

के बेवकूफी बचोर, शिवरामजीके आत्मबचनकी कविको टपटपी क्यार देवत
हो रहे ।”

आयो सहज बसंत केहें सख डारी होय ।
उठ बुधि बधा छिमा बहु झुंझी इत शिव रतन सजे गुन जोय ॥
गल प्यान डक लख बजन हैं अमरद दाम् होय बनचोरा ।
बरम सुपग गुकाक उड़य है समना रंय बुद्धि न चोरा ॥
परसन बचर नरि पिचकारी जोरठ दोनो करि करि जोरा ।
इतयें कई नारि तुम कन्धी उतयें कई कैन को जोरा ॥
बाड कड अनुभव पावक में कळ बुछ दाम्द भूँ सख जोरा ।
आनठ सिख आनन्द चम्पु कवि देखहि सउजन वीच चखेरा ॥”

मुरारदाजी कायिकाने जी अपनी छविमेंके साध यथा-वचनोंमें आत्मबचनी
वन्धी कविको केसर मोलकर जोर रये हुए नीरकी अमरबचनी पिचकारीमें
भरकर अपने प्रियनमके ऊपर छोड़ा । इन भाँति जमने अत्यधिक आत्मबका अनुभव
किया ।

अनरामजी होखियोंमें शिव उपस्थित करनेकी बहुभुज समता है । एक जोर
विनयवा है इतरी जोर शूद्र परिपति रागी । दोनों एक-दूसरेके हृदयको
अनुभववती रंयके मुरारिकपी पिचकारीके हाथ छिड़क रहे हैं । दोनों अर
अंय रंयमें सराबोर हो गये हैं । कोई बधा नहीं है । इस मुहमें दोनों लीन हैं ।
किसी प्रकार भी बिछुड़ते नहीं कल्पत । दोनों बहुत अनन्त बीरके युक्त हैं । प्रभुके
इत बहुभुज कौमुकको देखकर बर्षकका भवकनी गठ उभयिष्ठ होकर भावे किला
नहीं रहे कल्पत ।

“हारी की छाडवी क्यार मछनी है ।

विनयवा सुद्धि परिपति रागी रस बस बीरक चाहि रच्यो है ॥

१ आत्मपत्र, आत्मबचन कविको अचारक अमरदाम् अमरदाम् अमरदाम् अमरदाम् अमरदाम्
५ १२-१७ ।

२ सरवा नानर में कवि कवि केसर चोरि सुपग ।

आनंद नीर अमर पिचकारी जोरो नीरकी अंत ॥

होरो खेनोंकी भर भावे विचानंद अंत ॥

मुरारदाजी पर 'होरी खेनोंकी' अन्वय-अन्वयकी, वं रामुमार अन्वयिष्ठ,
आनंद अन्वयिष्ठ, आनंद ५ अं ।

३ अन्वय ५ अं १२, अं १२ अन्वयिष्ठकी अन्वयिष्ठ, अन्वय ।

अनुभव रंग सुरति पिचकारी छिरकन द्विय रै वा निहच्यी है ।
 अग-अंग सरसग सगसग बुहुषा कोऊ नाहि बच्यी है ॥
 सुन में कर्म न विछुरत क्यों हू, भीरव अनुक भवन्त बच्यो है ।
 अग प्रभु का अरुमुग कीगुक ककि मन नर मरो उमगि नच्यी है ।

इस बार जगन्नाथके प्रभुके लिए बौली भण्डी होती बन पड़ी है। अन्ध विभीके किए नहीं। उनको निज परिणति रानीने उन्हें भी अपने रंगमें रंग किया है। उनका रंग ऐसा-वैसा नहीं है। वह सातभण्डी ससित दुमकपी केसर और चारितकपी चोपाका मिलाकर बनाया गया है। रंगके साथ ही बुनरी औरसे ब्याकपी गुलाब-बबीरका भी प्रयोग हो रहा है। रानीने लुककपी नदोमें रामाको छना डाला है। नय और बतकपी नरकिया नामा भावसे मृत्य करती है। वे स्याहार कपी नारको बलाने हुए निम-नियम रूप और तानोसे रिहाठी रहती है। रानीने रामाको हम प्रकार रसके बरामे कर लिया है कि वह अन्ध नही जा पाता। उमसे सवत्वकपी फनुवा लेकर अपने मन्दिरमें बिरमा लिया है।

‘पेयी भीकी हारी प्रभु हो के बनि जावै ।
 निज परतति रानी रंग भीनी अपने रंग बिकारी ॥
 ग्याम सकिऊ इग केसर चारित चोपा चरि रचारी ।
 दया गुलाब अवीर उक्यावै सुधमद छकनि ककाल ॥
 नचकत मृन्पकारिनी नाचे नावा भाव बतारै ।
 रवाशुद माहू माहू अलापत कच तानन मी रितावै ॥
 कम रम बम करे काने जो अनत न जानन पावै ।
 मरबम अगुवा के अगति वै निज मन्दिर बिरमावै ॥’

नगरम होयी हो रही है। लवच जानकर छाया है। वैचारी मुक्ति उमसे निगान बचि है। उनका पनि अत्रन पर नहीं है। बहू दु भी है-अनीच दुमी। उनका दुग बेचल बिरह मय हो नहीं है। अनिनु इनलिए भी है कि पति सीउ बुमनिके बर हानी लेन रहा है। निज भक्ति लाया जाये। अनुमें उमसे ‘निज ग्यावी के प्रार्थना की कि उसे नवाकर कीप्राननेमें लजावना करे।’

१ बरमभर न १२, बर १२ दिग्बर अत्र वैचारी मन्दिर, वहीन ।

२ अन्धके हा रही हो ।

दोरो निज चोपन का नागी बहू दुग मुनि है को ॥

भीन बुमनिके बरि ग्यावी है निज बरि स्यावु को ।

द्वानि मुक्ति बहू निज ग्यावी मुन बर निज्या सो ॥

बरमभर १ बर १ दि अत्र अत्र वहीन (विरह) ।

जब 'पिबा' घर नहीं तो 'पत्नी' किससे होनी खेचे । वह हाथी न सेच
 सनेयी । उसके लिए इन वर्षकी होखी कोरी है । ऐसे समय वह उठ होखेगी
 याद करती है । जब वह उपसमझी केसर थोककर प्रियवधके साथ खेकी थी ।
 'सुमति मन्वानसे हाथ थोडकर कलती है कि है प्रभु ! मैं पुन' वह समय जब
 पाठेमी'

'पिबा दिन कामी देखी होती ।

भातमराम पिबा घर बाहीं मोलू होती कोरी ॥

जब बार प्रीयम हम बैठे उपसम केसरि थोरी ।

घामति वह समय कब पाठे सुमति कई कर खोरी ॥

मन्वात्मा आत्मचरने आध्यात्मिक क्षेत्र में विरहकी विविध बधामेति अनुभव
 विन खींचे है । प्रिया विरहिणी है । उसका पति बाहर जका गया है । वह
 पति बिना मुच-मुच खो बैठी है । महकके सरोखेमें बसकी बाँके नुक रही है ।
 पति नहीं आया । जब वह कैसे बीबे । विरहकी मुर्चमम बसकी प्राणरूपी शानुषो
 पी रहा है । खीटक पंखा कुमकुमा और चारनरी नुक नहीं होता । खीटक पनसे
 विरहात्मक हठता नहीं अफिनु तब-तबको और भी बढ़ता है । ऐसी ही बधामे
 एक दिन होखी जब बटी । लपी बाँचरने खेकमें मस्त हो बयी । विरहिणी रीके
 खेके । उसका मन बक रहा है । उसका समुचा तन काख (नुक) होकर उठा
 जाना है । हीकी एक ही दिन बन्धी है । उसका मन तो सब विन बकटा है ।
 हीकीके बलनेमें आनन्द है और इस बलनेमें तीव्र बुख'

"पिबा विनु छुद बुद खूकी हो ।

खीय कमाह बुख महक के छरके छानी हा ॥

प्रीयम प्राणपति पिबा प्रिया कैसे खीचे हो ।

प्रान पनम विरहाइका मुर्चमम बीबे हो ॥

खीटक बका कुमकुमा चंदन कहा काये हा ।

जबक न विरहात्मक देरे तनताप बकाये हो ॥

अगुन बाचर इकनिद्या हीरी सिरताकी हो ।

मेरे मन सा दिन खरे मन खान्ब उहावी हो ॥"

१ बही ।

आत्मचरनेमय श्रीमद् बुधिसागरबीजानु प्रबन्धी मन्वात्माविन आत्म-
 दानप्रकारक मन्वात्मा कर्मादि वि न १११४ वर ४१ इ ११६-१११ ।

अनन्य प्रेम

प्रेमम अनन्यताका होना अत्यावश्यक है। प्रेमीको प्रियके अतिरिक्त कुछ विचार ही न हो तथा वह सच्चा प्रेम है। माँ बापमें रामुल्लम दुन्दरे विवाहका प्रस्ताव किया गया कि रामुल्लमी नेमीस्वरके साथ प्रीचरे नहीं पढ़ने पायी थी। किन्तु प्रेम माँचरोमी अयेमा नहीं करना। रामुल्लको टी सिवा नेमीस्वरके अन्यथा नाम भी स्वीकारों नहीं था। इसी कारण उसने माँ-बापको फटकारते हुए कहा 'हे ठान! तुम्हारी जीव खूब बली है, जो बनने लड़कीके लिए भी गालियाँ निकालते हो। तुम्हें हर बात संभाळकर कहना चाहिए। सब स्थितियोंको एक-ही न समझो। मेरे लिए तो इस संसारम केवल नेमि-प्रभु ही एक मात्र पति है।'

'काह न बात समझाऊ कही तुम जानत हो यह बात मकी है ।
 गालियाँ ब्यङ्गन हो हमको सुनो तात मकी तुम जीव बली है ॥
 मैं सबको तुम तुल्य गिनी तुम जानत ना यह बात रकी है ।
 बा मन में पति नम प्रभु यह बात बिनाही को नाप बली है ॥'

महारामा आत्मवचन धम्म प्रेमको जिस भाँति आध्यात्मिक पत्रमें पद्य मके वैया द्वितीयका अर्थ काई कवि नहीं कर सका। कबोरमें धम्मप्रभाव है और आध्यात्मिकता को किन्तु वैया आवरण नहीं वैया कि आत्मवचनम है। आध्यात्मिक प्रवचन का अर्थ अतीतिककी ओर इधारा मके ही ही किन्तु अतीतिक कथानकके कारण उसमें यह एकतामता नहीं मिल सकी है। वैया कि आत्मवचनके मुक्तक परमि पायो जागी है। सुमानवाके पतानम्बके बहुत-से पर 'मववद्वन्ति मे वैसे नही अप सने वैसे कि सुमानक पक्षमें अये है। महारामा आत्मवचन वैयाके एक पहुँचे हुए सामु से। उनके पक्षम हृदयकी उत्कृष्टता है। अर्थात् एक स्वानपर विद्या है, 'मुद्राविकके हृदयमें निर्गुण ब्रह्मकी अनुभूतिसे ऐसा प्रेम बया है कि अनाधिकारसे बली आनेवाली ब्रह्मात्मकी नीच समाप्त हो गयो। हृदयके भीतर धर्मिके वीचक एक ऐसी सहज स्वादिको प्रकाशित किया है जिससे अमर स्वयं दूर हो गया और अनुभव वस्तु प्राप्त हो गयी। प्रेम एक ऐसा बचक तीर है कि जिसके लगना है वह डेर हो जाता है। यह एक ऐसा वीचका नाह है जिसको सुनकर आत्माकरी मृग तिनके तक चरना शुरू जाता है। प्रभु तो प्रेमसे निवृत्त है उसकी कहानी कही नहीं जा सकती।

सुदानम जागी अनुभव मीत सुहा ।

विन्द अज्ञान धमदि की मिट गई निज रति ॥ सुहा ॥१॥

ठीक इसी भाँति बनारसीबासकी 'गारी' के पास भी निरंजनदेव स्वयं प्रकट हुए हैं। वह दूधर-जधर भटकी नहीं। उसने अपने हृदयमें ध्यान समाया और निरंजनदेव जा गये। अब वह अपने जंजन-सैंधे तथाते छेते पुनःकाममान होकर देव रही हैं और प्रसन्नतासे भरे गीत गा रही हैं। उसके पाप और भय दूर भाग गये हैं। परमात्मा-सैंधे साजसजे रहते हुए, पाप और भय बँधे रह सकते हैं। उसका साजस साधारण नहीं है वह कामदेव-सैंधे सुन्दर और सुधारस-सा मधुर है। वह कर्मोंका शय कर देतेसे तुरन्त मिल जाता है।^१

विनयभाव

रतिके तीन प्रधान रूपोंमें भक्तव्रिपयक रति ही मुख्य है और निष्कपयकी बुद्धिसे उसमें विनयके समीप जा आते हैं। 'विनयभाव' को ही साहित्य परम्परा में 'सिन्धु-सेवकभाव' और दास्यभाव भी कहा जाता है। इसमें अपनी लपुना शीतता आराध्यकी महत्ता याचना और धरनागतकी रक्षाका भाव प्रमुख होता है। सेवाकी अनुभूति भी कष्ट है अनुभूति बट है जो निष्कामतासे अनुप्रापित हो। भक्तिसे सम्बन्धित दास्यभाव आराध्यकी महत्ताकी स्वीकृतिपर आधारित है निजी स्वार्थपर नहीं।

सेवा

लोकहृषीं बनायीके सामर्थ्यवान् कवि श्री मेघनन्दन उगाध्यायने लिखा है अश्रितभाव और शान्तिभाव मन्त्रदायक धीमन्मन्त्र और पुत्रोंके जन्मकी भाँति मुख्य प्रधान करनेवाले हैं। दोनों ही संसारके बुध हैं और नेत्रोपः ज्ञान-वित्त करते हैं। उन श्रितवराको प्रणाम करके और जनके पुत्रोंको मातर को उनकी सेवा करता है उनके पुत्रने मन्त्रार भर आते हैं और उनका मानव-मन सङ्ग हो

१. गहारे प्रकटे देव निरंजन ।

भटकी बड़ा बड़ा सर नदरत बड़ा बड़े मन रजन ॥ गहारे ॥१॥

लंजन दून बन नयनन नाडे बाडे विनयन रंजन ।

नजन पट अंतर करमाया सफल दुः स भय रंजन ॥ गहारे ॥२॥

कीनी कामदेव होय नाम भट बोही रंजन ।

और उवाच न बिल बनारसी सफल करमय रंजन ॥ गहारे ॥३॥

बनारसीदास बनारसीविनायक मधुर ११२४ ई. दोमदेवर पृ. २४ क. ।

माता है।" इन्हीं घटनाओं के प्रति कवि बहुत जिनसासने मन्वन् नृपपत्रकेवसे न मोक्ष माँगा और न इहलौकिक वैभव। उन्हीसे कहा है प्रभु। इन्हीं न मन्वन्से आपके चरमोको सेवका बनकर मिले। अठारहवीं घटनाओं के कवि मन्वन्से 'मन्वन्विद्यार्थ' के एक पत्रसे लिखा है 'हे मन्वन्! मैं याचक हूँ और आप दानी हो। मुझ और कुछ नहीं चाहिए केवल सेवका बनकर देनको दूना करें।' 'वैभव' की एक 'मन्वन्-प्राप्त' में भी उन्हींसे कहा है 'हे सर्वत्र वैभ। सर्वत्र सेरो सेवका बनकर प्राप्त प्रप्ता रहे एसा मेरा निश्चय है।'^१

मन्वन् मन्वन् कभी नहीं चाँहता कि वह मन्वन्से ही अपने आराध्यकी सेवा करे, बरिन्तु उसे तो यह देखकर परमात्मन्वन् मिलना है कि विश्वसे बड़े-बड़े वैभववाली की भी उन्हींसे आराध्यकी सेवा करते हैं। अठारहवीं घटनाओं के कवि मुन्वन्-कामसे लिखा है, "हे मन्वन्! तुम्हारा रथ इस पृथ्वीपर और उठ सकुसे कहाँ सर्वत्र हीप वैभोप्यमान है तथा उठ व्योममें कहाँ अन्वित्तन मुर चकने फिरेते हैं। उन्हींसे कहा है, असुर इन्व नर अमर विविध अन्तर और विचार तुम्हारे पैरोंकी सेवा करते हैं और निरन्तर जान कपलते हैं। हे पर्वशिरोन्व। तुम समुद्र अणुके नाव हा और सेवकाणी मन्वन्कामनाओंको विन्वामन्विके उन्वन् पूष करते हो। तुम सम्पत्ति भी बत हो और बोधराणी पन्वर भी बढ़ात हो।"^२ पाँचो अन्वन्के पन्व मन्वन्का अन्वन्स्याचक तो मन्वन्की सेवका ही एक

१ मन्वन्क वन्वका अन्वन्, तुम्हें सावर पुनिम अन्वन् ।

अन्वन् तुम्हें अन्वित्तन अन्वित्तन मन्वन्कामनाओंको ।

वे अन्वित्तन अन्वित्तन, वे पुँव गाह सुवन्वित्तन ।

पुन्व अन्वित्तन अन्वित्तन, मन्वन्कामनाओंको अन्वित्तन ।

मन्वन्कामनाओंको अन्वित्तन, अन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन ।

२ हेह तुम्हें मैं आर्ष बा ए, अन्वित्तन अन्वित्तन पन्वित्तन ।

अन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन, अन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन ।

अन्वित्तन अन्वित्तन, अन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन ।

३ मन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन ।

मैं आन्वित्तन अन्वित्तन ।

मैं तो आन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन ।

अन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन ।

४ आन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन ।

अन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन ।

५ अन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन अन्वित्तन ।

पुनोत्त चित्र है। इसका अतिरिक्त 'सामकस्यायक' में बह्व्यञ्जक प्राप्त हो जाने पर समवायक समव्यञ्जकी रचना स्वयं कुबेरन की या जो उसके सेवा-भावकी हो प्रतीक है।^१ उस समव्यञ्जकमें विद्यमान समवायकी जो नर-नारी सेवा करते थे उनकी अनिवार्यताय मान्य प्राप्त होता था। मातृक नामके देवता जो समव्यञ्जकके आठ-नामकी भोजन-प्रमाण पृथ्वीकी सर्वत्र शाङ्ग-बुहारकर पवित्र और निम्न रखते थे। उसपर मेघकुमार नामके देवता मन्थोरककी सुवृष्टि करते थे। मन्थ देवदत्त भगवान्‌के अच्छे समय उनसे भीसे कर्मोंकी सृष्टि करते थे।

मेधा समव्यञ्जकाने समवाय वाचक त्रिनेत्रकी सेवाकी बात करते हुए लिखा है 'हे ओष। तू देव-देवताओंमें क्यों बड़ीका किरता है। इन्द्र और तरेन्द्रोको क्या रिझाता है? देवी-देवताओंको क्यों मनाता है और क्या अश्वको छिर झुकाता है। सुयज्ञो अश्वलीबद्ध होकर नमस्कार क्यों करता है, और क्या पादुकी उपस्थितिके पैर छूता किरता है। न जाने तू पार्श्व त्रिनेत्रकी सेवा क्यों नहीं करना। त्रिषु तेषां चित्त और रागना ओष ही समाप्त हो जाय।

'काहे को देस विद्यांगर चाबत काहे रिझाबत इंदु बरिंद ।

काहे को देसि औ देव मनाबत काहे को शीम नबाबत चंद ॥

काह को सूरज सौं कर जोरत काहे निहोरत सूर सुनिंद ।

काहे को सोच करि दिव देव तू खेचत क्यों नहीं पावन किरंद ॥^२

'मेधा का पुत्र विद्यांग है कि समवायके बरसोकी सेवा करनेसे तुरन्त ही समस्त पुत्र प्रकट हो जाते हैं और इतनी 'रिद्धि-सिद्धि' मिलती है कि उनसे विरकायक परमानन्दका अनुभव किया जा सकता है। उन्होंने 'महिम्नि विद्यांगिन स्तुति' में लिखा है, अस्वमेदके मन्त्र मान्दके मन्त्र है जबका पुनमके मन्त्र जबका दिनम् है। वे कर्मोंके फलको इतने प्रमत्ता निरन्धन करते

१ वाचके उपकन्ध, बचमस्त घानकल्याणक, ११वीं पत्र, पार्ष्णि पृथ्वीमि पार्ष्णि घानक, काशी, १९२७ ई ५ २ ।

२ अतसुरी परमानन्द सबकी नादि नर के सेवाता ।

भोजन प्रमाण बग सुमार्जित जहाँ मास्त देवता ॥

पुनि बरहि मेघकुमार मन्थोरक सुवृष्टि मुहावनी ।

बह कमक तर सुर निरहि कमल तु बरपि मति मोवा बनी ।

११ी, पत्र ११वीं ५ १ १ ।

३ अन्धविद्यात मेघ प्रमत्ताकार काव्यमन्त्र, कर्म सप्त १९२६ ई दिनीना इति, ५ ११ ।

दुःख-दुःखको चूले और मद्भाषनको सुनको पूरते हैं। नुरंग कनकी सेवा करते हैं
 तरेख सुन पात है और नुवीण्ड ध्यान लगाने हैं और इस भाँति सभीको बच-
 निक सुन मिलना है। वे भववान् त्रिनचण्ड टाप मरने ही आनन्दकी सुर्षन
 बिगेर बैठे हैं।

आनन्द को बँद कियों पूनम को बँद कियों
 हेगिए दिनेद ठेमी मन्द अइबमेन को ।
 बरम को हरे बँद मय का करे निरबंद
 पूरे दुग इन्द्र सुन पूरे महा चैन को ॥
 सेपन सुनिंद पुन गावन नरिंद सेवा
 प्वावन सुनिंद, ठेहू पार्वे सुन केन को ।
 दिमी त्रिनचंद करे किय में सुखेंद सुमी
 केकिय को हँद वास्वै चूरीं मसु शैव को ॥”^१

अठारहवीं शताब्दीके कवि, बिहारीदासने अपनी पिछनी करनीपर परचाटन
 करते हुए बचवान्ने आर्चना की है। वे सर्वत्र तुम्हारी बाहुमें पजरठा रहा हूँ
 और सनना-नुबानी बडा टक मयीं। अतुर्ष भयवन् स्वार्थके बिना मैं निबवरसना
 ही भजन करता रहा। हे मनु! जब तदा मेरे हृदयमें बसो और मैं सर्वत्र
 आपके चम्बोका ठेकक रहूँ।^२ अठारहवीं शताब्दीमें “सिरोमणि शैव”ने “सिरोमणि शैवपदाई”
 के पुस्त होनेकी ही आचना की है।^३ सिरोमणि शैवने अपने “बर्मभार”में बचवान्
 महावीरके सन चरमोम मद्भाषनके मस्तकार किया है, त्रिनकी दुग और तरेख
 निरन्तर सेवा किया करते हैं और त्रिनका स्मरण करने मात्रके ही पाप दिकीन
 हो जाने हैं।^४ कवि त्रिनचण्डने अपनी “शैवीनी” के प्रथम अक्षरमें ही लिखा है

१ कवी अदिशिन वास्वैमि लुपि, २०-वीं अक्ष, ६ २६२ ।

२ परचाटन बाहू बहूपी तदा बचहूँ न साम्ब सुबा बस्यो ।
 अनुभव अपुरव स्वाहु मिल मिल विपय रस पाटी मस्यो ॥

मय बसो मो कर में बडा मनु, तुम चरण ठेकक रहो ।

वर मणि अति बूढ होहु मेरे आम्ब निबव मयीं बडा ॥

बिहारीदास, त्रिनचण्डादि, इरमिलनाबी-समय, लखन मस्तकार मरमर्ष
 त्रिनचण्ड २०-वीं अक्ष, ६ २६० २१ ।

३ बचवान्, शैव चरमोम, २०-वीं अक्ष, ६ २६० २१ ।

४ सिरोमणिदास बर्मभार, २०-वीं अक्ष, ६ २६० २१ ।

'भयवान् श्रुयन् विनेत्रश्च वधन मानसे पाप दूर हो जाते हैं और आनन्द बढ़ता है। उन भयवान्की मुग्ध तर और इन्द्र सर्वेश सवा किया करते हैं।'

वीनता

वीनताका अर्थ 'विधियाना नहीं है' अपितु आगम्यके गुणोंमें प्रभावित होकर अपनी विनम्रता अभिव्यक्त करना है। आपत्सूत्री स्वार्थशून्य होती है जब कि वीनतामें भक्ति भाव ही प्रधान है। आपत्सूत्रोंमें विवादा है और वीनतामें स्वयं-प्रेरकता। वीनता हृदय पावन होता है, जब कि आपत्सूत्रका अपावन। श्री विद्योगीहरिका कथन है, 'वीनताका निवास-स्थान वीन हृदय है। वीन हृदय ही मन्दिर है, वीन हृदय ही मस्तिष्क है और वीन हृदय ही गिरजा है।' वीन अपने वीनतासे याचना भी करता है किन्तु स्वाभिमानके साथ। महात्मा तुलसीदासने उसकी मानी मंयता लिखा है। यह ही उसकी धाम है।

मूलरचासके पदोंमें 'वीनदयाकु' शब्दका बहुत प्रयोग हुआ है। एक स्थानपर उन्होंने भयवान् विनेत्रको सम्बोधन करते हुए लिखा है, हे जगन्मुकुट। हमारी एक सरल मुनि। तुम वीनदयाकु हो और मैं संसारी बुद्धिया हूँ। इस रामारकी चारों गणियोंमें घूमते-भूमते मुझे अनाविकाल भीठ गया और किञ्चित्मात्र भी मुझ नहीं पा सका। बुद्ध हो-बुद्ध मिरुते रहे। हे जिन। तुम्हारे सुपसको मुनकर जब तुम्हारे पास जाता हूँ। तुम संसारके नीति-निपुण राजा हो। हमारा म्याय कर दोबि।

श्री घातनरायने जिनय मरा जपालम्भ अपने वीनदयाकु भयवान्की दिया है। उन्होंने कहा है प्रभु! तुम वीनदयाकु कहकाने हो किन्तु स्वयं तो मुक्तिमें जा बैठे हो और हम इन संसारमें मर-जाए रहे हैं। हम तो मर और बचनेसे दोनों काल तुम्हारा नाम अपने हैं और तुम हम कुछ नहीं देन। बनाओ फिर हमारा क्या हाथ होमा। हम जैसे बुरे जो कुछ भी हैं तुम्हारे

१ वेस्वो श्रुयन् विनेत्रं तत्र तैरे पात्रिक दूरि पयी ।

प्रथम विनेत्रं चण्ड कर्मि गुर-तद कथ ।

तेके मुग्ध तर इव आनन्द मयी ॥ १ ॥ ६ ॥

२ श्री विद्योगी हरि, वीनोक्त अर्थ 'वीनता और नाशिता' ही कथनानुसार लम्बादिन अन्तर्गत वेदक सरल कल्पनी भयना कृत २१२२ १ २ ६ ।

३ मूलरचा वीनोक्त हरविजयराजी समा ६० २१ ।

भक्त हैं और तुम हमारी चारको जानते हो। हम कोई भीतिक वैश्य नहीं चाहते केवल जान हमारे राज-नेर्षिको हटा बीजिए। हे प्रभु ! हमने निष्ठा ही चुने हो पती हा और हमने कितने ही पाप किये हों किन्तु आप ही करवाने समुद्र हो। हमको एक बार और केवल एक बार हम संसारसे निकाल लो वर दाना ही निवेदन है।”^१

लघुता

भारतम्भके समय लघुताकी अनुमति साहित्यकाकी बोलक है। विद्य सतके भक्तका सिर भक्तानुके चरवावर मुक ही नहीं सकता। लघुतासे बहूवार हटता है और विनय उत्पन्न होती है। तुलसीदासकी विनयपरिभा—लघुताके भावसे ही बोलप्रोठ है। क्षेत्र मन्दि कवियोंकी रचनाओंमें भी लघुताका भाव है।

कवि बनारसीदासने भक्तानु विने-इसे प्रार्थना करते हुए कहा “ओ कमठ-के मानका भक्त करनेवाले गरिमा और सम्भार मुचोके समुद्र है, तथा विनके समका वर्णन करके सुरमुकुंभी पार प्राप्त नहीं कर सकते ये मन्नाली बन्धि विनको कहनेका प्रयास कर रहा है। भक्तानु भक्तानुका वर यष्ट है और मेरी बुद्धि जगन। प्रभुका स्वयं अत्यधिक भक्त है और जगह, मैं जगहो वैसे ही नहीं कर सकता वैसे दिन जग्य जग्य एवि-किरणके ज्योतको नहीं वह सकता।”^२

भक्तके पाठ ऐी बुद्धि नहीं जो वह भक्तानु विनेशकी स्तुति कर लके किन्तु फिर भी वह करता है क्योंकि करे दिना रह नहीं सकता। पाण्डे हेमचन्द्रने इमी भावको केवर अपनी लघुता अभिप्रेत की है, मैं बुद्धिहीन होते हुए भी आपके चरकोकी स्तुति करनेका प्रयास कर रहा है वह बीता ही है वैसे कि कोई मुर्ख बालक अपने प्रतिबिम्बित चन्द्रको पकड़नेकी इच्छा करता है। आपके भक्तानु मुचोको कहना इच्छाकाकरी पवनसे ज्योत समुद्रको बुझावोति तैर जाना है।”^३ अपनी लघुता दिवाने हुए पाण्डे करवन्धने ‘निर्वाचि कम्पायके मन्ने

१ श्री मन्नाका वृत्त मन्ना, भाग्यजान :

२ बनारसीदास कल्याणकरविर लेख जगया चौधरी ३-४ बनारसीविनायक, लघुता, १९३४ पृ १५४।

३ पाण्डे हेमचन्द्र मन्नाकर लोच भाषा चौधरी ३-४ वृत्तविन्यायी समग्र १९३२ पृ ५ १६४।

लिखा है, बुद्धि-हीन होते हुए भी मैं भक्तिसे विवश होकर ही भगवान्‌की स्तुति कर सका हूँ। मेरा मंगलमोठ प्रबन्ध बुद्धिके न होते हुए भी भक्तिसे ही अनुप्राणित है।

मन भगवान्‌को स्तुति करना चाहता है किन्तु कैसे करे उसमें सामर्थ्य तो है ही नहीं। इसी भावको आराम्यक इंससे अभिव्यक्त करते हुए चानतरामजीने कहा है प्रभु, मैं तेरी स्तुति किस इंससे करूँ। जब भगवन् भी करत हुए पार प्राण नहीं कर पाते तो फिर मेरी बुद्धि क्या है। इन्द्र अग्नि-भर सहस्र विज्ञानोंको धारण कर तुम्हारे गहको कर्ता है, फिर भी पूरा नहीं कह पाता। फिर भैया मैं एक विज्ञानसे बसे कहनेमें कैसे समय हो सकता हूँ। मेरा यह प्रयास बीसा ही होया जैसे सस्तू सूर्यके गुणोंको कहनेका उपक्रम करे। हे भगवन्! तुम्हारे गुणोंको कहनेका बचनोम जैसे ही बक नहीं है जैसे मेजोंमें आकाशके तारे बिजने की शक्ति नहीं होती।

भ्रमु मैं किहि बिधि बुति करीं तेरी।

गणवर कहत पार नहिं पावै कदा बुद्धि है मेरी ॥ प्रभु ॥ १३ ॥

एक बीम मरि सहस्र बीम हरि तुम बस होत न पूरा।

एक बीम कैमें गुण गावै बख्क कइ किमि सुरा ॥ प्रभु ॥ १४ ॥

जमर कत्र सिंहासन बरनों मे गुण तुमचें न्यारे।

तुम गुण कहत बखन बख नहिं बैन गिबै किमि तारे ॥ प्रभु ॥ १५ ॥

आराम्यकी महिमा

आराम्यकी महिमाकी स्वीकृतिसे बिना विनयका भाव निभ ही नहीं छपता। जबतक मरुत आराम्यके गुणोंपर विमुख न होया धर्मको छपातगामें न तो एक-छानता जायेगी और न लज्जाई। आराम्यकी महिमाकी अनुमृति शिथली बहरी होती जायेगी मरुतका हूचम बटना ही पुनीत और आराम्यमय हो जायेगा। ज्वात्यके गुणोंकी धरम अनुमृति पूज्य और पूजकके भेदको मिटा देती है।

छोछड़कीं बाटान्कीके कवि पद्यलिखने बर्म विचार स्तोत्रका निर्माण किया वा विमर्में भगवान् शिवजीकी महिमाका वर्णन करते हुए अर्थात् लिखा है,

१ मैं मतिहीन अयतिवश भावन आह्वय।

मंगल बीत प्रबन्ध नु निजपुंज आह्वय ॥

बाबडे अणकन्त्र मंगलबीत मन्त्र निर्मात्रक्यापक, २२वाँ पद्य धामनीक
पूर्वावस्थि ५ १ १।

२. पालक्याक, पालक्याक धाम्य कल्याण २२वाँ पद्य, ५ ११-२ ।

'हे भगवान् ! तुम्हारा वचन करने मागते ही मुझे ऐसा विचित्र हाटा है जैसे कि उत्तम चित्रामणि ही मिला बसी ही जैसे हमारे आपनमें नरकवृक्ष विचित्र पत्तोंसे फल नमा हो और जैसे हमारे परमे सुरसेनुका ही बरतार हो गया हो । जिस नितीने भगवान् आपननाचको अपनी मन्त्रिसे प्रसन्न कर किया उसकी उसी मनोवाञ्छित अभिप्रायार्थें सद्बचनों ही पूर्ये हो जाती हैं ।' इसी सत्ताम्नीके एक दुन्दुबे कवि येकनन्दन उपाध्यायन जनन धीमन्वर विमलनगममि स्वामी लोमन्वरकी मन्त्रिमापर विमोहित होकर लिखा है, 'जग विनेत्र भगवान् की वच हो जिसके वचनोम "तगा जमून भय है कि उद्यम समझ नरका समुद्र-कुण्ड भी कुण्ड-ना प्रतिभाभित होना है । भगवान् के लेश कोमल और विद्यल कमठरी भाँति है । देव दुन्दुमिनी सदा भगवान् की मन्त्रिमाको उद्बोधित करती रहती हैं । भगवान् जनन मुक्तोने प्रतीक है और लला कृपा-नटास पक्ष-नरमें ही भगवको संसार-समुद्रसे पार कर देता है । मकतकी पूत विश्वास है कि ऐसे भगवान् को प्रयास करनेसे यल निरात्म्य रहकर बहूत होकर बीड गयी पायेया । जैसे भगवन्म निरोग और बहु भय-समुद्रको पार कर देया ।'^१

सत्ताम्नीके उपाध्यायने कवि विमलनगमने 'अभित्पंचाद्यत में परम्यतमकी वच भयतार करते हुए कहा है 'जिनका स्वल्प पावन है मूर्ति अनुभव है और जिसको बाणी नरकासे परो हुई है । इन संभवत भगवान् ने एक बोर बोझारी भाँति जान बूझमें बीडको बनुपकी बालन दिया है । जैसे टीकन बाणकी छोड़ छोड़कर वे अपने समु भीहका वच करते हैं । संसारमें ऐसे परम्यतम एत भगवान् की सदा वच-वचकार होये ।' अत्ताम्नीके उपाध्यायने कवि विमोहीनाचने अपने 'अनुविमनि जिन ऐकन उर्वय्या'में भगवान् आदिनाचकी मन्त्रिमाका उन्मैल करते हुए लिखा है 'जिसके चरभारविन्दाकी पूजा करनेके लिए बड़े-बड़े सुरेण दन्त और देवोंके समूह आया करते हैं और जिसके चारों ओर चन्द्र-जैती बाया उठती गइती है जिसके नखोंर कगरो सुबौंकी किरणें स्थीलाचर की जा नवती है और जिसके मुखरो देवचर कायदेवकी शोभा भी वरप्रदिन हो जाती है, जिनकी

१ भगव तुम्ह पिह्वाच अकउ वितापयि अकिमर ।

सुरेण वंशधि अम्ह अकउ विविह्वारि फकिपय ।।

मुग्हसेनु वंशधिहि नाइ अम्हू अचपरिवर ।

अइ भेचउ निरि रिउहमाइ नपवजिय हरियउ ।।

कन्तिलक, वनविचारलीन वंशिक ।

येकनन्दन उपाध्याय, धीमन्वर विमलनगमन् इनी मन्त्रिका दुत्तय जन्मान ।

२ विमलनगमन्, अभित्पंचाद्यत, मन्त्रि वच, मन्त्रि संभव कन्तु, छ २ ।।

उत्तम देह रूपनकी मूर्ति बमकठी है और उसमें सात भव साक्षात् दिखाई देते हैं ऐसे भववान् नाभिलम्बनकी हमारा विकास नमस्कार हो।" इसी घटावरीके कवि जिनहृदये लिखा है 'भववान् आरिनामकी मूर, नर और इन्द्र सभी सेवा करते हैं। उनके वर्णन करन-भावसे ही पाप दूर भाग जाते हैं। कश्चियुग्मे किये तो वे कल्पवृक्षकी मूर्ति हैं। सारा संसार उनके चरणोपर सुबठा है। उनकी महिमा और कीर्ति इतनी अधिक है कि कोई अछका पार नहीं वा सरता। सब स्वार्थोपर जिनराजकी ज्योति जयमया रही है। वे भव-मनुष्यको पार करनेके सिन्हाहावरी मूर्ति हैं। प्रभुकीही छवि मोदनी और बनुर है उनका रूप अद्भुत है और वे बर्मके सन्ने राजा हैं। हमारे नेत्र ज्यों ही भगवान्को देखते हैं कि सुख के बादल बरस पड़ते हैं।

‘देवकी ज्ञापन जिनहृदय तेरे पाठिक दूरि गयी
प्रथम जिनहृदय कन्ध कलि सुर-रुद कन्द ।
सभी सुर नर इह आनन्द मयी ॥
आके महिमा ज्योति सार प्रसिद्ध बड़ी संसार
कोक न कहत पार जगत्त बची ।
पंचम धारि में भाग ज्योति जिनराज
धरतिजु को जिहाज धामि कै ज्यो ॥
बन्धा अद्भुत रूप मोदनी छवि अद्भुत
धरम की साथी मूर प्रभुकी ज्यो ।
कई जिन हरपित बधध भारे निरलिखत
सुख धन धरमठ इति उद्गी ॥”

अभ्यसे महत्ता

भक्ति-नाटकके सभी कवियोंमें जयने-जयन आराध्यको ज्योतिसे ज्योति अधिक महिमावान् बनकाया है और जैन कवि भी उसके अनन्वय रूप नहीं हैं। जयत कविनाका यह भाव इनकी अनुशरताका नहीं कविनु जयमनाका सूचक है।

सप्तगृही घनान्की पान्थे हैमराजने 'जयजामर स्तोत्र भाषा' में आरि प्रभुकी स्तुति करते हुए लिखा है, 'हे भयबन् ! जो ज्ञान आपन मुनीधित होता है, वह

१ किमोदीताल अनुकिरति जिनकल्पन सपथ रामरानने हिन्दीके इन्स्टिट्यूट प्रबोधी जेज कर्पुर भाग, तारिल सल्लान, कन्नपुर १९२४ इ १९२५।

२ जिनदरर्षी श्रीमती वरता वर रामरानने हिन्दीके इन्स्टिट्यूट प्रबोधी जेज श्रीमती भाग, इ १९१ १९२४।

विष्णु और महादेवमें नहीं हो सकता। जन्म जो चमक महारत्नमें होती है वह काँचके टुकड़ेमें कहीं पावो या सकती है। कवि बिहारीदासने भी 'बातमा' की देवकी भारती करते हुए कहा है "ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर त्रैलोक्य विघ्नका ध्यान कराते हैं और सन्तुष्ट साधु विघ्नका गुण पाते हैं मैं जब बातमाईका की भारती करता हूँ।" कवि दानदरामने एक परमें मन्वान् मेमिनाथको महान् ज्ञानी और बीनरायी बताते हुए यह स्वीकार किया है कि उनके समय अन्य कोई देव नहीं है। उनका कथन है 'हे मन्वान् मेमिनाथ ! इस विश्वमें तुम्हीं सबसे अधिक ज्ञानी हो। तुम्हीं हमारे देव और गुरु हो। तुम्हारी कृपासे ही हमने सकल इन्द्रियोंका ज्ञान किया है। हमने तीनों भुवनोंको ज्ञान कराया है किन्तु तुम्हारे समान अन्य कोई देव दिखाई नहीं दिया। संसारमें अन्य जितने भी देवता हैं सब रावी होती कामी बचवा मानी हैं, किन्तु आप बीनरायी और बचवायी हो। सब जीवनमन्त्रोंका राजकुल रानीको छोड़कर तुमने जिस इन्द्रिय-व्यवस्था परिचय दिया या अन्य कोई देव नहीं है सकल। हे मन्वान्, मुझे इस संसारसे निकाल दो, इन घटीय प्राणी हैं।" मन्वान् विवेककी बाणीको अन्य देवोंकी मिथ्याबाणीसे अलग बताते हुए भूवरदासने किया है 'बाक और वायके रूपमें बनेर बन्दर है। मन्म कहीं कहींकी बाणी और कहीं कोयलकी टेर। कहीं मारी मनु और कहीं विचार बचिया कहीं पूजोरा बनेका और कहीं मन्मसका बनेर। यदि

- १ जो सुबोध सोई तुम माहि । हरि हर आदिक में सो माहि ॥
जो बुधि महारत्न में हीय । जन्म सब नाई नहिं छोव ॥
बाबडे हेमदास, मन्मन्त्र कोष यात्रा २ भाँ १८, हरमिनाथी सभ्य १९२९ ई ५ १९९।
- २ ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ध्याई । साधु सकल जिई को गुण पावै ॥
करी भारती बातमा देव । गुण परवान बनत बनेवा ॥
बिहारीदास, भाष्याकी भारती, हरमिनाथी सभ्य, १९२९ ई ५ २९।
- ३ ज्ञानी ज्ञानी ज्ञानी मेमिनी । तुम ही हो ज्ञानी ॥
तुम्हीं देव गुरु तुम्हीं हमारे, सकल हरब ज्ञानी ॥१॥
गुण समान नौद देव न देखा तीन भवन ज्ञानी ।
आप ठरे मन्म बीननि ठारे बनता नहिं ज्ञानी ॥२॥
और देव सब रावी होती कामी की मानी ।
तुम ही बीनराय बचवायी ठजि राजकुल रानी ॥३॥
सालनराम निकाल बनत हैं इन बनेर प्राणी ॥४॥
बाबदानदरसभ्य कनकदा २ भाँ १८, ५ १९।

कोई पारखी निहारकर देखे तो उसे बेल बेल और अणु बीनोम स्पष्ट अन्तर दिखाई देगा ।

‘शैव करि केतकी कनर एक कही बाप
 एक दूब गाप दूब अन्तर बनेर है ।
 पीरो हीठ री री पै न रीस और कंचन की
 कहां काग बांयो कहां कोचक की डेर है ।
 कहां मग मारी कहां अगिबा बिचारी कहां
 पूनी को उजारी कहां माचस जम्बेर है ।
 पच्छ कोरि पारखी निहार मेक नीके करि
 बेल बेल और बेल इतर्षी ही फेर है ॥’

नाम-अप

मगवान्के नाम-अपको महिमाको सभी मन्त्र कवियोंने एक स्वरसे स्वीकार किया है । तुलसीको बिनय-पत्रिका का एक बहुत बड़ा अंश मगवान्के नामकी महत्तासे भरा हुआ है । शैव कवियोंने भी बिनयके नाम-अप बमलकारको स्वीकार किया है । उनकी बुद्धिमें मगवान्के नामसे मोक्ष प्राप्ति होता है । मगवान्के नामसे अक्षयसीका पर विजना तो बहुत ही आसान है । अर्थात् नाम-अपसे इहलोक और परलोक दोनों ही सचटै हैं ।

सत्तरहवो सताश्रोके कवि कुमुदबन्धने मन्त्र बाहुबली अन्वके आरम्भ में ही मगवाचरण करते हुए लिखा है ‘मै सय बायीस्वर प्रभुके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ बिचके नाम देने मात्रसे ही संसारका फेर कूट जाता है । अर्थात् यह भीव भव भ्रमचसे मुक्त हो जाता है’^१ । श्री कुमुदबन्धामने अपने गणकार अन्वमें पंचपरमेश्वरीके नामकी महत्ताका बखान करते हुए लिखा है, ‘मो तिस्य प्रति गणकार’को अपता है उसको संसारकी संपत्तियाँ ही मिळ ही जाती है और साक्षर विधि भी उपलब्ध होती है’^२ इसी सताश्रीके कवि मनराजने ‘मनराज-विद्यास’में लिखा है । ‘अष्टहन्तके नामसे आठ कर्मकपी

१. बेलरामक, १६वाँ पद, कलकत्ता पृ १-२ ।

२. पदविधि पर बायीस्वर केरा जेह नामे कूटे भव फेर ।

कुमुदबन्ध मरत्वाङ्कुरलि अन्व पदता पद, मद्रक्तिर्मगह अणुपु, १६१

पृ २४२ ।

३. कुमुदबन्ध, मन्त्रकार अन्व अर्जुनप्रकाशक शैव श्रुतकवियों पद्यका भाग, बम्बई १९२६ ई पृ २२९ ।

धनु मद्र हा जाने है और 'सिद्ध'के अन्तर्गत सब काम सिद्ध हो पाते हैं।
 आचार्यजी अतिशय सद्गुणोपासना मन्त्रोपासना हीठा हैं। उपासनायके अन्तर्गत 'उपपासना'
 जैसे शब्द आते हैं और माधुकीके स्वरूपसे सब मनोकामनाएँ पूरी हो जाती हैं।
 इस शक्ति परमेश्वरमेष्टीके नामस्मरणका नाम इस शक्तिको त्रिजगाम अर्थात् मोक्ष प्राप्त
 करा देता है। श्री परमादिजगतीन 'आत्मरूपन अष्टादश'के एक पद्यमें लिखा है
 'अरे जो ज्ञान ! तू ही तंमारके अन्तर्गत सबों कला हुआ है। मन्त्रानु विरक्तके
 नामका अन्तर्गत कर। उद्युक्तने श्री मन्त्रानुके नाम जानेहा हो उद्वेग रिखा है।"

आत्मरूपन अन्तर्गत सबको उद्धारते हुए लिखा है 'हे ज्ञान ! तू ही मन्त्ररूपन
 अन्तर्गत विरक्तको अत्र त्रिजगाम नाम केनेसे उद्धारमानमें कराओ पाओके शब्द कह
 जाते हैं। त्रिजगाम नामको हस्त कवीन्द्र और अष्टादश श्री पाते हैं तथा त्रिजगाम
 नामकी शानके प्रकाशने लिखा आत्म स्वतः ही मद्र हो जाता है। त्रिजगाम
 नामके उद्धार अन्तर्गत मन्त्र और पाठक अन्तर्गत श्री कोई नहीं है, पत्नीके नामकी
 नित्य प्रति अन्तर्गत और त्रिजगाम विरक्तको छोड़ दो।

रे मन्त्र ! मन्त्र मन्त्र हीनरुपाक ॥

आत्म नाम लेते हुए त्रिजगाम ही अन्तर्गत अन्तर्गत मन्त्र ॥ रे मन्त्र ॥

हस्त अविन्दु अन्तर्गत गाँव जाओ नाम रसाक ।

आत्म नाम आत्म परमेश्वरी शानो लिखा आत्म ॥ रे मन्त्र ॥

आत्म नाम समाप्त नहीं कन्तु अन्तर्गत मन्त्र पठाक ।

साई नाम अन्तर्गत विरक्त आत्म छोड़ विरक्त त्रिजगाम ॥ रे मन्त्र ॥^३

१ करमाधिक अन्तर्गत श्री अन्तर्गत नाम

सिद्ध करे नाम सब सिद्ध को अन्तर्गत ॥

अन्तर्गत सुगुण अन्तर्गत आत्म शानो

आचार्य अन्तर्गत अन्तर्गत आत्म मन्त्र ॥

अन्तर्गत अन्तर्गत श्री अन्तर्गत अन्तर्गत

आत्म परिपूरण श्री सुमन्त्र ॥

अन्तर्गत अन्तर्गत श्री अन्तर्गत अन्तर्गत

आत्म अन्तर्गत अन्तर्गत श्री अन्तर्गत ॥

अन्तर्गत, अन्तर्गत लिखा, अन्तर्गत १ अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत ।

२ अन्तर्गत नाम अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत ।

सुगुण अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत ॥ अन्तर्गत ॥

अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत, अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत ।

३ अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत १९१० ई, ५ १ ।

छान्तिभाव

पहलेक आचार्योंने छान्ति को शास्त्रिस्वमें अतिवचनीय आत्मन्दका विधायक नहीं माना था किन्तु 'पञ्चिदशराज के अकादश तर्कों में उसे भी उसके पदपर प्रतिष्ठित किया। सबसे अधिकतर उसकी गणना रसोमें होती जाती आ रही है। उसे भिन्नकर भी रस माने जाते हैं। अनाचार्योंने भी इन्हीं को रसोको स्वीकार किया है, किन्तु उन्होंने शृंगारके स्वातपर छान्तिको रस-राज माना है। उनका कथन है कि अतिवचनीय आत्मन्दकी सन्धी अनुभूति रास-रूप नामक मनोविचारके अपसम हो जानेपर ही होती है। रास-रूपसे सम्बन्धित अर्थ जाठ रसोके स्वायी भावसे उर-रस रूप आत्मन्दमें बहु महत्पण नहीं होता जो छान्तिमें पामा जाता है। स्वायी आत्मन्दकी बुद्धिसे तो 'छान्ति हा एक मात्र रस है। कवि बनारसीदासने 'नवमा छान्ति रसमि की नायक माना है। उन्होंने तो जाठ रसोका अन्तर्मात्र भी छान्ति रसमें ही किया है। डॉक्टर भवभानुदासने भी अपने 'रस मीमांसा' नामके निबन्धमें अनेकानेक संस्कृत ब्रह्महरणोके साथ 'छान्ति'को रसरज सिद्ध किया है।

अधिकतर मन्त्रिका सम्बन्ध है शैव और अशैव सन्धीमें छान्ति का ही प्रभावता ही है। यदि शास्त्रिस्वक मठानुसार 'परमुरक्तिरोत्तरं ही मन्त्रि है, तो यह भी ठीक है कि ईश्वरमें परमुरक्ति तभी हो सकती है जब अपरको अनुरक्ति समाप्त हो। अर्थात् ओषकी मन-प्रवृत्ति संसारके अन्त परासि अनु-पान-हीन होकर ईश्वरमें अनुपान करन कर्म तभी बहु मन्त्रि है अन्वया नहीं। और संसारको असार, अन्वित्य तथा बुधमन मानकर मनका आत्मा अथवा परमात्मामें वैश्रित हो जाना ही छान्ति है। इस भाँति ईश्वरमें 'परमुरक्ति का अर्थ भी छान्ति ही हुआ। स्वामी सनातनदेवजीने 'अपने भाव मन्त्रि-की भूमिकार्य' नामक निबन्धमें लिखा है 'मन्त्रिदनुराय अनेके अर्थ अस्तु और अन्वित्यको प्रति मनमें वैश्रित हो जाना भी स्वाभाविक ही है। मन्त्रि-आत्ममें अपरत्वेमकी इस प्रारम्भिक अवस्थाका नाम ही छान्तिभाव है। मन्त्रिण यो

- १ प्रथम विचार थीर हुआ रस तीर्थी रस कवना मूलशायक।
हास्य अनुर्भं छर रस पञ्चम छट्टम रस बीजक विधायक ॥
सप्तम अथ अष्टम रस अक्षुण्ण नवमो छान्ति सति की नायक।
ए नव रस एव नव नाटक भी अर्ह मन सौह तिहि कायक ॥
बनारसीदास नायक संवत् ११११, वं बुद्धिमान् भावककी दीक्षासहित शैव सम्बन्ध रत्नाकर कार्यालय कर्त्त १ ११११ ५ ११११।
- २ स्वामी सनातनदेवजी, भावमन्त्रि-की भूमिकार्य कम्पाण मन्त्रि विरोधात्, वर्ष ११११ ५ ११११।

अपन भक्तिमूर्तमें 'सा त्वस्मिन् परम प्रेमरूपा अमृतस्वरूपा ब'ने बल यना है।' हममें पड़े हुए परम प्रेम'से यह ही स्वनि निकली है कि संसारसे वैराग्य-मनुष्य होकर एकमात्र ईश्वरसे प्रेम किया जाये। साहित्यमें भी वैराग्य ही प्रधानता है। मक्ति रसामृतमिथुन'में अर्ध्यामिक पितामूर्तं कृष्णमृगोर्ध्वं उतमा मक्ति।^१ उपमूर्तन कथनका ही समचन करती है। यह कहना उचित नहीं है कि अनुरक्तिमें मदीब बचन होती है, चाहे वह ईश्वरके प्रति हो अथवा संसारके कर्मीक होनाय महत्त्व है। सांसारिक अनुरक्ति दुःखकी प्रतीक है और ईश्वरानुरक्ति दिव्य सुखको लक्ष्य देती है। परकीय बचन है, तो दुःखीमें भीतरका पक्षीमें अपावनता है तो दुःखीमें विषयता। और पक्षीमें पुन-पुन भ्रमणकी बात है, तो दुःखीमें मुक्त हो जानेकी भूमिका।

जैनाचार्य साहित्यके परम समकक थे। उन्होंने एक मते राव-नेपथि विमुक्त होकर बीजराजी पक्षर बहनेको ही साहित्य कहा है। उसे प्राप्त करनेके दो उपाय हैं - उत्क-विस्तन और बीजराजियोंकी मक्ति। बीजराजमें किया गया अनुराग साधारण रागकी कान्ठिमें नहीं जाता उसका विवेचन पहले अध्यायमें ही हुआ है। उन्होंने साहित्यमात्रकी चार अवस्थाएँ स्वीकार की हैं - प्रथम अवस्था यह है जब मन्त्री प्रकृति दुःखकारक समारसे हटकर आत्म-वीर्यको और मुक्त है। यह व्यापक और महत्त्वपूर्ण क्या है। दुःखी अवस्थामें उन प्रमादका परिष्कार किया जाता है जिससे अरथ संसारके मुक्त-दुःख छूटता है। तीसरी अवस्था यह है जब कि कपाल वास्तवामेला पूर्व अभाव होनेपर निर्मल आत्माकी अनुकृति होती है। चौथी अवस्था नरकज्ञानके उत्पन्न होनेपर पूर्व आत्मानुभूतिमें कटते हैं। य चार्थ अवस्थाएँ आप य विदवनाथके हाथ नहीं गयी मुक्त विमुक्त और मुक्त-विमुक्त बराबके समान मानी जा सकती हैं। इनमें स्वयं सम भाव ही रसताके प्राप्त होता है।

१. हेतु 'नारदोक्त मक्तिमूर्त' लक्ष्मीधाम वैराग्य उक्त बाटासगी, पक्षरा एव।

२. मक्तिरसामृत मिथु, काल्यामी कामरर रासरी उपायित अमुना अन्वयाता कर्मीक, काठी मि स ११०० प्रथम संस्करण।

३. पुनविमुक्तबराबानविकला या सक्त स एव कत।

रसतामेति त्वस्मिन्मन्त्रावदि स्विदिवच न विच्छा ॥

आचार्य कियमात्र नाहित्वर्रत साहित्याय रासराकी हिन्दी व्याख्या सक्ति, लक्ष्मीक विवेकावृति वि स १६६१ ११२२ पृष्ठ १९।

शैवाचार्योंने 'मुक्ति' तथा 'रस' को स्वीकार नहीं किया है। यद्यपि वहाँ विरचित पुनः शान्ति को माना है। अर्थात् सर्वज्ञ या अर्हन्त जब तक इस संसारमें है तभी तक उनकी 'शान्ति' धाम्तरम कहलाती है। सिद्ध या मुक्त होनेपर नहीं। अधिमान्तराज्येन्द्रकोशमें 'रस की परिभाषा बताते हुए लिखा है 'रसमन्ते अन्तरात्मनाऽनुभूयन्ते इति रसा' अर्थात् अन्तरात्मा ही अनुभूतिको रस कहते हैं। सिद्धावस्थामें अन्तरात्मा अनुभूतिसे ऊपर उठकर आत्मत्वका पुंश ही हो जाती है, वन अनुभूतिकी आवश्यकता हो नहीं रहती। शैवाचार्य बाणभट्टने अपने 'बाण टांकशर'में रसका निरूपण करते हुए लिखा है, 'विभावेरनुमावैश्व सात्त्विकैव्य मिथारिभिः। आरोप्यमाण उत्कर्षं स्वायीभावः स्मृतो रसः'। अर्थात् विभाव अनुभाव सात्त्विक और अधिचारियोंके द्वारा उत्कर्षको प्राप्त हुआ स्वायी भाव ही रस कहलाता है। सिद्धावस्थामें विभाव अनुभाव और अधिचारी आदि भावोंके अभावमें रस नहीं बन पाता।

शैव आचार्योंने भी अन्य साहित्य-शास्त्रियोंकी भाँति ही 'धम' को धाम्तरस का स्वायीभाव माना है। महाशिवनसेमने अलंकारचिन्तामणि में 'धम'को विवरण करते हुए लिखा है 'विरागत्वादिना निर्विकारमनस्त्व धम अर्थात् विरक्ति आदिके द्वारा मनका निर्विकारी होना धम है।' यद्यपि आचार्य मम्मटने निर्बेद को 'धाम्-रस का स्वायी भाव माना है, किन्तु उन्होंने 'उत्पन्नान् अन्यनिर्बेदस्वीय धमक्यत्वात्' लिखकर निर्बेदको धम रूप ही स्वीकार किया है। आचार्य विस्वनाथने धम और निर्बेदमें भिन्नता मानी है और उन्होंने पहचानी स्वायी भावमें और दूसरेकी संचारी भावमें गणना की है। शैवाचार्योंने वैराग्योत्पत्तिके दो कारण माने हैं - उत्पन्नान् इन्द्रबिबोध अनिष्टसंयोग। इसमें पहचाने उत्पन्न हुआ वैराग्य स्वायी भाव है और दूसरा संचारी। इन भाँति इनका अधिमग भी आचार्य मम्मटसे ही मिलता-जुलता है। इसके साथ-साथ उन्होंने मम्मट तथा विस्वनाथकी भाँति ही अनित्य अवस्थाको आत्मगत शैवमन्दिर शैवतीर्थक्षेत्र शैवमूर्ति और शैवताजुको बहुोपन मूर्त्यादिकोको संचारी तथा नाम श्लेष कोम

१. वैश्व, अधिमान्तराज्येन्द्रकोश, 'रस शब्द'।

२. आचार्य बाणभट्ट बाणभट्टशरकार।

३. महाशिवनसेनाचार्य अलंकारचिन्तामणि।

४. आचार्य मम्मट काव्यमकरा चोदना उत्पन्न धम्यमाता धम्य ५६ ११०० ई. पद्यक कलास ५ ११४।

५. आचार्य विस्वनाथ साहित्यरत्न साहित्याय शालीकी आस्वादिन लक्षणक १। २२२-२४६ ५ ११६।

मोहने समान शक्ति सर्वममलको अनुमान माना है ।

बौद्ध धर्मियों में धार्मिकरसको जिस रूपमें विकसित किया बौद्ध धर्मियों ने कला रूपमें बनाने निकाले भी किया । उन्होंने धार्मिकी बोधमें विकल्पितान्ते बोर शक्ति उठाकर देखा भी नहीं उमको प्रथम देवकी बात तो बड़ी-छड़ी थी । शृंगार रस-राज्य पर है किन्तु प्रकृतिके क्षेत्रमें तो उसे पौषपर ही विकल्पित था किन्तु न जाने कैसे जयदेवके समयमें एक ऐसा विद्वत् प्रवाह यह रस को कि माने प्रकृतिके कारण कभी बना हो नहीं । विद्यावतिकी रावारी रस और सुवर्णिक विकल्पितान्ते तो रसीन्द्रनाथ ठाकुरन की स्वीकार किया है । 'नूरतान्तर' में कहीं-कहीं ऐसे कथनोंक लक्ष है कि धार्मिक मनको बनते नहीं ।

बौद्धोंके मन्त्रि-काव्योंमें यदि एक और सांसारिक रूप-रूपोंके विकल्पित है, तो दूसरी ओर जयदेवके परम-धार्मिकी भावना । इनकी धार्मिक तो धार्मिक किन्तु जयदेवकी नहीं । वे सब धार्मिकके उपासक हैं जो कभी पुरुष न हो । यह एक मनके बुद्धिवा न मिटेगी यह कभी भी धार्मिकता अनुभव नहीं कर सकता । और यह बुद्धिवा निजनाथ निरञ्जनके सुमिरण करनेसे ही दूर हो सकती है । कवि बनारसीदास जयदी बिन्दा ध्वनन करते हुए कहते हैं न जाने हम हमारे देव चातक अन्त-पक्षकी बनकी बुद्धि बन सर्वसे तभी इनकी निरासुक्त धार्मिक निकली । और न जाने यह बड़ी बन आवेकी बन हृदयमें समझा-मान करने । हृदयके अन्तर अन्तक सुन्दरके बचनोंके प्रति बुद्ध अन्त अत्यन्त नहीं होने परन्तु सुन्दर नहीं निकल सकता । उसके लिए एक ऐसी काव्यसाधना अत्यन्त होना की अनिवार्य है जिसमें वह छोड़कर बनमें जानेका भाव धरित हुआ हो ।^१

- १ कव निजनाथ निरञ्जन सुमिरण
 तत्र देवा जग-जग की
 बुद्धिवा कव वी है वा पन की ॥१॥
 कव रवि ली पीवै बुद्ध चातक
 बुद्ध अन्तपक्ष बन की ।
 कव सुन्दर अन्त वरि समझा पहि
 नरै न ममता तन की बुद्धिवा ॥२॥
 नव पट अन्तर रई निरन्तर
 दिवता नुनूष बचन की
 नव सुन्दर लई देव परमारन
 किं चारना पन की बुद्धिवा ॥३॥

कवि बनारसीशामने दान्तरसको भारिमक रम कहा है उसका आस्वादन करनेसे परम आनन्द मिळता है । वह आनन्द कामभेगु, बिनाबेकि और पंचामृत मांजनके समान समझना चाहिए । इस आनन्दको साक्षात् करनेवाला योगज जिमठ बटमें बिराजता है उस जितराजकी बनारसीशामन बन्दना ही है ।^२

यह जीव संसारके बीचमें घटकता छिगता है शिम्नु उसे शास्त्रि नहीं मिळनी । वह अपम अष्टारस होपासे प्रवीणित है और भाबुलना उसे मठाठी ही रहती है । मीमा भयबतीवासका कल्प है हे जीव । इस संसारके अर्चक्य कोटि मानरको पोकर भी तू प्यासा हो है और इस संसारके दीवोमें बिगना अम्र मय है उसको छाकर भी तू मूका ही है । यह सब कुछ अठारस होपाके कारण है । वे तमी भीते वा घनते हैं जब तू भयवान् बिनैयका ध्यान करे और सही पबका अनु धरन करे, जिमपर वे स्वयं बने से ।^३ 'मीमा की वृत्तिये अष्टारस होप ही

कब कर जाँह हाँहै एकाकी

बिन्ने लाकसा बन की

ऐसो बधा होय कब मेरी

ही बलि बलि वा छन की दुखिया ॥४॥

बनारसी बिलास कल्पुट, १६३४ अम्पारमन्तरपि, १६वीं पत्र पृ २११ २१२ ।

१ अनुमी की केकि यहै कामभेगु बिना बेकि

अनुमी को स्वातु पंच अमृत को कौर है ॥

बनारसीरास नायक समस्यार, कम्परे अन्वामिका १६वीं पत्र पृ १७-१८ ।

२ सत्य-वचन सदा जिहू के प्रसटपी अक्षरत निम्न्याग निरुदण ।

सात बधा निहू की पहिबानि करे कर जोरि बनारसि बंदन ॥

करी मंगलाचरय अठा पत्र पृ ७ ।

३ जे तो अरु लोक मध्य सागर असक्य कोटि

ते तो अरु पियो वै न प्यास यात्री मबी है ।

जेने नात्र होय मध्य मरे है अवार डेर,

तेने नात्र जायो लोऊ मुख वारी गई है ।

वाँठे प्यास ताको कर जाँठे यहै जीव डेर,

अष्टारस बाप बाहि य ही जोत गई है ।

बहे पंच तू ही पाबि अष्टारस बाहि भाबि

होय बैठि महाराज तीहि सीव गई है ॥

'मिमा' अन्वामिका मध्य विपणत बैन मन्व टलाकर अन्वामिक, कम्परे १६२९ है
एन अठोउरी, १ २ वीं अक्षिप पृ १२ ।

मोड़के अभाव अर्थात् सर्वत्रमत्त्वको अनुभाव माना है ।

कैन आचार्योंने धारणरसको जिस रूपमें निम्नलिखित विद्या केन कवियोंने अपना मन्त्र अर्थमें लिखा है भी लिया । उन्होंने ध्यात्मिकी ओद्यमें विताडिगानी ओर ध्यान उठाकर देखा भी नहीं । समको प्रथम देवकी बात तो नहीं-उसी रही । शृंगार रस-राज मके हो किन्तु मक्तिके क्षेत्रमें तो उठे बीचपर ही निम्ना आदिष्ट, किन्तु न जाने कैसे अक्षरोंके सममते एक ऐसा विद्वत् प्रवाह बह गया, जो कि जाने प्रथम वेदके कारण कभी बचा ही नहीं । विद्याविक्रमी राजाकी उर और मुद्रित विद्याविक्रमी को रवीन्द्रनाथ ठाकुरने भी स्वीकार लिया है । गुरुमाधरमिं कहते-जदो ऐसे अक्षरोंक स्वतः है कि ध्यात्मिक मनको बधते नहीं ।

कैनाने मक्ति-शास्त्रोंमें यदि एक ओर सांसारिक रास-रुपोंसे विरहित है तो दूसरी ओर मनचाहते अरम-ध्यात्मिकी बाधना । इनको ध्यात्मि तो बाधिर किन्तु अस्वाधी नहीं । वे उक्त ध्यात्मिके असासक है जो कभी पृथक् न हो । जब एक मनसे बुद्धिवा न भिन्नी बह नहीं भी ध्यात्मिका अनुभव नहीं कर सकता । और यह बुद्धिवा निजताथ निरन्तरके मुनिरत करनेसे ही दूर हो सकती है । कवि बनारसीदास अपनी विद्या व्यक्त करते हुए कहते हैं न जाने जब हमारे वैकुण्ठात्क अक्षय-वदकी मनकी हुईं जब तकने अभी तककी निराहुक ध्यात्मि निकेवी । और न जाने यह नहीं कब आवेवी जब हृदयमें समता-भाव अयेता । हृदयके अन्तर अक्षय मुनुके अक्षरोंके प्रति बुद्ध अज्ञा अत्यन्त नहीं ह्येवी परन्तु मूल नहीं मिल सकता । उसके किन् एक ऐसी काळमाका अत्यन्त होना जो अनिर्धार्य है, जिसमें पर छोड़कर अक्षयमें जानेका नाम उचित हुआ हो ।”

- १ कव निजताथ निरन्तर मुनिरा
 उर सेवा अक्षय-वद की
 बुद्धिवा अक्षय ही है या मन की ॥१॥
 जब कवि ही वीके बुद्ध अत्यन्त
 बुद्ध अक्षय-वद मन की ।
 कव मुन अक्षय अक्षय अक्षय
 कक्षे न समता उर की बुद्धिवा ॥२॥
 जब अक्षय अक्षय ही निरन्तर
 विद्या मुन अक्षय अक्षय की
 कव मुन अक्षय अक्षय परम्परा
 मिटे अक्षय अक्षय की बुद्धिवा ॥३॥

कवि बनारसीवामने शास्त्रग्रन्थको आत्मिक रस बड़ा है उसका भावभावानु-
करणसे परम आनन्द मिलता है। वह आनन्द कामधेनु जिनाबेलि और पंचामृत
मोहनके समान समझना चाहिए।^१ इस आनन्दको साक्षात् करनेवाला जेनत जिनके
बटमें बिराजता है उस जिनराजकी बनारसीवासने बन्दना की है।^२

यह और संसारके बीजमें भटकता फिरता है किन्तु उसे शांति नहीं मिलनी।
यह अपन अष्टादश दोषसे प्रीणित है और जानुसना उसे सताती ही रहती है।
मैया मनबतीवासका कर्म है हे जीव ! इस संसारके अर्धस्व कोटि मागरको
पीकर भी तू व्यासा ही है और इस संसारके दीवोमें जिनता जस मरु है उसको
साकर भी तू मुखा ही है। यह सब कुछ अष्टादश दोषके कारण है। ब तमी
भीते जा सकते हैं जब तू भववान् जिनेश्वरका ध्यान करे और सही पत्रका अनु-
सरण करे जिसपर वे स्वयं बने वे।^३ 'मैया की दृष्टिसे अष्टादश दोष ही

कब बर छोट होहुं एकाकी

सिन्धे लाक्या बग की

ऐसो बसा होय कब मेरी

ही बलि बलि वा छन की बुझिया ॥४॥

बनारसी विकास कल्पद्रु, ११५४ अष्टादशमर्षि, ११वीं पृ २११ २१२।

१ अनुजी की केछि यहै कामधेनु जिना बेलि

जनुजी को स्वादु पंच अमृत को कीर है ॥

बनारसीवास नायक समकथा, कम्पर कल्याणिका ११वीं पृ १७-१८।

२ सत्य-सरूप सदा बिन्दु के प्रगटपी अचर्यात निष्काम निरुदर ।

सत बसा निन्दु की पहिचानि करे बर जोरि बनारसि धवन त

की मन्तापरब, बड़ा कब, पृ ७।

३ ये तो बक लोक मध्य सागर अचर्य कोटि

से तो अक पियो वे न व्यास बाकी मयी है ।

जेने नात्र होय मय्य बरे है अचार डेर

तेने नात्र कामो ठोऊ भूष यापी नई है ।

ठाठै ध्यान टाको कर जाठै बहु जीय हर,

अष्टादश दोष धारि से ही कोत लई है ।

यहै पंच तू ही बाबि अष्टादश जाहि भाबि

होय कीठि मन्त्राराज तोहि सीव बई है ॥

शैवः भक्तान्तरात्, सदा विनास शैव मन्त्र रत्नाकर कल्याणक, कम्परी १ २१ १
रत्न खोलोसरी, १ २ वाँ अक्षिप ५ १२।

कर्म है योत्र यहाँ किसी प्रकारकी आहुतिका नहीं होनी । ऐसी ध्याति यह ही दे सकता है जिसने स्वयं प्राप्त कर ली है । वे संसारी साहिव जो बारम्बार बनमते हैं मरते हैं और जो स्वयं मिसापी हैं बुरसोंका दारिद्र्य सँसे हर सकते हैं । मयवान् ध्याति जिनम् जो स्वयं ध्यातिके प्रतीक है सहजमें ही अपने सेवकोंके सब-उद्दोको हर सकते हैं । भूबरबास जन्हीसे ऐसा करनेकी याचना भी करते हैं । यह जोव सांसारिक कर्मोंके करनेमें तो बहुत ही उतावला रहता है किन्तु मयवान्के सुमरणमें सीरा हो जाता है । जैसे कर्म करता है वैसे फल मिलते हैं । कम करता है असाध्ति और आहुतिकाके किन्तु फलमें ध्याति और बिद्यकुलता चाहता है जो कि पूर्वरीत्या असम्भव है । आक बोधेया आम वैसे मिलेगी नम हीरा नहीं हो सकता । वैसे यह जीव विपदाके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता वैसे ही यदि प्रभुको निरन्तर बने तो सामारिक असाध्तिको पार कर निरवय ध्याति पा सकता है ।^३

ध्यातृभावको स्पष्ट करनेके लिए मूरबासन एक पूजक हो उग अपनाया है । व साधारिक वैश्वकी साधिकाको दिखाकर और तन्वय्य वेदनीको उद्घोषित कर चुप हो जाते हैं और जसमें-से ध्यातिकी ध्याति संसारकी संसारकी तरहसे फूटी ही रहती है । बन और योवनके महम उगत बोवाको सम्बोधन करते हुए उद्घाल कहा ए निपट संवार नर ! तुझे समझ नहीं करना चाहिए । मनुष्यकी यह काया और माया झूठी है अपत्ति अथिक है । यह मुद्गम और योवन किन्ते सम्मका है और किन्ते दिन हम संसारमें जीवित रहता है । हे नर ! तू धीम्र ही नेत ना और विकम्ब छात्र है । क्षण-क्षणपर तेरे सब बड़ते बायेंगे और तेरा फल-फल ऐसा घाटी हो बायेंगा वैसे भीपनपर वाली कमरी^४ । मूरबासने एक बुरसे परमें परिवर्तनघोषिकाका सुम्बर दृश्य अंकित किया है । उद्घाले कहा इस संसारमें एक अवयव तमाधा हो रहा है जिसका स्थापित्य-नाश स्वप्नकी भाँति है अर्थात् यह तमाधा स्वप्नकी तरह धीम्र ही समाप्त भी हो बायेंगा । एकके परमें मगकी आधाके पूर्व हो जर्मसे मंगल-नीत हाते हैं और बुरसे परमें बिडीके विद्योयके कारण मैन निराशास बर-बरकर राने हैं । जो तेज तुरन्तपर चढ़कर चलते ये और जासा तथा मलमक बहमते वे वे ही बुरसे शय नयें होकर फिरते हैं और जनको दिवासा देनेवाला भी

१ मूररत्न मूर निनाल कपडका २१वीं पर पृ १ ।

२ वही २२वीं पर, पृ १६ ।

३ वही, २२वीं पर पृ १६ ।

४ वही २१वीं पर, पृ ७ ।

वासा अग्र दृष्टि की धारें मुख मुखकित्त माली गाथे ।
 धनुमी रस अक्षकृत माली ऐसा वासव शूद्र बिराजे ॥
 अद्भुत रूप अक्षम महिमा तीव्र लोक में छत्रै ।
 बाकी छत्रि देखत इन्द्रादिक अन्त सूर्य गण काथे ॥
 भरि अनुराग विहोक्त बाकी अष्टम करम छत्रि गाथे ।
 जो अगाराम बन भुमरव ती अक्षरद पात्रा गाथे ॥”



कोई रिपार्ई नहीं देगा। प्रात ही जो राज-सल्लपर बैठा हुआ प्रसन्न-वदन था
 ठीक दोनहरके समय उसे ही तराश होकर वनम आकर निवास कराया।
 तब और वन आर्वाधिक अस्थिर है जैसे शानीका बनाया। भूवरदागनी नहीं
 है कि इनका वा पत्र करता है उसके अन्वयो विचार है। यह अनुप्य नृप
 है देखने हुए भी अग्या बनता है। इसने मर यौवनमें पुनका विजोय देखा,
 जैसे ही अपना मारीका बालके मार्गमें आते हुए निरन्ता और इसन वन पुष्प-
 बानाको जो लईव मानवर चरे ही रिपार्ई देने से रंक हाकर बिना नहीके
 मार्गमें देखा चरते हुए देखा फिर भी इसका वन और जोवनते राप नहीं पटा।
 भूवरदागना वपन है कि देवी मूनकी अंशेतेके राजटोका कोई इकाव
 नहीं है।

“देवी मर कावन में पुत्र का विजोग ध्यावा
 तिसैं हा विहासो विज मारी काक मग में।
 जे के पुत्रवचन और हीमल है बाल ही से
 रंक भई धिरेँ तेक पनही व राग में इ
 एने से अमारो वन जीतव सीं धिरेँ राग
 हाव न विराग कामे रहुंगा अकय में।
 अँखिन निर्याकि अंध सुमे की अंधेरा
 करेँ एस राजराग को इकाव कहा अग में इ”

एक नृपमन्त्री बुद्धि बट गयी है उसको छवि पण्ट बुद्धे है बलि
 बँक हो बनी है और वनर नृप बनी है। इनकी बरवाली थी कठ बुनी है और
 वह अत्यधिक रंक होकर पर्येसे अग गया है। उसकी मार (मर्दन) वार रही
 है और मुँहसे आर नु रही है। उसके सब अंग-अवाय पुण्डने ही बने है किन्तु
 हृदयमें तुम्हाने और भी नवीन रूप आरभ किया है। जब मनुजकी मीत्र
 जाती है तो अतने संसारमें रच-वचने को मुक्त किया है, सब कुछ यहाँ ही पना

१. श्री २०१९ पृष्ठ २।

२. केन राजक, अन्वयता २२०१ पृष्ठ, पृष्ठ २१।

३. बुद्धि बटो बनी तब ही अति बँक भई बलि बँक बनी है।

कठ रही परती बरनी अति रंक मनी परियेक लई है ॥

कायल मार बई मूल अर मद्ममति संकति अति बई है।

अन अंग पुण्डने परे सिमगा अर और नवीन भई है।

केनराजक, अन्वयता २२०१ पृष्ठ २२।

रह जाता है। मुखरदासजीने कहा है 'तोषणामी सुरंग सुन्दर रवेति रथे हुए रथ ठीके ठीके मत्त मत्तग हास और लबास वदनकुम्भी अट्टालिकाएँ और करोड़ों की सम्पत्तिम भरे हुए कोष इन सबको मड मर मत्तमें छोड़कर बला जाता है। प्रासाद लटक लड़े ही रह जाते हैं काम यहाँ ही पड़े रहते हैं धन-सम्पत्ति भी यहाँ ही उड़ी रहती है और घर भी यहाँ ही बरे रह जाते हैं।

“तत्र सुरंग सुरंग मछे रथ मत्त मत्त-इत्त-इत्त तर हा।

हास लबास लबास अट्टा धन जोर करोरन काम मर हो ॥

पूमे लड़े ली कडा मर्षा है घर छारि लड़े उडि मत्त छने ही।

घाम लारे रहे काम बर रहे इ म लरे रहे अम बरे ही ॥”

धोछानगरायण भी ममबाम् त्रिनेत्रको धाम्नि प्रभावक ही माना है। वे जनकी धारणमें इसलिये बय है कि धाम्नि उपलब्ध हो सकयी। उन्होंने कहा हम ली नमिजीकी धारणम जाते हैं क्याकि लड़े छोड़कर और कहीं हमारा मन भी ली नहीं लकना। वे संसारके वापोकी बसतको उपराम करनेके लिये बाहलके समान है। उनका चिरर भी धारण-धारण है। इन फगोत्र और चन्द्र भी धरना ध्यात करते हैं। उनको सुख मिळता है और वु ल दूर हा जाता है। लड़ी बाहलध धरनेवाली छोटक्या परम धाम्नि ही है। धाम्निको ही सुल कटते हैं और वह ममबाम् नमिनाबके सबकोको प्राप्त शाती ही है। धानतधयकी दृष्टिम भी उच-उप ही अधाम्नि है और उनके मिट जानस ही 'बियरा सुल पावना, लर्वात्त उनको धाम्नि मिलेगी। अष्टलका स्मरण करनेसे रात-डेप विधीन हो जाते हैं अतः धरना स्मरण ही सर्वोत्तम है। धानतराय भी अपने बाबरे मनको सम्बोधन करते हुए कहते हैं 'है बाबरे मन ! अष्टलका स्मरण कर। क्याति लाम और पूजाको छोड़कर अपन अम्तरम प्रमुकी ली कगा। वु लर मन प्राप्त करके भी लसे ब्यबम ही लो रडा है और बिपय मोनाको डेरना दे-नेकर बडा रडा है। प्राणाके जानेर ही लकना ! वु पछ-पावेना। ली ली आयु धन लण लम ही रडी है। मुखनोके धाटीर लन गुण भिन परिजल पन

१ बरी, ३३वीं पृष्ठ २२।

२ अह इन नैमिजी की धारण ॥

और लीर न लन लम्न है छारि प्रमु के धारण। अह ॥१॥

सकल लर्वा लय-लान लारिब चिरर धारण धरन।

इन्द्र लण्ड लुनिर ध्यावे पाप मुग कुल इन्द्र। अह ॥२॥

वाक्य धरन-धर, लनक्या धरना धर रह २।

तुरंत और रसमें तेरा आवास है वह ठीक नहीं है। ये साक्षात्कार पदार्थ स्वयं की भावनाको धारण है और आँख मोचते-मोचते समाप्त हो जाते हैं। कभी सम्भव है, तू मन्त्रवाक्याका ध्यान कर ले और मंत्रक पोंत पा ले। और कबिक कक्षाक कक्षा बापे फिर उपाय करनेपर भी लभ नहीं लकेवा^१।

धुक्लध्यानमें विरल तीर्थकर ध्यातिके प्रतीक होते हैं। उभय-से सभी प्रकारकी वैधिमिमा निकल चुकी होती है। उन्हें जन्मके ही पूर्वसंस्कारक रूपमें बोधरायणा मिलती है। जसी स्वरमें वे पकते बहते घोष भीमते और वीखा केते हैं। कभी विद्यामोम ठीरते-उठरते कभी उष्माका संवाहन करते और कभी धनुवाको पराधित करते किन्तु वह स्वर सदैव पवनकी भाँति प्राचीन मिवा रहता। अचरर पाते ही वह उन्हें बत-पचपर के छोड़ता। विन्ताएँ स्वतः पीछे रह जाती। भीतरापना धुक्लध्यानके रूपमें फूट उठती। आँसिकके वह भावपर टिनी दृष्टि 'विन्ताविरोध'को स्पष्ट करती। वह एकमदताकी बल बढ़ती ही रहती। और फिर मुखपर आनन्दता अगवत प्रकाश छिटक उठता। अनुभव रत जन्मी परमवस्थामें प्रचट हो जाता। उतकी अलकसे तीर्थकरका तीर्थर्म अक्षीक स्वको जग देता। जिसे देख इन्द्र सूर्य और चन्द्र-वैश्व कम्पनोत्पन्न वर्ष विवलिप्त हो वह जाता। वह सच है कि उन परमध्यातिकर अनुभव करते तीर्थकर के वर्धनसे 'अक्षुण्' नामवादी कोई कर्म टिक नहीं उठता वा। फिर कवि उनके स्मरणसे अगइव बाबा बन उठता हो तो उच्छत पवा है। अचररामने लिखा है^२।

'विरलि मम मूर्धनि कैसी रत्ने ।

तीर्थकर वह ध्यान करत हैं वरमातम पद् कवि ॥

१ अरहन्त सुमर मम बावरे ॥

क्याति अम पुमा लवि भाई अन्तर प्रमु की काव रे ॥ अरहन्त ॥१॥

नर मम पत्र अकारण खोबी विषय जोन भु बड़ाव रे ।

प्राण बने पछिरीहै मगना किल-किल खीरै आव रे ॥ अरहन्त ॥२॥

मुक्ती तम मन तुष्ट मित परिवन पम तुरंत रम काव रे ।

यह संसार सुपम की मग्ना भाव पीच विहापव रे ॥ अरहन्त ॥३॥

ध्याव ध्याव रे अब है बाव रे, गाही मंत्रक वाव रे ।

आनंद बहुत कक्षा ली कहिये फेर न कक्ष उपाव रे ॥ अरहन्त ॥४॥

कवी कर्नाक, पृष्ठ १६-६ ।

२ अचरमम न ४६१, पद ७७ कवीकल्पजीवन्त मन्विर, अचरुर ।

नासा अय एहि की धारें सुख सुखकित मानौ गाये ।
 अनुभौ रस सकळत मानौ ऐसा वासन छुड बिराजे ॥
 अनुभूत रूप अनुपम महिमा तीन लोक में छाये ।
 बाकी कवि देखत इन्द्रादिक अम्ह सूर्य गण काये ॥
 धरि अनुराग बिकोप्य बाकी अनुभुम करम तजि माये ।
 बा अगाराम बरी सुमरन ती अनहद बाजा बाये ॥



जैन भक्ति-काव्यका कला-पक्ष

भाषा

भाषाची दृष्टिसे जैन लिरीके भक्ति-काव्यको दो कालमें बाँटा जा सकता है—एक तो वि सं १४ १९ वृत्त वि ल १९ १८ ०। पद्यका काव्य अर्थात् अर्थके अतिरिक्त निरुक्त है। इसका अर्थ है कि इस युगकी हिन्दीमें अर्थहीनकी विशेषताएँ पायी जाती हैं। यह अर्थहीनका ही विरक्ति का है। अर्थहीनको उद्धारबहुला प्रवृत्ति वहाँ भी प्रतिष्ठित है। इत्यन्त उद्धार विद्याके का उद्धारप्रणाली है और नतीजा तथा कर्मकारणको विरक्तिके रूपमें भी उ' का प्रयोग हुआ है। इनके दृष्टान्त निम्न प्रकार हैं

श्रिया

“तउ कपिभि मग रिमड मचड,
एते अछचारि तहाँ गपड ॥”

—तावत्, अक्षय कीर्त

कर्ता

“तल्ल बुलु मिरि ईहपूर धूबकवरमिचड ।
अउरह विरमा विविहकन मारीस विहड ॥”

—विचक्षण, वीरभद्र

कर्म

“गुह गानम मो देउं पसीउं”

—वासन्त, देवीसत वीर

इस युगकी हिन्दीमें अर्थहीनकी भाँति ही अर्थहीनके स्वाभाविक स्वारे स्वाभाविकी प्रवृत्ति थी। राजशेखरपुरीके ‘अनादर के स्वाभाविक ‘ममाउर’का और ‘अनादर’के स्वाभाविक ‘अनादर’का प्रयोग किया है।^१ विद्वान्ने गुणर को

१ इन उदाहरणों में विद्वान्ने गुणर अनादर के लिए।

२ अनादर का नाम अनादर है और अनादर ममाउर है।

अनादर अनादर का नाम अनादर है।

उद्धार विद्याके उद्धारप्रणाली हिन्दी काव्यका उद्धार प्रणाली है। अनादर-अनादर, १९२१ ई ५ अ०।

‘दुहित’ और ईश्वरमूर्तिने अकिनांग को ‘अकिअय’ लिखा है ।^१

‘हि’ और ‘हि’ विभक्ति जो पहले अपूर्णसमे केवल वरन और अधिकरण कारकके बहुवचनमें ही प्रयुक्त होती थी जागे चलकर प्रायः सभी कारकोंकी विभक्ति वचनयो मेरुमन्त्रन उपाध्यायने उसका प्रयोग वर्तमान कारकमें किया है^२—

‘इम भगसिहिं साकिम तनीप् ।

सिदि अकिव संदि विज पुइ मलिप् ॥

—अभिरामितिलकम्

इस विनयासने ‘हि’ का प्रयोग कर्मकारकमें किया है । वह इस प्रकार है,

‘विनवर स्वामी शुगतिहिं गामी सिदि नवर मंडजी ।

—विष्णु वृक्षना

कवि हरिचरणने भी ‘हि’ को कर्मकारककी विभक्तिके रूपमें ही स्वीकार किया है,

गुरु अतिप् सरसहिं पसारं ।”

—कनकमित्रव सन्धि

मुनि विनयचरणने इस विभक्तिका प्रयोग परम्पराके अनुसार अधिकरण कारकमें ही किया है,

“पद्म परिक बुइ अहिं वासाअहिं रिताइ गम्भुनहि अतरसाअहिं ।

अंबारी अहुहिं तहिमि अहिमि वासुपूव गम्भुअह ॥

—रंजनाप्यकरासा

मुनि विनयप्रम उपाध्यायने भी ‘हि’ को अधिकरणका चिह्न माना है

साठ हाथ शुभमाण देह कपिहिं रंभाअह ।

—नीलमरासा

दिल्लीमें कहीं-कहींपर ‘हि के ह’ का खोप कर देवक ह का प्रयोग देखा जाता है । राजशेखरमूर्तिने लिखा है कि राजसीमनीके सीमन्तमें मोतीचूर्णसे युक्त सिन्धूरकी रेखा सुयोमित थी

१ जो तर करह सो बुद्धि न होइ

विद्वत् ज्ञानरंजनी चम्पू ।

अकिअय कुमरअरियं अलया अतिअय विनुजेइ

ईरअरि अतिअनअरिय ।

इसी मन्त्रका दूसरा अन्वय ।

२ सभी कारकलोकें लिप्य, इसी मन्त्रका दूसरा अन्वय है।

'सीमंगहू' किन्तु रोह मोतीसवि सारी ।

—वेदिकावताय

किमी-विशेष 'इ' के स्थानपर 'ए' का प्रयोग किया है। 'ए' विकल्पित अधिकारिकता कार्याकारकमें प्रयुक्त हुई है। मीरकान्त जयप्रकाशके 'अभिज्ञान-सप्तम' का एक पद्य इस कथनको पुष्ट करता है,

'मंगल कमला कंबुप' सुख सागर 'दुःखि' कंबुप'।

जग सुख अविष निर्मंहुप, संतीसुर नववार्मंहुप

—अभिज्ञानसप्तम

हिन्दी कविताले स्वार्थक प्रत्ययोंमें 'अ' 'इ' और 'ई' का बहुत प्रयोग किया है। इनमें भी 'अ' का प्रयोग बहुत अधिक हुआ है। रामदेवराजे 'कंबुप' को 'कंबुवड' सावासे बदलने को 'बडलवड' पद्यलिखनेमें 'अवडरिण' को 'अवडरिणड' ईश्वरसूरिने 'अभिष' को 'अहितवड' और 'समर्थ' को 'समरत्वं' लिखा है। ये रूप स्वार्थक 'अ' प्रत्ययके कारण बने हैं।

'इ' और 'ई' का भी प्रयोग हुआ है किन्तु बहुत कम। 'इ' का उदाहरण प्रयोग कि. नं. १६-१८ के श्रवियोंमें देखा जाता है। विनयप्रम जयप्रकाशके एक पद्यमें 'इ' का प्रयोग हुआ है

'मरह-लिखमि सिरि-कुंभ-धर-अंतरे

अम सुंदरिणी विजय पुनसकधरे ॥

—सीमन्त लाली ललन

पट्टारक धृतचन्द्रने 'इ' और 'ई' का एक ही चङ्गमें प्रयोग किया है,

"रोग रहित संगति सुखी रे संपदा पूज्य अथ ।

अर्थ बुद्धि मन सुखिनी हुकहा अनुकमि अथ ॥

—पल्लवावृष्टा

१ मरहद धारर कंबुवड फुड फुल्लहू माका

रामदेव, वेदिकावताय ।

अभिज्ञान अवडलवड अर्थवड

सावासे प्रयुक्तकरिय ।

सुरहचेषु अवविधि पाइ अमरहू अवडरिणड

अवडरिणड अर्थनिवारलोड ।

अहितवड अथ कि मग समरत्वं ताहूड और

ईश्वरसूरि, अभिज्ञानसप्तम ।

इन सभके सिद्ध, वैदिक वही प्रत्यय इधरा ललन ।

जैन हिन्दीके किसी कविने स्वाभक प्रत्यय 'अस' हल्क मोर उस्क' का नहीरर भी प्रयोग नही किया है ।

अपभ्रंशमें ह्रस्व और दीर्घके व्यत्ययका नियम था । इसका अर्थ है कि ह्रस्वके स्वाभर दीर्घ और दीर्घके स्वाभर ह्रस्व हो सकता है । अपभ्रंशकी प्रवृत्ति ह्रस्वान्त है । वहाँ ह्रस्वको दीर्घ हुआ है, यह स्वाभक प्रत्ययके ही कारण । बाबाय हेपथनन मध्य और अन्तमें ह्रस्वको दीर्घ किया है जैसा कि 'मस्का हुआ को मारिधा'—वैद्ये प्रयोगसे स्पष्ट हो है । यह प्रवृत्ति जैन हिन्दी-भाष्यमें भी अत्यन्त हावी है, एक उदाहरण देखिए,

मनु पणु चणु पुरंठु करणि निमुण्ड मो मणिपा ।

त्रिमि निवसइ तुम्ह रहि गहि गुण गन गहगहिवा स ।

पादमध्यमें भी ह्रस्वको दीर्घ करनेके बृहान्त मिलते हैं । ब्रह्मजिनवासन किया है

बरकर्म स्वामी घानी पाय वर्मावर्म बीचार तो ।"

—भारिपुराय

कवि ठपुरसीने किया है

"रपणि पहीतो सकुञ्जी नीसरि सक्थौ न मद्रु ।

—रवेन्द्रिय वेत्त

छादभ्यसममने भी पादमध्यमें ही ह्रस्व को दीर्घ किया है

'मुणि मचीलय अच बीरजिन पामिड सिचपुर हाउ स

—सिद्धान्त चोर्द

जैन हिन्दीमें प्रारम्भिक ह्रस्वको दीर्घ करनेका बृहान्त नहीं मिलता है । परिपटासकमें बके ह्ये 'प्रसावन' को 'पासाहप' किया गया हो जिनु जैन-हिन्दीमें तो 'प्रसाधित' को 'पसाधिय और प्रसीध को पसीउ और 'प्रसाधित' को 'पसाधिय देखा जाता है ।"

१ विन्ध्यम जनाम्नाय गीतमरासा रहता क्व, दिन्वी जैन साहित्यका इतिहास पन्ने १११७ ई, ३ ३२ ।

२ निम्मस ए मंयतरमचणु व्यासिध सयकतमु,

देकमरन जनाम्नाय, तीकवरत्रिनन्वमम् ।

बुध गीतम मो दिठ पसीउ

चउमम येमीरक नीन ।

जेव पयाधिय वेरह चारि

दिहाउ, डामरचमी चउरें देजिउ हसी मन्कड इउरा मन्नाय ।

कर्म'के काम' कर देनेकी वरगता अवर्षणको प्रकृतके विरी की।
 और हिन्दीके इस युगमें भी कर्म जैसे प्रयोगोंकी अविद्यता है। 'कर्म' ही
 हीका रसायनप्रकार प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त राजसेनारसूलिमें 'कर्म' को
 कर्म विनयप्रसने 'शोक' को 'चिति' 'विद्या' को 'विद्या' 'निर्वा' को 'निर्वा'
 विद्य को 'विद्य' 'मैदानप्रसने' समर्थ' को 'समर्थ' इसको 'हस्त' 'हस्त'
 सूलिमें 'पुत्र' को 'पुत्र' 'दुर्ग' को 'दुर्ग' और 'स्वर्ग' को 'स्वर्ग' लिखा है।

आवर्षण अमुम्भारकी प्रकृति भी बहुत प्रचलित थी। डॉ. हजारीप्रसाद
 द्विवेदीने इसके तीन कारणोंकी उद्घाटना की है - (१) संस्कृतकी पञ्चक म्पि,
 (२) छन्दकी वाक्यार्थके म्पि, (३) एकाव मात्राकी कमीकी वृत्ता कारणके म्पि।
 और हिन्दी साहित्यमें अनुस्वारोंका अविद्यता प्रचलित म्पिमें तीर्थकारकी निर्वाह
 करनेके म्पि निम्ना मया है। मेहनतमया एक पत्र देखिए -

‘मह सचक कवलयं प्राणि
 सुमियवर्णं सूरि हृदयुज समरं कुमार
 मधिर सुह मंदुषी मन्थ म्पि
 पत्निभ्यो म्पि दिवलाकुम्भारि ॥’

—विनोदचन्द्रिपिप्रास

आवर्षणमें पद्यात्मके 'ओपार' की तुल्यके कामें पढ़नेकी प्रकृति थी।
 पुष्पक मन्थ लंबह' में ऐसे अनेक उदाहरण हैं। और हिन्दीका अति-पुन
 इस प्रकृतिकी अपनानेमें सबसे आगे रहा है। राजसेनारसूलिमें निम्नामिथ पत्र
 इसका उदाहरण है,

“मरतिथ कज्जकरह मन्थि सुईकमकि तथोका।
 बागोदर म्पि म्पि-मन्थार विरिथी ॥”

—कैवलाय पत्र

इसके अतिरिक्त विनयप्रसने 'वीरविनेतर परम कर्मक कनकायकवातो'
 में भी पुनरापारके अवर्षण एक विनय कर्मक कुरित पाप विचारको' में और
 अज्ञानिवाकके आदि विनेतर मुनि वरमेतर समक बुद्ध विनासकी' में भी यह
 प्रकृति ही परिचलित होती है।

और हिन्दीके इस युगमें 'बुद्ध स्वर को कर्म कानमेंके भी अनेक उदाहरण हैं।
 विनयप्रसने 'श्री हस्तप्रति' को 'मिरि हस्त' और मेहनतमने भी 'श्री' को

१ डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्यका आर्थिक विनय म्पि, १५२।
 २. देखिए इसी मन्थक पुस्तक म्पि।

की विमलरानी नमो, गुह निर्गन्ध वान प्रमोषि ।

क्युं अराधता सुविचार, संशोषि साधोहार ॥

—मार्तन्दा परिशेषेण वा

मद्वारक ज्ञानभूषण

“भाहे प्रथमीय भगवति सरमति जगति विचोष्य माय ।”

—भारतम्बर वाम

मद्वारक सुमन्त्र

“कर्म कर्मक विचारो रे मिःसेष होय विनाय ।”

—लक्ष्मण वृद्ध

कवि राजमन्त्रके पिपक शास्त्रमें उत्तम कर्पाङ्गी ही प्रभावता है। इनका एक धराहरण है,

‘स्वाति बुद्ध सुर बर्ष विरंतर संपुर सीपि बमो कर्दर ।

कम्मी सुनवाहक धारहरक संयनरक सिरी भवकोषक ॥’

इन उपर्युक्त वृत्तान्तोंसे भी बल्लभर धर्म बुद्धोपे इस कबलका समर्थन होता है कि—‘बैत शोध संस्तुत धर्मोपेन बहिष्कार अवश्य करते रहे, विष्णु ने कर्त ही बये ।

बैत हिन्दीके इस सुपर गुजरती और राजस्वानीका भी प्रभाव है। वह समस्त हिन्दी गुजरती और राजस्वानीमें विधेय बल्लभ नहीं था। राजकीयता मत है कि ये अवर्षयये विकसित ही हुई थी इनके मूक कर्मोंमें सेर नहीं था। इनकी बुद्धिमें गुजरत तेरहवीं धर्तीतक हिन्दी शोधका बलिष्ण बंध रहा है। शोकाभाय ए बुद्धके धर्मोपेन भी वह समस्त हिन्दी गुजरती और राजस्वानीमें एतना रूपमेव नहीं मानते विना कि भाव-कर्म है।^१ फिर भी यह सिद्ध है कि इनमें बुद्ध-न-कुञ्ज रूपमेव वा अवश्य विषये इनका पृथक् बहिष्ण प्रभावित होता है ।

वि सं १४ - १५ के हिन्दी कवियोंमें राजसेखरसूरि धाराय पियल और मेकलभनगर राजस्वानीका प्रभाव है, ती विमलप्रभ जगन्नाथ शोधगुणर सूरि जगन्नाथ बल्लभार जगन्नाथर सूरि, हीरजगन्नाथर और मद्वारक लक्ष्मीसिंहर गुजरतीका ।

१ हिन्दी के साहित्यका ललित इतिहास भारतीय बालीक, काशी, १९४० ई. पृ. १५ ।

२ राज संस्तुतक, हिन्दी बाल्यवाचक जगन्नाथक पृ. १२ ।

३ हिन्दी साहित्यका भारतीय इतिहास पृ. १६ के अध्याय ।

वि सं १२ १६ के कवियोंमें पद्मविषयक मुनि शरिषेण जेनक-
मक मुनि विनकचन्द्र ठकरसी और कवि हरिचन्द्र राजस्थानीसे प्रभावित हैं तो
ब्रह्म जिनशास सावधसमक संवेगसुन्दर सिंहकुशल ईश्वरमुरि भट्टारक
सुमचन्द्र और देवकस्यारी रचनाओंमें गुजरातीकी शक्त है ।

वि० सं० १६०० १८०० के जैन हिन्दो कवियोंकी भाषा

यह युग हिन्दीके पूर्व विकासका युग है । इसमें अधिकांशतया तत्सम
शब्दोंका प्रयोग होने लगा । क्रियाशक्ति भी विकास हुआ । उच्चार बहुला प्रपूर्ति
हट गयी । विभक्तिबोले बिसकर स्वतन्त्र शब्दाका रूप धारण कर लिया । कर्ता
की 'ने' और कर्मकी 'को' विभक्तियों स्पष्ट दिखाई देने लगीं ।

भाषाकी दृष्टिसे इस युगकी रचनाओंको दो भागोंमें बाँटा जा सकता है —
एक ताँबे की संस्कृतका अनुवाद मान है और दूसरी वे की नितान्त मौखिक
है । अनूदित कवियोंमें संस्कृतनिष्ठा अधिक है, जब कि मौखिकमें सरलता ।
कवि जमालीशासने शोभप्रयाजायकी मुक्ति मुक्तावलीके ५८वें पदका अनुवाद
लिया है

‘शुन प्रताप रवि रीचिब को चाराचर
मुकृति समुद्र सौखिने को कुम्भबद है ।
कोप एव वाचक जवन को चरणि दार
मोह विप मूखको महारदु बन्द है १’

इसी कविकी शब्दात्मक परंपरित (मौखिक) के सातवें पदकी कविपद
पंक्तिमें इस प्रकार है

‘युँसे यो प्रभु पाइव सुब पंडित प्राणी ।
ज्या मधि माएल काहिले बुधि मैकि मयात्री ॥
ज्यो रस कीज रसाधनी रसरोनि जयापै ।
रवो बड में परमारकी परमारप सापै २’

कवि मुररदाने बाहिराजमुरिके ‘एकीभाव स्तोत्र’के छठे श्लोकका अनुवाद
निम्न प्रकारसे किया है

‘धर वन में चिरकाल जग्यो कसु कश्चि न जाई ।
तुम धुति कया विभूय वादिक्य मागन पाई ३’

१ क्तारसी विनास कवचुट, ३ २९ ।

२ वही ३ २९६ ।

अथि तुषार वनसार द्वार शीतक नहिं जा सम ।

करत गहीन तामहिं कवी न मन्वसाप बुद्धै मम ॥”

इन्हीं श्लोकों में ‘मूक विज्ञान का एक शक्तिपूर्ण पद देखिए,

“गरव नहिं कीजै रे रे गर विपद संघार ।

झूठी कथा झूठी भाषा जाया उनीं कलि कीजै रे ॥”

इसी शक्ति पाण्डे हेमराजके ‘माया मन्वसाप’ और ‘अपेक्षबोधोद्धारक’ उक्त श्लोकों में मन्वसापश्लोक ‘ब्रह्म संघर्ष’ और फुटकर रचनाओंकी भाषामें अन्तर्गत है ।

इस युगके शक्तिवादी किंवा १४-१६ की ‘रे’ और अनुस्वारवादी प्रकृति विचारोंके कारणें बाकी है । ‘रे’ के प्रयोगसे संकीर्णतन्त्रात्मक बुद्धि हुई है, और शक्ति-सौन्दर्य भी बढ़ा है । श्री कृष्णकवचका एक पद देखिए,

“आम्नी माघ अघाह् श्लोक शक्तिनी रे ।

श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण शक्त सन्तोषक शक्तिनी रे ॥

शक्तक मन्वसाप सादिकि श्रीकृष्ण शक्त उच्यते रे ।

वरसाह् शक्त वरसाह् सन्तोषक संवर मन्वसाप रे ॥”

यैसा मन्वसापश्लोक ‘रे’ का प्रयोग उत्तम शक्ति किंवा है

“अचेतन की देहरी न कीजै लक्ष्मी देहरी

श्रीकृष्ण की देहरी परम बुद्धि नारी है ।

बाही के अचेतन न चाहे कर्म देहरी सु,

चाहे बुद्धि देहरी के बाकी शक्ति नारी है ॥”

शक्तकवचके ‘शक्ति-स्तोत्र’में अनुस्वारका एकश्लोकपूर्वक प्रयोग हुआ है । यहाँ यह स्पष्ट है कि अनुस्वारका प्रयोग संकीर्णतन्त्रात्मक भाषा-संस्कृतकी शक्ति के लिए नहीं शक्ति-सौन्दर्यके लिए हुआ है । ‘शक्ति-स्तोत्र का एक पद देखिए,

“नरेन्द्रं कर्मैन्द्रं सुरैन्द्रं अघोरं ।

शक्तिन्द्रं सु दूर्ध्वं शक्तिं शक्त शक्तिं ॥

सुधीन्द्रं शक्तिन्द्रं शक्तिं शक्तिं शक्तिं ॥

शक्तिं शक्तिं शक्तिं शक्तिं शक्तिं ॥”

१. इतिहासकी संज्ञा अथवा अन्वय, १९२५ ई. पृ. २०० ।

२. मन्वसाप, अन्वय १९२५ ई. पृ. ७ ।

३. ऐतिहासिक धर्म का अन्वय, पृ. ११५ ।

४. मन्वसाप, अन्वय १९२५ ई. पृ. ७ ।

५. मन्वसाप, शक्ति-स्तोत्र, अथवा अन्वय इतिहासकी संज्ञा १९२५ ई.

पृ. २०० ।

कवि बनारसीदासक पहले ही आपरा हिन्दी-कवियोंका केन्द्र था। आपरा यदि एक ओर राजस्थानसे सम्बन्धित है तो दूसरी ओर ब्रजभूमिसे अतः यह कि कवियोंपर दोनों ही का प्रभाव है। इसके अतिरिक्त उनपर अरबी-अरसीका प्रभाव भी अनिवार्य था क्योंकि आपरा बाघसाहूँकी राजधानी थी। पाण्डे कथनके 'परमासी दोहाघटक'में ब्रजभाषाका घुट है तो 'नमिनाथपदा'में राजस्थानीकी झलक और 'मंथनोत्त प्रवण मुद्र' जड़ी बोलीका निरूपण है। उनकी रचनाओंमें अरबी-अरसीके घन्ट नहीं हैं क्योंकि वे आपरेमें बहुत कम रहे, इसके अतिरिक्त वे संस्कृत-प्राकृतके प्रमाण पवित्र थे।

कवि बनारसीदासकी भाषा मुद्र जड़ी बोलीपर आधारित है। उसपर राजस्थानीका प्रभाव नहीं है किन्तु नारक रचनाने ब्रजकी विशेषता पायी जाती है। उनकी भाषापर उर्दू-अरसीका प्रभाव है। डॉ. होराकाक कैफका कथन है कि बनारसीदासकीने ब्रजभाषाकी भूमिका केकर उसपर मुद्रकाकमें बड़े हुए प्रभाववाले जड़ी बोलीका प्रयोग किया है। बनारसीदासके सम-काकीन और उनके एकचित्त विष कुँवरपालकी भाषापर राजस्थानीका स्पष्ट प्रभाव है। उनके 'शौरोस टापा का एक पद्य देखिए,

“बड़ी त्रिभुजप्रतिमा बुलहरणी।

आरंभ अहा हैन मति भूकी ए त्रिभुज की धरणी ॥

बीतरामावह हूँ बरसावह, मुक्ति पंथ की करणी।

सम्पदादिही त्रिभुजप्रति प्वावह, मिच्छामय की करणी ॥

इस युगमें 'घ' और 'ग' दोनों ही प्रयोग देखे जाते हैं, किन्तु 'घ' की अधिकता है। पाण्डे कथनके 'सीमा 'दरसिनु' मुद्र और त्रिभुजका प्रयोग किया है। कवि बनारसीदासकी रचनाओंमें 'बिनासी मुद्र 'सिबकन' 'बरसन' और 'सरन-बीसे अनेक पद्य हैं जिनमें 'घ'के स्थानपर 'ग' का प्रयोग हुआ है। कुँवरपालने भी 'मुद्र 'मुद्रस' और 'बरसन'में 'घ' को ही बनाया है। घानवरायने भी 'बरसन' शिरीपाल और 'परदेनुंर' का ही प्रयोग किया है। किन्तु इन सबकी रचनाओंमें पद्य-उप-घ का प्रयोग या हैकने-की विचित्रता है। कवि बनारसीदासके 'नाटक समयसार की 'उरी बक जोर यहू

१ डॉ. होराकाक कैफ, अर्थकानककी कथा अर्थकानक, वं भाग्यव प्रेमी सम्पादित संस्कृत संस्करण, १९२० ई. दिल्ली मन्त्रालयक निमित्तेक कर्मा, १ ११।

२ अर्थकानक, अंती-विश संस्करण, कर्मा १ १२।

पिच बाहि बर बरे दिपच
जिबरा तुमरा तरसाबेनी ॥

भूपरदायका प्रत्येक पद प्रसादयुक्तता छायात् प्रतीक है। 'पारसबुदाय' केन घटक और 'भूपरदिकाय' के अतिरिक्त उनके अनेक स्तुति-स्तोत्रोंमें भी उन्मुक्त मुक्त ही शार्ककताको प्राप्त हुआ है।

इस मुपके केन द्वितीय कवियोंने कही बोलीय प्रयोग किया है। उतर पररलीय स्पष्ट प्रभाव है। अर्थात् उनकी कवितायामें प्रारलीके अर्थात् प्रयोग हुआ है। किन्तु वे अन्तर अपनी बोलीमें डाककर अपनाये गये हैं। उतरा उत्तम रूप कही-कही ही देखनेको किछता है। बनारसीरासके अथकवायकमें हुनुप, मुसनिच सीरा मुकक अवरि उहलीक हुदियार, कुसहाक बकर, नचदि, स्वाबास अमराज साहिबादे मुसुन पैजार और बोसरा-बैठे अनेक उर्दु पररलीके उर्य हैं। उां ह्येराकाक केनका कथन है कि इन अर्थात् प्रयोग नहीं-पर ही हुआ है। उर्दा मुकक राज-नामसे अन्तरनिच प्रसंग बाबा है। किन्तु 'अथक उममघार' में ऐसे उरर आध्यात्मिक प्रसंगमें भी जाने हैं। उर्दा अथक हुसरा बरटीक लेव नहक उबरबार निवानी रक बुमानी और मनुपनि-बैठे अन्तर सर्वम विचरे हुए हैं। 'बावबावनी में ही करमात और उरर नहक, स्वाक उरक अथक अरम्बाय कुमक अजाना क्वापे उररर अरुग-बैठे अथक उरर मौनूर है।

अथा अथलीरास पररलीके अथके अथकार वे किन्तु उन्मुक्तें यी पररलीके अथकेको उरुमन बनकर ही अपनाया है। उनके रचनायामें स्वाक अथक मुकाम अथक अथकार परबाह, नमकीक, फलीम अिबाक, अथक अिरेला और अथर अथि अन्तर देखे जाते हैं। उनके किची-किची कवितामें तो पररलीके अथकेकी अथकता है, अथ उररका 'टीन' पररलीयन ही परर है। एक कविता देखिए,

“माय बर मेरा अथा दिख की अथम अथक
आहिब नमकीक है अिचको पररबाविये ।
बाहक अिरेलु बाहि माथिक अथाय बीच
हुकन गीक अिचका अथी अथि अथिच ॥
नामक अथा अथरा है अथली अथाय अथि
अथ रीस अिबावद् इस ही में माथिये ।

पक्ष से गनीम ठेरी उमर साथ करो है
 खिडक तिसैं जाति हूँ भाप सच्छा जातिय' १

'शैया' की भाषा वाटकीय रसके अनुकूल है। यह रस उनके द्वारा रचित संवाचीक मध्य विकसित हुआ है। 'पंचमित्र संवाद' में काव्यिक है। सरल छोटे-छोटे वाक्य हैं। उनमें स्वामाधिक्यता है, रसकी विचकारियों-से मात्स्य होते हैं। देशबरासके संवाद प्रसिद्ध हैं किन्तु उनका प्रयोग केवल रामचन्द्रिका में हुआ है, 'रसिकप्रिया' या 'कविप्रिया' में नहीं। रामचन्द्रिका प्रबन्ध काव्य है। मुक्तक वाक्यमें संवाचीका प्रयोग 'शैया' की है। शीम जोखत कष्टी है।

'शीम कहे रे शौंसि तुम काहे गर्ब करहि ।
 काइक करि जो रंगिय छोहू जाहि उजाहि ॥
 कापर कबो करती रहै धीरज नहीं कमार ।
 बाव बाव में रोय रे बोझै गर्ब अपार ॥
 अहाँ तहाँ जागत फिर देख सकौनो रूप ।
 तेरे ही परसाह तैं हुच पावै किन्हुप ।" २

छन्द-विधान

वि ४ १४ -१८ के तीन कवियोंने बहिक और माहिक दोनों ही प्रकारके छन्दोंका प्रयोग किया है। बहिक छन्दोंका प्रयोग बहिनीसतया संस्कृत की अनुरित इतिवर्ति विद्या गया है और माहिकका मौकिनमें। माहिक छन्दोकी प्रचालना है। इनमें भी बोहा शीपाई कवित्त लक्ष्य और विविध पद्य मुख्य है।

बोहा

बोहा सप्तशतका 'बहोक' और प्राकृतका 'पापा' मुख्य छन्द माना जाता है बोहे ही अपभ्रंसका बोहा। अपभ्रंसको ब्रह्म-विद्या कहते हैं। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीने दोहात्म्य उदात्त-व्यक्त आनीर कातिके 'विरहकानो' में बोध्य है। किन्तु

१. शैव कवलीदास उपमहोदय, १९वीं कवित्त, अद्यकालत छिन्नाद्यति, सन् १९२६ ई. शैव प्रबन्धलाकर काशीनग, पन्ना १ २१।
२. शैव कवलीदास पंचमित्र संवाद अद्यकालत, बोहा २६-२८, १ २०४।
३. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्यका आरिखत अथवा व्याख्यान, १ २१।

लिखित रूपन दाहना सर्वाधिक प्राचीन का 'विक्रमोत्सवीय' के चतुर्थ अंकमें देखा जा सकता है। मोतीलु (छात्री) के 'परमात्मप्रकाश' और माधव र'में भी अक्षरोंके बोझोंका ही प्रयोग हुआ है।

जैन कवियोंमें दोहैका प्रयोग अस्मात्प उपदेश और भक्तिके अर्थमें ही अधिक किया। ज्यौकी परम्परा हिन्दीके भक्ति-काव्यमें मिली। भट्टारक पुस्तक (१६वीं छात्री) में 'तत्त्वसार' हुआ है पाण्डे कपलव (१७वीं छात्री) में 'परमात्मा बोहासतक' में मराम (१७वीं छात्री) में मराम विनाय में और पाण्डे हेमचन्द्र (१८वीं छात्री) में 'तत्त्वस बोहासतक' में दार्ष्टान्तिक एक मात्र प्रयोग किया है। अनेक कृतियाँ ऐसी हैं जिनके बीच बाधमें बड़े बिखारे हुए हैं। बनारसी विद्यालय का एक बोहास है—

“समुद्र सके ती समुद्र अथ है दुर्लभ वर देह ।

किर यह संगति कब मिलै तू अटक ही मेह ॥

चौपाई

चौपाईका आदि रूप है अक्षरोंका पढ़ाईका रूप। इस समय दुर्ब और दुर्बके साथ पढ़ाईका कड़वके कर्म प्रयोग किया जाता था। कवि पुस्तकमें 'हरिचन्द्र पुस्तक' में लिखा है कि इसके आदि आदिपुस्तक चतुर्मुख थे।^१ हिन्दीका आदि 'दुर्ब' का प्रयोग ही समस्त ही ही गया और पसेका स्थान 'ही' ने ले लिया। पढ़ाईका चौपाई हो गया। अक्षरोंकी कड़वकाही टीनी ही हिन्दीकी चौपाई-दाहा टीनीकी उत्पत्ति है।^२

हाँ हीचकाल जैनका जन्म है कि नटवकाही टीनी म्हात्मांमें ही प्रयुक्त होनी थी। हिन्दीके कवियोंमें भी इसी परम्पराको अपनाया। 'पदावर्ण' और रामचरित मानस चौपाई-बोहोमें ही लिखे गये हैं। जैन हिन्दीमें भी काव्यका प्रयुक्त कवि काव्यका अक्षरोंका 'चौपाई' काव्यका हीचकाल और नटवकाही 'पदावर्ण' चौपाई-बोहोका ही निर्यात है।

१ बनारसीविद्यालय अस्मात्प उपदेश, आचार्य रोसा कृष्ण बनारसीविद्यालय अस्मात्प, पृ. २२ ।

२ डॉ. हीराचान बेन, अक्षरोंके काव्य, अक्षरोंका भाग और साहित्य, काव्यकी प्रचलित कविता पृ. ४५ १९१५ ।

३ डॉ. रामचन्द्र शंकर जैन साहित्यकी हिन्दी साहित्यके एक श्रेणी कविग्रन्थ पृ. ४५ ।

४ डॉ. प्रचलित कविता पृ. ४५ १९१५ ।

श्री हजारीप्रसाद द्विवेदीका कल्प है कि चौपाईका जन्म कथानककी ओङ्गके लिए हो हुआ था^१ किन्तु जैन-हिन्दीके अनेक कवियोंने अपने मुक्तक-नाट्योक्त किए भी चौपाईको ही चुना है। बनारसीदासको 'वैशनिर्भयपंचासिका' 'मार्गपादिमान कमप्रकृतिविभाग कन्याचमण्डिर स्तोत्र साधुबन्धना 'ध्यानबलीसी और 'दिव्यबलीसी में प्राय चौपाई और दोहोंका ही प्रयोग हुआ है। मैया प्रगल्बीदासने 'वैशतकर्मचरित्र' 'जितगुणमाला' पंचारमेष्ठि नमस्कार गुणमंत्रो मधु सिन्दूर चौपाई 'उपदेश पञ्चोमिका' 'गन्धीस्वर दीपकी जयमाळा 'बाच्छ पावना 'कमबन्धके रस मेर' और अङ्कुरिम वैशालमन्त्री जयमाळा में अधिकांशतया चौपाईका ही उपयोग हुआ है। प्रारम्भ अथ अथवा मध्यमें कहीं-कहीं दोहे भी हैं।

इन मुक्तक कृतियोंमें चौपाई-दोहोंका प्रयोग प्रकल्प काव्यकी भाँति नहीं हुआ है। प्रकल्प काव्यमें एक चौपाईके उपरान्त एक दोहा आता है किन्तु इन मुक्तक रचनाओंमें कभी एक दोहा और अनेक चौपाईयाँ और कभी अनेक चौपाईयाँ और फिर अनेक दोहारा क्रम मिलता है। कवि बनारसीदासकी 'साधु बन्धना'की एक चौपाई देखिए,

'जहाँत मित्र सूरि उषस्मान । साधु पंच पद परम सहस्रप ॥
इवक चरणम में मग काय । तिम मुनिवर के बन्धों पाव ॥'^२

मैया भयवतीदासकी 'गन्धीस्वर दीप जयमाळा'की एक चौपाई इस प्रकार है
जिन प्रतिमा जिनबहने कही । जिन साध्य में अंतर नहीं ॥
सब सुखदुःख गन्धीस्वर बाव । पूजहि तहाँ विविध कर भाव ।^३

मूयदासके विविध स्तुति स्तोत्रोंमें भी चौपाईका प्रयोग हुआ है। उनका 'पारसनाथ स्तोत्र' प्रारम्भिक दोहोंके उपरान्त चौपाईयोंमें ही लिखा गया है। एक चौपाई इस भाँति है

प्रभु इस जग समरथ ना श्रेय । जासों तुम बस जगन हाथ ॥
चार शानबारा मुनि बँधैं । हम स भेद कहा कर सँधैं ।

१ श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, दिग्गो साहित्यज्ञ त्रिदिव्यल पंचम आकाश
१ २४।

२ बनारसीदास साधुबन्धना चौपाई २ बनारसीदास कनपुर १ ११ ।

३ मैया भयवतीदास गन्धीस्वर दीपकी जयमाळा २जी चौपदे, प्रथमिका,
१ २२१।

४ मूयदास पारसनाथ स्तोत्र, पशु चौपाई इतिवन्तालीभिन्मद, १२२९ ई,
१ १११।

कवित्त

कवित्त ब्रह्मापाका प्रिय छन्द है । मूकट^१ बन्दीजन इसका प्रयोग करते थे । भाष्यारम्भिक और धार्मिक क्षेत्रमें शैव कवियोंने इस छन्दका छठक प्रयोग किया है । शैवा बनारसीदास 'कवित्तों' के राजा थे । उनका एक कवित्त वैदिक,

“भूमज के घीरहर देण कहा गर्भ करे,
ब ली छिन्नमाहिं बाहिं पौल परमत ही ।
संख्या के समान रंग वैखान ही होय भंग
शंखक पतग जैसे काक गरसत ही ॥
मुपन में रूप जैसे इंद्रबनु रूप जैसे,
बीमबुंद चूर जैसे हुरी दरसत ही ।
ऐसोई मरम सब कर्म बाक बर्मभा को
जामें मूढ मम्म होय मरी तरसत ही ॥”^२

'शैवा' ने माथिक कवित्तका भी प्रयोग किया है । किन्तु बीठी ठाक और कम उपयुक्त कवित्तमें है, माथिकमें नहीं आ गयो है । एक माथिक कवित्त इस प्रकार है

‘बेतव बीव विचारहु ली तुम विहसै घेर रहन की बीन ।
देवकोक सुररुद्र कहावत तेहु करदि अंत पुनि गीव ॥
लीव कोक्यति वाप विवेश्वर, ख्यीचर पुनि नर है बीन ।
बह संतार सदा सुपने सम विहसै पास इहां नहीं होल ॥”^३

पुनरुदासने 'शैवछठक' में 'मनहर कवित्तों'का धार्मिक प्रयोग किया है । इनमें भी 'कपली न जोर रह्यो तब ज्यो तुपार बह्यो 'बाकों इन्द्र पाई बई मित्र से बमाई बाती' और 'तापी देव लोई जा में शेष की न केव कोई' जगन है । कवि बनारसीदासने 'नचदुर्गा विद्याल' कवित्तमें ही किया है । उसका एक कवित्त इस प्रकार है,

बई सरस्वती इंद्रबाहिनी मयट कम
बई मन्वेदिनी नवाधी धनुषराणी ।
बई ज्ञानकण्ठन मो कण्ठमो विद्याकिंचत
बई गुणरतन भंडार मात भरणी ।

१ शैवा मन्त्रि-काव्य, पुनरुदासिका, १०वीं कवित्त मन्त्रिकाव्य ५ ५ ।

२ शैवा मन्त्रि-काव्य राज कवित्तों, १०वीं कवित्त मन्त्रिकाव्य २६१६ ई ११वीं ५ २२ ।

३ पुनरुदास शैवछठक, कण्ठमो मन्त्रकवित्त ११ ५१ ५५ ५ २४ २२ ।

यहै गंगा त्रिविधि विचार में द्विपय गौरी
 यहै मोल भावन को तीरथ की बरनी ।
 यहै गोपी यहै राधा राधे भगवान भावै
 यहै देवी सुमति अनेक भांति बरनी ॥^१

सर्वैया

यह भी इजमापाका छन्द है । इसका मूक संस्कृतके बन्धक-वृत्तमें समिहित है । शैल हिन्दीके कवियोंने सर्वैयाके विविध भेषोका सफल प्रयोग किया है । कन्होने कविलाकी अपेक्षा सर्वैयाको अधिक जपनामा । सर्वैयाकी बीसी छटा इन कवियोंकी रचनाओंमें देखनेको मिलनी है अथवा नहीं देखी जा सकती । पाण्डे कवचन्द्रने सर्वैयाका जविकाधिक प्रयोग किया है । उनमेंसे एक इस प्रकार है

‘जोबत की भास करै काक देखै हाक डरे,
 छोडे प्याक पति दै न भावै मोह मग में ॥
 माबा सौं मेरी कई मोहनी सौं सीमा रही
 तापै जीव जागै जैसे हाँक दिया नग में ॥
 बर की न जावै रीति पर छेती माँडे प्रीति
 बर के क्योई जैसे भाइ मिलै बग मै ॥
 पुम्पक सौं कई मेरा जीव जावै यहै डेरा
 कम की कुकच दीपे फिर जीव जाग में ॥”

भुवरासाणे मत्तबन्ध और बुभिक सर्वयोका प्रयोग किया है । कन्होने बुरै कवियाकी निम्ना सर्वयोमें ही की है । एक मत्तबन्ध सर्वैया देखिए,

‘कञ्जव कुम्भत की उपमा कइ देत उरोजव को कवि वारे ।
 कपर इनाम विजोकरत के मनि कीकम को इकणी इकी करे ॥
 बीं सतबैन कई न कुम्भित न हुग घामिचविह बनारे ।
 घावन हार यहै हुँह कार भवे इहि देव किर्ती कुच करे ॥”^२

कन्होने तीर्थकरोंकी स्तुतियाँ भी जविकाप्रथमा मत्तबन्ध सर्वयोमें ही लिखी है । मन्वानु पन्द्रमकी स्तुति करते हुए कन्होने लिखा है

१ कलासहित, कस्तुरी विचार नों कवित उदारसीमितास कस्तुर, १३२४ ई
 ५ २०० ।

२ वारडे कवचन्द्र कव्यात्म लोका जायेर शास्त्र मरदारकी प्रति, पृ १ ।

३ भुवरासा कवचन्द्रक, कवचन्द्रा १३वीं लोका ५ ११ ।

पनासरी

पनासरी भी जैन हिन्दी कविबोधा प्रिय उम्ह है । बनारसी विकास में धरति
'ज्ञान बावणी का निर्माण पनासरीमें ही हुआ है । उसका एक छन्द देखिए,

“कटिक पापाल ताहि मागोसर मार्ग कोऊ
सुबधी रहत कइ राग समान है ।
इत बह सेत इहाँ सत का न हेत कहु
रो (। पीरी मई कइ कंचन के बान है ॥
अथ भगवान के समान काऊ ध्यान मथी
सुभा का भक्षण कइ माध का सुवान है ।
बनारसीदास ज्ञान ज्ञान में बिचार हतो
काव ज्ञीय कैमा हाइ गुण परवान है ॥”^१

फागु

फागु एक प्रकारका लोक-गीत है । यह प्रायः वसन्तमें गाया जाता था । प्रायः
बङ्गुर उमका प्रयोग किसीके भी जानकरबन बीर शीश्वरविष्णुममें होत कइ ।
बिजयचतुर्दशी 'सुनिजह फागु' ऐसा ही एक नाम्य है । जैन हिन्दीके कवियोंने
भयवान् जिनेश्वरी महिमाके अर्थमें 'फागु का प्रयोग किया है । राजसेखरचतुर्दशी
'नेमिनाथफागु भी सोमसुन्दरचतुर्दशी 'नेमिनाथनवरसफाय फारक ज्ञानसुखका
बादीरचरफाय' और बनारसीदासका 'अभ्यात्मफागु' प्रसिद्ध रचनाएँ हैं । राज-
सेखरचतुर्दशी 'नेमिनाथफागु' में किसी हुई राजसीमतीके शीश्वरविष्णु कवियन कीर्तना
देखिए,

पद्

'किरि ससिबिज करोक कछहि डोक कुंरणा ।
मासाबंधा गदह-बंधु दाहिमकक इता ॥
गदह पचाक विरह कहु रागक सर कइत ।
बासुधीशु रचरनई ज्ञानु कोइक द्यकइकइत ॥”

हिन्दीके मति-नाम्यमें परोका महत्त्वपूर्ण स्थान है । सुरदासके क्लिप्त
परोको देखकर वं रामचन्द्र मुत्तने अनुमान किया था कि सुरदास कीर्तनाकरी

१ पनासरी १ बी कलावती, बनारसीविभागत कलकत्ता, १९२४ ई १ पृ. १०० ।

२ राजसेखरचतुर्दशी, नेमिनाथ फागु, राजसुत साहित्यकाल, दिल्लीकाकलादा स्थापना
प्रथम मसुदा, १९२२ ई १ पृ. ४८ ।

जाना जाती हुई किसी पुरानी परम्पराका विकास है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीने उनका मूल स्थान बौद्ध विज्ञानके नामोंसे माना है। उसका मूल रूप कुछ भी हो किन्तु अग्नि और अप्यारथके दोषमें परीक्षा मिलना अधिक प्रयोग सेन कविबाने किया जस्य न कर सके। राजस्थानके जैन मन्दारके गभीर अनुसन्धानमें ६ से अधिक जैन कवियोंके रचे हुए २५ ० के लगभग हिन्दी पदोंका पता लगा है। इन ग्रन्थमें जो अनेक चरित्रचित्राओंका उल्लेख हुआ है। उनमें बनारसीदास बुधराज, पर्यायचय बुधराज आनन्दचन मैदा भक्तनाथस्य आनन्दराय बिनय विशय अयराज देवायदा और भूधरदास अत्यधिक प्रसिद्ध हैं।

जैन परामें भाषामिष्यन्त्रिके साथ-साथ संकीर्णत्वका भी विविध राग उत्पन्नयैके साथ-साथ पायी जाती है। अनेक 'भूधरदास' ही भूधर बिकासमें राम सोठ राम नाटी राम कनाक राम वंजम, राम नट राम सारंग राम मन्जार राम विद्यापते राम बिलास राम गौरी राम यमाक राम प्रभाती राममनासरी राम सारंग राम कल्याण राम बरवा राम बिहारा और राम बनारसीदास प्रयोग किया है। बनारसीदासने राम भेरव राम रामकसे राम बिलासक राम आयासरी राम बरवा राम बनारसी राम सारंग राम गौरी और नाट्यमें अधिक लिखा है। बुधराज आनन्दचन तो राम-रागिनियोंके पण्डित ही थे। उनके चर राम प्रकाशित करनेमें अतिशय मान जाते हैं। 'आनन्दविद्यास'के पद्योंमें भी अनेक नये-नये पर्याय प्रयोग हुआ है उनमें राम कैदारो राम परज और राम बन्धन ता बिलकुल नये हैं। भूधरदासक राम बनारसीका एक नये रंग है।

शेष सुरेस मरेत हरे तादि पा न कोई पाये नू ॥
 कौरे मगन ध्याम विक्रमग मी, को तात गिन काये नू बसेव ॥
 शीम मुजान मिय बुद्धन को संख्या समुसि मुनाई नू ॥ अये ० ॥
 भूधर मुजम गान मरुतक गवपति मी नदि गाई नू ॥ अये ॥”

१. अतः भूधरदास किसी कवी द्वारा हुई कीर्तनाय परम्पराका—बाह्ये बहु भीतिव ही रही हों—युक्त बिलास-या प्रतीन हीना है।”
२. रामकय टुपन ति ती कालियका इतिहास कालिन्ध्र और श्रीराम उपायव कालिन्ध्र प्रकल्पिता जना ज्ञान १ १० वि ३ १ १ ।
३. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्यका इतिहास संस्कृत भाषाभाष्य १ १ २ ।
४. अयराज अत्यधिक २५ अंश ११ २१ ।

पनासरी

पनासरी भी वीर हिन्दी कवियोंका प्रिय छन्द है। 'बनारसीरिषय' में स्फूर्ति
काग शम्भू की निर्माण पनासरीमें ही हुआ है। उसका एक छन्द देखिए,

अधिक वापान ताहि मालीसर मानै कोक
सुंघषी रकठ कदा रतन समाज है ।
इंस बक सेठ इहां सठ को ब हैत कहु,
रो रो पीरी भई कदा कंचन के बान है ॥
भव मगवान के समाज कोक ज्ञान मयो
गुहा को महान कदा मोरु का सुमान है ।
बनारसीरिषय ज्ञाना ज्ञान में विचार देख्य
काज ओय कैसा होय गुण परधान है ॥^१

फागु

फागु एक प्रकारका लोक गीत है। यह प्रायः बसन्तमें गाया जाता था। इसे
पञ्चर बगवा प्रयोग किसीके भी आत्मदर्शन और सौन्दर्यनिरूपण होने क्या।
जितपदगुरिका 'बुझिह फागु' ऐसा ही एक काव्य है। वीर हिन्दीके कवियोंमें
बनारसीरिषयकी महिमाके अर्थमें 'फागु' का प्रयोग किया है। रामदेवगुरिका
'मेमिनाकफागु' भी सोमगुन्दरगुरिका 'मेमिनाकनगररुषय' मन्दारक जलनूपरका
'बाबीररुषय' और बनारसीरिषयका 'अन्तात्मफागु' प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। एक-
दोतरगुरिके 'मेमिनाकफागु' में लिखी हुई राजीमतीके सौन्दर्यकी कतिपय वस्तुओं
केलिए

पद्य

किरी ससिनिष करोक कचहि कोक फुरवा ।
बासाबसा गहर-बंसु दाबिमचक रवा ॥
गहर बवाक निरैह कंडु राजक सर कचड ।
जागुबीसु रकरनद जासु कोरुक द्यकचकड ॥^२

हिन्दीके कवि-नामने बरना महत्वपूर्ण रचा है। गुरदासके विद्वानों
द्वारा हैतव व रावणन मुरझी अनुमान किया था कि गुरदासने शीर्षकावली

१ अन्तात्मफागु १ श्री बन्धारी, बनारसीरिषयक अन्तर्गत, २४२४ ई १ पृ ८२-८३।
२ रामदेवगुरिका 'मेमिनाक फागु', राजल संस्कृत-अध्ययन निदेशिकाका भाग बनारसीरिषय
अन्तर्गत, १९२२ ई १ पृ १८ ।

चितवत बहूत कर्मक अत्रोपम एव चिंता चित होय अग्रमी ।
 त्रिभुवनर्षद पापतपश्चद नमस्तपजन अत्रादिक कामी ॥
 विदु बग कई अत्रिका कोरति चिह्न अत्र चित्त चिचगामी ।
 कपो चतुर चकोर अत्रना अत्रवरम अत्रप्रम एवागी ॥

कवि बनारसीबाबू नारक सम्महार में १४५ सवैया-इकठोसा और १७ ठैर-
 वाचस्योका निर्मात्र किया है । इनमें-से एक सवैया-ठैरैसा इस प्रकार है

'बा बट में अमरुत अनादि चिकित्स महा अविशेक अज्ञातो ।
 वामैहि और सकुन न वीसत पुद्गल मूल्य कर अविभ्रातो ॥
 अंत भय दिखायत औगुक्त सी अकिकै चरनाहि पसातो ।
 मोहसु निज शूरो अइ सौं किवसूति नारक दकन हातो ॥

पैसा बननीबाबू भी सवैरोंके निर्माणमें अधिक कुशल है । उनके द्वारा रचा
 हुआ एक सप्तम सवैया' निम्न प्रकारसे है

'अरु अनादितै चित्त चित्त निज अथ बह नरमय उष्म दातो ।
 समुद्रि समुद्रि पंचित नर प्रानी ठेरे कर चिनामनि आतो ॥
 बट की जाँचै अकिकि बाहरी रतन बीज अविशेष वटातो ।
 तिक में ठेक पास कूकनि में भी बट में बटनात्मक गातो ॥

छप्पय

अन्धवदार्थके 'पृष्ठीपात्र रातो और उनके पूर्व अथवा अन्धे छप्पयवा प्रयोग
 प्राय और-रसमें ही हुआ है । शैल हिन्दीके कवियोंके अनेको अन्ध्यात्म और अन्धके
 अर्थमें भी प्रयुक्त किया । कवि बनारसीबाबूने 'नारक सम्महार'में ९ छप्पयवा
 निर्मात्र किया है । भूवरवाएके अन्धधतक में अन्धवयन और अन्धूर सवैरों तथा
 बोहोके साथ-साथ छप्पययोका भी प्रयोग हुआ है । अन्धवान् पार्श्वनाथजी अन्धमें एक
 छप्पयकी प्रथम दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

"अन्धम-अकिकि-अकिकान अन्ध अन्धैस-आज सर ।
 सरय इन्द्र निकि अन्ध अन्ध जिस अन्धै छीस पर ।"^१

१ कवी, १वीं सवैया ४ ।

बनारसीबाबू, नारक सम्महार, शैल प्रथम एवाकर बाकीअन्ध कर्षी प्रथम अन्धवय,
 नि स १११३, ४ १ ।

२ शैल अन्धनीबाबू अन्ध अन्धोपरी १२वीं सवैया अन्धवयान, ११४ ई, कर्षी
 ४ १७ ।

३ भूवरवाए अन्धधतक, अन्धवयान १२वीं सवैया, ४ १ ।

मैत्रा भनवतीदासने भी छप्पबोका प्रयोग मन्त्रिके क्षेत्रमें ही किया। छतक हाए रही नयी 'चतुर्विंशति जिनस्तुति' का एक छप्पम है,

त्रिभवर चाराचंद्र चतुस्तारा नित बर्षे ।
 बर्षे सुरनर कोटिकादि सुरचंद्र बर्षे ॥
 भार्गव मंगल ह्य ज्ञाप ज्ञाप हस्तिनपुर ज्ञाप ।
 ज्ञापे सांघिकिनदेव देव सब ही सुख पाये ॥
 पाव सुमात पेरारगल तल कंधन बिम्बसेन गिल ।
 गिल सु कोप गुण का बन्धो बन्धो सुतारन तरल जिन ॥”

कुण्डलिया

बनारसीदासन 'नाटक समयसार' में चार कुण्डलिया भी लिखी हैं। 'बनारसी-विलास' में भी यत्र-तत्र अनेक कुण्डलियोंका प्रयोग हुआ है। वेद निम्न पंचासिका' की एक कुण्डलिया निम्न प्रकार है,

“ऊपर सब सुरकाक के 'महालाक' चमिराम ।
 सा सरचारणमिदि तनु पंचानुत्तर नाम ॥
 पंचानुत्तरनाम ज्ञाम एक्य ज्ञापतारी ।
 तहां पूर्वमन बस ज्ञापनजिन समकित्तवारी ॥
 महाकोक सौ जय मय ज्ञाया इदि भूर ।
 जार्ते कोक कहान द्य 'ज्ञाया' सब कर ॥

मैत्रा भनवतीदासने भी कुण्डलिया छप्पका प्रयोग किया है। छतकी रचना 'छत जहोतरी' की एक कुण्डलिया इस भाँति है

सुधा सयानप सब गई सेवा सेमर बुच्छ ।
 ज्ञापे भीषे ज्ञाम के पापै परम बुच्छ ॥
 ज्ञापै व्रत बुच्छ बुच्छ की भद्र न ज्ञाम्यो ।
 रह निपच कपटाच मुग्धजति परम मुक्तामो ॥
 कर्ममहि विक्रम एष स्वाह पुन कष्ट न हुआ ।
 यहै ज्ञान का टीनि दिशि सेमरमम सुधा ॥ ३

१ मैत्रा भनवतीदास चतुर्विंशतिजिनस्तुति २२वीं इत्यत्र मन्त्रिनास, ५ २२।

२. यदि बनारसीदास वेदनिपतर्वचनिका ४४वीं पन्, बनारसीदास चतुर १९२४ ई ५ २६।

३ मैत्रा भनवतीदास छत जहोतरी कर्णावक मन्त्रिनास ५ २२।

पनासरी

पनासरी भी केन हिन्दी क विवाहा प्रिय छन्द है । बनारसी विद्यालय में अकलि
‘आन बाबगी का निर्माप पनासरीमें ही हुवा है । उसका एक छन्द देखिए,

अरि क पापाज छाहि मोगीसर भाई कोऊ

हुंअधी रकठ कहा एतव समान है ।

ईस बक सेठ हवां अठ को न हेत कसु

री री पीरी भई कहा कल्प के बान है ॥

भव मगवान क समान अरु बान मयो

मुवा को मवान कहा मोख को सुधान है ।

बनारसीदास आता आन में बिचार बुरी

करव ओय कैना हाड गुन परवान है ॥”^१

फागु

फागु एक प्रकारक बीज-गीत है । यह प्रायः बरतमें बामा बाता वा । भारे
बककर हमका प्रयोग किसीके भी आनन्दवर्धन और हीनदर्दनिस्पयमें होन कना ।
विनपघमुरिका ‘बुद्धिमद् फागु’ ऐसा ही एक काव्य है । केन हिन्दोके कवियाण
मनबाल् विनेन्द्रकी मद्रिमके बरमें ‘फागु’ का प्रयोग किया है । राजसेखरमुरिका
‘बेमिनाबकानु भी सोमकुन्दरमुरिका ‘बेमिनाबनवरतफाय अरुारक आननुपकल
आदीनवरकान’ और बनारसीदासका अध्यात्मफागु प्रसिद्ध रचनाएँ हैं । राज-
सेखरमुरिके ‘बेमिनाबकानु में लिखो हुई राजीपतीके तीनवर्षकी कतिपय बलिमा
देखिए,

पद

किरि ससिनिब कपाक कछहि बीक फुरवा ।

नासाबधा मरुत-बंशु दाहिमकक बटा ॥

घहर पवाक तिरह बंशु राकक घर कउठ ।

बासुपीसु एपरनद् बासु कोइक टहकउठक ॥”

हिन्दीक कवि-काव्यमें पवाक महत्त्वपूर्ण स्थान है । नूरदासके विरचित
बरीको देखकर पं राजबन्धु मुक्तने अनुमान किया वा कि नूरदासके तीर्थयात्री

१ आनबाबगी २ बीनबाबगी बनारसीविद्यालय बनारस, १९२४ ई ३ ८२-८३ ।

४ राजसेखरमुरिके, बेमिनाब फागु, राजसुत साहित्यालय दिल्लीआनबाबगी १९२४ ई ५ ४५ ।

बनी जाती हुई किसी पुरानी परम्पराका विकास है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीने उलफा मूक स्वाम बौद्ध चित्रोंके नामाको माना है। उसका मूक रूप कुछ भी हो किन्तु भक्ति और आध्यात्मके क्षेत्रमें पर्योषा जिनता अधिक प्रयोग शैल कवियोंने किया अत्यन्त कर सके। राजस्वानके शैल मन्त्रारारके लक्ष्मी धनुस्वाममें १ से अधिक शैल कवियोंके रचे हुए २५ के लगभग हिन्दी पद्यका पता चलता है। इस ग्रन्थमें भी अनेक पद्यरचयितामाका उल्लेख हुआ है। उनमें बनारसीबास भूषरपाक, यद्योचिन्म महात्मा आनन्दचम मीमा मगबडोबास आनन्दराय विनय विनय जगदाम देवाचल्य और भूषरबास अत्यधिक प्रसिद्ध हैं।

शैल पद्यमें भावामिष्यन्तिके धाप-धाप संघीतात्मकता भी विचित्र राय-रायनियोंके धाप-धाप पानी जाती है। अकेले 'भूषरबास'ने ही भूषर विनयमें राम सोठ राग काफ़ी राग क्याळ राग पंचम राग गढ राग छारंग राय मकार राय बिहावरो राय बिहावळ रायपीरी राय यमाळ राय प्रभाती रायबनासरी राय छारंग राय नस्यान राय बरबा राग बिहाव और राय बनासरीका प्रयोग किया है। बनारसीबासने राम भैरव राय रामकको राय बिहावळ राय नासावरी राय बरबा राग बनाभी राग छारंग राय गौरी और काफ़ीमें अधिक किन्ना है। महात्मा आनन्दचम तो राय रागिनियोंके पञ्चित ही थे। उनके पर रस प्रवाहित करनेमें अद्वितीय माने जाते हैं। 'आनन्दविद्या'के पद्योंमें भी अनेक नये-नये रागोक्त प्रयोग हुआ है, उनमें राम केदारो राय परब और राय बसन्त तो बिल्कुल नये हैं। भूषरबासके राय बनासरीका एक पद्य देखिए

शेष सुरेश नरोध हई सोहि वार न कोई पावै ॥
 काटै जपठ स्वोम विकसत सीं ओ तारे गिब कावै ॥
 कीन भुजान मेव बृहन् की संकथा समुद्रि सुनावै ॥
 भूषर भुजस गीत मपूरव गजवति भी नहि गारै ॥

१ 'अथ भूषरबास किसी बनी जाती हुई वीरकाम्य परम्पराका—बाह्य बहू मौखिक ही रही हो—पूर्व विकास-ना प्रतीत होता है।

२ रामचन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्यका इतिहास संश्लेषित और परिष्कृत उत्तरकाल काशी शास्त्री प्रचारिणी सभा बंगाल १९१७ वि सं पृ २ ।

३ डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्यका आदिकाल पंचम अन्वयान पृ २०० ।

४ भूषरबास भूषरविद्यास ३२ वाँ पद्य पृष्ठ १६ ।

अद्विष्ट

वैत-हिन्दी के कवियों में अद्विष्टों का भी प्रयोग किया है। कवि बजारगीहाने 'नाटक समग्र' में भाग अद्विष्ट लिखे हैं। यही अद्विष्टों का भी अद्विष्ट लिखे हैं किन्तु बहुत कम। इनकी रचना 'मन-बत्ती' का एक अद्विष्ट इस प्रकार है

“बड़ा मुँहास मूढ़ कपे कहा मट्टका ।
कहा महापे गंग बही के तट्टका ॥
कहा कपा के मुने बचन के पट्टका ।
जो कप बाहों छोड़ि पसेरो अट्टका ॥”

यही मूढ-प्रायः के पार्श्व पुराण में अद्विष्ट अद्विष्ट भी लिखे हुए हैं। अतः एक अद्विष्ट है

“अष्ट गुणगणों कप कर्ममळ सुष्ट है ।
बिधि बतपति बिबाध कम संशुष्ट है ॥
बरम देह तें ककुळ हीन बरदेष्ट है ।
कोक अग्रपुर बसें बरम परमष्ट है ॥”

हरिगीतिका

सभारमक छन्दों में हरिगीतिका का प्रमुख स्थान है। इसमें लोकोक्त और भाष्य भाषाओं पर विचार होता है। इसके संस्करण के लिए प्रत्येक वर्ष में १९वीं १९वीं १९वीं और २९वीं माघाई कबु होती है। अन्तिम दो माघाई में उपान्त कबु और अन्त्य दीर्घ होता है। कवि बजारगीहाने का एक हरिगीतिका विम्बलिखित है

ये अगल अम को छुरन धारिं एक विम्बित सुरग सं ।
के हरिं परम विवेक बोधन अक द्वाधन उरग से ॥
के पुम्बहुळकुम्बर तीक्ष्ण गुपति अठ मुझा करे ।
ते करन सुम्भ प्रहार मविजव एष सुमारग पण करे ॥^३

छोरठा

सभी वैत कवियों ने छोरठाना अविवाहिक प्रयोग किया है। यौगिक छोरठों के स्थान पर छोरठे भी बहुत लिखे गये हैं। पुनः कवि भी छोरठों में कविता

१ मिया फल्लामास मन्वन्तीमी २ वीं वर्ष, अद्विष्टिका, पृ. २२४।

२ मूढ-प्रायः वास्तुपुराण, अन्वन्ता अन्वन्तीमिच्छा ३२वीं वर्ष, पृ. ३३।

३ अन्ति सुम्भान्ती २२वीं वर्ष, अन्वन्ती विष्णु अन्वन्त, १९३४ ई. पृ. ३२।

हुई है। कवि भूषरबासके 'पार्श्वपुराण'का एक श्लोक है

'इयाम्भवरत्न बहू जानि भूप भुषा वन को बन्धो ।
किन्धी पुम्बडर माणि भूषा मिस पाठग मन्धो ॥'^१

नये छन्द

कवि बनारसीदासने अनेक नवीन छन्दका प्रयोग किया है। बरतु आमासक रोबक करिका भेयरि और पद्मावती तो बिक्रमक नवीन है। पद्मावती छन्दमें कविने ब्रह्मवातके द्वारा अवात्मनता उत्पन्न की है। उनका क्रिया हुआ एक पद्मावती छन्द इस प्रकार है

'उर्वी नीरता पुरण के सनमुख पुरकामिनि कदाञ्च कर ल्पि ।
इवीं बल त्यागरहित प्रहृषेवन कसर में बरपा त्रिम झूठी ॥
ज्यो त्रिकमार्हि कमाक को बोलन पवन पकर त्रिम बौधिये मूढी ।
ये करत्ति होव त्रिम निरुद्ध्य त्वीं बिन माव क्रिया सब झूठी ॥'^२

कवि भूषरबास नये-नये छन्दको विषयके अनुकूल ढाकनेमें निपुण है। कन्दलि नरेन्द्र और ज्योमवती छन्दका प्रयोग संवीतकी कव्यके लान किया है। ज्योमवती छन्दका एक उदाहरण देखिए

'जे प्रथम कहरि को पकरै पद्म पकर पाँच वीं बापै ।
त्रिमकी लवक देख मीं बौकी कोरक सूरदीनता बापै ॥
ऐसे पुरण पद्मर उदावन प्रकष पवन ठिब बेद पचापै ।
कन्द बन्ध से साहु साहसी मन सुमेरु त्रिमको नहिं बापै ।'^३

अलंकार योजना

वैन-हिन्दी कवियोंकी रचनाओंमें अलंकार स्वभावतः जाये है। अर्थात् अलंकारोंको ब्रह्मत् काव्यप्र प्रभाव नहीं किया गया। वैन कवियोंमें भावको ही प्रधानता थी है। भाव-वत शौन्धको अनुभूय रखते हुए यदि अलंकार जाते भी हैं तो उनसे कविता कोशिल नहीं हो पाती। वैन कवियोंकी कविताओंसे प्रभावित है कि उनमें अलंकारोंका प्रयोग तो हुआ है किन्तु उनको प्रमुखता नहीं दी गयी। वे तर्क-मूल भावकी अनिव्यक्तिमें अलंकार-नर प्रभावित हुए हैं। वैन

१ भूषरबास पार्श्वपुराण, अष्टमोऽधिकारः, ८१वीं श्लोक पृष्ठ १८८।

२ कन्दलि नरेन्द्रकी ८३ वीं पद्य बनारसीदास कन्दपुर ११३४ ई. पृ. ३१।

३ पार्श्वपुराण अष्टमोऽधिकार अष्टमोऽधिकार भाषितारत्तर पृष्ठ १११।

कविबोका अनुप्रासोंपर एकाधिकपर बा। कवि बनारसीदासकी अनेक रचनाओंमें अनुप्रासोंका सुन्दर प्रयोग हुआ है। 'नाटक समवसार'का एक पद्य देखिए,

रेव की-सी गड़ी किचों मड़ी है मसाज की-सी

अन्दर बंधेरी बीसी कन्दरा है रोक की।

कपर की कमक बमक पड़भूलन की

बीबी कागे मकी बीसी ककी है कबैक की।

घौगुन की भीड़ी महा भीड़ी मोह की कर्णोड़ी

माणा की मसूरति है मूरति है रोक की।

पेसी देह पादि के सभैह बायी संगति छीं

है रहो हमारी सति कोऊ न से रोक की ॥^१

मेधा घनघटीदासन अपना पुरा परमात्म अटक' बमक बसंकारवै जिहा है। उसके दो पद्य देखिए,

'पीर होहु सुबाल पीर करे है रहे।

पीरे छम विन काग पीरे सुखा छुडुनि कई ॥^२

× × ×

मै न काम बीलो मको मै न काम रसकीर।

मै न काम करयो किचो, मै न काम जाबीन ॥^३

हिन्दीके केन-काव्योंमें अनेक अर्थान्तरोंका प्रयोग हुआ है। इनमें धी वपय अत्रेका रूपक और स्त्रीयमें हीरक अधिक है। केन कविबोके तादुस्वमुक्त अर्थ-कारोकी घोखला केनक स्वक्य भावना बोध करानेके लिए मड़ी की अफिनु अन्वेष-के नामको सुन्दरताके साथ अभिव्यक्त करनेके लिए की है। कवि बनारसीदासके एक पद्यमें बीबीकी वाचक और निरंजनवाचको मकी रूर बवाला है

'कच कचि छीं पीरिं दग वाचक बुंद मखवपद मच की।

कच छुद म्माच करीं समता रादि कई न ममता लव की ॥^४

१ नाटक समवसार, सुद्विज्ञान भास्करजी मीकासहित हिन्दी केन प्रबन्धवाचक अन्वेषण कई, १७ पृ ११२-११३।

२. अत्रे अन्व 'पीरे' का अर्थ प्यारे किरीक्या 'पीरे' सुबोका 'पीरिन' और अनुर्ण का भिसे है।

३. पहले 'काम' का अर्थ है 'कामकेको मरी' दूसरे 'काम' का अर्थ है अर्थ हीरक 'अर्थ बही किम' और बीबीका 'कामदेवके मनीन मरी है'। पृ०, ५१० रोका पृ० १५०।

४ बनारसीदास अन्वेषणरसिक, १५११ न बनारसीविज्ञान अन्वेषण, १९४४ पृ २११।

कवि सागतरामने बिलको बकोर और बिलेश्वरको बज्र तथा अपने पार्ष्णीको बरग और प्रभुके नामको मोर माना है,

“भवि ! पूषी मम बज्र श्री बिलेश्वर बिल बकोर सुल करन इन्द्र ।

कुमवि कुमुबिनी हरन सूर बिबन सवन बन वहन मूर ॥ भवि ॥

पाप बरग प्रभु नाम मोर मोह महात्म ब्रह्म और ॥ भवि ॥”

भूवरदासको रचनामें ज्योत्सनाबोकी अधिकता है। एक स्तानपर उन्होंने लिखा है कि भयवान् आदिनाथके चरणोपर देवपथ धाक मुका रही है तो वह मानो अपने कुन्मौकी रेखा भेटना चाहते हैं

‘जमर समूह धामि बबनी सौ बसि बसि सीस प्रबाम करै हैं ।

किची माळ कुकरम की रेखा बुर करन की बुद्धि बरे हैं ॥”

पुरापुर राजा भयवान् सांनिताथके चरणोपर अपना धाक मुकाकर प्रणाम कर रहे हैं। उनके माऊपर नीक भविसे बड़े हुए मुकुट कये हैं। माऊके छाव-छाव से मुकुट पी मुकटे हैं और उनके छाव नीक भविमां भी तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे मानो भयवान्के चरण-रामबोकी सुपान्धिको भूबनेके किए भीरोकी पंक्ति ही बखी जायी है,

‘सेवत पाव भुराभुर राव बमै थिर नाप महोत्क वाई ॥

मौकि कगे भवि नीक दिपै प्रभु के चरणों झङके बह झाई ।

सूवन पाव-सरोज-सुगन्धि किची बकि से बकि पङ्क्ति झाई ॥”

पाण्डुक सिद्धापर भयवान् पार्ष्णप्रभुका हीरोरधिके बरुते स्नान किया था रहा है। स्नानका बह आकासमें उड़क पड्य तो ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कि वह पापद्विष्ट होकर ऊर्ध्व दिशामें जा रहा है।^१ स्नानके उपरान्त भयवान्के चरण पर सजीने कुंजुमारिका केप किया। वह मानो नीलमिदिर सौह पूषी हो।^२

१ आनतराज आनतरविश्वत बरुत्कथा ४२वीं पद्य, पृ. २२।

२ भूवरदास शैवस्तोत्र, कलकत्ता आदिनाथ स्मृति समैवा बरता पद्य, पृ. २।

३ श्री, बर्मा पद्य, पृ. २।

४ बखी शैव के नीर श्री छटा नम माहि।

स्वामी सय बज्र बिल भई बयो नाँठ ऊरव माहि ॥

भूवरदास पास्वपुराण बरुत्कथा चोद्विंशतः पृ. २२।

५ बज्र इन्द्रानी बिलवर ध्वज निर्बल कियो बसन मुनि सय।

कुंजुमारिलेपन बनु किये प्रभु के हेड निरेपन किये ॥

इहि जोमा इव बीसर मास किची नीलबिदि पूषी सौस।

नरी, चोद्विंशतः, पृ. २२।

कवि बनारसीदासके नाटक समयसारमें भी अन्तम उल्लेखालोक्य प्रयोग हुआ है। विनस्वर धरीरवर कल्पना करते हुए कविने लिखा है,

“धैर धैर एकनि के कुण्ड केसवि कं सुन्द,
हाड़वि सों मरी बिस बरी है चुरैछ की।
बारे स बचका करो ऐसै फर बाप भागों
नागद की हरी श्रीधो चानर है बिक की ॥”

कैव कवियोकी रचनाक्रमेण ‘कल्पक’ बर्णनारोका भी प्रयोग हुआ है। इन्होंने उपमेयमें उपमानका आरोप कुशलतासे निभा है। कवि बनारसीदासने प्रस्तुत और अप्रस्तुतका वैकल्य उपसाधन ही नहीं दिखाया, किन्तु प्रस्तुतक पात्रको भी टीस दिया है। कामाची विनष्टतामें कर्मका वर्णन दिखा है। उसपर अचतनताकी भीरमें शैल सो रहा है,

“कामा की विनवारी में कम परबक मारी
माया की संगरी संज चानर कल्पना।
सैन करि शैलन अचेतन भीह किय
मोह करि मरोर यहै जोचन को डपना ॥
उई बक जोर यहै ह्वास को अचरु जोर
विधि सुखकारी जाकी हीर यहो सपना।
ऐसी मूढ बुला में मगन रहे तिहुँ काक
बाये भ्रम-जाक में न बाये रूप अपना ॥”

कैव बनारसीदासने टपचोमें शोक है। कामाची नगरीमें विद्यन्मरकी राजा राज्य करता है। बहु माया-सी राजीमें मगन रहता है। उसके पाठ मोहना प्रीतिशर जोबका कोतबाक और जोषना बजोर है।

‘कामा सी तु बगरी में विदाबंद राज करे,
माया सी तु राबी पै मगन बहु मचा है।
मोह सा है श्रीजदार जोष सा है कोतबाक
काम सा बजोर जहां सुदिये को रह्यो ई ॥
उई को तु काजी मारी मान को अचरु जाने
काम सेना काम भील चाह बाकी रह्यो ई।

१. नाटक समयसार, भारतीय हिन्दी कैव कवि कैव साहित्य सम्मेलन समिति, पृ. १०।

२. बनारसीदास काव्यसमकालीन इतिहास नामक की अन्तर्गत में कैव मगन राज-
कर अर्थात्, पृ. १४४ पृ. १४२-१४५।

ऐसी राजधानी में भयसे गुञ्ज भुक्ति गयो

सुधि जब आई तबै ज्ञान ब्याह गइयो है ॥

मूबरदासने भी अनेक कर्मोंका निर्माण किया है। मम पुत्रा है और ममवान् बिलेखक पत्र पित्रदा। इस मन्त्रकी सूत्रने सधारक अनेक वृत्तोंके कवने कर्मोंको ठोड़-ठोड़कर बसा है किन्तु उनसे कुछ हुआ नहीं। फिर भी वह निश्चित है। ममवान्के परमपत्नी पित्रदेमे मही बसता। कायकनी वन-बिजाव उसको ठाक रहा है, वह जबसर पावे ही बाव केगा फिर कोई न बचा सकेया।^१ मूबरदासका एक श्रम्य पर सुनि ठपती माया है सब बग टव खाया' म प्रसिद्ध रूपक है।

शैव कविमाने प्रतिपाद्य विषयको प्रभावशाली बनानेके लिए नवीन उपमाओंके उदाहरण दिये हैं। उन्होंने परम्परागत उपमाओंको भी स्वीकार किया है किन्तु बहुत कम। उनकी निजी अनुभूतियोंने नयी कल्पनाओंको जन्म देकर बर्ण्य विषयके शीर्षकोंको बढ़ाया है। शैव कविमाने उदाहरण अर्द्ध-आरभी एक पुनर्द् ही खीधा है। अर्द्ध बनारसीदासका एक उदाहरणार्थकार इस प्रकार है।

‘जैसे मि सबासर रहे पंक ही में
पंकज कहावै पे न बाके रिंग पंक है।

जैसे मन्त्रवादी विषयमें सौ गहावें गाव
मंत्र की शक्ति बाके बिना विष बंक है।

जैसे जीम पादे बिकवाई रहे कसे भंग
पात्री में कनक जैसे काई से अरुंक है।

तैसे शावबल माला मति करवृत्ति दार्भ
किरिया तै मित्र माने माते निरुर्धक है ॥^४

१ मेवा मन्त्रकीदास राजमन्त्रोपरी लखेवा २२वाँ, अर्द्धविज्ञास, सन् १९२९ ई शैव मन्त्र उदाहरण कार्यालय, कम्पै ५ १५।

२ मेरे मन्त्र सुवा जितपद पीजरे बसि मार लाव न बार रे ॥

सधार मे अकबुञ्ज सेवत कयो काक अपार रे।

विषय कळ तिस ठोड़ि बाबे बहा बैक्यी सार रे ॥

तु कयो निश्चितो सद्य ठोको उकत काक मंवार रे।

बाबै अबातक जाव तब तुसे शीम कैय अवार रे ॥

पूबरदास मूबरविज्ञास कनकटा २२वाँ पद ५ ३-४।

३. वही अर्द्धक ५ २।

४ बनारसीदास बायकमन्त्राट, जैन मन्त्र उदाहरण कार्यालय, कम्पै ५२, ५ १९७-१९८।

मुनि जयकाकके 'विमलनाथ स्तवन' में भी उदाहरणार्थकारका प्रयोग हुआ है। एक स्थानपर उन्होंने लिखा है कि मन्वानके वर्णनमें मन् देवा प्रसन्न हुआ जैसे कि मन्त्रके देखनेसे चकोर इपित होता है

“तुम हरमन् मन् हरपा चंदा जम चकोर की ।

राजसिंघि मांगक नहीं मन् मन् हरसन् घोष की ॥”

दानतटामने अनेक उदाहरणोंके द्वारा कर्म विषयको मुखर बनाया है। एक स्थानपर उन्होंने लिखा है कि सम्पत्तिके बिना हम बीबनही बिकवार है। सम्पत्तिके बिना बीबन बीसा है, यह बचानेके लिए, उन्होंने अनेक उदाहरण दिये हैं,

‘ज्यों विनु कंठ कामिनी सोमा
 कंचुन विनु सरवर ज्यों सूना ।
 जैसे बिना एकदू विन्ही
 रजों समकिल बिब सरब गुना ॥
 जैसे भूय बिबा सब सखा
 नीच बिबा महरि सुनना ।
 वैद्य कन्ध विह्वी रजनी
 इन्हें क्यदि जाना निनुना ॥”

पान्थे कनकपत्री रचनाकारों में भी उपमेयको उदाहरणोंके द्वारा कुछ बतलाया गया है। इनमें लीख्य है। एक स्थानपर उन्होंने लिखा है कि विषयोंके सबनसे तुल्य बुझती नहीं जैसे चाटी बकसे प्यास उपपन्न नहीं होती

“विषयन सबत मन् तुल्यो तें न बुझाय ।

ज्यों बक पारा पीवत बाड़े तुषाधिकार ॥

विशेषित अर्थकारमें एकके बिना दूसरेके सीमित धरना अपेक्षित होनेका वर्णन किया जाता है। कवि मूबरदातने रामके बिना संतारक बीरोंकी कार हीनताका वर्णन किया है,

‘राग करै मोघ भाव कायत सुहाबने से
 बिना राम जैसे काग जैसे बाय करे है ।
 राग हीन ज्यों पाग रहे तब मैं अन्वीक बीर
 राग यजे आवत निकामि होत न्यारी है ॥

१. वही मन्त्रक्य दूतक्य अन्वय ।

२. दानतटाम बाणकियाम कर्मक्या इत्यादि, १, १२ ।

३. वही मन्त्रक्य दूतक्य अन्वय ।

राग सौं जागत रीति हूँसी सब साँच जाने
 राग मिटे सूझत बसत खेळ धारे हैं ।
 रागी बिन रागी के बिचार में बड़ो हो मेद
 जैन भदा पण्य काहु काहु को बवार हैं ॥^१

कवि बनारसीदासके 'धर्म-बधामक'में आक्षेपात्मककारणा स्वान-स्वानपर
 समवेस हुआ है । एक आक्षेपात्मककार निम्न प्रकारसे है

"संख रूप सिव देव महार्सन बनारसी ।
 शोक मिळ अवेच साहित्य खेवक एक से ॥"

बारमा और परमात्माके निरूपणमें कवि बनारसीदासने विरोधाभास अत्मकारणा
 भी बखटा परिचय दिया है । निम्नलिखित पद्यमें विरोधाभास अत्मकार है,

"एक में अवेक है अनेक ही में एक है सौ
 एक ब अवेक क्यु क्यो न परत है ।"

प्रकृति चित्रण

शैव कविदोंका मुखर सम्मन्व मानवप्रकृतिते ही रहा है, किन्तु उन्होंने बाह्य
 प्रकृति का भी निरूपण किया है । शैव मुनि प्रायः नदी सरोवरके किनारे, पर्वतके
 ऊपर या जगदीश्वर का मन्दिरमें तप करते थे । प्रकृति जगता रोप विभाती भी किन्तु
 मुनि विचकित नहीं होते थे । साधनका माहू है और जेनीसवर विरगिनारपर तप
 करने बने बने हैं । इसपर टाभीमती क्यूती है,

'विषा साधन में प्रत खीमे बही
 बबवार बदा सुर आवैगी ।
 चहुं जोर सें मोर सु सौर करे
 बल कोकिक कुइक मुनावैगी ॥
 पिच रैन बैजेरी में सुमे नहीं
 कहु वामिन दमक हरावैगी ।

१ पूररास बैरामक, कलकत्ता १९०१ पृ ५ ।

२ बनारसीदास धर्मबधामक, बामुराम मेरी संपादित, अरोपिन संस्करण अक्टूबर
 १९१७, पन्ने ११७ वां सोपेदा पृ १७ ।

३ बनारसीदास आध्यात्मवार्ता, शैव सम्प्रदायाकर, पन्ने ४११ पृ १०१ ।

पुरवाई की झोंक सहोगे नहीं

ठिन में तप तेज झड़ानी ॥

भूवरदासने श्रीमतीकी ब्रह्मकरताका सम्बोध किया है। बैठना पूर्व तप रहा है उठेपर मुझ गये हैं परन्तु तपकर जान हो नय है नम जैन धामु उतरर बैठकर तप करते हैं

बैठ तपै हवि भक्त्यो सूखी सरवर नीर ।

बीक बिहार मुदि तप तपै हासै नगल शरीर ॥

ते मुझ मेरे मन नसो ॥^१

भूवरदासने इसी कृष्णकी एक हूनरै स्वातपर अधिक सफल बाधोमें व्यक्त किया है। जब बैठ लकोरता है, बीक मन्त्रा छोड़नी है, पपु-सती छंद हूँ हने है परन्तु बाह-मुनसे हो जाते हैं तब जैन धामु उतरर तप करते हैं

बैठ की सकोरै कहाँ मंदा भीक करै पद्म,

पंछो छंद कोरै गिरि कोरै तप वे करे ॥^२

मानवकी अन्तःप्रकृतिमें अधिक करीमें बौद्ध कविने बाह्यप्रकृतिमें सहायता की है। तोरनकारते कौटिल्य नेमीस्वर विरिणारपर तप करते बने बने। राजीमनीकी बातेंसे जामुको बार बह निकली। यह इसी रूपमें नेमीस्वरको देखनेके लिए विरिणारकी बीर बह पडी। अथ तम्य कवि हेमचन्द्रियनुरिने प्रकृति-का बागावरण देना अधिक किया है, जिससे राजीमनीके हृदयका बाह्यार बाधना हो गया है। यह पद्य देखिए

अनघार बदा अनधी सु गई इततै उततै जमकी विचकी ।

विपुरे विपुरे बदिहा विचकाति सु मीर किंवार करंति विचकी ॥

विच विचु बरे दय जंमु सरें बुनि बार अनार इसी विचकी ।

मुनि हेम के साहब देखन कूं, अमसेन कहीं सु चकेको चकी ॥^३

बहुत प्राचीन कालमें बौद्ध धामुके आचरणपर प्रकृति हर्ष प्रकट करती रही है। श्री कृष्णकामने अपने मुझ की पूज्यबाह्यके स्वातनमें पुनर्जित प्रकृतिमें अधिक किया है

१ किलोमीटरके बौद्ध-उत्तुनका वारसमाता ५वा कथ, वारसमाता-संभव विचकीपी पवारक कालाचर, कलकता ५ २४।

२ भूवरदास मुक्त-मुनि, जॉर्ज कथ, इतिहासकी संभव १९२९ ई, ५ १२।

३ भूवरदास नेमालक, कलकता १९३१ कथ ५ ४।

४ एता मन्त्रा सुनेटा जन्माव ।

‘प्रबचन बचन विस्तार अरु तरबर ध्या रे ।

कोकिल कामिनी गीत धापइ श्री गुरु तप्या रे ॥
गाइइ गाइइ गगन संसोर श्री पूज्यनी देवता रे ।

भविष्य मीर चकोर धापइ छुम बासला रे ॥
सदा गुरु प्यान स्नान कहरि सीतक बहइ रे ।

कीर्ति सुखस विसाल सकळ बग महमहइ रे १

दिनप्रभ उपाध्यायने ‘सीमन्वर स्वामी स्तवन’में लिखा है कि मेरुगिरिके चतु व धिबर गहनके टिमटिमाते ठारागण और समुद्रनी तरपमानिका सीमन्वर रानीके गुणोंका स्तवन करते हैं । यह पद्य इस प्रकार है

“मेरुगिरि-सिहरि भय-वधर्म वो कुण्ड,

वसधि तारा वजइ, वेसुम्य-कन मियइ ।

ब्रह्म सागर-जके कहरि-माथा सुधइ

सोबि नहु, सामि तुह सख्यदा गुण धुणइ ॥ १”

जब मगवान् महावीर संबलहित विपुलावसर पराटे, तो बहूँकी प्रकृति कइ शत्रुवोके फल-फूलोंसे युक्त हो गयी । बलपाकने उन सब फल-फूलोंको म्हापना येणिकके सम्मुख काकर रखा त्रिपसे उन्हें भगवान् महावीरके वायसका विरवास हो सके

“रोमांभित जन पाकक ताम । भाव राव प्रति किया प्रवाम ।

कइ जइ से फल पूक बहूप । धर्मो चरे धर्मपम रूप ॥ २”

शैल कविदाने जनैयकी पुष्ट बनानेके लिए, जनभावोंको प्राप्त प्रकृतिके विस्तृत लेखके बुधा है । हेतुलेखकोंमें इन उपमालोंकी कृता और भी अधिक विकसित हुई है । दिनप्रभ उपाध्यायने ‘पीठमराठा में पीठमके शीतलका वर्णन करते हुए लिखा है कि पीठमके नेत्र कर और चरणसे पराधित होकर ही कर्मक बधमें प्रवेश कर पड़े हैं । उनके तजसे हारकर ठारा चन्द्र और सूर्य बाबाधमें भ्रमण कर उठे हैं । पदके रूपने महनको अलग बनाकर निवाक रिया है । उनके बँधसे मेरु और गम्भीरगासे सिन्धु अजिबत होकर पृथ्वीमें बँध गये हैं

‘नचल बचल करचरधि त्रिण वि पंकज जक वाहिव

सजिहि तारा चंद सूर अकासि ममाचिव ।

१. इतलनाम श्री पूज्यवारपनीयन्, पृ. २२-२४ ऐगिराठिक शैलधर्मसंग्रह कलकत्ता वि. स. १९२४ ई. १९९।

२. इती धन्वरा इला जन्माव।

३. पूज्यदास चारुचंद्राक कलकत्ता शारंगनाथकीठी मुद्रि, २२वें पृ. १ २ ।

तैसो एक आरमा बनत रस पुराण

दोहू क संबोग में बिभाव की मरवि है ॥

शैवा मनवतोवाचके जगद्गुरुओं में भी प्रकृतिकी ही शक्त है । प्रत्येक व्यक्ति अपने पुण्य-पापके अनुसार फल पाता है । इसमें प्रकृतिका कोई श्रेय नहीं है । श्रीमन्नदी रूपमें पृथ्वी बस छठी है, किन्तु 'आक' उभंगित होकर फूटता है । वर्षाशतुमें बनेक बृह फल जाते हैं किन्तु अवासा बल जाता है

“मीचम में भूप परे तामें मूमि भारी करे,
फूकत है आक पुनि अति ही उमहि के ।
वर्षा शतु मेव करे तामें बृह केई करे
अरत अमासा अर अणुही तें कहिके ॥
अतु का न श्रेय कोऊ पुण्य पाप कोई दोऊ
बैसे बैसे किये पूर्व तैसे रहै सहिके ।
केई बीच सुखी होहि केई बीच दुखी होहि
देखहु तमासो 'मैया' म्वारे नेहू रहिके ॥”

शैव त्रिचन्द्रोका अन्त अस्कार भी प्रकृतिके ही क्रिया गया है । कवि आत्मवचन में आत्मोदर और प्रजातके शान रूपक का चित्र एक परम उपस्थित किया है,

‘मरे बट शान माव भवो मोर ।

चेतन अकमा चेतन अकधी मागी बिरह को शोर ॥

कैडी अर्द्धविष्टि अतुर माव अथि मिच्छी मरम तन और ।

आपनी चोरी आपहि जानत औरै अद्वय न और ।

अमक कमक विकसित भवे भूतक अर्द्ध विभ्रद् अति और ।

आर्द्धवचन एक अन्तम आगत और न काल क्रिपेर ॥”

कवि आत्मवचनमें एक परम 'आत्म-विभव' और 'वचन'में 'रूपक' उपस्थित किया है । यह पर प्रकृति-भूमक रहस्यवादका वृहान्त है ।

तुम आत्मविभव कुडी बसंत यह मय मनुकर मुख सों समन्त ।

दिव बड़े मये शैवत माव मिषवामत रजनी को बटाव ॥

१ अनालीवास आत्मवचनसार, बम्बई, ई १८६ ।

२ शैव अन्तमवचनसार, पुस्तकालयसिद्ध १८वीं अंकित, अष्टाविंशत १८९२ ई बम्बई पृ ७ ।

३ अनालीवास आत्मवचनसार, अन्तमवचनसार, अन्तमवचनसार, बम्बई १८वीं पृ ।

बहु सुखी कीकी सुखि बेकि छाया अन समया संय केकि ।
 धामत बानी रिक्त मधुर कव सुर नर पद्य बार्धहवन मुक्य ॥”
 भूषरदासन धारदाकी पंथा नदी बनाकर एक उत्तम रूपकी रचना की है,
 “शोर हिमाच्छ तें निरुनी सुख गीतम के सुख-कुंड ही है ।
 मोह-महाच्छ यह चकी जग को अङ्कलप बूर करी है ॥
 शाप पचाविधि माहि रकी बहु भंग तरंगनि सी उछरी है ।
 ता सुखि क्षारद् गंगानदी प्रति, मी अङ्कलीकर हीरा परी है ॥”

यैसा भगवतीदासने धारदाकी पुक कहा है। सुकरी नाति ही यह आत्म्य
 कर्मरपी गङ्गानर बा बीटी है। विषयस्वारन मम होनेके कारण छन्द पर
 ठनरको हो मय है। यह मोहके चतुष्कय फँस गया है। यह छव कुछ कर्मरि
 सुनारा न मित्रके कारण ही हुआ है

‘आत्म-सुखा भाममहि भूयो कर्म-मङ्गल तें बीटी जाय ।
 विषय स्वाद् विरम्बो इह जालक कटकथो तरं कल्प मय पाँव ॥
 परैर मज्ज मगल सुगन्ध सो कई कर्म सों नाहि बसाय ।
 देखहु कि गहि सुखिधार भविक अन जगत बीज यह परं स्वभाव ॥”

यैसा कविदासने प्रकृतिरो आत्मन्य रूपमें भी उपस्थित किया है, किन्तु ऐस
 दुष्म अस्व ही है। ब्रह्मदासनस्कने ‘इगुणत कथा’में लक्ष्या समन्या विष बीया
 है। यी पदमन्त्रैरान जने विचोठहित प्रासादके ठनर बीडे हुए लक्ष्याही घोवा
 देव रहे हैं। यह पद्य इस प्रकार है,

विम मय कथा घपयो धाम पंची क्षय करि अस्तमान ।
 मित्र अहित बरनत्रै राव मंदिर कपर बीटी जाय ॥
 देखै पयो सरोवर ठार, कौ क्षय अति गहर गहीर ।
 हरी दिला मुष कको मनी अछदा अकिरी अंतर कयो ॥”

यैसादासने प्रकृति धामतरके घरीपनके रूपमें भी अंकित की बनी है।
 भूषरदासने वास्वपुगच’में कापीदेयके खेटपुर पट्टनना बचन दिया है। उनके
 जान-यादके प्राकृतिक दृश्योंमें धाम-भाषको उद्दीप्त बरनकी पर्याप्त धामन्य बी।
 एक पद्य देखिए,

१ आत्म-सुखा, धामनविभाग, कलकत्ता २०वीं कद ५ २४ ।

२ ब्रह्मदास, धारदासक कव १-२, धारदासकवि भारतेंदु लालदास, धारदा,
 १ २० ई ५ २२३ ।

३ यैसा, लक्ष्याकला, सुकल-देविका २०वीं, बरिदा, कलकत्ता २०वीं ५ २१ ।

४ इतिहास रमी मन्त्रक कव अन्तान ।

'धीर ध्याय नही नित रहै । जकधर धीन जहाँ नित रहै ॥
 मुनि जन मुपित जिकके तीर । का असग्य धरि जके धीर ॥
 केने परबत धरना धरै । मारग जाठ पथिक मन हरै ॥
 जिकमें सदा कन्दरा बाल । निहचक देह धरै मुनि ध्यान ॥'

श्री शान्तरावने लम्बीस्वर टीपकी प्राकृतिक शोधाका भी ऐसा ही विवरण किया है, जिससे शान्तभाव और अधिक पुष्ट होता है । वह पद्य इस प्रकार है

'एक एक चार द्विधि चार छुम बाचरी ।
 एक एक काए भोजन धमक ककमरी ॥
 चहुँ द्विधि चार नव काए भोजन धर ।
 भीन बावज प्रतिमा नमो सुलकर् ॥'

१. मूचराल धारवपुराण कलकटा संशोधनविभाग पृ. ४१ ।

२. शान्तराव, लम्बीरवरीय पूजा कल्पनाता पत्र २-२, हरमिन्दराली संस्कृत संस्थान पृ. ४१७ ।

तुलनात्मक विवेचन

१ निर्गुणोपासना और जैन भक्ति

प्रश्न

आचार्य श्रीदीनानन्दे श्रुत आत्माको ब्रह्म ब्रह्म है । आत्मा और सिद्धका स्वस्व एक ही है, अतः उन्होंने सिद्ध और ब्रह्ममें अन्तर स्वीकार किया है । जैन हिन्दी कवि भट्टारक शुभचन्द्र^१ बनारसीबास और जयवतीबास 'मीमा' ने भी सिद्ध

१ ब्रह्म विपश्चानु बन्धु पद अप्या त्रि-विद्ब्र ह्रषेह ।

परमपरमकाण्ड, १।१३ पृ २२ ।

२ जेह्ज निम्मन्नु बाणमज सिद्धिदि विवसद् देठ ।

ठेह्ज विवसद् बन्धु पद देह्हे मं करि जेठ ॥

श्री १।२४, पृ ३३ ।

३ विदुपचिता जेतन रे छाडी परम ब्रह्म ।

परमात्मा नरमगुण सिद्धा ननि बीसियम्म ॥

घात बात विज्ञान गुण रे सिद्ध अकप समान ।

ज्ञाननाथ व्यापी विपुल देहमात्र ब्रह्मनाथ ॥७॥

जलघारह्वा हल्लरिखिल मति यन्धिर जेस्वियान जयपुर, पृ ५ ।

४ नरमगुणप परमेश्वर परम ज्योति

परब्रह्म पूरन परम नरवान है ।

×

×

छरन बरसी छरनज सिद्ध स्वाधी सिद्ध

बनी नाथ हैय बमवीय नगवान है ॥

गाठबसम्भार, सली सम्भवाणा हरिचामर, दिल्ली, २२वाँ पन्, पृ १ ।

जैई मुंन सिद्ध माहि ठेई गुण ब्रह्म पाहि

सिद्ध ब्रह्म केर माहि निरवय निरवार के ।

सिद्ध के ब्रवान है विराजमान विद्यानेह

छाडी को निहार नित्र हय जल सीधिम ॥

अज्ञानियान सिद्ध ज्युरती पन् २-३ पृ २४१ ।

बौर ब्रह्मको एक धारा है। बाठ कर्मोंके अग्रसे धुंध आत्माकी उपलब्धिमेंको सिद्धि कहते हैं, बौर ऐसी सिद्धि करनेवाले सिद्ध ब्रह्मकार्त हैं^१। वे अमूर्तिक अम्यकन ज्ञानयुक्त बौर सास्वत सुखके धारणकर्ता होते हैं। उनमें सम्यक्त्व वचन ज्ञान भीय सुदृढता अवगाहन अपुस्कन्तु बौर अम्याबाध नामके बाठ गुण माने गये हैं^२। कबीरका 'निर्गुण ब्रह्म' अमूर्तिक बौर अम्यकतकी वृद्धिमें ती 'सिद्ध' के समान ही है। किन्तु उसमें गुणोंका ऐसा समुचितक विभाजन नहीं किया गया है। उसमें ऐसा भावीगम्य भी अफल्य नहीं होता।

कबीरने जिस आत्माका निकरण किया है वह विश्वम्यापी ब्रह्मका एक अंश-भर है। जब कि बौद्ध कवियों की आत्मा कर्मफलको धोरकर स्वयं ब्रह्म बन जाती है। वह किसी अग्रका अंश नहीं है। इस भाँति कबीरका ब्रह्म एक है, जब कि बौद्धोंके अनेक किन्तु स्वरूपमत समानता होनेके कारण उनमें भी एकत्वकी कल्पना की जा सकती है^३। कबीरने जिस ब्रह्मकी उपासना की है उसपर उपासितों सिद्धों योगियों सहजवाकियों और इस्लामिक एक्सैरवाकियोंका प्रभाव पड़ा है। आचार्य सित्तिसोहन सेनकी वृद्धिम कबीरवासने अपनी आध्यात्मिक धुंधा बौर विश्ववादी आत्मशाकी स्पष्ट करनेके लिए ही ऐसा किया है^४। बौद्धोंका ब्रह्म तो आध्यात्मिकताका साक्षात् प्रतीक ही है। उसपर किसी अम्यका प्रभाव नहीं है। वह अपनी ही पूर्व परम्पराका पोषण करता है।

धामुचतके क्षेत्रमें भी यह ही बात है। कबीरका आनी ब्रह्म सृष्टिकोंके प्रभावसे प्रेम और मस्तिष्का विषय बन सका जब कि बौद्धोंके सिद्ध सदिवा पूर्वसे मस्तिष्के आत्मन्य बौर प्रेमके आकर्षण-वेग्न बने बडे जा रहे थे। आचार्य तुन्दतुन्द (वि सं पृष्ठी ४७) ने सबसे पहले प्राकृत भाषामें 'सिद्धमक्ति' किन्ही आचार्य तुन्दतुन्द और सोमदेवने उसीको संस्कृतमें प्रणत किया। सिद्धमक्ति'से

१. आचार्य तुन्दतुन्द सिद्धमक्ति' अग्रतः रूपेण, बरतमक्तिः सोलापुर, १९२१ ई. पृ. ५७।

२. संमत्त भाषा बरतम कौरिय तुन्दतुन्द तद्देव अग्रतुन्द ।

अपुस्कन्तुम्याबाहं अट्टगुणा हींति सिद्धार्थं ॥

आचार्य तुन्दतुन्द सिद्धमक्तिः बरतमक्तिः सोलापुर पृ. ५१।

३. वरमात्मन्यारत Introduction पृ. ५ वन क्राप्ते निश्चित पृ. १२-१३।

४. कबीरकी आध्यात्मिक धुंधा और आकाशा विरचवादी है, इसीलिए अग्रुंमि टिप्पू मुमलमान भूषी केवल योनी प्रभृति सब साधनाओंको बौरने बरत रता है।

आचार्य सिद्धमक्ति' सेन कबीरका क्षेत्र, अग्रतः, वेग्न, पृ. १९१।

है। 'कवन जो देखा कंबळ या निरमल नीर सरीर'^१ में ऐसी ही बात है। वैन कवि ज्ञानतरामने भी ब्रह्मके सर्वगत चारों ओर छये हुए बसन्तको देखा है। तुम ज्ञान विभव फूली बसन्त यह मल मधुकर सुख सौ रमन^२ उसीका निरपक है। कवि कनारमीवासके ब्रह्मके सौम्यसे तो समूची प्रकृति ही विकसित हो उठी है।

विषम बिरप पूरो भयो हो आचो सहज बसंत ।
प्राग्यो सुखे सुगंधिता हो मध मधुकर मयमत ३^३

कबीरमें ब्रह्मिभूतता बयिक है, तो जायसीमें समद्विषयता और वैन कवियोंमें दोनों ही समाप्त रूपसे प्रतिष्ठित हैं। इनका आत्मब्रह्म बटमें रहता है किन्तु उभरा सौम्य समूचे लोकाकोरमें व्याप्त है।

सप्तगुरु

वैन सप्त और कबीरवास बाकि 'निगुनिप' साजुओंने मुस्करी महता समाप्त रूपसे स्वीकार की है। दोनोंने ही मुस्करी प्रसारको पानेकी आकांक्षा की किन्तु यहाँ कबीरवासने मुस्करी ईश्वरसे भी बड़ा माना^४ यहाँ वैन सप्तोंने ईश्वरको ही सबसे बड़ा गुरु कहा है। वैन आचार्योंने पंच परदेष्टीको 'पंचगुरु की संज्ञासे बमिहित किया है। सोरहवीं शताब्दीके कवि जतमकने 'मेमीस्वर पीठ'में लिखा है 'पंचगुरुओंको प्रणाम करनेसे मुक्ति मिलती है।'^५

वैसे मुस्करी प्रसारसे मतवान् मिलनेकी बात दोनों ही को स्वीकार है। कबीर बात तो मुस्करी ऊपर इतीकिए बलिहार होते हैं कि उन्होंने मोहितको बठा दिया है। मुस्करीवासके गुरु भी बबालु है, क्योंकि उन्होंने आत्माको परमात्मासे मिला

१. आकली प्रभाकरी व रामचन्द्र गुप्त संस्कारित शिरीष संस्कारय माकमरीरक खरक लो नीरस्य रोहा पृ १२।

२. ज्ञानतरामस्य, विष्णुवाची प्रचारक काशीनर, कनकता १८वीं पृष्ठ पृ २४।

३. कनारमी विष्णुस मधुकर जन्मात्मना कव इमरा पृ १४४।

४. गुरु नीरिन्ध रोड काई नाके कायु बाय।

बलिहापी गुरु आत्मे जिन नीरिन्ध हयो बयाय ॥

कबीरवास गुन्नेकी ज्ञा ज्ञानतरामस्य, शिरोषी हरि संस्कारित सन्ना साहित्य मरकत सिन्धी, १७वीं शताब्दी, पृ १२।

५. सहस्रि मुक्ति दुति दुति पिरै, पंच वरम गुरु निगुवन साह ॥

जन्ममल मेमीस्वरपीठ ज्योदेरस्यजबहार जन्माचरय।

रिया है।^१ बाबूके 'मस्तक'पर लो क्यो ही तुस्नेबने प्रछात्रका ह्राय रखा कि 'बाबब बबाब'के बर्तन हो मये।^२ बौद्ध कवि इन्द्रकिशोरदासे अपने बाबिपुराबमें 'मुदति रमणी'को प्रकट करनेबाके मपमान् ज्ञापनदेबको सन्मुखी कृपासे ही बाबनेकी बात स्वीकार की है।^३ कटारक शुभचरित्र ही यहाँतक कहा है कि उठमुखको मयमें बाबब किसे रिया कुछ बिहूतका ज्ञान करनेसे भी कुछ न होगा। भी कुछक-कमभने 'स्मूकमद्रकटीसी' में मुब स्मूकमद्रके प्रसारसे परममुख'का प्राण हीगा किखा है।^४ उन्होंने ही 'भीपुञ्जबाह्वनीतम्' में भी किखा है कि कुछ मन्-पूर्वक मुखी सेवा करनेसे बिबमुख उपजन्म होता है।^५

पाण्डे कपचन्द्रबीने अपने बडोकना बीत'के द्वारा सिद्ध किया है कि उठमुखी कृपासे ही भ्रातृरूपी बर्तनकार नष्ट हो सक्रता है, बन्धबा नहीं। इस भाँति बौद्ध भक्तिबक ज्ञानको प्राण करता है।^६ कबीरदास भी मुस्कै इस ज्ञानप्रवाठा स्वभावसे

- १ परमात्म लो बातमा बुबे रडे बहुकाक ।
सुन्दर मेळ करि रिया सन्मुख निकै बयाक ॥
बौ बीकित, सुन्दरवर्तन इत्यादिनाद पृ १०० ।
- २ बाबू बौ बहि मुस्नेब मिल्या पाबा ह्म परछाब ।
मस्तक मेरे कर बरपा ईक्या बबम बबाब ॥
बाबू, तुस्नेब को ज्ञान उण्ट छपाछाट, ज्ञानी साजी इ ४४३ ।
- ३ तैह मुख में बाबी बा ए, उठमुख ठनो नछाबठो ।
बबि बबि स्वामी सेबसुं, ए कामु उहमुख पाय ठो ॥
इन्द्रकिशोर बाबिपुराब, मस्तकिसंमल कन्दुर इ २०४ ।
- ४ स्वाराक हुनकन्ड, उल्लधारबूहा मन्बिर अतिमान कन्दुरकी मति ।
- ५ इठल्लताम, स्मूकमद्र कटीसी, ज्ञाना पब, राजबानमें हिन्दीके इन्द्रकिशोर मन्वे-की बोब कन्डकन्ड माह्या सम्प्रदित साहित्य संस्थान, कन्दुर, १९४४ ई इ १२ ।
- ६ बिन दिन महोरसब भतिबबा भी उंभ कबति सुहान ।
मन सुद्धि भी मुब सेबी यह बिबि सेम्पइ दिब मुख पाई ॥
इठल्लताम भी पूज्यारवनीतम्, बौद्ध वैदिकसाहित्य कान्य मन्दर कन्डकन्ड माह्या सम्प्रदित कन्डकन्ड वि सं १९६४ ।
- ७ सीसे सीसे बाबिपा ठे गर बतुर मुखानि ।
मुख बरबासुब बोकियो समकित बबड बिहाब ॥
काकरबब उब बीतई, ज्ञानी ज्ञान सुमानु ।
भ्रातृरूपि बब नाबिबी प्रबटल भक्तिबक ज्ञान ॥
पाण्डे कपचन्द्र बडोकना बीत कबीरकन्द बर् १ किरब २ इ ७६ ।

प्रसन्न हुए हैं और अपनी कुतर्कता जापन करते हुए उन्होंने कहा 'सतगुरुकी महिमा जनन है, उन्होंने जनन उपकार किया है, क्योंकि उन्होंने मेरे अपवित्र ज्ञानबुद्धोंको लोककर असीम ब्रह्मका दर्शन कराया है'। एक दूसरे स्थानपर उन्होंने लिखा "मेरी अज्ञानसे भरी अधीक मात्स्यताओं और पाखण्डसे भोज-भोज के पीछे क्या था रहा था कि सामने सतगुरु मिल गये और उन्होंने ज्ञानका दीपक मेरे हाथमें दे दिया"।^१ हृदयमें ज्ञानका प्रकाश करनेवाला गुरु ममजानुकी कृपासे मिलता है। जैन सन्त चतुस्रमणने बाबोराम मजजानु नेमीश्वरके मुण गानेसे ही गुरु बोधमके प्रसारको पामा स्वीकार किया है।^२

सतगुरुका मिलना तभी सार्थक होगा जबकि सिद्धका हृदय भ्रम संशय और निष्कारणसे भोज-भोज न हो। यदि ऐसा होगा तो सतगुरुका उपदेश उसके हृदयमें पैठेगा नहीं। यद्यपि आत्मका स्वभाव ज्ञान है किन्तु सांसारिक निष्कारण से मुक्त होनेके कारण उसे सतगुरुका अमृतमय उपदेश भी बचता नहीं। इसीको पान्दे कनकचरण बड़े ही सरस ढंगसे उपस्थित किया है,

‘अथ अथारम मारी यह मेरे निष जावै
 यमुठ बचन हितकारी सरगुरु तुमहिं पढ़ावै
 सरगुरु तुमहिं पढ़ावै चित्त है अथ तुमहुं हो ज्ञानी
 तपहुं तुमहिं ब कर्षो हूं अथी चेतन तरब कहानी ॥’^५

सन्त कबीरदासके भी ऐसे ही विचार हैं 'सतगुरु बपुरा क्या कर सकता है, यदि सिद्ध' ही में बूढ़ हो। उसे चाहे जैसे समझाओ सब व्यर्थ जायेगा ठीक जैसे ही जैसे लूँक बंशीमें छहरती नहीं अपिदु बाहर निकक जाती है।^३ कवि

१ सतगुरु की महिमा जनन जनन किया उपकार।

सोचन जनन उपाधिपा जनन विद्यावचहार ॥

कबीरदास गुस्सेव की जंग, सीसरी साही, कबीर प्रभाषणी चौथा उपकरण, पृ १।

२ पीछे जाने बाद था लोक बंध के साथि।

जाये है सतगुरु मिल्या दीपक दीया हाथि ॥

वैदिक गरी ११वीं सप्तमी पृ २।

३ गुरु मोतम मो देख पड़ीठ जो पुन जायं वाहुपाम।

चतुस्रमण नेमीश्वर गीत मंगलाचरण, प्रथमि समर कथपुर, पृ २३१।

४ परमार्थ कलगी सधर, जैन प्रभाषणाकर कर्मोत्तर, वर्ष १९११ परला पथ, पृ १।

५ कबीरदास गुस्सेव की जंग ११वीं सप्तमी कबीर प्रभाषणी, पृ १।

धरतार उपलब्ध हो सकते हैं। बाहुका कथन है कि सगुहके मित्रोंसे साहसका बीजार तो सहाय्य ही निकल सकता है।

बैत साहित्यमें गुह-मछिनेके अनेकानेक सरस उदाहरण उपलब्ध होते हैं। उदाहरण के अनेकानेक महाकवि समस्तुत्तर मुख चर्चासहितसुरिकी धरिनी धरिनी-विमोद होते हुए अह बडे मेरा भावका विन बग्य है। है मुख ! तेरे मुखको देखते ही जैसे मेरी तो समुची पुष्पवधा ही प्रकट हो पयी है। है भी चित्तसहितसुरि ! मेरे हृदयमें सबैव तू ही रहता है और स्वप्नमें भी तुझे छोड़कर अन्य दिखाई नहीं देता। मेरे लिए तो तुम ऐसे ही हो जैसे कुमुदिनीके लिए अन्य चित्तको दूर होते हुए भी कुमुदिनी समीप ही समझती है। तुम्हारे दर्शनसे आनन्द उत्पन्न होता है, और मेरे नेत्र प्रससे भर जाते हैं। बीच तो सबीको प्याप होता है किन्तु मुझे तुम उतसे भी अधिक प्रिय हो। धी कुम्बकायने आचार्य पुष्पबाहुकी धरिनीके विषय सरसताका परिचय दिया है वह कम ही स्वानोपर मिलती है। आचार्यके आते ही बीमासेका प्रारम्भ हुआ और पुष्पबाहुका सम्भाषणीय प्यारे। उत समयका धरिनीसे सरस एक चित्र देखिए आचार्यके आते ही धरिनी सबुके जैसे कभी नोमक काधिनिका आने प्रीयकाकी बात बोझने कभी चातक मधुर धरिनीके 'पीठ पीठ' का उच्चारण करने लगा और धरीचर वरसातके किपुक बरसे पर पये। इन अवसरपर महान् धी पुष्पबाहुकी धरिनीको मुख देनेके लिए सम्भा-कटीमें आये। वे हीकारमभीके साथ रमय करते हैं और जनमें हर किसीका मन बँधकर रह जाता है। उनके प्रवचनमें कुछ ऐसा आकर्षण है कि उधे सुनकर मुख भी मूक बडे हैं, धरिनीकी कोदिक मुखके ही पीठ जाने कभी है, बचन मूक उठ्य है,

१ सरसुह मिली तो पाहने धरिनी सुनि संहार ।

बाहु सहाय्य देखिए साहित्य का बीजार ॥

बाहु उपरि का धर्म, विद्वेदीभाषण हीरिका, सन्वर्तन कानुपु, १ २१, पारमिण्ड ३ ।

२ भाव मुँ पन विन मेरव ।

पुष्प दशा प्रवटी जब मेरी देखतु मुख मुख ठेरव ॥

धी चित्तसहितसुरि तुझि मेरे पीठ में सुनइ भई नहीय धनेये ।

कुमुदिनी अन्य चित्तव तुम सीतव दूर तुही तुम्ह मेरव ॥

तुम्हारे वरसण आचर उग्रनी गवनकी प्रीय मयेरव ।

समस्तुत्तर कहइ सब मुँ बचन ओठ तु निमचर धरिनेकरव ॥

सम्पत्तुत्तर, विद्वेदीभाषण हीरिका, सन्वर्तन कानुपु, १ २१, पारमिण्ड ३ ।

अन्य भाषण सन्वर्तन कानुपु ३ १२१ ।

धीर ब्यूर तथा बकीर भी प्रसन्न होकर नाच पड़े हैं। गुदके ध्यानमें रत्नान करके ही पीउन करूर बहने लगी है। गुदकी बौद्धि और सुपद्यमे ही नग्नूर्म संसार मूक रहा है। बिस्वके जार्जो रोशामे परम उदरण हो गया है। भी गुदके प्रशान्ते वरा मुक उदरण होता है।

“आन्धो ज्ञान जाताइ शरूके कामिनी रे।

जाबहु ओबइ प्रीपदा बारमकमसकामिनी रे ॥

बातक मपुराउ सादिकि प्राक प्रीक उचवाह रे।

बामह पय बामात मजक सरवर भरह रे ॥

इम अकमरि भीपुउब महामोरा जती रे।

आककना मुख दित आबा प्रभापती रे ॥

ओबइ अम गुद रीति प्रतीति बपह बकी रे।

दिखा रमनी साथ रमह मननी रकी रे ॥

प्रबचन बचन विस्तार आय लजवर बणा रे।

कीकिलकामिनी गीउ गापह भी गुद लणा रे ॥

पात्रह मगद गीनीर भी पूउपनी रूषणा रे।

भविष्य मीर बकीर भापह शुभ भापना रे ॥

सदा गुद ध्याम ध्यान करीर भागक बइह रे।

कीसि मुअन बिमाक सकउ जग महमहह रे ॥

माते लेख सुयम सुपमई भीपजइ रे।

भी गुद बाब प्रसाद सदा मुन संपत्रह रे ॥ १

भी साधुगीर्तने मुबजितचन्द्रमूरिणी मस्तिमें एक राग-मदहारवा निर्माकविद्या बा। कसमें एक शिष्य जानैबाके मुदको देखनेके लिए टीक दिसि ही बैसन है। वीसे कोई प्रोवितरनिशा मानबाके पतिको देखनेके लिए बैसनही उल्लो है। सगहीने कहा, “वै सति। मेरे किए तो वह ही अत्यधिक मुगरर है, जो यह बता दे कि हमारे गुद किउ मायसे होकर पधारेंसे। भीमुद सभीको मुदयन लगते हैं और वे जिस पुरमें जा बाते हैं वह तो वीसे ‘पीना’ ही हो जाता है। उनको देखकर हर कोई लय बगवार निमें विना नहीं रहता। भी मुदकी आवाजको भी जानता है वह मेरा छाजन है। मुदको देखकर ऐसी प्रसन्नता होती है। वीसे मन्त्रको देखकर बकीरकी भीर नूर्मको देखकर लीकको। मुदके दर्शनसे हृदय समुह पुष्य गुह और मन

१. वैकिर इरकनाम भीरुन्वाहकपीनम् पत्र ११ ४४ वैपिवासिक वैम काण्य संभ्य कनरकन्द नारय सम्धारित कनकदा पृ ११९ ११७।

संझाएँ होनी हैं। जैसे एक ही बक बागो तड़प और रूपके नामसे तथा एक ही पावक बीज चिराग और मछाक आदि नामोंसे पुकारा जाता है। सत्य बाबूबहाकने एक ही मूकतरकी बकहू और 'राम ही संझाएँ की है। कर्ममें बहीतक लिखा है कि जो इनके मूकमें भी भेदकी बल्पना करता है वह मूक है।

सैन सन्तान निमल आत्मामें कैमिद्वय हुए मनको ही सर्वोत्तम कहा है। उनको बुद्धिमें यदि हम भीषको गुड़ आत्मामें बर्षन नहीं होते तो जनवास बप, ल, ब्रत और विपम्बर बसा भी व्यर्थ ही है। कर्मोंने उस ज्ञानको भी नि ठार कहा है, जिसके द्वारा आत्मबर्षन नहीं हो पाता। आत्मज्ञान ही सच्चा ज्ञान है यदि वह नहीं तो अन्य सब ज्ञान निरवक है। इसी भावको कैकर बनारसीबाबूने लिखा है

‘मेघ मे न ज्ञान बहि ज्ञान गुह-बचन में
 ब्रह्म संज्ञ संज्ञ में न ज्ञान की कहाणी है।
 ज्ञान में न ज्ञान नहीं ज्ञान कवि आतुरी में
 बाधनि में ज्ञान नहीं ज्ञान कहाँ जाता है ॥
 ताँ मय गुरता कविच भन्व संज्ञ बाध
 इन तँ अतीत ज्ञान कतना विद्यानी है।
 ज्ञान ही में ज्ञान नहीं ज्ञान और मीर कहीं
 ज्ञाने बट ज्ञान को ही ज्ञान का निदायी है ॥’

बखीबिबबकी स्याभ्याबने भी लिखा है कि संयम लप बिबा आदि सब कुछ गुड़ चेतनके बकनोके ही किए बिबा जाता है यदि जनसे बरान नहीं होया तो वे सब मिथ्या है। बर्षन तो अनारचितके भीये बिना नहीं होता। बकतक अन्त की 'धी' गुड़ चेतनम न होपी ये अपनी बिबा-नाप्य व्यर्थ ही है,

- १ बागी तड़पक कून बही धर है बक एक ही बेपी बिहारी ॥
 पावक एक प्रकाश बहू बिनि बीज चिराक बसाकहु बापी ।
 मुम्बर ब्रह्म बिबास बकचित मेर की बुद्धि सु टापी ॥
 लम्बर भन्वबकी ल व दरबातन्व ठमो स्यादिन भवन २ २४३४ ।
- २ बकहू नहीं बागी राम बही बाक टगी लव नूक यही ।
 बकहू राम बहि कर्म बगी मूठे प्यारक कहर बही ॥

सत्य बाबूबहाक लम्बर ४२वीं ल, सन्तानसमाट, ५ ४४४.

३. बनि बनारसीबाबू नामनलनकनार, ल व बकबककी-दारा भारा-बीक
 हुए लली भन्वनाता बरिबाकन बहली लमिमुकि हाट, ११२वीं ल
 ५ १११।

“तुम अस्व संयम तप किरिया कहा कहाँ को कात्र ।

तुम बर्तन विनु सब पा कुंठी अन्तर चित्त न मीत्रे ॥

बचन नब माहि इसल बात्र ३

कवि मुन्शरशासने अन्तरबी सम्बन्धताको प्रमुख माना है । यदि 'अन्त विषय स्वयम्भवे कीचड़से क्लिप्त है तो तीव्रारिक्त कोई काम नहीं हो सकन । बाह्य रूपकी सफाया पवित्र हृदयपर निर्भर है । यदि मन कार्माधिक कामनाबोमि बन्धित है, तो अविश्वसे अधिक भजन करनेपर भी लयन प्राप्त न होया । कवि अन्तःपवन भी अन्तःकी मृष्टिक बिना प्रत्येक माममें विषे आनेवाले उपवास बीर नाबाको मुखानेवाक लयको स्पष्ट माना है ।^१

यही कबीरशास आदि अन्त भी एकमत्र है । अन्त रजसबशामन लिखा है कि कवि हृदय मुख नहीं है, तो मयवान्वा पूजा-याठ भी अर्थ है । अन्त मुन्शरशासने 'अन्तःस्वभावक में हृदयही पवित्रताके बिना माय माय त्याग वैराग्य नाम अज्ञ और ज्ञान आदिको निःसार कहा है ।' कबीरशासक अमिमत्र है कि जिसने अपने मनको मयवान्म रैम किया है वह ही सफा मोयी है कपड़ा रैमवान्ममें कोई काम नहीं । मनही बुद्धिके बिना वह ज्ञान फटुवाकर बीर बटा थाड़ी बड़ा

१. कवि कटोचिबनबी 'शैतन सब मोहि बरतन दीज' अन्तःस्वभावकी पृ. २२४
२. राजकुमार अन्तःस्वभावक भारतीय अन्तःस्वभावकी

३. वर तप तीव्र अत्र अतिरिक्त आवम अर्थ उचरणा २ ।
विषय कयाय कीच नहिं पीयी यो ही पवि पवि मरणा रे ॥

अन्तर सम्बन्ध करता रे भाई ॥

कार्माधिक मत्र ही मन मीका अत्रन किये क्या त्रिरणा रे ?

मुन्शर नील बसल वर बीसै बैसर रैम उचरणा रे ?

अन्तर सम्बन्ध करता रे भाई ॥

मुन्शरविनास अन्तःस्वभाव ३२वीं पृ. २० ।

४. मास मास उपवास किये है काया बहुत मुन्शरी ।

जोब जान एक जोब न श्रीया कारन कौन छराई ?

तु हो समझ समझ रे भाई ॥

अन्तःस्वभावक अन्तःस्वभाव ३२वीं पृ. २४ ।

५. संजी देना यह आचार

अप अनेक करै पूजा में हिरी नहीं विचार ॥

अन्तःस्वभावक, अन्तःस्वभावकी ४वां पृ. २२४ ।

६. अन्तःस्वभावक, अन्तःस्वभावक, अन्तःस्वभावक, अन्तःस्वभावक २४६ ।

वाले किन्ही है किन्तु उभका स्वर बीसा पैना नहीं है।

केन हिन्दीके मखि-नाम्नमें भी ऐसी ही प्रवृत्तिके रचन होते हैं। उनपर केन अपभ्रंशका प्रभाव स्पष्ट ही है। जोरहवीं शताब्दीकी प्रसिद्ध कृति 'बाबका' में लिखा है, 'संसारके मूळ बीब जनेकानेक तीर्थ-सेवोमें पुन-पुनपर मारते हैं, किन्तु एन्हें बह विभित नहीं कि जानन्य सरीरको स्वच्छ करमेसे नहीं बरिनु आत्माको सुख करमेसे मिनठा है। बह पय इस प्रकार है

अठ सकि तीरथ परिममह मूळा मरहि मर्मतु ।
अप्या विन्दु न आन्यो ध्यानहा कर मदि देव अर्चतु ॥'

विर्नुय नाम्नापके कवि सुम्बरबासने भी ऐसी ही बात बही है। अठनकि धम्म बीलोमें ही समान कपसे प्रवृत्त हुआ है

सुन्दर मैकी देह बह निर्मळ करी न बाह ।
बहुप जाति करि जोह द अठ सकि तीरथ न्हाह ॥'

जगुर्बही अमलकाके विद्वत् केन कविकोंका स्वर किर्नुनिए सत्तोनी याति ही टीका है किन्तु उनमें कड़वाहट नहीं है। एन्होंने ब्राह्मणोंका विरोध करनेके किये बातिप्रधाना अर्थन नहीं किया बरिनु उनका विरोध आत्मविद्वान्तर भाषारित ना। अट्टारक सुम्बर (१९वीं शती) ने 'उत्पत्तारहूहा'में लिखा है,

उत्पत्त बीब कवि अप्या हुनि
कर्म कर्मक लणो की तु सीह ।
अप्य अन्विच वैश्व न सुम्
अप्या राजा कवि होह सुम् ॥
अप्या मनि कवि कवि विचंच
कवि कुचंच कवि अप्या कव ।
मूर्छे हर्ष ह्येन कवि ठे बीब
कवि सुच्छी कवि हुच्छी कवीन ॥^३

इसकी तुलनामें नबीरबातना बह कलन देखिए, जितमें एन्होंने ब्राह्मणको सम्बोधन करते हुए कहा है, "अब हम दोनों एक ही इनसे उत्पन्न हुए हैं, तो

१ अमलकाकी इतिहासिका मनि, मन्निरकव्या, केन बंवापनी मन्निर दिन्दी, टीकरा कव ।
२ सुम्बरबासने, विद्वत्कव्य, एवाहावाद, १९२३ ई ३ ५४ ।
३ अट्टारक सुम्बर, उत्पत्तारहूहा मन्निर अमेरिकाव, कन्पुरकी इतिहासिका मनि कव ७०-७१ ।

तुम ब्रह्मण कींते हो मये और हम सूत्र कींते बन गये । हम कींते सुन रह गये और तुम कींते ब्रुच हो मये ।^१ सुन्दरबासने ब्रह्मण और सूत्रके अन्तरको पाठ मारना सिखा है ।

बैतन्ति महारामा आनन्दचनके अनुसार राम रहीम महादेव पार्ष्णनाथ और ब्रह्ममें कोई भेद नहीं है, वे सब एक अक्षय्य आत्माकी अक्षय्य कल्पनाएँ हैं । जैसे एक ही मूर्तिका माञ्जनी-भेदसे माणिक्य बारध करती है, जैसे ही एक आत्मामें अनेक कल्पनाओंका आरोपण किया जाता है । यह भीष जब नित्र परमें रमे तब राम हुसरोंपर रहम करे तब रहीम करमोंको करसे तब हृष्य और जब निर्वास प्राप्त करे तब महादेवकी संज्ञासे अभिहित होना है । अपने गुण आत्मरूपको स्पष्ट करनेसे पारस और ब्रह्माक्षयकी रचना करनेसे इसको ब्रह्म कहते हैं । इस भाँति यह आत्मा स्वयं चैतन्यमय और निष्कम है ।^२

बबौरबासने भी एक ही मनको मोरल बोधिन्द और बीषड आदि नामोंसे अभिहित किया है ।^३ सत्य सुन्दरबासका कथन ही महारामा आनन्दचनसे बिकबुक मिसठा चुकता है । उनके अनुसार एक ही अक्षय्य ब्रह्मकी भेदबुद्धिसे नागा

१ तुम कठ ब्रह्मण हम कठ सूत्र ।

हम कठ लौह तुम कठ ब्रुच ॥

२ काहूँ हीं वासन कहूँ, काहूँ हीं ब्रह्मण ।

सुन्दर ऐसीं प्रम नयो यो हीं मारै याल ॥

सत्य सुन्दरबास ललितविष्णव्य श्री भक्त, सत्सङ्गनासात, २१वीं श्लोका ५ २५ ।

३ राम कह्ये रहैमान कह्ये कीळ काल कह्ये महादेव री ।

पारसनाथ कह्ये कोन ब्रह्मण सकळ ब्रह्म स्वयमेव री ब्रह्मण ॥१॥

भाजन भेद कहावत नागा एक मूर्तिका कम री ।

तैलें लड कण्ठना रोपित आप अर्धव स्वकण री ॥२॥

नित्र पद रमे राम सो कहिये, रहिम करे रहैमान री ।

करसे कर्म काल सो कहिये, महादेव निर्वास री ॥३॥

परसे रूप पारस सो कहिये, ब्रह्म विन्हे सो ब्रह्म री ।

इस विद्व लखी आप आनन्दचन चैतन्यमय नि कर्म री ॥४॥

महात्मा आनन्दचन आनन्दचन पर संभव अन्त्यात्मनामन्तारक मरुत मन्तै पर २०वीं ।

४ कर्वात आन्धवाणी हीं स्वाम्भुन्दरबास सत्सङ्गिन भाग्यी मन्धारिणी लता बारी मय बी लल २०वीं श्लोकी ५ २२ ।

संज्ञाएँ होती हैं। जैसे एक ही जगत् वाणी तद्वाच और रूपके नामसे तथा एक ही पावक बीज चिराह और मसाह्क जाति नामीति पुकारा जाता है।^१ तन्त्र वाचुरवाचने एक ही मूकतत्वकी बकहू और 'राम दो संज्ञाएँ भी हैं। जन्तुनि ब्यौतक ज्ञिया है कि जो इसके मूकमें भी घेदकी कल्पना करता है वह मूक है।

जैन ज्ञानाल निमल आत्मामें केन्द्रित हुए मनको ही सर्वोत्तम कहा है। जगको बुद्धिमें यदि इस बीजको धुंख आरमाने वर्धन नहीं होते तो घपवास जप लज इन और दिवम्बर बसा भी व्यर्थ ही है। जन्तुनि उस ज्ञानको भी नि सार कहा है जिसके द्वारा आत्मरक्षण गयी ही पता। आत्मज्ञान ही उष्णा ज्ञान है यदि वह नहीं तो अन्य सब ज्ञान निरर्थक है। इसी भावको केकर शमारतीवाचने किया है,

‘मप में न ज्ञान नहि ज्ञान गुरु-वचन में
जंत्र मंत्र संज्ञ में न ज्ञान को कथावी है।
जन्म में न ज्ञान नहीं ज्ञान कवि चातुरी में
चातुरि में ज्ञान नहीं ज्ञान कहाँ जानो ई ॥
घातें भेष गुरवा कविच प्रथम मंत्र वाच
इस लें कटीठ ज्ञान चतना निहाणी है।
ज्ञान ही में ज्ञान नहीं ज्ञान और और कहीं
जाने बट ज्ञान सो ही ज्ञान का निहाणी है ३”

मणोविजयजी उपाम्याचने की किया है कि संयम उप जिया जाति उप कुछ कुछ जेठनके बधनेनि ही किए जिया जाता है, यदि जगचे ब्यक्त नहीं होता तो वे सब मिथ्या हैं। वर्धन तो अन्तरचितने भीवे बिना नहीं होता। अचटक अन्त की 'को' मूक अन्तमें न होगी से ऊपरी जिया-वाच्य व्यर्थ ही है

१ वाणी तद्वाचन वृत्त गयी यह है बक एक ही देवी निहाणी ॥
पावक एक प्रजाप बहु विधि बीज चिराक मसाहक वाणी ।
मुन्दर ब्रह्म विज्ञास अर्द्धचित भेद की बुद्धि मु टायी ॥
मुन्दर प्रजापकी ल व दरवारलय रम्यं जन्मादिन माल २ २४४४ ।

२ बकहू कही यदि राम नहीं डाक लगी सब मूक गयी ।
बकहू राम कहि कर्म बही लुठे मारन कहा बही ॥

३ तन्त्र वाचुरवाच्य शब्द, ४२१वीं पंक्त सन्तुवासाट, ५ ४४२.

४ कवि अन्तरचितस वाच्यसम्भार ल व अन्तवाच्य-द्वारा ज्ञान-बीज
इस जगती प्रथम्यत्वा दरिवाच्य देवकी उन्विष्टि हाट, ११२वीं पंक्त
५ ११७९ ।

तुम कारण संवत्स तप किरिया क्यो कहां की कोजे ।

तुम वर्सन बिनु सब पा हंठी जन्तर बिच न मीजे ॥

अतन अब मोहि वर्सन दाजे १

जबि मूबरदासन अन्तरही उज्ज्वलताको प्रमुख माना है । यदि 'अन्त विपय कपावक्यो कीचकृषे द्विप्य है, तो तीर्थाधिक कोई काम नहीं है सकत । बाह्य वेपकी सत्पत्ता पवित्र हृदयपर निर्भर है । यदि मन कामाधिक वासनाबोधि मसिन है तो अचिन्ते जबिक मनन करनेपर भी छदय प्रान्त न होगा ।^१ जबि ज्ञानतरायने भी अन्त-की शुद्धिक बिना प्रत्येक माममें दिजे कामबाके उपवास और नायाको मुखानेबाके तपको व्यय माना है ।^२

यहां कबीरदास बाधि सन्त ही एकमत है । सन्त रज्जबदासने किता है कि यदि हृदय पूछ नहीं है, तो मनवानुका पूजा-पाठ भी व्यर्थ है । सन्त तुम्बरदासने 'ज्ञानसूक्तमाहक' में हृदयकी पवित्रताके बिना बोध माग त्याग वैराग्य नाम प्यान और ज्ञान बाधिको नि-सार कहा है ।^३ कबीरदासका अभिमत है कि जिसने अपने मनको भगवान्में रेंप किया है वह ही सन्ता मोनी है कपका रेंपदानस कोई काम नहीं । मनकी शुद्धिके बिना वह काम उड़वाकर और जटा बाको बड़ा

१ कबि कयोकिबरजी 'अतन अब मोहि वर्सन दाजे' अन्वयात्मन्वाक्यो पृ २२४ व रामकुमार सम्पादित भारतीय ज्ञानपीठ काठी ।

२ अत तप तीर्थ अब जटादिक कामम अथ अचरना रे ।
विपय कपाव कीच नहिं बोयी यो ही पवि पवि परना रे ॥

अन्तर अज्जबस करना रे भाई ॥

कामाधिक मळ हीं मन मीका भजन किमें क्या तिरना रे ?

मूबर नीक बसन पर कीं केसर रन अचरना रे ?

अन्तर अज्जबक करना रे भाई ॥

मूबरविनासे बककटा ३१वीं पद पृ १० ।

३ मास मास उपवास विमें ही काया बहुत सुसाई ।

होव मान छक सोम न बीत्या कारज नीन सराई ?

तु ही सज्ज समझ रे भाई ॥

आन्तविलास कज्जकटा ३२वीं पद पृ १४ ।

४ संतो ऐसा महु आचार

पाप जनेक करै पूजा में हिरई नहीं विचार ॥

सन्तसुभासाद, सन्त रज्जबजी ४वा पद पृ २२४ ।

५ सन्तसुभासाद, सन्तदास भूतनाहक, सूसा पद पृ २२६ ।

कर बरुण तो हो सक्ता है। योपी नहा । जंपलमें जाकर पुनो रमानेसे बरुण कामदेव मके ही बल जाये किन्तु वह योपी न बहुकाकर हिंसा ही नह जायेगा । यमजी दुष्टिके बिना यदि कोई सिर मुँहाकर भीर रंभे हुए कपडे पहन कर बीता बीचना है, तो वह लज्जार हो कहुंजायेगा

“मन न हैगल हैसाथ जोगी कपडा ।
कनवा कडाव जोगी बटवा कडाये ।
बादा बडाप जोगी होइ गइक बकरा ॥
जंगल में जाप जोपी बुलिया रमीके ।
काम करान जोगी बनि गइक हिंजरा ॥
मनवा मुँहाज जोगी कपडा रंगीके ।
गोता बंधि के होइ गइके कपरा ॥”

शुद्ध मनकी भूमिकाके बिना माका किरानेकी व्यर्थता बिन और बर्नन सेनो ही लभने कबसी बी । यदि धामतरायका कवन है कि जासन मारकर मन्वा के बैठ जानेसे बाहरी बुलियाबाके पैस ठकते है किन्तु इन बक-ब्यामसे आत्मना पछा नहीं होना ।

“कर मन्वा के जासन मारबी बाहिज लोक रिछार्ह ।
कहा नचो नक र्वाव चो तेँ जो मन बिर न रहार्ह ॥
तू तो समस समस रे मर्ह ॥”

कबीरदासने कोरी मामा किरानेको निष्प्रायशानर बहुत कुछ किजा है । ‘मैप को ज्ञान’ का जानेसे अधिक जाव माकाजी नि-सारणसे ही मुक्त है । बरु-की माका किरानेसे कुछ नहीं होता मन्की माका केरनी बाहिए,
‘माका पहिरे मनमुची ठाँवे कहु न होइ ।
मन माका भीं केरवा लुप बजिबारा सीइ ॥
कबीर माका कस को कहि समझावै लोहि ।
मन किरावै आपना का किरावै मोहि ॥”

मन्मनुके साधुकी वृत्तान्तमें दो बातें मुख्य है। बरा बराता अथवा फिर मुँहाना । बीच तक पहुँचनेसे सोपानमें मइ भी एक सीढ़ी मानी जाती थी । बिन लण्ड बरुणपत्र बसी (१७वीं शती बि सं) के बरुका कथन करते हुए

१. कबीर सन् १५वीं शतक संन्यासधार, पृ. २ ।

२. धामतरायमंत्र, बन्धुलता १५वीं शतक पृ. १५ ।

३. कबीरसम्प्रदायी, चतुर्थ संस्करण काशी, ‘मैप को ज्ञान’ सन्दी १, ५, ६ पृ. १ ।

सिद्धा है अष्ट को निर्मल बनागसे कल्प मिलता है बाह्य भाइम्बरसे नहीं ।
 पिब-शिवका चम्पारण करगसे क्या होता है यदि काम क्रोध बीर छलको नहीं
 बीटा । बटाओके बडामेसे क्या होता है यदि पाकण्ड न लोबा । छिर मुंडानेसे
 क्या होता है यदि मन न मुडा । इगो प्रकार पर-बारके छोड़नेसे क्या होता है,
 यदि वैराग्यकी वास्तविकताको नहीं समझा^१ । मणवतीवास मीमांसे भी अपने
 अनेक पत्रामें इस छिर मुंडानेकी निम्ना की है । उन्हांन एक स्वागपर लिखा है
 'निर्मल धारामें गुण अज्ञानके बिना नेरल मूंड मुंडानेसे कुछ नहीं होता । उघसे
 सिद्धि नहीं हो सक्ती^२ । उन्होंने यह भी कहा कि यदि सिद्धिके लिए मूंड मुंडाना
 ही पर्याप्त है, तो भेड़ोंको तो चरसे पहले छिर जाना चाहिए क्योंकि उनका
 घाघ घरीर प्रतिवर्ष मूंडा जाता है^३ ।

मैकुका बुष्टान्त कबीरवासने भी दिया है । उनका कथन है, 'यदि मूंड
 मुंडानेसे सिद्धि हा जाती तो भेड़ तो कभीकी मुक्त हो गयी होती किन्तु उसे
 मोल नहीं मिळा इसे समी जानते है । कबीरवा विचार है कि केघोंने क्या
 बिपाडा है, जो उसे छो-छी बार मूंडा जाता है । मनको क्यों नहीं मूंडते जिसमें
 बिषय-बिचार भरत हुआ है^४ । बाबूका भी कथन है कि मनको ही मूंडना चाहिए
 छिरको नहीं काम-क्रोधको समान्य करना चाहिए, केघोंको नहीं काटना चाहिए^५ ।

१. अरकाज कपी गुणवाचकी परला पत्र मैव गुजर कविगो टीगो मल
 पृ २७२-७३ ।

२ नाम मान बीनी प न सरवान बुद्ध कर्त
 मूंड के मूंडाये कहा सिद्धि भई बाधरे ।
 मणवतीवास मीमांसा अकविलास कथरी, बुष्टान्त किल्ल ज्ञो पत्र पृ २७२ ।

३ बुद्धि है मीन दिने पत्र वाक्य
 रासम अंम विमूढि अमाने ।

राम कहे बुद्ध अमान गई बक
 येव छिरै पुनि मूंड मुडाये ॥

बरी, राग अछोपरी २२वीं पत्र पृ १ ।

४ मूंड मुंडाये जो सिद्धि होई, स्वग ही येव न पहुँची नोई ॥
 कबीर मन्वाकली अट्टन संभरख कारी २२२वीं पत्र पृ २३ ।

५. केसी कहा बिगाडिमा अ मूंडे छी बार ।
 मन की काहे न मूंडिए, कामे बिषय बिचार ॥
 बरी मैव की मल २२वीं छांकी पृ ४९ ।

६. बाबू 'मल की मल' २२वीं छांकी सत्य अवासर, पृ ४७२ ।

इस धारिणी जैन कवि और कबीर आदि उन्तोंने समासतपस तीर्थभ्रमण वनुर्वर्षी श्वरस्ता माया छिपाना और धिर मुद्रना आदिना अष्टद्वय दिया किन्तु जैनी अक्षयकृपा और मस्ती कबीर आदि उन्तोंम भी जैन कवियोंमें नहीं। जैनोंने विद्यायक दृष्टिको मुख्य माया और कबीरने जियेवात्मरको। इती कारण उनको आतिशयोक्ति बहवाहट अधिक है। इनके अतिरिक्त निर्गुनिष्ट साधु बाह्य पञ्चमी दृष्टिके कोर से किन्तु जैन उन्त कवियोंकी न तो शानी अटपटी थी और न माया निर्गुनत्व। उनका भावपय मरक वा ती बाह्य पक्ष को कुछ था।

रहस्यवाद

यदि आत्मा और परमात्माके मिलनकी भावतमक अदिश्वलिन ही रहस्यवाद है तो वह अनिपरीति ही पूर्ण जैन-परम्परामें उपलब्ध होगी है। वनुर्वरमें अथवा शिव और अविनायकी सूत्रवाची कहा गया है। श्री आर जी उन्तोंने अपनी पुस्तक 'मिस्टोसिधम इन महापद्य' में लिखा है कि जैनोंने आदि तीर्थंकर अथवा देवने अपनी कुछ आत्म्यता साक्षात्कार कर लिया था और वे एक भिन्न ही प्रकारके गूढवाची पुरुष थे।¹ डॉ ए एन जयान्तेने भी परम्परायकाय की मूल्याने अथवा देव मेमिनाथ पार्वनाथ आदि तीर्थंकरोंको सूत्रवाची कहा है।²

अपभ्रंश साहित्यकी 'परमात्मप्रकाश' 'पाहुडयोहा और तावपचम्म सोह्य' नामकी प्रसिद्ध कृतियाँ रहस्यवाची नहीं जाती हैं। डॉ हीराकाश जैनने उनपर आशय कुम्बकुम्बके 'मावपाहुड' का प्रमाण स्वीकार दिया है।³ अर्थात् उन्तोंने लिखित रूपमें जैन रहस्यवादका प्रारम्भ वि ल की पहली शतीसे माया है। मावपाहुडसे प्रमाणित हीनपर भी अपभ्रंशकी कृतियोंमें बोधायक रहस्यवादका स्वर प्रबल है जब कि 'मावपाहुड' में भावतमक अदिश्वलिनकी प्रमुखता है। मन्त्रवाचीय जैन हिन्दी काव्य दोनों ही से प्रमाणित है, किन्तु जयमें पाचार्यका अधिक है और उन्तवात्मरता कम। यद्यपि उन्तमें उन्तवाचियोंके अष्ट और प्रबोध विद्यने हैं किन्तु अपभ्रंशकी अपेक्षा कुछ कम। यहाँ अपभ्रंश ही वा हिन्दो जैन

1 R D Ranade Myrticirm in Maharashtra, Aryabhinshan Pressoffice shamsar Peth, Poona 2 Page—9

2 Parmatma Prakasa and yogasara, dr A. N upobhaye edited, Parama-aruta-Prabharaka Mandala, Bombay 1837 introduction, P 39

३ पाहुडयोहा डॉ हीराकाश जैन सम्पादित आरना १९२२ के मूल्या डॉ हीराकाश लिखित ५ २१।

न बड़ा भी ऐसा ही है। कामधी और बिन कवियोंके बड़ाके बाराबनेले प्रेमके शब्दोंके रूप पिये है। कवि भूवरवासने शब्दा 'कामधी' उठीछो यत्ना है, जिसने मन्त्रा प्याका पिया है।

“गरीबाह प्रिय अन्धिम है दाक घराबा बोलना ।

प्याका न पीबा प्रेम का कामकी बुध्द तो क्या हुआ ॥”

महात्मा जानम्बरने लिखा है कि प्रेमके प्याकेको पीकर मठबाका हुआ श्रेष्ठ ही परमात्माकी सुगन्धि के पला है, और फिर ऐसा लोक लेकता है कि साधु ईश्वर उमासा हैलना है। यह प्याका बड़ाकूपी मन्त्रिपर, शब्दार शिवा बाठा है, जो उमकी मन्त्रिमें प्रग्नन्धि हुई है और जिसमें-से अनुभवकी काकिया उरैव मूठी रहती है,

‘मवसा प्याका प्रेम मसाका बड़ा अरिब पड़ बाकी ।

तब माटी अचटाई पिये कस अगो अनुभव काकी ॥

अयम प्याका पीबो मठबाका किन्ही अन्धिम बासा ।

जानम्बर नेतव है लेके लेके कोक उमासा ॥”

कामधीके प्याकेमें बेहोशी बबिक है। एक प्याका पीकर ही इतना क्या बाठा है कि होय नहीं रहता। बिनके प्याकेमें मन्त्री बबिक है बेहोशी कम रही कारण के सामने बड़े प्रेमास्पदको देख बकनेमें भी समर्थ हो पाते हैं। रत्नसन तो प्रेमकी बेहोशीमें पद्याबतीको पद्यानना ती हूर रहा हैक भी, न सका किन्तु उसने शून्य बुद्धिके मार्गसे ही प्रायोको समर्पित कर दिया।

“जोगी रहि रहि धीं कीना

बिन रोनि बैबहि बिड हीन्हा ।”

बाहि मय चढ़ा बरातेहि पाके ।

सुधि न रही लोहि एक प्याके ॥”

प्रेमका शीर’ तो ऐसा कैना है कि वह जिसके क्या—चाहे वह बिन हो वा काम्य सन्त बहूकन उहाँ रह क्या। महात्मा जानम्बरने बुद्धिके “बड़ा शिवापु और कृ बड़ा अमसाके मोर। शीर बबूक है प्रेम का कामकी तो रहे शीर ।” बबीरने भी लिखा है “शाय बहून पुकारिया पीत्र पुकारे शीर । कापी शेट

१ भूवरवास भूवरविनायक अन्धिम १०-वीं बकन १ १०१।

२ जानम्बरनेतवमठ, अन्धिममठान मन्त्रिक मन्त्रिक कन्ध, संकी कः।

३ कामधी अन्धिमकी न जानम्बर हुन्नर उन्धिमिब मापी मन्त्रिकी उमा अन्धी नूतन संस्कारक कि उ १ ६, अन्धिम अन्ध ११वीं बकन, १ १०१।

४ जानम्बरनेतवमठ, अन्धिम, १ ७।

सब की रक्षा करीब ठौर ॥^१ चायसीमे प्रेम-बापके पाबको अत्यधिक बु-खरामी
मागा है । जिसके अगता है वह न तो मर ही पाता है और न भीख ही रहता
है । बड़ी बेचैनी सहता है ।^२

परमात्माके बिरहमें 'चिह्नबाढ़ नहीं आ सकती किन्तु फिर भी निर्गुनिए
सर्तोंकी अपेक्षा जैन कबिबोमें सबेदनात्मक अनुभूति अधिक है । कबीरके 'बिरह
मुर्खगम पेत्ति कर किया कछेजे बाब साबु अंग न मोकड़ी, क्यों प्राई त्यो जाय ।'^३
से आनन्दबनका श्लोका बीन सुष कुछ खूरी हो बिरह मुर्खग निद्यासमे मेरी से
बड़ी खूरी हो ।^४ अधिक हृदयके समीप है । इसी भाँति कबीरके 'बैसे जल बिन
मीन ठकई, ऐसे हरि बिन मेरा किया कल्पे ।'^५ से बनारसीदासके 'मे बिरहिन
पिय के बाधोन या ठकई क्यों जल बिन मीन ।'^६ में अधिक सक्तता है ।

जैन और अजैन सन्त

अधिकांशतया अजैन सन्त निम्नबर्गमें उत्पन्न हुए थे जब कि जैन सन्तोंका
जन्म और पासन-पोषण उच्च कुलमें हुआ था । अतः जैन सन्तोंके द्वारा धार्मिक
पाँठिके अग्रद्वारमें अधिक स्वाभाविकता थी । उन्होंने अल्पतः उच्चबोध पाकर
भी समताका उपदेश दिया यह उस समयके उच्चकुलीन ब्राह्मणोंके प्रति एक प्रबल
चुनौती थी । जैन सन्त पढ़े-लिखे थे उन्होंने जैन साहित्यका विविध अध्ययन
किया था किन्तु निर्भीकता बोलोमें समान थी ।

अजैन सन्त भारतीयिकाके लिए कुछ-न-कुछ उद्योग अवश्य करते थे किन्तु
अपभ्रंशके जैन सन्त मुनि या साधु थे । जैन हिन्दीका उल्ल-साहित्य रचनेबाकोंमें
बनारसीदास दानतदास भूखरदास अणबतीदास प्रभृति व्यापारविज्ञा कर्म
करते थे किन्तु कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने मुनिपद धारण किया था । धर्ममें 'सूरि'
'उपाध्याय और भट्टारक अधिक थे । मुनि बिनबचन भट्टारक सुमचन,
पञ्चोद्विजय उपाध्याय महात्म्य आनन्दबन और मुनि ब्रह्मनुवाक प्रमुख थे ।

१ कबीर प्रभाषणी 'जुर्ब सलकरण सब की अन्न, लीं रोवा ५ २४ ।

२ प्रेमबाब कुछ जान न कोई । बेहि कायी जानै ठी कोई ॥

कठिन मरव तें प्रेम बेकरपा । ना किठ जिये न बतर्बे अचस्या ॥

बाबनी प्रभाषणी प्रसन्नबद कानी बीपारै, ५ ५६ ।

३ कबीर प्रभाषणी, 'जुर्ब सलकरण बिरह की अन्न, २६वीं सारटी ५ ६ ।

४ आनन्दफलकरसम्पद, १९वीं वर प्रथम दो कविता ।

५ सन्तसुधाधार, कबीरदास 'मरव' १७वीं वर ५ ७९ ।

६ बनारसीदास अण्णात्मनीय दीनरा १५, ५ १२६ ।

परवी मस्ति ईहु मगवात् ।

कोटि काकच बी विल्लवहु, वाहि नै रधि आन ॥ १

मस्तिसे मुक्ति

जीवधर्मका मूलाधार है मुक्ति । धर्मोके आराध्य व परमात्मा है जिन्होंने 'धर्ममन्त्रीमत्त' को दूर कर मुक्ति प्राप्त कर ली है । ज्योति पूर्वतया घुटवाप य देना ही मुक्ति है^१ । जीव त्रिबालमं यह मुक्ति ज्ञानके द्वारा प्राप्तम्ब माली कबी है । हिन्दोके जीवन मन्त्र-वर्धियेजि अपने भवबान्ते मुक्तिही भी वाचना की है । अर्थात् उन्हें मन्त्रिण मुक्ति सिद्धनेका पूर्व निरवात है । इसे केन-देनका प्राप्त नहीं यह सचते^२ तथाकि त्रिवेग मुक्तिरूप ही है । ज्योति मुक्त हुई आत्मा त्रिनेत्र है और वह ही मुक्ति है । अत मुक्तिही वाचबावे प्रत्यके त्रिनेत्रमन होनेका वाच है । अन्त सर्वत्र अपने आराध्यकी इस मस्तिमासे अनुप्राणित होजा रहा है । जब रामनारायने यह कहा कि जो तुम मोक्ष देत नहि ह्यको कहा कार्य विधि देता^३ तो उसमें भी अपने भवबान्ती मस्तिमकी ही वात है । तुच्छीने भी "रभुरीत-वन्ति सप्त-सेवांग विनु, जो भव वात गवात्^४ । ये रामकी यहिनाय हो भजन क्रिया है ।

जबि बनारसीबासने तो यहाँतक सिद्धा कि भवबान् त्रिनेत्रसे मुक्तिही वाचबाही वाचस्मकता नहीं है, उनके चरबाका स्वय करनेसे वह ही स्वय ही प्राप्त हो जाती है । अन्त में तो देवक जो देव । आनु चरम परते ह्यत्राधिक होम मुक्ति स्वयमेव^५ ॥ इसीसे मिथ्या-मुष्ठा गुरवातका भजन है, अन्तमें उन्हें कल्पके भजनसे ही यद-वकनिविही पार कररना सिद्धा है, "गुरवात अत वई ह्यन भवि यद-वकनिवि उत्तरते^६ ।"

१ अरवात गुरवाय, भवन कवट अर्थात् मन्त्रद्वारे बाह्यकी उन्मत्तिय अर्थात् आन्त्री मन्त्रावली तथा मन्त्राय विधीय उत्तराय वि त १ ०२ भवन मन्त्र १ २वाँ पद ५ २४ ।

२ 'वन्तदेवमाय विनेराम्या ह्यन-वर्धियेजोको मन्त्र'
उत्पायेन, १०१ ।

३ व रामचन्द्र ह्यन्तरी इसको केन-देनका वाच करा है । वैदिक क्रियावधि, भवन माय, ५ २ ३ ।

४ रामचन्द्रह्यन्तरी इसको केन-देनका वाच करा है । वैदिक क्रियावधि, भवन माय, ५ २ ३ ।

५ अन्तपरतयाय वक्यता अर्थात् पद ३ ।

६ अन्तपरतयाय विवर्धियेजि अन्तपरतयाय वक्यता, पूर्वा १२१वाँ पद ५ २२३ ।

७ अन्तपरतयाय अन्तपरतयाय वक्यता १२१वाँ पद अन्तपरतयाय, अन्तपर, ५ २२३ ।

८ अन्तपरतयाय, भवन मन्त्र, २२वाँ पद ५० १६ ।

भक्तिसे ज्ञान

बैत और वैष्णव दोनों ही भक्त कवियोंने ज्ञानकी अनिवार्यता स्वीकार की है। तुलसीने लिखा है कि ज्ञानके बिना इस संसारकी समुद्रको कोई पार नहीं कर सकता

बिनु बिबेक संसार और बिधि
पार न पावै कोई ।^१

कवि बनारसीदासने भी ज्ञानके बरकर ही संसारसे उरनेकी बात कही है,
बनारसीदास बिन ब्रह्मि अमृत रस
सोई ज्ञान सुने ए अर्जुन भव ठरिई ।^२

तुलसीदासने “रघुपति भक्ति-बारि कालि बित बिनु प्रयास ही सुई”^३ के द्वारा रघुपतिके भक्तिरूपी बरसे पवित्र हुए बितमें बिना प्रयासके ही ज्ञानके उत्पन्न होनेकी बात लिखी है। सुरदासने भी “सुर स्वाम-पर नख प्रकाश बिनु क्यों कदि तिमिर नसावै”^४ में ब्रह्मरूपी ही ब्रह्मानन्द कारका दूर होना स्वीकार किया है। बैत कविप्रोफा भक्तिसे ज्ञानकी उत्पत्तिमें सख्त विश्वास रखे हैं। कवि बनारसीदासने ‘नाटक सम्यसार’ में लिखा है कि भगवान् विवेकके यज्ञका वर्धन करनेसे ज्ञानका प्रकाश छिटक जाता है और यथिग बुद्धि निर्मल हो जाती है

“जाकी अस अपठ प्रकास की हिरये में
सोइ सुखमति होइ हुती सु मकिन सो ।”^५

दानदत्तदासने भी ‘सर्व भिन्ता गई बुद्धि निर्मल गई कर्वाह बित सुपक चलनि कपामो ।’^६ के द्वारा समबान्के चरणोंमें बित कपासेसे बुद्धिका निर्मल होना लिखा है।

इस विषयकी केन्द्र बैत और वैष्णव कवियोंमें एक अन्तर भी है। वहाँ तुलसी और सुरसे केवल भक्तिसे ही ज्ञानका प्राप्त होना लिखा है, वहाँ बैत

१. किल्लभकिञ्च नृश्रीं बनारस, ११२३वीं पृष्ठ ५ २१५।

२. दामधामनी २-वीं पृष्ठ बनारसीवितास, कन्नपुर, ५ ७५।

३. किल्लभकिञ्च नृश्रीं ११२३वीं पृष्ठ ५ २१।

४. गुरदास, प्रथम पत्रक प्रथम कल्प ४-वीं पृष्ठ ५ १७।

५. नाटक सम्यसार, बैत प्रथम पत्राकर चतुर्थकल्प, कर्वा प्रथम संस्करण वि सं १९२६, १९३२, ५ ४६।

६. दानदत्तसमय कलकत्ता १९वीं पृष्ठ ५ २।

कविबाने धरिणके साथ-साथ स्थानुप्रमाणकी भी महत्ता प्रकट की है। कवि बनारसी-बाघका कथन है कि यह शैव अरुण त्रिभो प्रयानसे हो शानकी प्राप्ति करता है और होता है,

घायु समारि करै अथवी पद्
 घायु बिमारि के घायुदि मोहै ।
 अथापक रूप यहै अरु अंतर
 अथान में शैव अज्ञान में का है १

माया अज्ञानकी प्रतीक है। उसकी विषयमें भी यही बात है। तुम्हीदासने 'मायव अमि तुम्हारि यह माया करि अथाप पथि मरिय तरिय नहि अरु कवि करहु न दामा ।'^१ में स्पष्टीकी द्वाये बिना मायाका दूर होना असम्भव मान्य है। शैव कवि भूपरदासने भी भयवत् अज्ञानसे ही मोह-विद्याका नाश होना स्वीकार किया है,

"मोह विद्या अज्ञानो मति मरि, निज कर कंच अज्ञाना रे ।
 अथ जो राजमणीअर भूअर, हो अरुमति सिर अना रे ॥
 अगअर अथान कपो भूअर रे ॥"^२

क्रिष्ण अनेक स्थानोंपर शैव कविबाने यह भी स्वीकार किया है कि माया न तो अथानकी मेत्री हुई है और न अथानकी द्वाये दूर ही हो सकी है। इसे तो मनुष्य मोहनीयअथान काय करके ही अतीत पाना है। बनारसीबाघकी दृष्टिमें मायाकी बेझिने अथापनमें केवल अानी आत्मा ही समर्थ है। अथाने अरुणाका बोझा अरुते हुए अथा है,

'माया बेकी बेकी सेती रेंते में अरुती सेकी
 अदा ही को अदा अरु अनी को सो अथा है ।'

शैव कवि अथानीबाघ 'मैमा' का कथन है कि अथाकी अरुतीमें अथाअन्य की अथा अथ्य करता है। अथ अथाकी अरुतीमें अथ अथा है। अथ अथना अरुणाकी और अथान अथा तो अथ अथअन्य हो अथा और अथाकी अथोअथा दूर हो अथी

१ अथा अथअन्य, २१२१ व २२२१ ।

२ अथाअन्य अथा, २२२१ व २२२१ ।

३ अथाअन्य, अथाअन्य, २ व २, २२१ ।

अथाअन्य अथा, अथाअन्य अथाअन्य, २ ।

'काया सी जु नगरी में बिदावन्द राज कर
माया सी जु रानी वै मगव बहु मयो है ।
एसी राजधानी में अपने गुण भूक्ति रख्यो
सुधि सब भाई तबै ज्ञान आप गछ्यो है ॥'

आराध्यकी अन्य देवोंसे महत्ता

अस्य देवसे अपने आराध्यको बड़ा बतानेका भाव एकेवरबादकी भावनासे अनुप्राणित है। जमीरकी दृष्टिमें बहुदेववादो उस व्यक्तिचारिणा तबोके समान है, जो अपने पतिको छोड़कर आरामपर आपन रहती है। बरनदासका कथन है कि बाहे छिर दूठकर पृथ्वीपर सोटने अये किन्तु रामक सिवा किमी अन्य देवनाके समझ न लुके।

बैष्णव और जैन दोनों ही कवियोंमें अपने आत्मन्त्रके अतिरिक्त किसी और को मन्त्रि नहीं की। उनकी दृष्टिमें अस्य देव स्वयं मित्रादी है। फिर ये ब्रह्मरोंकी याचना जैसे पूरी कर सकते हैं। मुरदासन अस्य देवोंसे मित्रा माननेको रसनाका व्यर्थ प्रयास कहा है।^१ जैन कवि मुरदासने भी 'मुरदा पर बालिन क्यों दकिई जो है आप मित्रादी' कहकर समीका समझन किया है। तुलसीदासने मित्रा है कि अग्रदेव मामाने विवद्य है। उनकी शरणम जाना अर्थ है। जयवनीदास 'मीना' का भी कथन है कि और सब देव राखी डेपी है, उनकी सेवा करनेसे पाप

१. अलङ्कारसंग्रह 'मेरा' अग्रविषयम बैष्णव्य तत्वाकर अर्थात्तव कर्म्यं सन् १६२६ ई
रज्य अन्वेषणी २२वाँ अध्याय पृ. १४।

२. नादि कह्योसे नीब की रई और संन सोय ।
आर गुदा मन ये बने असन लुपी क्या होय ॥
सन्त बानी संग्रह भाग १ पृ. १०।

३. यह छिर नये त राम भूँ नाहीं गिरयो दूट ।
आन देव नाहि परमिए यह तन आयो छूट ॥
पृ. १, १००।

४. 'जाँचक वै जाँचक कह्यो जाँचै ? जो जाँचै तो रमना हारी ॥'
गुलामापर प्रथम अन्वेष २२वाँ अध्याय, पृ. १५।

५. मुरदा विषयम अलङ्कार २२वाँ अध्याय पृ. १।

६. देव अनुग्रह मुनि नाय अनुग्रह नव माया-विषय विचारे ।
निनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अनुग्रही हारे ॥
विनयविद्या पूर्वार्ध १ अध्याय पृ. १६।

है, "तुम हम बीनबन्धु न बीन बाउ मो मम सुनहु मूपति रजुपारै।" नही
 किया है, 'बीनबन्धुसरोरुहै पाषी' और नही उन्हें 'बिनु कारण पर जगती
 अति क्रोमल कचना निवान बीन हितकारी' रामके अनिरीकत अर्थ कोई उपक्रम
 नहीं हुआ।^१ मूरदासके वियके फरोमें बीनना बिकपी गयी है। सगाले भी
 किया है

"अथ भी कहा कीन दर भाई ?

तुम अगपाक अगुर वितामनि बीनबंधु सुवि भाई ॥"

बीन कविवाके भाव भी इनसे दिखत मुकती है। कवि जानतछबने अपने
 मनकी बीनबन्धु अगवान् अिनेमूका अजन करनेके लिए निरन्तर प्रेरित किया है।
 मूरदासको भी अगवान्के बीनबन्धु अर्थमें परम विश्वास है। उन्होंने संसारी
 बंधासे बु अिअ हाकर बीनबन्धु ममवान्की पुकारा है

अओ अगन गुठ एक सुविओ अरअ हमारी।

तुम हा बीनबन्धु, मी सुलिया संसारी ॥^२

बीनवाके साथ ही मकाने अपने बीनबा भी तुकडर अन्धेन किया है। अते
 ममवान्की अवारताम पुन विश्वास है। ममवान् बवान् है यह अपने मकानो
 बोपोके हंरी हुए भी अमसमूअसे पार अना देता है। तुकडाने 'बिनअधिकारी' में
 किया है,

"माअअ मा समअ अग वाही।

अथ बिबि हीन मकीन बीन अति बीन अियन कोउ लारी ॥

तुम अम हैतु-रहित कुवाअ अारत हित ईअ न ल्यायी।

मि बुअ-सोक-बिकक कुपाअ केदि कारण अथा न कायी ॥^३

बीन कवि अमसारीवाल 'बेअ ने अेन' के बोपो को अकअ करते हुए, अते
 ममवान्का अजन करनेकी बात अही है। उन्हें विश्वास है कि ममवान्की कुपाते
 बीन अकअन कर आयेगे

१. बिनअधिकारी अउपारै १८५१ ई ५७२।

२. १८५१ ई ५२२।

३. अही, १९५१ ई ५२२।

४. अरसाम, अमअ अमअ १९५१ ई ५४।

५. मूरदास बिनअुनि अमकीन पुवाअमि अारतम अानकी, अही, अम अमअ,
 अरसाम ५४ ५२२।

६. बिनअधिकारी अरसाम, १९५१ ई ५२२।

“मगधंत मञ्जो सु तञ्जो परमाद्
समाधि क संग में रंग रहा ।

अही अतन एवाग पराह सुबुद्धि
गहा निज बुद्धि क्यो सुख छोडो ॥

बिपचा रस के हित बूडत हा
मज सागर में कछ बुद्धि गहा ।

तुम शायक हो पट प्रथम के
तिन सीं हित जालि के भाप क्यो ॥”

श्री विजयप्रभ शपाध्याय (१५वीं शती विक्रम) ने ‘सीमन्धरस्वामी स्तवनाम् में लिखा है कि शोषिक कारण यह शीघ्र मज-समुद्रमें डूब रहा है उसे धारनेमें स्वामी सीमन्धर ही समक है

‘मोह भर बहुक-बहुक पूर संपूरिपु,
बिपय पय-कम्म-पयरात्रि सरात्रिपु ।

मज जकहि मज्झि निबधंत जत्-कम्प
सामि सीमंधरो पोष जिम सोहपु ॥

श्रीम और दीप्जव बोना ही कवियोने मगधानुको सनक बिरद का स्मरण दिलाया है । मगधानुका ‘बिरद’ मगधानुके संसारसे तारनेका है चाहे वे शोषिके मुक्त हों अथवा जग्मुक्त । गुरुवाचने एक पदम लिखा है कि-हे मगधन् ! मैं तो शोषिके मरत हुआ हूँ यदि आप अपने ‘बिरद’ का स्मरण करिने तभी मेरा काम बनेवा सम्भवा लही ।

‘सूरदास बिजठी कह बिजर्ष शोपनि देह मरी ।

अपनो बिरदु सम्हारहुगं ती पार्थी सब निषरी ॥”

दातनदापने श्री मगधानु मेमीरधरके धारन-धारनके ‘बिरद’ को स्वीकार किया है । व संसारके पाप जकालमें विस्वात है

“अकक भवि जज-बूहन धारिदु बिरदु धारन-धारन ।

इण्ड अण्ड अजिन्दु ज्यार्य पाप मुक्त हुण्ड इरन ॥”

१ मफलीदास ‘शैवा शत श्लोचरी १ ११वीं श्लोका मज्झिमसुत्त ॥ ११ ।

२. विमलप्रभ शपाध्याय, सीमन्धरस्वामीस्तवनाम्, तीसरा पद्य

Anant Jain Hymna Charlotte Krause edited Sindhia
Oriental Institute Ujjain, 1952, P 121

३. शारदाप्र, प्रथम स्कन्ध ११०वीं पद्य ॥ ४१ ।

४. धारनधारनधर धारन धर ॥ १ ।

विष्णु और विनेन्द्र दोनों ही मे 'वरण नद्वै की आज' का निर्वाह किया है। सुरवासने किया है। 'ओ हम यके बुरे ली तरे ? तुम्हे हमारी आज बडाई विगती सुनि प्रभु मेरे ॥' कवि आनन्दरायका भी कथन है कि हम तुम्हारे यक्त है, हमारी वरण नद्वै की आज निवाहो

बाके केवकशाव विराजत कोकश्लोक प्रजापत धारा ।

वसत नद्वै की आज निवाहो प्रभु की आनत भगत तुम्हारा ॥^१

उपाख्यान

बनेक यक्त कवियाने मन्वानुकी उपाख्यान मो विधि है। रिल और रात स्वामीके पास रहते-रहत बिग प्रकार केककरी बरक कुक जाती है। सही धर्मि प्रभुके सप्त ध्यासे जो सासिष्पकी अनुमति यक्तक हृदयमें सत्पन होती है, उसके कारण वह कभी-कभी मीठा उपाख्यान भा देता है। तुम्हीने एक परने किया है कि—हे भगवन् ! मुझे कभी विस्मरण कर दिया है। आज अपनी महिमा और मेरे पापको जागते है फिर भी मेरे उम्हारा कयो नहीं करते। पाके तो मुझे अब बनिका और स्वाबकी वक्तिमें बैठ विवा फिर परसी हुई कृपाकी पत्तल पत्र कयो बासी ? मुझे गरकमें जानेका अब नहीं है, तु अब तो इसका है कि आजका नाम भी पाप न बना सका

“काहे ते हरि ! मोहि बिसारो ।

आनत विज महिमा मेरे अब तद्वि न बाव संमारो ॥

आन-गनिक-गज-ध्या-वति बाई तई ही हूँ विमरो ।

अब केहि काज कृपा निवाव परसत परवारो जाते ॥

माहिन बरक बल साकई बर अचवि ही अवि हारी ।

बह बड़ आज दास तुकसी प्रभु नामहु वाप न आरो ॥^२

शैल कवि आनन्दरायका स्वर भी तुम्हीसे मिळता-जुळता ही है। उन्होंने लिखा है कि—हे भगवन् ! मेरे समय बीत कयो कर रही है। तुम्हें बैठ सुरसंगकी विपत्तिका अपहरण किया। सही सीताके लिए अग्निके स्वागपर बरक कर दिया। इसी वृत्ति तुम्हने बारिपेय धीपाक और सोमापर भी कया की। फिर मुझे ठारते समय हो देर कयो कर रहे है

१ गजदास, अथम पद्य २३ वीं पद ५ ४९ ।

२ आनन्दरायका २२ वीं पद, ५ २३ ।

३ विष्णुवक्ति पूर्वादे, ६ वीं पद ५ १ ।

मिरी बेर कहा बीक करी भी !
 सूखी छौं सिंहासक कीबो सठ सुप्रसाक विपति हरी जी ॥
 सीठा सवी अगिनि में पैछी पावक नीर करे सगरी जी ।
 बारिपेण पै एरुग कडापो फूल माक कीनो सुपरी वा ॥
 बन्धा बारी परयो निजास्यो वा पर रिख अवरु मरी जी ।
 सिरीपाक सागर तैं तारयो रात्र मोग के सुकन बरी जी ॥
 सांग हुबो फूलन की माया सोमा पर तुम दबा बरी भी ।
 पावत में कहु अचरु, नाही कर बैराग्य दवा हमरी जी ॥^१

भगवान्‌के समस्त बहक कुछ बानेश्वर अर्थ यह नहीं है कि उनसे जो चाहे सो कह दिया जाये । वहाँ भी शाकीनताका ध्यान तो रक्षना ही पड़या । कहीं-कहीं सुरवासको फटकार शाकीन मनको बचती नहीं । एक स्थानपर उन्होंने लिखा है

“पवित्र पावन हरि विरु तुम्हारा कौनै नाम बरयो ।
 हीं तो हीन बुद्धि अति दुरवक द्वारें रख परथी ॥^२

इसने समस्त आनन्दरायना एक उपासकम्य देखिए । सममें गरिमा तो है किन्तु मर्यादाका सम्बन्ध नहीं । इनका यह पर उपासकम्य साहित्यना एक अनूठे रत्न है । मरुने कहा

‘तुम प्रभु कहिचत हीन दबाक ।
 थापन थाप सुकृत में बिठे हम तु दकृत अग आक ॥
 तुमरो नाम अपि हम नीक मन बच पीबी काक ।
 तुम वा हमको कहु दैत नहीं हमरो कौन दबाक ॥^३

नाम-अप

सभी जगत कविनि भगवान्‌के नाम बाको महिमा स्वीकार की है । मुद्रवाचने लिखा है कि भगवान्‌का नाम-अप इहोदित्य विभूति तो देता ही है पारकीक धारका कुछ भी प्रभाव करता है

१ आनन्दरसमह कल्पवृक्षा १७वीं पद ५ ७-८ ।

२ मुद्रवाचन, प्रथम स्कन्ध १३३वीं पद ५ ४४ ।

३ आनन्दरसमह १७वीं पद ५ १० ।

“नाम को मधोमी बह चारिहुँ एक को एक
 सुमिरिय अङ्गि एक मनो हनु है ।
 रघारथ साधक परमारथ दासक नाम
 राम नाम सारिणो न और वृजो हियु है ॥”

शैव कवि श्री मुचुकुतामन भी पंच परमेश्वरोंके नामकी महिमा बतलाने हुए
 कहा है कि — जो विश्व प्रति नमस्कारको कपटा है उसको सामारिक मुक्त हो दिव
 ही जाता है धारण सिद्धि भी प्राप्त हो जाती है

“विश्व जया ई मन्कार संसार संपत्ति मुचुकुतामन
 मित्र मंत्र, आस्थतो इम जय श्री गङ्गाबाबक” ।

अपवर्गीयत 'भैवा' का विश्वास है कि बीतरागी मन्वानुषा नाम केनेवाके
 नाम पनते ही पर श्री जाने है वह पञ्चसिन्धुसे भी पार हो जाता है,

‘बीतराग नाम सेती काम सब होंहि नीके
 बीतराग नाम सती धाम बन जरिये ।
 बांतराग नाम सती विचन विद्याप जान
 बीतराग नाम सती मन्-सिन्धु तरिय ३”

मुक्त चाहे इहलौकिक हो चाहे पारलौकिक पाप नष्ट हुए बिना प्राप्त नहीं
 होगा । मन्वानुषा नाम केने मापते ही पाप दूर हो जाते हैं । तुलसीने लिखा है

“राम नाम सौ रहनि राम नाम की कहुनि
 हुयिक ककि मक शोक संकर हरनि ४”

भैवा पञ्चनीयतने तीर्थवर मुनिमुत्रतमाके नामसे पापीको नन्माचभाव
 होते हुए विधाया है

‘मुनिमुत्रत विच बांज बांज त्रिमुत्रत अस्त अंशै ।
 अपी मुर पर जय जय जयि जय मु कौ ॥”

छानउपयन लिखा है कि मन्वानुषा नाम केनेसे एक लक्षमें ही करोड़ों अण
 वात बट जाते हैं

१ दिनकरलिखा कवचार्थ, २२७वीं पद १ २ १ ।

२ मुचुकुतामन मन्कार बन्ध, अन्तिमकण्ठ, शैवपुराण कवितो बरना नाम, कर्ण
 ११२६ १ ११६ ।

३ मन्वानुषात 'भैवा' अलिखित वास्तनाथ मुनि, २०वीं कवित, अन्तिमपाठ
 १ १२९ १२१ ।

दिनकरलिखा कवचार्थ २२७वीं पद १ २२६ ।

४ मन्वानुषात 'भैवा' अलिखित अन्तिमपाठ २०वीं कण्ठ, अन्तिमपाठ १ १० ।

रे मन मङ्ग मङ्ग क्षीनदुनास ।

आके नाम छेत् इक छिन में कई कोर अथ आक ॥

भूषणायना कथन है कि श्रीमन्महेश्वरीके नामका उच्चारण करनेसे पाप सभी माँति नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदयसे अंधेरा

“स्रीमन्महेश्वरी में चरनन का बेरा ।

नाम किय अथ ना रहें उर्वी ऊगे मान भंवेरा ॥”

मन्वानुके नाममें पढ़ा करना प्रत्येक व्यक्तिना कल्याण है । वेद पुराण और पुराणिक आदि सभी मन्वानुके नामकी महिमा स्वीकार की है । कुछ ऐसे भी हैं जो इस महिमाको स्वीकार नहीं करते किन्तु मन्वानुके मन्त्र उन्हीं प्रति जो बरार रहें, यह ही बचित है । मुझीने उनको यथा कहा है

‘वेद ह पुराण ह, पुराणिक ह पुकारि कर्मी

नाम प्रेम चारि कक ह का कक है ।

ऐस राम-नाम सौ न प्रीति न प्रयोति मन

मेरे जान जानिबो सोई तर लक है ॥”

दानवदामने भी एक ऐसे ही परब्रह्म निर्माण क्रिया है, जिनमें समूहोंने मन्वानुका नाम न कैनेकालेकी बिकाराय ती है, किन्तु यथा-रहिते उचरना प्रयोग नहीं किया । इनका कथन इस प्रकार है

इन्द्र कनिन्द अकपर गावें जाको नाम रमाक ।

जाको नाम जान परकासी बाघे सिध्या जाक ॥

पद्म से पद्म अथ से कहीं सकक कर अचतार ।

नाम बिना बिक मानव को मर अक कक है दे उर ॥”

मन्वानुकी उदारता उसके नाममें भी समिहित है । मन्वानुका नाम कैनेसे वेदक बुधायमा ही नहीं बरिपु वागी भी तर जाता है । मूरचउने लिखा है

‘का को व तरयी हरि नाम किये ।

मुषा बड़ावत गमिका तारी ज्याव तरया मर-बाग किये ॥

अंगरदाह तु मिळी ज्यास को इक चिन है भागवत किये ॥

१. बानजरासम कथकता ११वीं पद १ २० ।

२. भूषणनाम कथकता दुसरा पद १ (२) ।

३. विनयविद्या कथकता, १११वीं पद १ २ २ ।

४. बानजरासम ११वीं पद १ २० ।

५. मन्वानु मन्त्र उचर २१वीं पद १ २ ।

मगधान्के नाममें पापियोंको धारनेकी शक्तिका उल्लेख भूवरदानमें भी किया है। उनका कथन है कि भवदान्का नाम देनेसे अंबन-से घोर और कीचल-से अमिमानी भी उर पये है।

“मैं तो बाकी आज महिमा जानी सब कों नहीं उर जानी ॥
काह के सब जन में प्रसन्न र कों होते बुद्ध जानी ॥
नाम प्रदाय तिरै अंबन से कीचल से अमिमानी ॥”

गुप्तसीवासने रामके नामकी बच-बेनारसे सूटनेका उत्तम उदाहरण माना है।
“राम कहत चसु, राम कहत चसु राम कहत चसु माई रे।
बाहिं तौ भव-बेगारि माई परिही कूटत अति कठिनाई रे ॥”

एक दूसरे स्थानपर उन्होंने कहा कि भवदान्के नामसे कोई बिन्दा नहीं छाती और मोक्षलोक प्राप्त हो जाता है,

“गुप्तसो जग जानिबत नाम ते
सोच न कूच सुप्रम को।”

बौद्ध धर्म मगराजाने ‘मगराजविष्णु’ में लिखा है कि ‘अहिंस’ का नाम आठ कर्म कपी धुरमनोको गह कर देता है और दुर्भोग प्रदान करता है,

करमादिक अतिव की हरे अहिंस नाम
सिद्ध करे काज सब सिद्ध को मखन है ॥”

भूवरदायका कथन है कि बौद्ध मनुष्य जीवनसे सुटकारा पाता है, तो भवदान्के नामसे बौद्धका नाम रटो

“है अजौ पृथ उपाय भूवर
कहे को नर चार रे ।
रति नाम शुकुल मज को
बसु बंध छोड़न हार रे ॥”

भवदान्का नाम देवक भक्ति ही नहीं बलिदान का भी प्रदान करता है। भूवरदानमें लिखा है

- १ भूवरदानात् बलवत्ता ३३००० ५ ५५।
- २ क्लिप्तविक्रम कृतार्थ, १००००० ५ १११।
- ३ वही १११०००, ५ १५।
- ४ मगराज क्लिप्तविक्रम अतिर देविकान क्लिप्तविक्रम इति ३३०००० ५ ५५।
- ५ भूवरदानात् बलवत्ता ३३००० ५ ५५।

‘अद्भुत राम नाम के अंक ।

मक्ति ज्ञान के पंच सूर य प्रेम निरन्तर माखि ॥”

दानदरासका भी कथन है कि भगवान्‌का नाम भिष्या-बासको काटकर ज्ञानका प्रकाश करता है

‘जाको नाम ज्ञान परकसी
नासै भिष्या बाक ।’

भगवतीदास ‘सैवा’ ने भी पंच परमेष्ठियोंके नामकी महिमा बताते हुए लिखा है,

“तिहु लोक तारन को आत्मा सुधारन को ।
ज्ञान विस्तारन को बड़े नमस्कार है ॥”

शैव और वैष्णव कवियोंमें अन्तर भी है। शैवोंके मध्य भगवान्‌का नाम कीर्तनक रूपमें कभी प्रतिष्ठित नहीं रहा। वैष्णवोंमें कीर्तन मक्तिका प्रमुख अंग माना जाता है। इसके अतिरिक्त सूर और तुलसीने रामके नामको साधन और साध्य दोनों ही रूपोंमें स्वीकार किया है। तुलसीको रामसे भी पूर्व रामका नाम प्रिय है अथ बहु साध्य तो है ही। शैव मन्त्र कवियोंने भगवान्‌के नामको केवल साधन माना है।

भगवान्‌का छोकरंजनकारी रूप

भगवान्‌का रूप छोकरंजनकारी तभी हो सकता है जब उसमें शीघ्रबर्धके साध-साध धक्ति और शीघ्रता भी सम्भव हो। भगवान्‌के इसी सम्बन्धित रूपसे जन-जन आकर्षित होता है। तुलसीने ‘रामचरितमानस’ में ऐसे ही रामकी अंकित किया है। जिनमें रामके समान ही शीघ्रबर्ध और शीघ्रकी स्थापना हुई है, किन्तु धक्ति-रामप्रणाममें अन्तर है। रामका धक्ति-शीघ्रबर्ध अमुर तथा राजसोके संहारमें परिष्कृत हुआ है जब कि जिनमेंका अहङ्गमोंके निरन्तरम। दुष्टोंको भीता दोनों-ने है, एकरे मातृबन्धे और दूसरेने अम्पारयसन्धिते। एकरे असत्के प्रतीक मानव को समाप्त किया है, और दूसरेने उसे सत्में बदला है। तुलसीके राम राजसोके

१ धारदरास प्रथम स्कन्ध २ शीघ्र ५ ५६।

२. धारदरास प्रथम २६श्री ५६ ५ २।

३. भगवतीदास शैवा तुलुकि श्रीशैवी, २श्री ५६ मधुविवाह ५ २२५।

४. प्रिय राम नाम हैं आदि न रामों’

विनयाविका कण्ठार्य, २६श्री ५६ ५ ४००।

मारकर बैठे हैं। वेव कुन्दुनी बजाते हुए पुष्पोकी बर्षा कर रहे हैं। रामके घरीसे शीतल्यं फूट रहा है।

‘सिर जया मुकुट प्रसून विष विष भति मनोहर राजर्षी ।
बनु नीलगिरि पर तद्विष शक्य समेत बहुगण भावर्षी ॥
मुजवंत सर केवंत फेरत खरि कन तव भति बने ।
बनु रापमुनी तमाक पर कैरी विपुल सुख जावने ॥

जमवान् पार्ष्व प्रमुने कमठ नामके बसुरके बोर उपसर्जोशो प्रहृण कर लठके हृदयको शोत किया। और कृष्णध्यानसे बहुकर्मोंको बलाकर वैषकज्ञान प्राप्त किया। समबद्धरवकी रचना हुई। सिद्धासनपर बिराजे मन्वान्का शीतल्यं बेधिय,

प्रति बचक कन अक्षय उद्यत सोम विम्ब प्रया हवी ।
सो बधो पास विभेन्द्र पातक हरन जग नृदामनी ॥
हुति वैशि जाकी चांद कर में तेज शौ रवि कागव ।
अब प्रमा मद्यप जोग जग मों कौन उपमा काजवे ॥
इत्यादि अतुक विभूति मंडित सौहिष विमुचन कवी ।
सो बधो पास विभेन्द्र पातक हरन जग नृदामनी ॥

समबद्धरवमें सिद्धासनपर बिराजे तीर्थंकरके शीतल्यंको धरम बधिव्यक्ति बनारसीवातके मुक्तक पद्यमें हुई है। उनके लेखके आये सब ऐजवंत कृष्के प्रवक्त महारूपमें और उनके घरीर सुबन्धिके सामने सब सुबन्धियाँ पराजित हो गयी हैं। इनकी विम्ब जगि कानीरो मुख प्रयाग करती है।

“जाक देव-मुति शौ वसी दिसा पवित्र पद,
जाके तेज जागै सब ऐजवंत रके हैं ।
जाकी कन विरखि बकिठ महा क्यवंत
जाकी बसु-बास सौ सुबाध और लुके हैं ।

१ दोन्नाकी तुलसीदास जी रामचरितमानस नंदाग्रेष्ठ नेरज्जु, लंकावाचक,
१ भाँस, ५ ८४१ ।

२ मुन्नादास वासुदेवाच, मिनावाकी बचारेक कर्पल्लव, कनकदा मयवीन संस्कार,
पद्मोपरिवाच, कान्नाशिवाँ कर्बन, १३१वाँ पद्य, ५ ७१ ।

आफ़ी दिव्य बुधि सुनि अचन कौ मुख होत
 आके तन अचन अवेक आइ दुके हैं ।
 तेई अिनराज आके कहे बिबहार गुन
 बिहूने निरखि मुख चेतन सौं सुकई ॥”

विनयप्रभ छपाध्यायने श्री सीमन्धर-स्वामि-स्तवनम्^१ में श्री सीमन्धर स्वामीका
 ओकरबनकारी चित्र सीधा है,

“मुञ्जप मल मयघ अर्पण संपूरक
 कुरित हरतार तारक मुणी नाथक ।
 सयक अग अतु मय-पाप तापापहं
 लमडं सीमन्धर अंशु सोदायहं ॥

०

१. नाथक समस्तार, श्रीमन्धरस्वामि-स्तवनम्, बनर्षी सि. सं. ११८९-११९२,
 पृ. २२-२३।

२. विनयप्रभ अर्पण, श्रीमन्धर-स्वामि-स्तवनम्, अंशु ११८, Ancient Jain
 Hymns, P 1-1

बो बिज सासन पासियह सो मइ कहियह सार ।

बो पाकेसइ माइ करि सो छरि पावइ पाइ ॥

कुछ विद्वानोंने अपभ्रंस और देशभाषाको एक माल किया परिणामतः उन्होने अपभ्रंस कृतियोंको भी हिन्दीमें ही परिगणित किया है। महावच्छिन्न राष्ट्रकूटशासनके हिन्दी काव्यशास्र इसका निरर्शन है। यह सच है कि कच्छसिरीलाकारके आचारपर अपभ्रंस और 'देही समानार्थक शब्द से' किन्तु यह बीसा ही या बीसा कि पठ्यत्रिकके महामाध्यमें प्राकृत और अपभ्रंसकी समानार्थक माना गया है।^१ भाषाविज्ञानके सम्बन्ध आकते है कि भाषाबोका स्वभाव विकृतनशील है। मुहूर्तकीर्तिके लिए भाषाएँ निरन्तर सपाठप्रधानतासे ब्यास परकटाकी ओर जाती रही है। प्राकृतसे अपभ्रंस और अपभ्रंससे देहीभाषा आधिकारिक ब्यासप्रधान होती गयी है। यह ही बीनोमें अन्तर है। अन्त बीनोको एक नहीं माना जा सकता। स्वयम्भू (१बी सताम्बी वि सं)का 'पदबचरित' निराल अपभ्रंसका ग्रन्थ है। इसमें वही देही भाषाका एक भी शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है। कवि पुम्बरत (वि सं १ २९)ने 'बाबकुमारचरित'में अपनी सरस्वतीको नि.सेव देश भाषाबोका बोझनेबाका बके ही बहू हो^२ किन्तु यह देशक विविध अपभ्रंस भाषाबोके बोझनेमें ही निपुण है। पुम्बरत अपभ्रंसको ही देशभाषा कहते थे।

पुम्बरतके 'बासीस बर्य पनरान्त हुए भीचन्दा कनाकोव' देशभाषामें लिखा गया है। इन ग्रन्थमें ५३ श्लोकी हैं। प्रत्येक श्लोकमें एक कथा नहीं गयी है। कथाएँ अन्तिते सम्बन्धित हैं। श्लोककी प्रधानतासे स्पष्ट है कि भीचन्दाके गुन बीरचन्दा से जो कुम्भकुम्भाचार्यकी परम्परामें हुए हैं। एक बचाहरन इत प्रसार है,

‘कहेवि सिद्धि न समाधिकारण
समल संसार ब्रह्मोह चारण ।
पहु अपु अं सरसं निरंतरं ॥
मुहं सचातण्डकं अनुतरं
सेन्यन माइ बद्धिह पचाइ ।
सम्मस बाल तर चारन चान ॥

१ कदासिरीलाकर, १।४ ५ २५५ ।
२ शनकल पदाभाष, १।५ १ ।
३ बाबकुमारचरित की शिरोलात केन सम्बन्धित चारुका २२२३३ परती सन्धि ५ ३ ।

विष्णुकी वेरहकी उतासीके कर्मकी त्रिनरत्नमूर्ति (वि सं १२४४) के कर्ममें एक सामर्थ्यवान् व्यक्तित्वका जन्म हुआ । वे त्रिशूल के और बलि को । कर्ममें 'बली' काटस्वक्यपुत्रकम् और उपदेशरसासनराम'का निर्माण किया । 'उपदेश रसासनराम'में सप्तगुरुके स्वरूपका विवरण वर्णित हुआ है । वे तीनों ही वायु वरप्रद मायामें द्वितीये जन्म हैं । गुरुके सम्बन्धमें एक वचन इस प्रकार है,

सुगुण सुदुष्पद्म मन्त्रतः मासह
पर पराशरि-विषद जगु मासह ।
सन्नि शोष त्रिष धन्यद स्वकाह
सुख-भाग्य पुच्छिपदं तु अस्तह ॥”

त्रिनरत्नमूर्ति (वि सं १२५७) ने 'पुच्छिमहोत्पन्न की रचना की थी । आचार्य स्तुत्रमहोत्पन्न स्वामीके समकालीन थे । उनका निर्माण वा वि सं ११९ में हुआ । उनका समाधिस्थान पुच्छमार वाण पटना स्टेशनके सामने कमल-हूएमें बना हुआ है । इस कल्पकी गणना पत्तमकोटिके शास्त्रमें की जाती है । इसमें आचार्य स्तुत्रमहोत्पन्नकी भक्तिसे सम्बन्धित अनेक तरह की रचना हुई हैं । वाचक कल्पकी अनिष्ट पक्षिणां देखिए

“वीरक कोमक सुरदि वाच त्रिम त्रिम वाचते ।
मात्र मन्त्रकरा मातृनिव त्रिम त्रिम वाचते ॥
त्रिम त्रिम अक्षर मरिच मेह गवर्णगणि मन्त्रिवा ।
त्रिम त्रिम कामीतरण्य वयन वीरदि वाच इच्छिवा ॥

नेत्रिचक्र मन्त्रारी उरतरमन्त्रीय त्रिनरत्नमूर्तिके त्रिम थे । कर्ममें वि सं १२५९ के जन्ममें त्रिनरत्नमूर्ति मुजबर्तन के नामसे एक स्तुति लिखी थी जो शैव शैतानिक वाक्य संघर्ष में प्रकाशित हो चुकी है । यह स्तुति आचार्य बलिपुत्रा निर्दोष है । इसमें ३५ वचन हैं । एक वचन इस भाँति है

'वचनदि त्रिमि और किन्तु, गणहृद वीरम मासि ।
सुधराम मातृनिव सुखदि मरानु, तुण प्रयाग विवतासि ॥”

महेश्वरमूर्तिके त्रिमि और बलिपुत्र (वि सं १२६६) ने 'अम्बुशामी बरिष' 'स्तुत्रमहोत्पन्न और मुजबर्तनी बलिपुत्रा'का निर्माण किया था । तीनोंमें जन्म- ५२, ४३ और ४२ वचन हैं । उनका मन्त्राधीनके निर्माणके कारणों केवल तीन

१. सामर्थ्य अत्रागतान् कर्मोंमें इनका उल्लेख कर, स्तुति संख्या प्रकाशना मणि G O S XXXVII में प्रकाशित किया है ।

२. शैव शैतानिक वाक्य संघर्षके द्वारा इन मन्त्राधीनके और हैं ।

कैवली हुए जिनमें बम्बूस्वामी बन्धित थे। सुमद्रासतो जिनेश्वरकी मन्त्र दी। सोनो ही रचनाएँ पुरानी हिन्दीमें लिखी गयी हैं। यद्यपि कुछ छेदक इन कृतियों-के मापानो मुकरातो कहते हैं किन्तु यह हिन्दीके अधिक निकट है। तीनोंका एक-एक पद्य निम्न प्रकारसे है

त्रिष्य षड् बीसह् पय नमेवि गुह् अय्य नमेवि ।
बहु सामिहिं तय्यड् अरिप भविड् तिसुयेवि ॥”

—बम्बूस्वामी अरिप

‘पण्मावि सासणइवी अतई चापुमरी ।

धूक्किम्य गुण गहन सुणि सुधिब रहग्गु केसरी ॥

—स्वतन्त्र रास

“बं फलु हाह् गया गिरजारे अ फलु दीम्हह् सोना मारे ।

बं फलु अविह्व नवकारिहिं गुणिहिं तं फलु सुमद्रा-

अरिदिहिं सुनिहिं ॥”

—सुमद्रासती अनुपदिका

साहस्यण अरठराज्जोय जिनपतिमूरिके शिष्य थे। उन्होने वि सं १२७८ में जिनपतिमूरि धरकलीत^१ का निर्माण किया था। यह कृति गुह-बन्धितका पुस्तक है। इसमें बीस पद्य हैं। रचना सरस है। पहला पद्य बेलिय,

‘बीर त्रियेसर नमह् सुरेसर तसवह् पयमिय पय अमके ।

पुगअर जिनपति मूरि पुण्य गाह् सो मसि भर हरसि तिम निरमके ॥

विजयसेनमूरि, नावेश्वरज्जोय हरिमद्रमूरिके शिष्य बीर मन्त्रिपरक वस्तु पाठके धर्माचार्य थे। उन्होने वि सं १२८८ के अथमप ‘रिबन्धमिरि रासो की रचना की थी। इसमें ७२ पद्य हैं। इसमें मिरितारके बौद्ध मन्त्रियोंका बचन है। इसकी भाषा प्राचीन गुजरातीकी अपेक्षा हिन्दीके अधिक निकट है। प्रारम्भके दो पद्य इस भाँति हैं

१ लापसेरी मिसेलेवी समाजिक पत्रिका बहीरा मराराजकी सेकुन लापसेरीका मन्तराज, अर्थात् १६१२के अर्थमें, श्री सी बी बत्तालका शब्दके उपस्थित बौद्ध पुस्तकालयकी ओरमें प्राप्त उत्कल, पाठान्तर अथवा और प्राचीन गुजरातीके अर्थोंका विवरण ।

२ ‘विशिष्टाधिक जैनधर्म समर्प’में प्रकाशित हो चुका है ।

३ ‘प्राचीन गुर्जरकाव्य समर’ में प्रकाशित हुआ है ।

परमेश्वर दिव्येश्वरह पय पकञ्च वचमेदि
 मन्त्रिस्तु रामु रेवण मित्रे भक्ति देवी सुमरेवी ।
 गाम्गागर-मुस-वच-गहन सति-शरवति-मुपपत्तु,
 देवमूमि विमि पन्थिमह मन्त्रहृद सीरु देसु ॥

विष्णु संवत्की १५वीं शताब्दीमें बनेक चीन कवि हुए । उनकी भाषा हिन्दी की । उनकी कविताओंका मुख्यस्वर भक्तिपूर्ण था । भारतराष्ट्रीय मन्त्रिपतिमूर्तिके सिध्द विनेश्वरसूरिके वि सं १३३१ के लगभग बनेक भक्तिपूर्ण स्तुतिगीतोंकी रचना की शिगर्मि-से एकका नाम है 'शाबरो' । उसमें तीस पद्य हैं । बाकि एक पद्य देखिए

'मगति करवि बहु रिसह जिन वीरह चकल वमेवि ।
 हउं चाकिउ मनि मान वरि हुहवि विजमनि समरेवि ॥

इन्हीं विनेश्वरसूरिके सिध्द अन्नमतिकल्पने वि सं १३७ वैशाख शुक्ला १ को 'महावीररास' लिखा था । उसमें २१ पद्य हैं । इसे भगवान् महावीरकी स्तुति ही लग्गा चाहिए । अन्नमतिकल्पका शान्तिनाथदेवरास' और श्रीममूर्तिके विनेश्वरसूरि संवत्की विद्याहर्षनरास'^१ भक्तिसे अन्नमतिके प्रसिद्ध काव्य हैं ।

अन्नमतिके नामेअन्नमतिके आचार्य पादुसूरिके सिध्द थे । उन्होंने वि सं १३७१ के लगभग संवत्ति 'समरा रास'^२ का निर्माण किया था । श्रीमनाथ रास' समरा संवत्तिन वि सं १३७१ में अनुभव तीर्थशैलका पञ्जार करवाया था । इस रचनामें पद्योंका वर्णन है । इसकी भाषामें रासस्थानीके शब्द अधिक हैं । इससे अन्नमतिके अन्न रासस्थानमें कही हुआ था ऐसा अनुमान होता है । इस रासकी भाषाका सम्पूर्ण गुजरातीकी अपेक्षा हिन्दीके अधिक है । यह समरा काहने पद्यसे अब निराकरण अनुभवकी ओर प्रयास किया इस समराका एक पद्य देखिए,

१ श्री अन्नमतिके नामेअन्नमतिके निजी संस्करणमें मौजूद है ।

२ आचार्यरास और शान्तिनाथ देवरास श्री अन्नमतिके नामेअन्नमतिके निजी संस्करणमें मौजूद हैं ।

३ वैत वैदिकीय काव्य समग्रमें इन पद्य हैं ।

४ आचार्य वैत गुर्जरकाव्य संस्करणमें उद्धृत हैं ।

‘बाबिय सख अमल नादि काहक हुहु बुडिया
 घोड़े बड़इ सस्कारसार राउत सीगडिया ।
 तउ देखाऊउ जात्रि बेगि भावरि खु समकर
 सम बिसम नवि गलइ कोई नवि बारिउ मनकर ॥

जिनप्रममूरि (१४वीं शताब्दी वि० सं) अरतरगण्डीय जिनसिद्धमूरिके
 शिष्य थे । उन्होंने ‘पद्यावतीदेवी चौदई’की रचना की थी । यह कृति वहमशा
 वादसे प्रकाशित ‘भैरव पद्यावती कव्य’में छप चुकी है । यह देवी पद्यावतीकी
 भक्तिसे सम्बन्धित है । एक पद्य इस प्रकार है

“भीजिन सासणु मयबाकरि सायडु मिरि पडमावइ देवि ।
 मविष कोष आणइ परि बुद्धउ सावपजम्म सहेवि ॥

चौदहवीं शताब्दीके प्रसिद्ध नवि रत्नने जिनवत्त चौदईकी रचना वि सं
 १३५४ में की थी । इसको एक हस्तलिखित प्रति जयपुरके पाटीरीके मन्दिरमें
 मौजूद है । इसमें पाँच-छो पद्यएन पद्य हैं । इसमें जिनवत्तसे सम्बन्धित भक्तिपरक
 भाव प्रकट किये गये हैं । काव्यत्वकी दृष्टिसे भी कृति महत्त्वपुत्र है । इसी
 शताब्दीके नवि येस्तुन बडवीसी पीठ की रचना वि सं १३७१ में की ।
 यह एक लल्ल रचना है । इसमें चौबीस तोर्बकराकी स्तुति की गयी है ।

इसी शताब्दीमें आनन्दतिलकन ‘महार्णवदेउ नामकी रचनाका निर्वाप
 किया । इसकी एक हस्तलिखित प्रति आमेर-यास्र बखार जयपुरमें मौजूद है ।
 जब तो जमका प्रवासन भागरी प्रचारियो परिवारमें हो चुरा है । इनमें लयमन
 ४४ पद्य हैं । यह काव्य आध्यात्मिक भक्तिका निदर्शन है । गुरु महिपाटे को
 पद्य देखिए,

गुरु जिनवत्त गुरु सिद्ध मित्र गुरु रणजय साह ।
 सा हरिभावइ अण्य पद आणइ मजजक वावइ पाद ॥३९३॥
 मिश्रल सुषइ सङ्गुद मणइ वरमानइ महाड ।
 परम जोनि तनु उवदमई आणइ कीअइ विममलु भाड ॥३९४॥

परिसिद्ध २

दूसरे अध्यायके कवि अनुक्रमणिका

अपकीर्ति	२१९	बेवक्यम्	१२
अवधराज पदवी	१५७	बैवाद्युद्ध	२१५
आत्मन्यवन	२४	बीमलपत्र पण्डित	१५२
ईश्वरसूरि	१९	गन्धनाथ	१५८
उदयराज कवी	१५	निहाङ्कचन्द्र	१४९
कनककीर्ति	१७६	पद्मसिद्ध	५८
किसन सिंह	१२७	परिमलक कवि	११५
कुमुदचन्द्र	११	बनारसीदास	१७८
कुसुमकाम	११५	ब्रह्ममुखाक	१४६
कुंभरत्नाक	१९७	ब्रह्मविनयास	५९
कुशाङ्कचन्द्र काका	१११	ब्रह्मराजसम्भ	११
केनक	१	बिहारीदास	१२२
कुवलाकर	९६	मुक्तापीदास	२९
कठसमल	७१	कुवराज	९७
करिमसेन मुनि	६४	भगवतीदास पण्डित	१६४
कीर्त	११	भवनगीदास 'शैव्या'	२१८
कवजीवन	२११	भवापीदास	१५६
कवतराम	२५१	नाक	१३
कवकीर्ति मट्टारक	९४	भूवरदास	११५
कवठाक मुनि	९१	बनराम	१९१
कवतापर कपाध्याय	५२	मनोहरदास पण्डित	२१९
किसदास पाण्डे	१२५	महानन्द कवि	१४
किसराम सूरि	१६४	मेवराज	१४२
किसरूप	२३३	मैदानन्द कपाध्याय	४९
जाधराज बोधीदा	२७७	बसोबिबनजी कपाध्याय	१९९
ठगुरठी कवि	८१	रत्नकीर्ति मट्टारक	१७
दानदत्त	२७१		

राजरोबर मूर्ति	३२	सधाव	३४
रामचन्द्र	२४२	सहजकीर्ति	१४४
रामचन्द्र	२३	सविमसुन्दर उपाध्याय	९८
रघुचन्द्र पाण्डे	१९८	सामुकीर्ति	१२१
सदमीवस्त्रम	३०७	सुन्दरवास	१९१
सातचन्द्र सप्तशौरव	२२४	सुरेश्वरीर्ति मुनीश्वर	२९८
सावम्भसमय	१५	सोमसुन्दर मूर्ति	५
सावित्रचन्द्र	११७	हृपकीर्ति	१७४
विद्यासागर	२८७	हरिचन्द्र कवि	९
विद्युत्	४७	हरिकण्ठ	१२२
विजयचन्द्र मुनि	८	हीरानन्द पण्डित	२२८
विजयप्रम उपाध्याय	२७	हीरानन्द मुकीम	१५४
विजयविजय	२९१	हीरानन्द मूर्ति	५४
विजयसमुद्र	८८	हेमचन्द्र पाण्डे	२१४
विमोदीलाह	३११	हेमविजय	१५९
विश्वमूषण	२५८	साविरीय पति	९५
सिरोमणि दास	२७६	विभुवनचन्द्र	१२८
पुनचन्द्र मट्टारक	७७	ज्ञानमूषण मट्टारक	७१
सहजकीर्ति	५९		

